



श्री वीतरागाय नमः



श्री विनयविजय जी उपाध्याय विरचित

लोकप्रकाश

भाग - २

क्षेत्रलोक (पूर्वाब्द्ध)

सर्ग - १२ से २० तक

*

हिन्दी भाषानुवादक

प० पू० आचार्य देव श्रीमद् विजय पद्म चन्द्र सूरीश्वर जी म० सा०

*

प्रकाशक

श्री निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन संघ

श्री आत्मानंद जैन बालाश्रम भवन, हस्तिनापुर (मेरठ) उ०प्र०

दूरभाष - 01233-280132



A thin plastic convex lens made
over china requires

श्री शान्तिनाथाय नमः

श्री आत्मवल्लभ-ललित-पूर्णानंद-प्रकाश चन्द्र सूरीवराय नमः

सुगृहीत नामधेय श्री विनय विजय गणिवर्य विरचित

लोक प्रकाश

भाग - २

सर्ग १२ से २०

-: हिन्दी भाषानुवाद कर्ता :-

परम पूज्य, भारत दिवाकर, युगवीर जैनाचार्य श्रीमद विजय वल्लभ

सूरीश्वर जी महाराज के पट्टधर, मरूधर देशोद्धारक आचार्य

भगवंत श्रीमद विजय ललित, सूरीश्वर जी महाराज

के पट्टधर, महान तपस्वी, आचार्य देव श्रीमद

विजय पूर्णानंद सूरीश्वर जी महाराज सा०

के पट्टधर, अनेक तीर्थोद्धारक

महान तपस्वी उत्तर प्रदेशोद्धारक

आचार्य भगवंत

श्रीमद विजय प्रकाश चन्द्र सूरीश्वर जी महाराज सा० के

शिष्य रत्न

आचार्य देव श्रीमद विजय पद्म चन्द्र सूरीश्वर जी महाराज सा०

✽

- प्रकाशक -

श्री निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन संघ

बालाश्रम भवन, हस्तिनापुर

जिला मेरठ (३० प्र०) पिन - 250404

फ़ोन : 01233-280132

- | | |
|--|--|
| <input type="checkbox"/> ग्रन्थ का नाम :
लोक प्रकाश भाग -२ | <input type="checkbox"/> प्राप्ति स्थान :
श्री आत्मानंद जैन बालाश्रम भवन
हस्तिनापुर - 250404 (मेरठ) उ०प्र० |
| <input type="checkbox"/> मूलग्रन्थकार :
उपाध्याय श्री विनय जी गणिवर्य | <input type="checkbox"/> सेठ कस्तूर चन्द, अमी चन्द
३६, खान बिल्डिंग, नवाब टैंक ब्रिज
मझगांव, मुम्बई - १० |
| <input type="checkbox"/> आवृत्ति :
प्रथम | <input type="checkbox"/> सरस्वती पुस्तक भण्डार
रतन पोल हाथी खाना
अहमदाबाद (गुजरात) |
| <input type="checkbox"/> हिन्दी भाषानुवाद कर्ता :
आचार्य पदम चन्द्र सरी
फोन : 2642302, 2667315 | <input type="checkbox"/> सोमचन्द्र डी० शाह
बनारसी रोड
बनारस |

रत्नसुन्दर भान्दर

रामनगर किला (बरेली) उ० प्र०

- | |
|--|
| <input type="checkbox"/> प्रकाशन तिथि :
६ फरवरी, 2003
बसंत पंचमी संवत् 2060 |
| <input type="checkbox"/> मूल्य :
रु० १५०/= |
| <input type="checkbox"/> मुद्रक :
प्रिन्टोनिक्स
वैस्टर्न कचहरी रोड
मेरठ - 250 001
फोन : 2642302, 2667315 |

सादर-समर्पण
पूज्य दादा गुरुदेव के
चरण-कमलों में



आचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरी जी

जिनका जीवन सूर्य समान तेजस्वी था, मन चन्द्र समान सौम्य था, आचार
स्वर्ण समान निर्मल था, विचार सागर समान गंभीर था, वाणी
आध्यात्म युक्त थी, संयम साधना में वज्र समान कठोर
जन-जन के प्राण, पंजाब केसरी, युगवीर, युगदृष्टा,
विश्व वंदनीय, सूरी सम्राट, पंजाब देशोद्धारक
आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय वल्लभ सूरी०
जी म०, सा० के चरण-कमलों में
सादर समर्पित

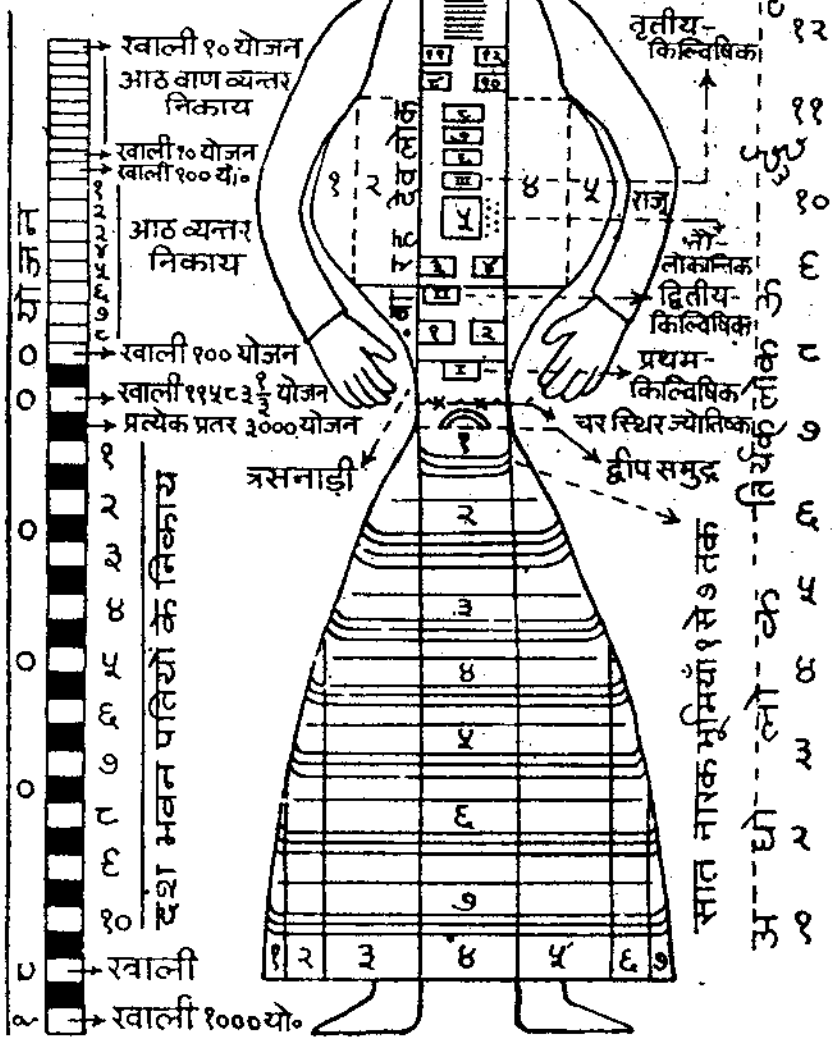
चरण रेणु

आ० श्रीमद् विजय पदम चन्द्र सूरी

चौदह राजू लोक

रत्न प्रभा पृथ्वी का दल

१८०००० योजन



प्रकाशकीय

सत् साहित्य का सृजन उसका संकलन एवं प्रकाशन जीवन विकास का उच्चतम सोपान है इस श्रेष्ठतम लक्ष्य को पुरस्सर कर हमारे संस्थान निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन द्वारा श्रुत यज्ञ में एक और पुष्पांजलि समर्पित है स्वनाम धन्य महोपाध्याय श्री विनय विजय जी महाराज ने अनेक ग्रन्थों में श्रेष्ठ, द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव से युक्त चार विभागों वाले श्री लोक प्रकाश नाम के ग्रन्थ की रचना की है ।

ग्रन्थ शिरोमणि लोक प्रकाश में जैन दर्शन के प्रायः सभी विषयों का सुन्दर अंश समन्वित है । वर्तमान में जो संस्करण प्रकाशित हुए हैं, उनमें विवेच्य विषय द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव को पांच भागों में समाहित किया गया है। इस महानतम ग्रन्थ के प्रणयन में उपाध्याय श्री विनय विजय जी गणि वर्य ने समग्र लोक-अलोक व्यवस्था, उसमें विराजित जीव-अजीव के ज्ञान का कैसा वर्णन किया है? यह तो इस महान ग्रन्थ के पठन-पाठन एवं श्रवण से ही जाना जा सकता है। लगभग ११ हजार श्लोक प्रमाण इस महाकाय ग्रन्थ में द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव में जो-जो विषय आये हैं, उनके सम्बंध में पूर्ववर्ती आचार्यों, जैन दर्शन के ग्रन्थों के, जो भी मतान्तर आये हैं, सभी को स्थान दिया गया है। यही कारण है कि अपने कथन की पुष्टि में ग्रन्थकार ने लगभग १४०० साक्षी पाठों एवं ७०० अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों के अंश प्रस्तुत किये हैं । अनेक आगमों के प्रकरण ग्रन्थों, प्रकीर्णक ग्रन्थों के पाठों की साक्षी रूप “द्रव्य लोक प्रकाश” में ४०२, ‘क्षेत्र लोक प्रकाश’ में ५०७, ‘काल लोक प्रकाश’ में ३७६ तथा ‘भाव लोक प्रकाश’ में २३ साक्षी पाठ प्रस्तुत किये हैं ।

अभी तक जैन दर्शन के दिग्दर्शक इस ग्रन्थ राज के, संस्कृत और गुजराती भाषा में अनुवादित संस्करण ही देखने में आये हैं । दूसरा भाग ‘क्षेत्र लोक प्रकाश’, सर्ग (१२-२०) लगभग श्लोक प्रमाण ३००० का सरल हिन्दी भाषानुवाद प्रकाशित करते हुए अत्यन्त हर्ष की अनुभूति हो रही है । परम पूज्य आचार्य “आत्म-वल्लभ-ललित-पूर्णानंद” की शिष्य परम्परा एवं पट्ट परम्परागत अनेक तीर्थोद्धारक, आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय प्रकाश चन्द्र सूरीश्वर जी महाराज स० के शिष्य रत्न, शास्त्रों के सदव्याख्याता

आचार्य प्रवर श्रीमद् विजय पदम चन्द्र सूरीश्वर जी महाराज सा० द्वारा हिन्दी भाषा में किया गया भाषानुवाद आपके हाथों में है । सम्पूर्ण ग्रन्थ पाँच भागों में प्रकाशित हो चुका है । जिज्ञासु पाठक वर्य अनुकूलता अनुसार वाचन कर श्रेयस्कर पथ के पथिक बने ।

सर्व प्रथम परम उपकारी आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय पदम चन्द्र सूरीश्वर जी म० सा० के चरण कमलों में वंदन करता हूँ कि उन्होंने इस ग्रन्थ का सरल हिन्दी भाषानुवाद करके परम उपकार किया है। ग्रन्थ प्रकाशन में बाल-मुनि श्री युग चन्द्र विजय जी म० सा० ने तथा सभी ने प्रूफ संशोधन एवं हस्तलिपि लेखन जैसे दुरूह कार्य का उत्तरदायित्व वहन करते हुए उपकार किया है । श्री नगीन चन्द्र जैन (नगीन-प्रकाशन, मेरठ) तथा सुभाष जैन (प्रिन्टोनिक्स) वैस्टर्न कचहरी रोड, मेरठ वालों का आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने अपने आवश्यक मुद्रण कार्यों को स्थगित रखते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य को वरीयता प्रदान की । 'ज्ञानावरणीय' क्षेत्र में अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करते हुए जिन दानवीर श्रेष्ठि श्रीमन्तों ने 'श्रुतयज्ञ' में सहयोग प्रदान किया है उन सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। अन्त में उन सभी ज्ञात-अज्ञात महानुभावों को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने तन, मन, धन, एवं भाव मात्र से भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में किंचित मात्र सहयोग प्रदान किया है ।

ग्रन्थ प्रकाशन में जो भी मति दोष अथवा दृष्टि दोष के कारण त्रुटि रह गई है, वह हमारे प्रमादवश है । सुविज्ञ पाठक वृन्द भूल सुधार कर, चिन्तन एवं मनन पूर्वक पढ़ें। यही शुभ अभिलाषा है ।

प्रो० जे०पी० सिंह जैन

एम०ए०, एल एल एम

मंत्री

निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन संघ

ग्रन्थकार - संक्षिप्त परिचय एवं कृतित्व

इस अपूर्व, अद्वितीय, महान ग्रन्थ के रचयिता स्वनाम धन्य उपाध्याय श्री विनय विजय गणिवर्य म०सा० का नाम जैन दर्शन साहित्य में बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरणकिया जाता है। इन्होंने ऐसे-ऐसे अमूल्य ग्रन्थ सर्वजन सुखाय-सर्वजन हिताय प्रदान किये कि किसी भी आध्यात्म मर्मज्ञ अथवा मुमुक्षु व्यक्ति का हृदय अपार श्रद्धा से भर जाता है। ग्रन्थ रूप अमूल्य निधि के प्रणेता का नाम जैन साहित्याकाश में प्रखर सूर्य की भाँति सदैव देदीप्य मान रहेगा। परम वंदनीय, महान उपकारी इन महात्मा का जन्मस्थान, जन्म समय, दीक्षा काल आदि क्या है ? इस सम्बंधमें सर्वथा शुद्ध एवं प्रामाणिक साक्ष्यों का अभाव हृदय को पीड़ा कारक है। लोक प्रकाश ग्रन्थ के प्रत्येक सर्गके अन्तिम श्लोक में ग्रन्थकार ने स्वयं -

विश्ववाश्चर्यद कीर्ति-कीर्तिविजय श्री वाचकेन्द्रातिषु,
 राज श्री तनयोऽतनिष्ठ विनयः श्री तेजपालात्मजः।
 काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जगत्तत्त्व प्रदीपोपमे,
 सर्गो निर्गलितार्थ सार्थ सुभगो पूर्ण सुखेनादिमः ॥

अर्थात्:- विश्व को आश्चर्य चकित कर देने वाली कीर्ति है जिनकी, उन "कीर्ति विजय"जी उपाध्याय के शिष्य और "राज श्री"माता तथा "श्री तेज पाल"जी के पुत्र, विनय वंश, विनय विजय नाम वाले (मैंने) निश्चित ही जगत के तत्त्व को प्रदर्शित कराने में दीपक समान इस "लोक प्रकाश" की रचना की जिसका --(यह अमुक सर्ग समाप्त हुआ)। इस तरह से सर्गान्त में ग्रन्थ कार ने अपने उपकारी, पूज्य गुरु देव तथा संसारी माता-पिता के प्रति भाव्य भक्ति पूर्वक कृतज्ञता ज्ञापित की है।

इससे इतना तो निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि इनकी माता का नाम 'राज श्री', पिता का नाम 'श्री तेजपाल' तथा गुरु महाराज का नाम 'श्री कीर्ति विजय जी' वाचकेन्द्र था। श्री कीर्ति-विजय जी म० सा० अकबर बादशाह के प्रति बोधक, जगद् गुरु विरुद से सम्मानित आचार्य देव "श्री मद् हीर विजय जी" के शिष्य थे। इस तथ्य की पुष्टि के प्रमाण में लोक प्रकाश काव्य की समाप्ति पर ग्रन्थकार द्वारा सर्ग ३७ के श्लोक संख्या ३२-३३ में उल्लेख किया गया है।

श्री हीरविजय सूरीश्वर शिष्यौ सौदरावभूतां द्वौ ।

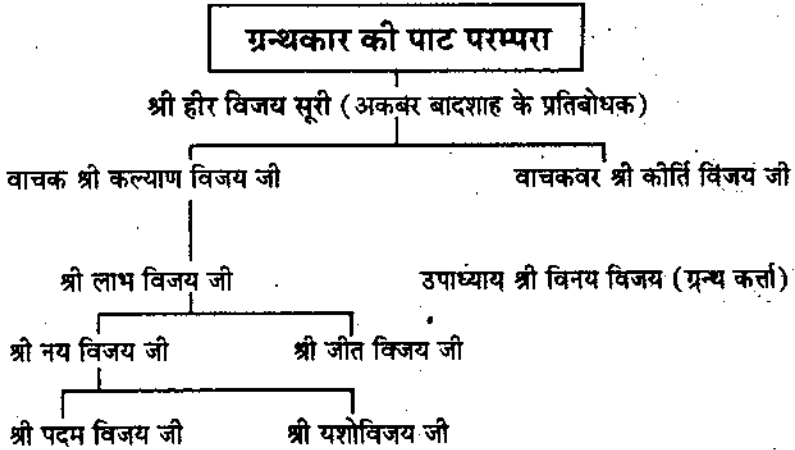
श्री सोमविजय वाचक- वाचक वर कीर्ति विजयाख्यौ ॥३२॥

तत्र कीर्ति विजयस्य किं स्तुमः, सुप्रभावममृतद्युतेरिव ।

यत्करातिशयतोऽजनिष्टमत्प्रस्तरादपि सुधारसौऽसकौ ॥३३॥

इस प्रशस्ति के अनुसार आचार्य देव श्री मद् 'हीर विजय' जी म० सा० के दो

शिष्य 'श्री सोम विजय' जी म० सा० तथा उपाध्याय 'श्री विनय विजय' जी गणि वर्ण इन्हीं वाचक वर्ण 'श्री कीर्ति विजय' जी महाराज साहब के शिष्य थे। सन् १६०५ में जामनगर से प्रकाशित पं० हीरालाल, हंसराज की गुजराती भाषा में अनुवादित 'लोक प्रकाश' की एक प्रति में ग्रन्थकार की पाट परम्परा को दर्शाने वाला एक मानचित्र (नक्शा) देखने को मिला। अविकल रूप से उसे यहाँ अंकित करना आवश्यक है -



उपर्युक्त मानचित्र को देखने से ज्ञात होता है कि आचार्य प्रवर 'श्री हीर विजय सूरी' के शिष्य श्री कल्याण विजय जी तथा श्री कीर्ति विजय जी थे। हमारे ग्रन्थ कर्ता 'श्री विनय विजय' जी म०सा० उपाध्याय 'श्री यशोविजय' जी के समकालीन ठहरते हैं। ये दोनों ही साधु वर्ण एक समुदाय में दीक्षित थे। इनमें परस्पर बहुत ही प्रेममय व्यवहार था। एक स्थान पर उल्लेख मिलता है कि किसी प्रसंग पर १२०० श्लोक प्रमाण ग्रन्थ को उपाध्याय 'श्री कीर्ति विजय' जी म०सा० तथा उपाध्याय 'श्री यशोविजय' जी म० सा० ने एक रात्रि में क्रमशः ५०० तथा ६०० श्लोक को कंठस्थ करके अगले दिन अविकल रूप में लिपिबद्ध कर दिया था। इससे इन मुनि द्वय की अलौकिक प्रतिभा एवं स्मरण शक्ति का सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है।

उपाध्याय 'श्री विनय विजय' जी म० सा० जैनागमों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने अनेकों बार शास्त्रार्थ में अन्य दर्शनाचार्यों का मत खंडन कर जिन वाणी रूप में स्थापन किया था। अनेकशः ऐसे दृष्टान्तों का उल्लेख मिलता है कि इन्होंने अन्य मतावलंबियों को जिन मत में दृढ़ किया है। इतने विद्वान् होते हुए भी इनमें विनय भाव अत्यधिक था। यथानाम तथा गुण के आधार पर 'श्री विजय विजय' जी गणिमहाराज पूर्ण रूपेण खरे उतरते हैं। इनकी विनय भक्ति और उदारता का दृष्टान्त है कि किसी समय पर खंघात में

चार्तुमासिक-प्रवास काल में उपाश्रय में इनका व्याख्यान चल रहा था। उसी समय एक वृद्ध ब्राह्मण इनकी धर्म सभा में प्रवेश करता है धर्म सभा पूर्ण रूपेण यौवन पर है। व्याख्यान कर्ता एवं श्रोता गण श्रावक वर्य दत्त चित्त आध्यात्म रस का मनोयोग से रसपान कर रहे हैं। वृद्ध ब्राह्मण के सभा कक्ष में प्रवेश पर जैसे ही 'गणिवर्य' श्री 'विनय विजय' जी महाराज साहब ने व्यास पीठ से उतर कर आगे बढ़कर उन वृद्ध ब्राह्मण का स्वागत किया, उनका हाथ पकड़ कर आगे लाये तो सब सभासद श्रावक आश्चर्य चकित रह गये। विचार करते हैं कि ये पूज्य गणि जी महाराज 'श्री विजय विजय' श्री म० सा० हैं, जिन्होंने नाम का डंका सारे खंभात में बज रहा है। जिनका सर्वत्र जयघोष हो रहा है। वे इस वृद्ध ब्राह्मण के इस तरह से भक्ति भाव प्रदर्शित कर रहे हैं। श्रावकों ने उपाध्याय जी महाराज से पूछा कि हे गुरु वर्य ! ये महाशय कौन हैं ? उपाध्याय 'श्री विजय विजय' जी म० सा० ने फरमाया कि, हे भाग्य शालियों ! ये हमारे काशी के विद्या दाता गुरु हैं। इनकी ही परम कृपा और परिश्रम से मैं आज इस स्थान पर पहुँचा हूँ। इनका मुझ पर बहुत बड़ा उपकार है। मुनि महाराज का इतना कहना मात्र ही था कि श्रद्धालान श्रावकों ने बिना किसी प्रेरणा व कहने के कुछ ही क्षणों में गुरु दक्षिणा के रूप ७००००, सत्तर हजार रुपये की भेंट आगन्तुक पंडित जी के समक्ष रख दी। कितनी श्रद्धा थी, कितनी भक्ति थी उपाध्याय श्री जी के मन में अपने उपकारी के प्रति। आज ऐसा उदाहरण शायद ही सश्रम खोजने पर भी न मिले।

उपकारी गुरुदेव रचित अनेकों ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं। विस्तार भय से सब का पूर्ण विवेचन संभव नहीं है, फिर भी संक्षेप में इसका परिचय प्रस्तुत करना आवश्यक सा जान पड़ता है। उनमें से कुछ का किंचित् मात्र परिचय निम्नवत् है।

(१) हेम प्रक्रिया :- आगम ग्रन्थों के ज्ञानार्थ सर्व प्रथम व्याकरण का ज्ञान परमावश्यक है। कलि काल सर्वज्ञ श्री हेम चन्द्र सूरीश्वर जी म० सा० ने जैन व्याकरण को आठ अंश्यायों में दस हजार श्लोक (लघुवृत्ति) प्रमाण से पूरा किया तथा अठारह हजार श्लोक प्रमाण से बृहद् वृत्ति की रचना की थी। उपाध्याय श्री जी ने उस पर चौरासी हजार श्लोक प्रमाण, धातु पारायण, उणादि गण, धातु पारायण, न्यास दुंदुबिका टीका आदि प्रस्तुत की। उपाध्याय जी ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से इस व्याकरण शास्त्र को सरल सुगम और सरस बनाने में भारी पुरुषार्थ किया है। इन्होंने इस पर लघु प्रक्रिया रची। क्रमवार संज्ञा-संधि-षड्लिङ्ग -तद्धित और धातुओं में शब्द रचना की विधि बताई। सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र को अति सुबोध और सुगमता से सुग्राह्य और बाल सुलभ बनाने की दृष्टि से पूज्य श्री जी ने अपनी विशिष्ट कलाओं से युक्त २५०० श्लोक प्रमाण इस ग्रन्थ को संवत् १७६० में पूर्ण

किया । इसके पश्चात् इसकी खोपड़ा टीका रची । अपनी विद्वता प्रतिभा को प्रकाशित करते हुए ३४००० श्लोक प्रमाण यह टीका अत्यन्त सरस एवं सरल संस्कृत भाषा में रची । इस ग्रन्थ को सं० १७३६ में रतलाम में विजय दशमी के दिन पूर्ण किया गया ।

- (२) नयकर्णिका :- 'नय' का ज्ञान तो अथाह सागर है । अपने जिन शासन में हर एक विषय में 'नय' दी है । विषय की जटिलता को देखते हुए उपाध्याय जी ने बाल जीवों के ज्ञानार्थ अत्यन्त सरल भाषा में ज्ञान कराने हेतु इसकी रचना की है । इसमें सिर्फ २३ गाथाओं के द्वारा 'नय' विषय में प्रवेश हेतु प्रवेशिका रूप में प्रस्तुत किया है । यह लघुकाय पुस्तक 'नय' के अभ्यासी के लिये अत्यन्त उपयोगी है ।
- (३) इन्दुदूत :- (काव्यमाला) यह एक सरस काव्य मय कृति है । पुरातन समय में संवत्सरी प्रतिक्रमण के पूर्ण होने पर एक संघ दूसरे संघ के प्रति क्षमापणा पत्र लिखता था । शिष्य- गुरु के प्रति भक्ति भाव प्रदर्शित कर क्षमा याचना करता था । कभी-कभी तो यह ५० हाथ से १०० हाथ तक के लम्बे कागज पर लिखे जाते थे । इसके दोनों ओर हाशिये बना कर मन्दिरों, मूर्तियों, सरोवरों, नदियों कुओं, नर्तकियों आदि के विभिन्न रंगों वाले चित्रों से सजाया जाता था । उस ही भाव - भंगिमा से प्रेरणा प्राप्त कर उपाध्याय श्री जी ने काव्य कला के विभिन्न रस, छन्द, अलंकार, भाव भंगिमा रूप चित्रों से युक्त एक काव्यमय पत्र जोधपुर से सूरत विराज मान गच्छाधिपति आचार्य भगवत श्री मद् विजय प्रभ सूरेश्वर जी म० सा० की सेवा में लिखा । इस काव्य मय पत्र में चन्द्रमा को दूत बना कर जोधपुर से सूरत तक के सभी तीर्थों, जिन मन्दिरों, नगरों एवं शासन प्रभावक सुश्रावकों का चित्रण (वर्णन) करते हुए लिखा गया यह पत्र अत्यन्त प्रभावोत्पादक था । अत्यन्त मनोरम एवं अद्भुत रूप से रचित मात्र १३१ श्लोकों का यह काव्य अत्यन्त प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ । इसका रचना काल सं० १७१८ वि० है ।
- (४) शान्त सुधारस :- यह ग्रन्थ रत्न भी काव्य मय है । इसका विवेच्य विषय 'अनित्य' आदि १२ भावना तथा मंत्रादि चार भावना हैं । इसमें सरल संस्कृत भाषा में ३५७ श्लोकों से रचा गया है । समस्त संस्कृत साहित्य में, जैन ग्रन्थों में अनेकों प्रकार की राग-रागिनियों युक्त शायद ही कोई दूसरा ग्रन्थ उस काल में रहा होगा । उपाध्याय जी महाराज केवल कवि हृदय ही नहीं अपितु अनुभव सिद्ध कवि थे । उस समय मुगलों का अधिपत्य चतुर्दिग प्रसरित होने से हिन्दू प्राय असहाय अवस्था का अनुभव करते थे । कदाचित्त मुगलों से हैरान, परेशान हिन्दु अधिकतर प्रसंगों पर कषायों से ग्रसित रहे होंगे । ऐसे प्रसंग पर संघ की अपनी आत्मा को

जागृत रखने के उद्देश्य से इस कृति को रचा गया होगा । जो भी इस ग्रन्थ का पठने-वाचन करेगा तो इसके अलौकिक, अध्यात्म परक शान्त सुधा रस का आस्वादन करेगा । प्रायकर इसका प्रत्येक श्लोक अलग-अलग राग शैली पर आधारित है । इसका रचना काल संवत् १७२३ तथा स्थान गांधार-नगर कहा गया है ।

(५) षट्त्रिंशत् जल्प संग्रह : - परम पूज्य श्री भाव विजय जी म० सा० ने सं० १६६६ में संस्कृत भाषा में पद्यमय काव्य ग्रन्थ 'षट्त्रिंशत्' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। हमारे पूज्य प्रवर उपाध्याय 'श्री विनय विजय' जी म० सा० ने संक्षिप्त रूप से इसे संस्कृत में ही गद्य स्वरूप प्रदान किया है ।

(६) अर्हन्नमस्कार स्तोत्र : - इस स्तोत्र में परमात्मा की स्तुतिया है । वर्तमान समय में इस ग्रन्थ का अभाव है । इसकी मूल प्रति उदयपुर भंडार में सुरक्षित बताई गई है।

(७) जिन सहस्र नाम स्तोत्र : - विद्वत्ता से भरी, भक्ति भाव पूर्ण इस कृति में संस्कृत भाषा में रचित १४६ उपजाति द्वन्दों का सृजन है । कहा जाता है कि इसकी रचना संवत् १७३१ के गांधार नगर के चार्तुमासिक प्रवास काल में की गई थी । इस ग्रन्थ की विशेषता है कि प्रत्येक श्लोक में सात बार भगवंतों को नमस्कार किया गया है। सब मिला कर १००१ बार नमस्कार करने में आया है।

(८) आनंदलेख : - यह लेख भी संस्कृत भाषा में रचित है । २५१ श्लोकों से युक्त इस ग्रन्थ की रचना १६६६ वि० संवत् कहा गया है । पूर्ण पांडित्य पूर्ण संस्कृत के इस ग्रन्थ का भी बहुत आदर है ।

उपाध्याय 'श्री विनय विजय' जी म०सा० ने गुजराती भाषा में भी साहित्य सृजन किया है । इनके अनेक ग्रन्थ गुजराती भाषा में लिखित हैं, जिनका उल्लेख करना भी आवश्यक है ।

(९) सूर्य पुर चैत्य परिपाटी : - गुजराती की प्रथम रचना 'सूर्यपुर चैत्य परिपाटी' का रचना काल विक्रमी संवत् १६८६ है । इस ग्रन्थ में सूर्य पुर (सूरत) नगर के चैत्यो (जिन मन्दिरों) की परिपाटी का वर्णन है । उस में सूरत में स्थित ११ जिनालयों का उल्लेख मिलता है । जिन मन्दिरों के मूलनायक श्री जिनेश्वर भगवंत की स्तुति रूप १४ कडियों में ग्रन्थ-कार ने तीर्थमाला की रचना की है।

(१०) विजय देव सूरी लेख :- इसमें परम पूज्य, अकबर बादशाह के प्रति बोधक, आचार्य देव श्रीमद् विजय हीर सूरीश्वर जी म० सा० के पट्टालंकार आचार्य

प्रवर श्रीमद् विजय देव सूरीश्वर जी म०सा० की भक्ति रूप सञ्ज्ञाय की रचना की गई है।

- (११) उपमिति भव प्रपंचा :- श्री सिद्धर्षि गणि कृत अत्यन्त वैराग्यपूर्ण महा ग्रन्थ उपमिति भव प्रपंच कथा (संक्षेप) करके गुजराती भाषा में स्तवन रूप में प्रस्तुत किया है । वि० सं० १७१६ में रचित यह स्तवन रूपकृति भगवान धर्म नाथ प्रभु की भाव भक्ति से ओत-प्रोत है । प्रथम तो सम्पूर्ण भव चक्र को उपमिति प्रमाण में वर्णन किया है, और बाद में श्री धर्मनाथ जिनेश्वर प्रभु की विनती की है ।

धर्म नाथ अवधारिये सेवक की अरदास ।

दया कीजिये-दीजिये, मुक्ति महोदय वास ॥

- (१२) पदटावली सञ्ज्ञाय :- इस ग्रन्थ का रचना काल वि० सं० १७१८ है । इस कृति में श्री सुधर्मा स्वामी से लेकर पट्टपरम्परा अनुसार उपकारी गुरु 'श्री कीर्ति विजय जी उपाध्याय के समय तक के पूज्य गुरु भगवन्तों की विशिष्टताओं को ७२ गाथाओं को स्तवन रूप लिखा गया है । इसमें पूज्य गुरु देव की पदवी प्रसंग को बहुत ही प्रभवोत्पादक रूप से प्रस्तुत किया गया है ।

- (१३) पाँच समवाय (कारण) स्तवन :- इस ग्रन्थ में ६ ढाल में ५८ गाथाओं से निबद्ध रूप स्तवन में 'कालमतवादी', 'स्वभाव मतवादी', 'भावी समभाववादी', 'कर्मवादी' और 'उद्यम वादियों' के मंतव्य को बड़े ही मनोयोग और विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया है। पिछली छठी ढाल में सभी वादों को श्री जिनेश्वर प्रभु के चरणों में आते दिखाया है।

ए पाँचे समुदाय मल्या विण, कोई काम न सीझो ।

अंगुलियोगे करणी परे, जे बूझे ते रीझे ॥

इस रीति से पाँचों समवाय को समझाने व समझाने के लिये उपयोगी इस स्तवन को गुजराती भाषा में लिपिबद्ध किया गया है।

- (१४) चौबीसी स्तवन:- चौबीसों भगवन्तों के प्रत्येक स्तवन में ३-४ या ५ गाथायें हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ में कुल १३० गाथायें हैं। इसमें चरम तीर्थकर प्रभु महावीर स्वामी का स्तवन बहुत ही लोक प्रिय है। इसकी अन्तिम कड़ी मे-

वाचक शेरखर कीर्तिविजय गुरु, पामी तास पसाय ।

धर्मतणे रसे जिन चोवीशना, विनय विजय गुणगाय ॥

सिद्धारथना रे नंदन विनवु-----

पूज्य नेमिनाथ प्रभु के तीन स्तवन हैं। इसमें कुल २६ स्तवन हैं। किसी-किसी स्तवन में तो भाव पक्ष बहुत ही प्रबल है।

(१५) वींशी स्तवन:- यह विहरमान बीस तीर्थंकर परमात्माओं का स्तवन है। इसमें हर एक स्तवन की पाँच-पाँच गाथा है। चार स्तवनों की छः छः गाथा है। कुल मिलाकर ११५ गाथाओं का संयोजन किया है। अन्तिम में प्रशस्ति रूप से 'कलश' लिखा है।

श्री कीर्ति विजय उवझायणो ए, विनय वदे कर जोड़ ।

श्री जिनना गुणगावतां ए, लहीए मंगल कोड ॥

इस प्रकार से मध्यम प्रकार की इस कृति द्वारा बीस विहरमान परमात्मों के शरीर, आयुष्य आदि का वर्णन भी किया गया है।

(१६) पुण्य प्रकाश अथवा आराधनानुस्तवन:- आचार्य श्री 'सोम सूरि' रचित 'आराधना सूत्र' नाम के पचन्ना के आधार पर ८ ढाल और ८७ गाथाओं का यह स्तवन वि०सं० १७२६ में रांदेर के चातुर्मास के प्रवासकाल में रचा गया था। गुजराती भाषा में रचित यह लघु कृति अत्यन्त मर्मस्पर्शी और सुन्दर है। पूर्ण मनोयोग पूर्वक इसके पठन-पाठन-वाचन या श्रवण करने से व्यक्ति आत्म विभोर हो जाता है। अत्यन्त भावातिरेक उत्पन्न होने से आँखोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। ताप-शोक-पीड़ा-विषाद-दुःखः अथवा अन्तिम अवस्था जैसे प्रसंगों पर यदि अत्यन्त प्रभावोत्पादक एवं हृदय तलस्पर्शी शब्दावली का प्रयोग करके गाया जाय, पढ़ा जाय या समझाया जाय तो यह निश्चय ही मन पर वैराग्य भाव की अमिट छाप छोड़ती है। इसमें दस प्रकार की आराधना बताई गई है - जैसे -

- | | |
|-------------------------------|-------------------------------|
| (१) अतिचार की आलोचना | (२) सर्वदेशीय व्रत ग्रहण |
| (३) सब जीवों के साथ क्षमापण | (४) १८ पापों को वीसिरावा |
| (५) चारों शरण को स्वीकारना | (६) पापों की निंदा |
| (७) शुभ-कार्यों की अनुमोदना | (८) शुभभावना |
| (९) अनशन-पञ्चखाण | (१०) नमस्कार महामंत्र स्मरण |

इस तरह प्रतिदिन नियम पूर्वक, भाव सहित पढ़ने-वाचने-बोलने-सुनने-सुनाने से आत्मा निर्मल होती है।

(१७) विनय विलास:- उपाध्याय 'श्री विनय विजय' जी रचित गुजराती भाषा की यह छोटी सी कृति मानों अपने उपकारी गुरुदेव उपाध्याय 'श्री कीर्ति विजय' जी म० सा० के चरण कमलों में अर्पित भाव सुमन है। यह लघु रचना ३६ पदों में निबद्ध है।

'श्री कीर्ति विजय' उवञ्जाय केरो, लहेए पुण्य पसाय ।

सासता जिन धुणी एणी परे, 'विनय विजय' उवञ्जा ॥

आत्मार्थी महापुरुषों के द्वारा शान्त समय में अपने चेतन मन को प्रायः कर इस शैली में ही ध्वनि रूप से सम्बोधित किया जाता है । संभवतः कथन वैदग्ध्य (वाणिविलास) की शैली विशेष में रचना होने के कारण इस कृति को 'विनय विलास' नाम दिया है । मात्र ३७ पदों की इस लघु रचना का प्रणयन काल संवत् १७३० के निकट रहा होगा ।

- (१८) भगवती सूत्र की सञ्जाय:- उपाध्याय श्री जी के संवत् १७३१ के रांदेर के चातुर्मास के प्रवास काल में इस ग्रन्थ की रचना की गई थी। इक्कीस गाथाओं वाली इस सञ्जाय में भगवती सूत्र की विशेषताये तथा भगवती सूत्र की विशेषताये तथा भगवती सूत्र के वाचन के लाभ आदि बाताये गये है। इस सञ्जाय की प्रशस्ति इस प्रकार है।

संवत् सत्तर एकत्रीस में रे, रहा रांदेर चौमास ।

संघे सूत्र ए सांभल्यु रे, अणि मन उल्लास ॥

कीर्ति विजय उवञ्जायनोरे, सेवक करे सञ्जाय ।

एणि परे भगवती सूत्र नैरे, विनय विजय उवञ्जाय रे ----

- (१९) आयं बिलनी सञ्जाय :- आयंबिल तप में क्या है? इस तप की महिमा क्या है? यह सब कुछ बताने वाली इस सञ्जाय में ११ गाथा है। इसकी अन्तिम गाथा इस तरह है-

आम्बील तप उत्कृष्टों कहयो, विघन-विदारण कारण कहया ।

वाचऊ कीर्ति विजय सुपसाय, भाखे विनय विजय उवञ्जाय ॥

- (२०) श्री आदि जिन विनती:- यह स्तवन गाथा दादा आदीश्वर भगवान के समक्ष श्री सिद्धाचल ऊपर बोलने लायक है। इस ६७ गाथाओं के स्तवन में भगवान से विनय की गई है, उन्हें प्रसन्न किया गया है, उन्हें मनाया गया है, उन्हें रिझाया गया है, उल्लाना भी दिया गया है और अन्त में उन्हीं की शरण में स्वीकार की गई। इस प्रार्थना में ऐसा शब्द-विन्यास है कि पढ़ने और सुनने वाले के हृदय रूपी वीणा के तार झंकृत हो उठते हैं ।

- (२१) षड्वावश्यक प्रतिक्रमण स्तवन:- में छः आवश्यक ऊपर एक-एक ढाल है। इस प्रकार छः ढाल का स्तवन है। इसमें कुल ४२ गाथा हैं। इसमें अंतिम प्रशस्ति इस प्रकार से है।

तप गच्छनायक मुक्ति दायक श्री विजय देव सूरीश्वरो ।
 तस पट्टदीपक मोहजिपक, श्री विजय प्रभसूरी गणधरो ॥
 श्री कीर्ति विजय उवञ्जाय सेवक, विनय विजय वाचक कहे ।
 षडावश्यक जे आराधे तेह शिव संपद लहे ॥

- (२२) चैत्य वन्दन:- श्री सीमन्धर स्वामी की ' श्री सीमन्धर वीत राग ' इस चैत्य वन्दन की तीन गाथायें हैं।
- (२३) उपधान स्तवन:- इस स्तवन में दो ढाल और कलश को मिलाकर कुल २४ गाथा है। उपधान कराने का क्या कारण है? और विशेष माला पहराने सम्बंधी खूब विवेचना की है। इसकी पिछली ढाल ' भाई हये माला पहिरावो ' यह बहुत ही प्रसिद्ध है।
- (२४) श्रीपाल राजानो रास:- उपाध्याय ' श्री विनय विजय जी ' महाराज साहब की यह संस्कृत में रचित अद्भुत कृति है। भावनाओं की सजावट, संस्कृत का गेय काव्य और शान्त सुधा रस का मुख्य स्थान है। वर्ष में दो बार चैत्र तथा अश्विन मास में नव पद की आराधना करते समय ओली में सुदि सप्तमी से सुदि पंदरमी तक विद्वानों द्वारा नौ दिन तक प्रत्येक गाँव-नगर के सभा व कुटुंब के समक्ष बाँचा जाता है। ' श्री पाल रास ' का प्रारम्भ संवत् १७३८ के रांदेरे के चातुर्मास में श्री संघ की विनती पर किया गया था। इसके प्रथम खंड की पाँचवी ढाल की रचना करते-करते २० वी गाथा के लिखने तक जैन शासन के महान प्रभावक इस ग्रन्थ के रचयिता परम पूज्य उपाध्याय श्री विनय विजय जी गणि का देवलोक गमन हो गया था। इसके अधूरे कार्य को पूरा करने के लिये उपाध्याय श्री के सहअध्यायी उपाध्याय श्री यशो विजय जी म०सा० ने आगे आकर कार्य को संभाल लिया। कुल चार खंड युक्त १२५० गाथा वाले महाकाव्य को पूरा किया। इस प्रकार ७४८ गाथा में पूज्य विनय विजय कृत तथा शेष ५०२ गाथाये पूज्य यशोविजय कृत है ।
- (२५) श्री कल्प सूत्र की सुबोधिका टीका:- श्री उपाध्याय जी कृत कल्प सूत्र की सुबोधिका टीका भी प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह ६०० श्लोक प्रमाण ग्रन्थ पर्युर्धण पर्व के दिनों में तप गच्छ समुदायों में बड़े ही सम्मान, श्रद्धा व उल्लास के साथ सर्वत्र वाँचने के काम आता है।
- (२६) लोक प्रकाश:- ' लोक प्रकाश ' जैन दर्शन का एक अद्भुत एवं विशालकाय ग्रन्थ है। इसमें विवेच्य विषय द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव को ३७ सर्गों के रूप में लगभग १८००० श्लोकों में आबद्ध किया गया है। इसमें जैन दर्शन के सभी

पहलुओं का सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है। लगभग १४०० साक्षी पाठ एवं ७०० अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों के उद्धरणों से ग्रन्थ की उपादेयता और भी बढ़ जाती है। विषय महान है, ग्रन्थ भी महान है और उद्देश्य भी महान है। ग्रन्थ आपके हाथों में है। सुधार कर पढ़ें तो निश्चय कल्याण होगा ग्रन्थ की रचना काल तिथि सर्ग ३७ की प्रशस्ति श्लोक ३६ के अनुसार निम्नवत् है ।

वसुरवाश्वेन्दु(१७०८) प्रमिते वर्षे जीर्णं दुर्गं पुरे ।

राघोऽज्ज्वल पंचम्या ग्रन्थः पूर्णेऽयमजनिष्ट ॥ सर्ग ३७ श्लोक ३६ ॥

इस प्रकार संवत् १७०८ वैशाख सुदि ५ (ईस्वी सन् १६५२) के दिन जीर्ण पुरे (जूनागढ़) में यह महान ग्रन्थ पूर्ण किया गया।

जैन जगत के पूज्य, महान शासन प्रभावक, आध्यात्म ज्ञानी, महान लेखक एवं पर उपकारी उपाध्याय श्री विनय विजय जी महाराज साहब संवत् १७३८ में रांदोर नगर के चार्तुमासिक प्रवास काल में काल धर्म को अपनाकर गोलोक वासी बने। उपाध्याय श्री जी के जीवन चरित्र के सम्बंध में कोई प्रामाणिक ग्रन्थ मिलता नहीं। कुछ छुट-पुट घटनायें- लोक कथन या उनके द्वारा लिखे गये 'लोक प्रकाश' 'नयकर्णिका' 'शान्त सुधारस' आदि के बिखरे हुए सन्दर्भों को जोड़ कर ही कुछ समझने व जानने का प्रयत्न किया गया है।

मुनियुग चन्द्र विजय

मूल तथा टीका व्याख्या में आधार भूत आगम पाठों की नामवली

क्र० स०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या	क्र० स०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या
१	आवश्यक निर्युक्ति	१२	१३	२४	प्राचीन गाथा	१२	२५०
२	संग्रहणी	१२	१३	२५	ठाणांग सूत्र	१२	२५५
३	भगवती सूत्र	१२	१३	२६	प्रज्ञापना सूत्र	१२	२५६
४	योग शास्त्र	१२	१३	२७	संग्रहणी	१२	२५६
५	जीवाभिगम वृति	१२	१३	२८	योगशास्त्र चतुर्थ प्रकाश	१२	२५६
६	लोक नालिका स्तवन	१२	१४	२९	प्राचीन गाथा	१३	४
७	भगवती सूत्र	१२	३९	३०	प्राचीन गाथा	१३	५
८	स्थानांग सूत्र वृति	१२	३९	३१	लघु संग्रहणी वृति	१३	५
९	प्राचीन गाथा	१२	५६	३२	तत्त्वार्थ भाष्य	१३	५
१०	आचारांग निर्युक्ति	१२	७६	३३	भगवती सूत्र: शतक	१३	४६
११	भगवती सूत्र	१२	७६		-२ उद्देश-८		
	शतक-१८ उद्देश-४			३४	समवायांग सूत्र	१३	४६
१२	भगवती सूत्र	१२	७६	३५	ठाणांग सूत्र	१३	११४
१३	भगवती सूत्र वृति	१२	७६	३६	भगवती सूत्र	१३	१४६
१४	कर्म प्रकृति वृति १२	७६		३७	देवेन्द्र स्तवन	१३	१४७
१५	संग्रहणी वृति	१२	१०४	३८	जीवाभिगम वृति	१३	१८१
१६	लोक नाडी स्तवन	१२	१०४	३९	स्थानांग सूत्र	१३	२१६
१७	भगवती सूत्र: शतक-११	१२	१४४	४०	जीवाभिगम वृति	१३	२३४
१८	भगवती सूत्र:	१२	१५६	४१	भगवती सूत्र	१३	२८५
	शतक -१, उद्देश १०			४२	देवेन्द्र स्तवन	१३	२८६
१९	ठाणांग सूत्र	१२	२१२	४३	स्थानांग वृति का	१३	२९०
२०	प्राचीन गाथा	१२	२१३		दशवा स्थानक		
२१	प्राचीन गाथा	१२	२१४	४४	स्थानांग वृति	१३	२९१
२२	ठाणांग सूत्र ८ सूत्र	१२	२१५	४५	जीवाभिगम	१४	२
	तथा वृति			४६	प्रज्ञापना सूत्र	१४	२१
२३	प्राचीन गाथा	१२	२४८	४७	प्राचीन गाथा	१४	२७

क्र० सं०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या	क्र० सं०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या
४८	स्थानांग सूत्र	१४	३२, ३३	७३	जीवाभिगम सूत्र की टीका	१५	१८२
४९	स्थानांग सूत्र वृत्ति	१४	३६	७४	क्षेत्र समास वृहद वृत्ति	१५	१९५
५०	तत्वार्थ वृत्ति	१४	५०	७५	क्षेत्र समास वृहद वृत्ति	१५	१९६
५१	भगवती सूत्र शतक-१३	१४	६३	७६	जीवाभिगम सूत्र की टीका	१५	१९६
	उद्देश-४			७७	जीवाभिगम सूत्र	१५	२०६
५२	भगवती सूत्र शतक-१८	१४	७०	७८	क्षेत्र समास की बड़ी टीका	१५	२०६
	उद्देश-५			७९	श्राद्ध विधि प्रकरण की टीका	१५	२२१
५३	भगवती सूत्र शतक-१	१४	७१	८०	जीवाभिगम सूत्र	१५	२३५
	उद्देश-२			८१	क्षेत्र समास की बड़ी टीका	१५	२३५
५४	प्राचीन गाथा	१४	१०५	८२	प्राचीन गाथा	१६	६६
५५	प्राचीन गाथा	१४	१०६	८३	भाष्य सूत्र की वृत्ति (धर्म घोष सूत्र कृत)	१६	१०५
५६	हेम चन्द्राचार्य कृत त्रिषष्टि शलाका सप्तम पर्व	१४	२२०	८४	समवायांग सूत्र	१६	१०८
५७	जीवाभिगम सूत्र	१४	२७५	८५	उववाई सूत्र	१६	१०८
५८	जीवाभिगम सूत्र	१४	३००	८६	भाष्य सूत्र	१६	११०
५९	स्थानांग सूत्र	१४	३१७	८७	प्राचीन गाथा	१६	११४-
६०	जीवाभिगम सूत्र	१४	३१८				११५
६१	प्राचीन गाथा	१४	३२१	८८	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति	१६	१२०
६२	जम्बू द्वीप संग्रहणी	१५	४५	८९	वृहद क्षेत्र समास	१६	१२०
६३	लघु क्षेत्र समास वृत्ति	१५	५४	९०	जम्बू द्वीप समास (उमा स्वाति म० कृत)	१६	१२०
६४	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति	१५	८८	९१	क्षेत्र विचार वृहत् टीका (मलय गिरी म० कृत)	१६	१३६
६५	जम्बू द्वीप	१५	८८	९२	आवश्यक सूत्र वृहत् टीका	१६	१३६
६६	प्राचीन गाथा	१५	१२४	९३	प्रवचन सारोद्धार	१६	१५५
६७	जीवाभिगम सूत्र	१५	१२७	९४	त्रिषष्टि शलाका पर्व-२	१६	१५५
६८	समवायांग सूत्र	१५	१२७	९५	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति	१६	१६८
६९	स्थानांग सूत्र	१५	१२६				
७०	जीवाभिगम सूत्र	१५	१४४				
७१	समवायांग सूत्र वीरजय क्षेत्र विचार	१५	१४५				
७२	जीवाभिगम सूत्र	१५	१८२				

क्र० स०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या	क्र० स०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या
६६	ज्योतिष्क करंडक टीका (मलय गिरि म० कृत)	१६	१७५	११८	जम्बू द्वीप समास	१७	१८०
६७	प्राचीन गाथा	१६	२१७	११९	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति टीका	१७	१९८
६८	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१६	२२०	१२०	वृहत क्षेत्र समास	१७	१८०
६९	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति टीका	१६	२२०	१२१	क्षेत्र समास की वृहत वृत्ति	१७	२०३
१००	वृहत क्षेत्र विचार टीका	१६	२२१	१२२	प्राचीन गाथा	१७	२५१
१०१	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१६	२२१	१२३	प्राचीन गाथा	१७	३६३
१०२	सिरिनिलय क्षेत्र विचार की वृत्ति	१६	२२१	१२४	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१७	२१०
१०३	जम्बू द्वीप समास (उमा स्वाति म० कृत)	१६	२२१	१२५	क्षेत्र समास बड़ी टीका (जिन भद्र गणि)	१७	२१०
१०३	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति	१६	२३५	१२६	जम्बू द्वीप समास (उमा स्वाति म० कृत)	१७	२१०
१०४	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१६	२५०	१२७	नवीन वृहत क्षेत्र समास (सोम तिलक सूरी)	१७	२१०
१०५	समवायांग सूत्र	१६	२५०	१२८	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति (शान्ति चन्द्र उपाध्याय कृत)	१७	२१०
१०६	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१६	२५४	१२९	जीवाभिगम सूत्र	१७	२१०
१०७	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की वृत्ति	१६	२५६	१३०	श्राद्ध विधि चूर्णि	१७	३१९
१०८	स्थानांग सूत्र स्थानक-३	१६	२५७	१३१	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति की टीका	१७	३१९
१०९	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति	१६	३२४	१३२	क्षेत्र समास (जिन भद्र गणि म०)	१७	३२७
११०	जीवाभिगम सूत्र	१६	३२५	१३३	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति की टीका	१७	३२७
१११	जम्बू द्वीप संग्रहणी की टीका	१६	३३६	१३४	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१७	३४०
११२	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति	१६	३४०	१३५	जीवाभिगम सूत्र	१७	३४०
११३	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति	१६	३५३	१३६	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१७	३४६
११४	वृहत क्षेत्र विचार	१६	३३५	१३७	जीवाभिगम सूत्र	१७	३४६
११५	प्राचीन गाथा	१७	१०८	१३८	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१७	३५८
११६	क्षेत्र समास की टीका (श्री मलय गिरि म० कृत)	१७	१६२	१३९	जीवाभिगम सूत्र	१७	३५८
११७	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति	१७	१८०	१४०	जीवाभिगम सूत्र	१७	३५८

क्र० स०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या	क्र० स०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या
१४०	प्राचीन गाथा	१७	३६४	१६५	क्षेत्र समास सूत्र	१८	१६१
१४१	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१७	३७६	१६६	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१८	१६५
१४२	वृहत क्षेत्र समास	१७	३७६	१६७	क्षेत्र समास वृत्ति	१८	१६५
१४३	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१७	३७६	१६८	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति टीका	१८	१६८
१४४	सिरिनिलय समास	१७	३७६	१६९	क्षेत्र समास सूत्र	१८	२१०
१४५	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति	१७	३८६	१७०	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१८	२१०
१४६	क्षेत्र समास की टीका	१७	३८५	१७१	क्षेत्र समास टीका	१८	२३५
१४७	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति टीका	१७	३८५	१७२	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति टीका	१८	२३५
१४८	स्थानांग सूत्र: स्थानक-२	१७	४१८	१७३	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१९	३१
१४९	सुत कृतांग की टीका तथा चूर्ण	१७	४१९	१७४	क्षेत्र समास टीका	१९	३६
१५०	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१८	१७	१७५	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति टीका	१९	३६
१५१	वृहत क्षेत्र समास सूत्र	१८	१७	१७६	क्षेत्र-विचार सूत्र की टीका	१९	६५
१५२	समवायांग सूत्र	१८	१७	१७७	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति टीका	१९	७५
१५३	विशेषण वार्ता सूत्र (जिनभद्र गणि)	१८	६२	१७८	क्षेत्र समास सूत्र	१९	७५
१५४	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१८	६६	१७९	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१९	७५
१५५	समवायांग सूत्र	१८	६६	१८०	क्षेत्र समास (रत्न शेखर सूरि कृत)	१९	१७७
१५६	क्षेत्र विचार ग्रन्थ (रत्न शेखर सूरि कृत)	१८	१२१	१८१	क्षेत्र समास टीका (मलय गिरि म० कृत)	१९	१७७
१५७	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	१८	१५३	१८२	प्राचीन गाथा	१९	१७८
१५८	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति टीका	१८	१५७	१८३	समवांग टीका	१९	१७८
१५९	वृहत क्षेत्र समास टीका	१८	१५७	१८४	जम्बू द्वीप संग्रहणी टीका	१९	१७८
१६०	सिरि निलय क्षेत्र समास टीका	१८	१५७	१८५	प्राचीन गाथा	१९	१७८
१६१	स्थानांग सूत्र	१८	१५७	१८६	संग्रहणी टीका	१९	२०७
१६२	कल्पान्तर वाच्य की टीका	१८	१५७	१८७	विशेषणवती	१९	२०७
१६३	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति	१८	१६१	१८८	प्राचीन गाथा	१९	२०७
१६४	क्षेत्र समास बड़ी टीका	१८	१६१	१८९	संग्रहणी टीका	२०	२१
				१९०	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	२०	२८
				१९१	प्राचीन गाथा	२०	३३

क्र० स०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या	क्र० स०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या
१६२	प्राचीन गाथा	२०	३४	२१३	प्राचीन गाथा	२०	४१४
१६३	प्राचीन गाथा	२०	३५	२१४	प्राचीन गाथा	२०	४१४
१६४	भगवती सूत्र टीका	२०	३५	२१५	भगवती टीका	२०	४३८
	शतक-५ उद्देश-१			२१६	भगवती सूत्र टीका	२०	४३८
१६५	वृहत क्षेत्र समास टीका	२०	४३		शतक-१२ उद्देश		
१६६	प्राचीन गाथा	२०	७४	२१७	प्राचीन गाथा	२०	४४२
१६७	प्राचीन गाथा	२०	१३८	२१८	प्राचीन गाथा	२०	४४३
१६८	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	२०	१७७	२१९	भगवती सूत्र की टीका	२०	४४३
१६९	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति टीका	२०	१७७	२२०	भगवती सूत्र शतक-१२	२०	४५६
	(शान्ति चन्द्र उपाध्याय)				उद्देश-६		
२००	क्षेत्र विचार बड़ी टीका	२०	२०६	२२१	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति टीका	२०	४६८
	(मलय गिरि म०)			२२३	समवायांग सूत्र	२०	५०६
२०१	प्राचीन गाथा	२०	२३३	२२४	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति टीका	२०	५१४
२०२	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति टीका	२०	२५१		(उपा० शान्ति चन्द्र गणि)		
	(शान्ति चन्द्र सूरी)			२२५	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति	२०	५१४
२०३	भगवती सूत्र शतक-८	२०	२७०		(धर्म सागर गणि) टीका		
	उद्देश-८			२२६	भगवती सूत्र	२०	६२२
२०४	प्राचीन गाथा	२०	२८१	२२७	प्राचीन गाथा	२०	६५६
२०५	प्राचीन गाथा	२०	२८२	२२८	प्राचीन गाथा	२०	६६२
२०६	प्राचीन गाथा	२०	२८३	२२९	प्राचीन गाथा	२०	६६३
२०७	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	२०	३६०	२३०	उत्तराध्ययन सूत्र	२०	६६६
२०८	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति टीका	२०	३६०	२३१	उत्तराध्ययन सूत्र	२०	६६७
२०९	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति टीका	२०	३६४	२३२	प्राचीन गाथा	२०	६६८
२१०	चन्द्र प्रज्ञप्ति	२०	३६४	२३३	प्राचीन गाथा	२०	६६९
२११	वृहत क्षेत्र समास	२०	३६४	२३४	जीवाभिगम सूत्र	२०	७१५
२१२	जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति	२०	३६४				

अनुक्रमणिका

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
बारहवाँ सर्ग			२३	छठी भाव दिशा के उठारह भेद	६०
१	मंगलाचरण	१	२४	सातवीं प्रज्ञापक दिशा	६४
२	लोक का स्वरूप	३	२५	सूची रज्जु	१०४
३	रज्जु का ज्ञान	८	२६	प्रतर रज्जु	१०८
४	चौदह राज लोक के विषय में	१४	२७	घन रज्जु	१०९
५	खंडुक के विषय में	१५	२८	वर्जित लोकमान के विषय में	११०
६	त्रस नाड़ी का स्वरूप	१६	२९	घन लोकमान के विषय में	११६
७	१-१४ रज्जु में खंडुक की संख्या	१८	३०	लोक का प्रमाण (काल्पनिक दृष्टान्त से)	१४३
८	वर्जित लोक के खंडुकों की संख्या	३४	३१	अधो लोक का विशेष स्वरूप	१६०
९	रुचक प्रदेशों के स्थान तथा आकाश प्रदेश	४२	३२	सातों नरकों का नाम गोत्र	१६१
१०	मध्य लोक का आकार तथा स्थान	४५	३३	सातों पृथ्वियों के आकार	१६५
११	अधो लोक का आकार तथा स्थान	४६	३४	सातों नरक भूमि की अलग-अलग लम्बाई-चौड़ाई	१६६
१२	ऊर्ध्व लोक का आकार तथा स्थान	४७	३५	रत्न प्रभा की खड़ाई (ऊँचाई)	१६८
१३	तीन लोक के मध्य भाग के विषय में	५१	३६	रत्न प्रभा के तीन काँड़ के नाम व गुण	१६९
१४	दिशा विदिशा के नाम	५७	३७	प्रथम खरकांड से सोलह कांडों के नाम	१७१
१५	दिशाओं के देव सम्बंधी नाम	६०	३८	रत्न प्रभा का सार्थक नाम	१७५
१६	दिशाओं के प्रदेश, विस्तार और आकार	६१	३९	रत्न प्रभा का स्थान	१७६
१७	विमला (उर्ध्व) दिशा का आरंभ	६९	४०	रत्न प्रभा का आकार	१७७
१८	तम (अधो) दिशा का आरंभ	७१	४१	घनोदधि का आकार तथा ऊँचाई	१७९
१९	इन दिशाओं का मूल	७२	४२	घनवायु की खड़ाई (ऊँचाई)	१८३
२०	कृत युग का स्वरूप	७६	४३	तन वायु की खड़ाई (ऊँचाई)	१८६
२१	दूसरी अपेक्षा से दिशाओं के सात प्रकार	७८	४४	धर्मा पृथ्वी	१९२
२२	पाँच दिशाओं का अलग-अलग वर्णन	७९	व्यन्तर के विषय में		
			४५	व्यन्तरों आदि की वास्तविकता	१९३

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
४६	व्यन्तरो का स्वभाव	२०३	६८	च्यवन उत्पत्ति का अन्तर	२७१
४७	अलग-अलग आठ जाति के व्यन्तरो का वर्णन	२०७	६९	अवधि ज्ञान का प्रमाण	२७२
४८	इनकी ध्वजाओं के चिन्ह	२०९	७०	सर्ग समाप्ति	२७५
४९	इनके चैत्य वृक्षों के नाम	२१३	तेरहवां सर्ग		
५०	व्यन्तरो के अर्धघटन	२१५	१	भवनपति देवों के स्थान	१
५१	व्यन्तरो के सोलह इन्द्रों के नाम	२१८	२	भवन पति देवों के नाम	४
५२	हर एक व्यन्तर की चार-चार पटरानीयों के नाम	२२३	३	बीस भवन पति इन्द्रों के भवन	५
५३	व्यन्तरो की पटरानियों के पूर्व भव	२३०	४	दिशाओं के कुल भवन	१२
५४	उनका परिवार	२३५	५	उन भवनों के आकार-विशालता	१४
५५	तीन सभाओं तथा उन देवों की संख्या	२३६	चमरेन्द्र का वर्णन		
५६	इनकी सभा प्रमाण से आयुष्य स्थिति	२४०	६	चमरेन्द्र का उत्पात, पर्वत का वर्णन	१८
५७	इन सामानिक आदि देवों की संख्या	२४३	७	चमरेन्द्र का सिंहासन	२५
५८	वाण व्यन्तर के नाम	२४९	८	इस पर्वत का प्रयोजन	२६
५९	इनके इन्द्रों का नाम	२५१	९	चमरया राजधानीका स्थान	२८
६०	उनका स्थान	२५६	१०	उसकी लम्बाई-चौड़ाई आदि विस्तार	३२
६१	व्यन्तरपन की उत्पत्ति का कारण	२५८	११	उसके दरवाजे, दीवारे-महल तथा भवान्तर प्रासादों का वर्णन	३४
६२	उनका शरीर मान	२६१	१२	प्रासादों का वर्ण	४२
६३	उत्तरवैक्रिय शरीर का उत्कृष्ट मान	२६२	१३	सात सभाओं का स्थान, नाम और मान	४४
६४	उनकी लेश्या और आहार	२६३	१४	सात सभाओं का प्रयोजन	४७
६५	कौन जीव यहाँ आता है तथा संभयण	२६८	१५	वर्तमान चमरेन्द्र के पूर्वभव	५९
६६	इसकी गति	२६९	१६	चमरेन्द्र के उत्पात का कारण	६८
६७	एक समय उत्पन्न-च्यवन का प्रमाण	२७०	१७	उत्पात करने पूर्व तैयारी	७५
			१८	उत्पात का स्वरूप	८२
			१९	सौधमेन्द्र का क्रोध	८९
			२०	परमात्मा वीर की शरण में जाना	९३
			२१	परमात्मा वीर की कृपा से, बचाने का वर्णन	९५

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
२२	उन सामानिक-त्राय त्रिंशक देवों की संख्या	१००	४५	बलीन्द्र के सामानिक और त्रायत्रिंशक देवों की संख्या	१५८
२३	उन त्रायत्रिंशक देवों के पूर्वभव	१०२	४६	वर्तमान में त्रायत्रिंशक देवों के पूर्व भव	१५९
२४	उनकी तीन सभाओं के नाम	१०८	४७	तीन सभा और उसके देवों की संख्या	१६१
२५	तीन सभाओं के देव-देवी तथा उनकी आयुष्य स्थिति	१०९	४८	तीन सभाओं की देवियों की संख्या	१६२
२६	उनकी पाँच पटरानी, उनके नाम	११५	४९	देव-देवियों की आयुष्य स्थिति	१६३
२७	प्रथम पटरानी का पूर्वभव का वृत्तान्त	११५	५०	उन सामानिक आदि की तीन-तीन सभा	१६४
२८	शेष चार का थोड़ा वर्णन	१२०	५१	उनकी अग्र महिषियों के नाम तथा परिवार	१६५
२९	उनकी आयुष्य	१२१	५२	बलीन्द्र के दैवी सुख का वर्णन	१६६
३०	उनका परिवार	१२३	५३	लोकपालों के नाम	१६७
३१	चमरेन्द्र के लोक पालों के नाम	१२५	५४	उनके पटरानियों के नाम	१६८
३२	उनकी चार-चार पटरानियों के नाम	१२६	५५	उनके सात सेनापतियों के नाम	१७०
३३	उनका परिवार	१२७	५६	पैदल सेना की कच्छा के देवों की संख्या	१७२
३४	उनकी पाँच सेनाओं के नाम	१२९	५७	उसमें सब देवों की संख्या का वर्णन	१७३
३५	सात सेनापतियों के नाम	१३३	५८	असुरों की उत्पात्ति का स्थान	१७९
३६	पैदल सेना की कच्छा का वर्णन	१३४	५९	उनके वर्ण तथा वस्त्र आदि	१८१
३७	उनके आत्परक्षक देवों की संख्या	१३७	६०	उनके सुख का वर्णन	१८३
३८	चमरेन्द्र के आभूषण आदि का वर्णन	१३८	६१	उनके देहमान तथा उत्तर वैक्रिय शरीर	१८६
३९	चमरेन्द्र का आयुष्य तथा भवान्तर	१४२	६२	उनकी दिशा सम्बंधी आयुष्य स्थिति	१८८
४०	चमरेन्द्र की सार्मध्य का वर्णन	१४४	६३	उनके श्वासोच्छ्वास प्रमाण तथा आहार का अन्तर	१९३
४१	उनके लोक पाल आदि की सार्मध्य	१४६			
	दूसरे बलीन्द्र का वर्णन				
४२	बलीन्द्र का उत्पात पर्वत का स्थान	१४७			
४३	बली चंचा नगरी का स्थान	१५३			
४४	बलीन्द्र की तरह किसकी उत्पात्ति	१५७			

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
६४	उनकी शक्ति क्षेत्र आदि का प्रमाण	१६६	८३	उनके देवों की संख्या तथा आयुष्य	२३८
६५	ऊर्ध्व लोक में जीवों का प्रयोजन	२००	८४	भूतानंद की छः पटरानियों का नाम	२४०
नाग कुमार जाति के देवों, धरणेन्द्र का वर्णन और उनका पूर्वभव			८५	चार लोक पालों के नाम	२४१
६६	उनकी पर्षदा के देवों की संख्या	२११	८६	सात सेना तथा सेनापतियों के नाम	२४३
६७	उन देवों की आयुष्य स्थिति	२१२	८७	सर्व देवों की संख्या	२४४
६८	पर्षदा में देवियों की संख्या तथा आयुष्य	२१३	८८	उनका आयुष्य तथा साम्राज्य पालन	२४६
६९	उनकी छः पटरानियों के नाम	२१७	८९	उत्तर तथा दक्षिण दिशा के बाकी इन्द्रों तथा लोक पालों के नाम	२५१
७०	हर एक का परिवार तथा विकुवर्णा शक्ति	२१८	९०	सुपर्ण कुमार जाति के देवों के इन्द्र का वर्णन	२५४
७१	शेष के दक्षिण के नौ इन्द्रों की पटरानियाँ	२१९	९१	विद्युत् कुमार जाति के देवों के इन्द्र का वर्णन	२५७
७२	उन सबके पूर्वभव	२२०	९२	अग्नि कुमार जाति के देवों के इन्द्र का वर्णन	२६०
७३	उत्तर दिशा के इन्द्रों की पटरानियों के पूर्वभव	२२३	९३	द्वीप कुमार जाति के देवों के इन्द्र का वर्णन	२६३
७४	इनके लोकपाल तथा उनकी पटरानियों के नाम	२२५	९४	उदधि कुमार जाति के देवों के इन्द्र का वर्णन	२६६
७५	धरणेन्द्र की सात सेना तथा सेनापतियों के नाम	२२७	९५	दिग कुमार जाति के देवों के इन्द्र का वर्णन	२६९
७६	पैदल सेनापति की कच्छा की संख्या	२३०	९६	वायु कुमार जाति के देवों के इन्द्र का वर्णन	२७२
७७	धरणेन्द्र के देवों की संख्या	२३१	९७	स्तनित कुमार जाति के देवों के इन्द्र का वर्णन	२७५
७८	उनके अंगरक्षक देवों की संख्या	२३२	९८	बाकी १८ असुरेन्द्रों का एक साथ वर्णन	२८२
७९	उनके आयुष्य तथा साम्राज्य का पालन	२३३	९९	उनकी आयुष्य	२९१
८०	उनके शरीर का वर्णन तथा चिन्ह	२३४			
८१	उनकी सामर्थ्य उत्तर दिशा के इन्द्र भूतानंद	२३५			
८२	भूतानंद की पर्षदा के देवों की संख्या तथा आयुष्य	२३६			

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
१००	उनकी देवियों का आयुष्य	२६२	१६	नारक पुद्गलों की भयंकरता का वर्णन	४२
१०१	आहार, श्वाच्छोवास-देहमान	२६३	१७	नारकों की भयंकरता का वर्णन	४३
१०२	उनका आवास	२६६	१८	नारकों के शरीर की भयंकरता का वर्णन	४४
१०३	उनकी उत्पत्ति का कारण	२६७	१९	नारकों के वर्ण की भयंकरता का वर्णन	४५
१०४	उनकी दूसरी कई गतियाँ	२६६	२०	नारकों की भूमि की भयंकरता का वर्णन	४६
१०५	उनकी लेश्या	३०२	२१	नारकों की गंध की भयंकरता का वर्णन	४७
१०६	उनके अवधि ज्ञान क्षेत्र	३०३	२२	नारकों की स्पर्शता की भयंकरता का वर्णन	४८
१०७	सर्ग समाप्ति	३१०	२३	नारकों की शब्द की भयंकरता का वर्णन	४९
चौदहवाँ सर्ग			२४	तत्त्वार्थ प्रमाण से नारकों की वेदना के नाम	५०
१	प्रथम नरक के प्रमाण का वर्णन	१	२५	कुंभियों के स्थान	५१
२	उनके प्रतर की ऊँचाई	२	२६	उनकी शीत वेदना की भयंकरता का वर्णन	५२
३	हर एक प्रतर का अन्तर	४	२७	उनकी उष्ण वेदना की भयंकरता का वर्णन	५६
४	उन नरकों के नरकेन्द्रों के नाम	५	२८	उनकी प्यास की भयंकरता का वर्णन	६०
५	प्रथम नरकेन्द्र की पक्तियाँ और आवास	१०	२९	उनके दुःखों का वर्णन	६१
६	२-१३ तक प्रतरों की पक्तियाँ और आवास	१३	३०	उनकी पराधीनता-दाह-शोक-भय का वर्णन	६२
७	कुल आवलीगत आवासों की संख्या	१६	३१	मिथ्यात्वी नारकों को परस्पर की गई वेदना	६८
८	पुष्पावर्कीण आवासों की संख्या	२०	३२	क्षेत्र प्रभावोत्पन्न वेदना	६८
९	कुल आवास और उनके आकार	२१			
१०	नरकेन्द्रों के आकार की व्यवस्था कैसे	२३			
११	सर्व आवासों की ऊँचाई	२५			
१२	पीठिका के भाग की खड़ाई (ऊँचाई) आदि	२६			
१३	दसरे नरक अप्रासों की लम्बाई-चौड़ाई	२८			
१४	स्थानांगी टीका के प्रमाण से नरक आवासों के नाम	३२			
१५	नरक आवासों की भूमि की भयंकरता का वर्णन	४०			

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
३३	सम्यकत्व दृष्टि नारकों की स्थिति	७०	५४	हर एक प्रतर के नारकों का शरीर मान	१४४
३४	मिथ्या दृष्टि नारकों की स्थिति	७२	५५	हर एक प्रतर के नारकों की आयु स्थिति	१५०
३५	परमाधार्मिक कृत भयंकर वेदना का वर्णन	८५	५६	नारकों की लेश्या तथा अवधि ज्ञान का विषय	१६१
३६	परमाधामियों की स्थिति	८८	५७	उत्पत्ति, च्यवन में अन्तर	१६२
३७	अंडगोलिक तथा परमाधामियों का वर्णन	९०	५८	तीसरे 'शैला' नरक पृथ्वी का वर्णन	१६३
३८	धर्मा नारकी की ऊष्ण क्षेत्र वेदना का वर्णन	९१	५९	उनके वलय के मान	१६४
३९	कुंभी में उपपात	९४	६०	इसकी ऊँचाई	१६७
४०	इन नारकीयों के प्रस्तर प्रमाण में शरीर का मान	१०३	६१	इसके नौ प्रस्तरों का स्थान-मान	१६८
४१	इसमें उत्तर वैक्रिय शरीर का मान	१०५	६२	नरकेन्द्रों का मान	१७०
४२	प्रतर प्रमाण से नारकों की आयुष्य स्थिति	१०७	६३	पंक्ति नरक आवास, उसमें प्रथम प्रतर के दूसरे प्रतर से नौ प्रतर तक	१७२
४३	उनकी लेश्या तथा अवधि ज्ञान के विषय में	११८	६४	नरक वासों की संख्या	१७४
४४	इनकी उत्पत्ति का अन्तर	११९	६५	कुल पंक्तिगत नरक वासों की संख्या	१७८
४५	एक समय में उत्पत्ति का अन्तर	१२१	६६	कुल पुष्पावकीर्ण नरक आवासों की संख्या	१७९
४६	दूसरी 'वंश' नरक पृथ्वी का वर्णन	१२२	६७	तीसरे से सब नरक आवासों की संख्या	१८०
४७	उनके वलयों का मान	१२४	६८	उसके हर एक प्रतर के नारकियों का शरीर मान	१८१
४८	इसकी ऊँचाई	१२७	६९	उसके हर एक प्रतर के नारकियों के उत्तर वैक्रिय शरीर मान	१८५
४९	उसके ग्यारह प्रतरों के नरकेन्द्रों के नाम	१३०	७०	उसमें हर एक प्रतर के नारकों की आयु स्थिति	१८६
५०	हर एक प्रतर में नरक आवास	१३३	७१	इसकी लेश्या तथा स्थिति	१९५
५१	पंक्ति गत सब नरक वासों के सरवाल	१४०	७२	आयुष्य सम्बंधी लेश्या स्थिति	१९८
५२	सब के सरवाल	१४१	७३	इसके अवधि ज्ञान के क्षेत्र	२००
५३	पुष्पावकीर्णक नरक वासों की सरवाल	१४१			

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
७४	इसकी उत्पत्ति और च्यवन का अन्तर	२०१	६७	पहले प्रतर के नरक आवासों की संख्या	२४३
७५	चौथी 'अंजना' नरक का वर्णन	२०२	६८	दूसरे से पाँचवे प्रतर के नरकावासों की संख्या	२४४
७६	इसके बलय के विष्कंभ आदि	२०३	६९	सर्व पंक्तिगत तथा पुष्पावकीर्णक नरकावासों की संख्या	२४६
७७	इसकी ऊँचाई, प्रतर-संख्या तथा अन्तर	२०५	१००	इनकी वेदना की तारतम्यता	२४८
७८	सात प्रतरों के नरकेन्द्रों के नाम	२०८	१०१	इनका प्रतर प्रमाण से देहमान	२४९
७९	प्रथम प्रतर के हर एक दिशा के नरक आवास	२१०	१०२	उनका प्रतर प्रमाण से आयुष्य	२५२
८०	दूसरे से सात प्रतरों तक नरकावासों की संख्या	२१२	१०३	इनकी लेश्या तथा उसकी स्थिति	२५८
८१	सर्व में पंक्तिगत नरकावासों की संख्या	२१२	१०४	इनके अवधि ज्ञान का क्षेत्र	२६०
८२	सर्व में पुष्पावकीर्णक की संख्या	२१४	१०५	इनकी च्यवन-उत्पत्ति का अन्तर	२६१
८३	सर्व में नरकावासों की संख्या	२१५	१०६	छठी "मघा" नाम की नरक का वर्णन	२६२
८४	इन नरकावासों की परस्पर की गई वेदना के सम्बंध में	२१६	१०७	उनके बलय के विष्कंभ	२६३
८५	प्रतरों में ऊष्ण-शीत वेदना	२१८	१०८	अलोक से दूरी	२६५
८६	मतान्तर से परमाधामी कृत वेदना पाठ	२१८	१०९	इसकी ऊँचाई तथा उनमें अन्तर	२६६
८७	सातों प्रतरों के नरकों के देहमान	२२१	११०	तीन प्रतरों के नरकेन्द्रों के नाम	२६८
८८	उनके प्रतर प्रमाण में आयु स्थिति	२२५	१११	उसमें प्रथम पंक्ति के नरकावासों की संख्या	२६९
८९	उनकी लेश्या तथा अवधि ज्ञान क्षेत्र	२३२	११२	दूसरे तथा तीसरे प्रतर के नरक आवासों की संख्या	२७०
९०	उनकी उत्पत्ति-च्यवन का अन्तर	२३३	११३	पंक्तिगत तथा पुष्पावकीर्ण नरकावासों की संख्या	२७२
९१	पाँचवा 'रिष्टा' नाम की नरक का वर्णन	२३४	११४	वेदना के प्रकार	२७३
९२	उसके बलय के विष्कंभ	२३५	११५	इन नरकों का प्रतर प्रमाण से देहमान	२७६
९३	उनकी ऊँचाई	२३८	११६	उनकी प्रतर प्रमाण से आयुष्य-स्थिति	२७७
९४	पाँचों प्रतरों के स्थान नाम	२४१	११७	उनका अवधि ज्ञान का क्षेत्र	२८१
९५	पाँचों प्रतरों के नरकेन्द्रों के नाम	२४१	११८	उनके च्यवन-उत्पत्ति के अन्तर	२८२
९६	उसमें से निकली पंक्तियों के विषय	२४२			

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
११६	सातवीं "मार्घवती" नरक पृथ्वी का वर्णन	२८३	१४०	नारकों का सहायक कौन होता है	३२४
१२०	उसमें बलय के विष्कंभ	२८४	१४१	सर्ग चौदह समाप्त	३२६
१२१	अलोक का अन्तर	२८५	पन्द्रहवाँ सर्ग		
१२२	उनकी ऊँचाई, प्रतर तथा नर केन्द्रों के नाम	२८६	१	देव गुरु की स्तुति, मंगलाचरण	१
१२३	उसमें पंक्तिगत चार दिशा के चार नरकावासों के नाम	२९०	२	द्वीप समूहों का संख्या प्रमाण	५
१२४	यहाँ की वेदना तथा उसकी तारतम्यता	२९२	३	जम्बू द्वीप से क्रमशः नंदीश्वर समुद्र तक नाम	६
१२५	उसमें देहमान तथा वैक्रियदेहमान	२९३	४	अरूण आदि २१ द्वीपों के नाम	१३
१२६	उसमें आयुष्य स्थिति	२९४	५	असंख्य द्वीपों- समुद्रों के नामों की योजना	१८
१२७	उसमें च्यवन उत्पत्ति का अन्तर	२९५	६	अंत के आठ द्वीपों-समुद्रों के नाम	२५
१२८	उसमें अर्वाधि ज्ञान के क्षेत्र	२९६	७	हर एक का विस्तार पूर्वक विवरण	२७
१२९	किसे संहनन वाला, किस जीव ने यहाँ आना है इस विषय में	२९७	८	जम्बू द्वीप का आकार-स्थान	२९
१३०	उसमें ज्ञान-अज्ञान में मंतान्तर	पाठ	९	जम्बू द्वीप नाम किस तरह पड़ा	३०
१३१	चक्रवर्ती हुए, उनमें कई नरक में से आये	३०८	१०	उसकी लम्बाई-चौड़ाई तथा विष्कंभ	३२
१३२	बलदेव-वासुदेव हुए, उनमें से कई नरक में से आये	३०९	११	इसमें गणित पद	३६
१३३	केवल ज्ञान वाले कई नरक में से आये	३१०	१२	उसकी ऊँचाई तथा नीचाई	३९
१३४	चरित्र वाले कई नरक में से आये	३११	१३	इस विषय में शंका समाधान	४१
१३५	लब्धि वाले कई नरक में से आये	३१२	१४	जम्बू द्वीप की रचना कैसी है	४६
१३६	तीर्थंकर हुए, उनमें से कई नरक में से आये	३१३	१५	उसके द्रव्य-पर्याय की आलोचना	४७
१३७	बाकी के जीवों गति	३१५	१६	जम्बू द्वीप की जगती का वर्णन	४८
१३८	मुख्य नरकायुष्य बाँधने वाले कारण	३१७	१७	जगती का आकार तथा व्यास	४९
१३९	नारकों को शान्ति का सुख कब होता है	३२०	१८	जगती के ऊपर वेदिका के वर्णन	५५
			१९	वेदिका के बगीचों का वर्णन	६३
			२०	बगिचियों की पुष्करिणियों का वर्णन	७२
			२१	बगिचियों के क्रीड़ा पर्वतों का वर्णन	७७
			२२	उसमें महलों का वर्णन	७८
			२३	उसमें रहे आसनों का वर्णन	७९
			२४	बगीची के के क्रीड़ा गृहों का वर्णन	८०
			२५	क्रीड़ा गृहों के मंडपों का वर्णन	८४

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
२६	इन स्थानों उपभोग कर्ता	८५	४६	उनकी पटरानियाँ तथा उनका परिवार	१३६
२७	जगती के गवाक्षों का वर्णन	८६	५०	विजय नाम की सार्थकता	१३७
२८	जगती के चार दिशा के द्वारों का नाम	९०	५१	उनकी आयुष्य स्थिति	१३८
२९	प्रथम विजय द्वार का स्थान	९१	५२	यहाँ विजय देव की राजधानी का स्थान	१४१
३०	उस द्वार के निर्माण का वर्णन	९३	५३	उसकी लम्बाई-चौड़ाई तथा विष्णुम	१४२
३१	उसके स्तंभों का वर्णन	९६	५४	उसके कोट की ऊँचाई	१४४
३२	उसके स्तंभों का वर्णन	९७	५५	उसे कंगूरों आदि का वर्णन	१४७
३३	उसकी उम्बराओं का वर्णन	९८	५६	कोट के बाह्य द्वारों की संख्या	१४८
३४	उसकी चूलिकाओं का वर्णन	१००	५७	उसके ऊपर प्रासादों की लम्बाई-चौड़ाई	१५३
३५	ऊपर के भाग में १६ रत्न मंडित है, उनके नाम	१०१	५८	भूमिगत प्रासादों का विवरण	१५४
३६	द्वार ऊपर चित्रों का वर्णन	१०४	५९	उसकी राजधानी के बनों का वर्णन	१५७
३७	इन द्वारों की बनावट	१०५	६०	उन महलों के स्वामी देवों का वर्णन	१६२
३८	इन द्वारों के आगे की भूमि भाग की बनावट	१०६	६१	राजधानी में स्थित पीठ बंध का वर्णन	१६३
३९	इन द्वारों की शोभा करती विविध रचनाओं का वर्णन	१०८	६२	मणि पीठिकाओं के बीच में विजय देव तथा उसके परिवार के सिंहासनों का वर्णन	१६६
४०	वहाँ स्थित मंगल कलश आदि का विवरण	१०९	६३	सर्व मणि प्रासादों की संख्या	१८२
४१	उसके ऊपर के प्रासादों का वर्णन	११४	६४	जीवाभिमग मत प्रमाण से प्रासादों की श्रेणि	१८३
४२	उसमें स्थित बन लताओं का वर्णन	११८	६५	विजय देव की सुधर्मा सभा का वर्णन	१८६
४३	वहाँ रही पूजा सामग्रों का वर्णन	११९	६६	उनके द्वारों का वर्णन	१८९
४४	विजय द्वार की ध्वजाओं के विषय में	१२५	६७	उसमें मंडप तथा चौपातों का वर्णन	१९०
४५	विजय द्वार के स्वामी के विषय में	१२७	६८	प्रेक्षा मंडपों का वर्णन	१९५
४६	वैजयन्त-जयन्त-अपराजित द्वारों का विवरण	१३३	६९	उसमें स्थित मणि पीठिकाओं का वर्णन	१९६
४७	उसमें सामानिक देवों की संख्या	१३४			
४८	उनकी पर्षदा तथा पर्षदा के देवों की संख्या	१३५			

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
७०	उसमें स्थित स्तूपों का वर्णन	१६७	६३	अभिषेक सभा का वर्णन	२४१
७१	शाश्वत प्रतिमाओं की संख्या	१६६	६४	अलंकार सभा का वर्णन	२४२
७२	उनकी ऊँचाई तथा नाम	२००	६५	व्यवस्था सभा का वर्णन	२४३
७३	पीठीका के सामने मणि पीठिका का वर्णन	२०१	६६	बलिपीठ का वर्णन	२४५
७४	पीठिका के चारों तरफ वृक्ष तथा उनका वर्णन	२०२	६७	वैजयन्त आदि शेष तीन द्वारों के स्वामियों का वर्णन	२४७
७५	इन वृक्षों की मणि पीठिका का वर्णन	२०५	६८	इन चारों द्वारों के अन्दर के भाग का वर्णन	२५३
७६	इनके इन्द्रध्वज का विवरण	२०७	६९	जम्बूद्वीप के अन्दर के भाग का वर्णन	२५७
७७	इन्द्रध्वज के सामने पद्म-वेदिकाओं का वर्णन	२०८	१००	सात क्षेत्रों के नाम	२५६
७८	इनकी पुष्करिणी का वर्णन	२०६	१०१	छः पर्वतों के नाम	२६१
७९	सुधर्मा सभा के मध्य भाग का वर्णन	२०६	१०२	सर्ग समाप्ति	२६५
८०	उसमें स्थित आसनों की संख्या	२१०	सोलहवाँ सर्ग		
८१	धूप वासिनी पीठिका आदि	२१३	१	भरत क्षेत्र के वर्णन	१
८२	सभा की मणि पीठिका का वर्णन	२१६	२	भरत क्षेत्र की नाम की सार्थकता के विषय में	३
८३	उसमें स्थित मणि पीठिका का वर्णन	२१६	३	भरत क्षेत्र के विष्कम्भ का ज्ञान	६
८४	उसमें रही खूंटियों का वर्णन	२१६	४	भरत क्षेत्र के जीवों का ज्ञान	७
८५	जिनेश्वर भगवान की अस्थियों का स्थान	२२०	५	भरत क्षेत्र के धनुष का ज्ञान	८
८६	इन अस्थियों का महत्व	२२२	६	भरत क्षेत्र की बाह्या के विषय में	६
८७	अन्य इन्द्रध्वजों का वर्णन	२३१	७	भरत क्षेत्र के क्षेत्रफल का ज्ञान	१०
८८	सिद्धायतन का वर्णन	२३३	८	भरत क्षेत्र के घन क्षेत्रफल का ज्ञान	११
८९	उसमें स्थित मणि पीठिकाओं का वर्णन	२३४	९	भरत क्षेत्र के कला क्षेत्रफल का ज्ञान	१२
९०	उसमें स्थित देवछन्द का वर्णन	२३५	१०	भरत क्षेत्र के विकला क्षेत्रफल का ज्ञान	१३
९१	उपपात सभा का वर्णन	२३७	११	क्षेत्रों तथा पर्वतों के व्यास के विषय में	१६
९२	सरोवर का वर्णन	२४०	१२	जम्बूद्वीप की लम्बाई तथा चौड़ाई	२२
			१३	भरत क्षेत्र का 'विष्कम्भ' और मान	३०
			१४	भरत क्षेत्र की 'जीवा' और मान	३१

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
१५	भरत क्षेत्र का 'घनुपृष्ठ' और मान	३२	४४	वैताद्वय पर्वत के तीसरे खंड का वर्णन	
१६	भरत क्षेत्र का क्षेत्रफल	३३	४५	उसकी ऊँचाई-चौड़ाई-प्रतर तथा घन गणित मान	७८
१७	भरत क्षेत्र के दो भागों के विषय में	३६	४६	सम्पूर्ण वैताद्वय का घन माप	८१
१८	उनके छः विभागों के विषय में	३६	४७	वैताद्वय के नौ कूटों की माप	८३
१९	दक्षिणार्ध भरत का विष्कंभ तथा शर का मान	३७	४८	शिखरों की ऊँचाई, लम्बाई, चौड़ाई का मान	८६
२०	उसकी जीवा का मान	३८	४९	उनके विष्कंभ	८८
२१	उसके घनु पृष्ठ का मान	३९	५०	व्यास जानने के करण	८८
२२	उसका क्षेत्रफल	४०	५१	प्रथम सिद्धायतन कूट का वर्णन	९३
२३	अयोध्या नगरी का स्थान मान	४२	५२	उसमें स्थित सिद्ध मन्दिर का वर्णन	९४
२४	आर्य-अनार्य देशों की समझ	४४	५३	उसके द्वारों का वर्णन	९५
२५	आर्य देशों में उत्पन्न होने वाले जीवों के बारे में	४५	५४	उसमें स्थित मणिपीठिका का वर्णन	९६
२६	वैताद्वय पर्वत का स्थान	४६	५५	उसमें स्थित देव छन्द की ऊँचाई आदि	९७
२७	उसका विस्तार	४८	५६	उसमें स्थित प्रतिमा जी की संख्या तथा मान	९८
२८	उसके 'शर' तथा 'जीवा'	५०	५७	उन प्रतिमाओं का वर्णन	९९
२९	उनके घनु पृष्ठ	५२	५८	भगवान की दाढ़ी-मूँछ सम्बंधी विस्तार से कथन	१०६
३०	उसकी बाह्य	५३	५९	उन प्रतिमाओं के परिवार का वर्णन	१११
३१	वैताद्वय की मेखला का वर्णन	५४	६०	उन प्रतिमाओं के परिवार की पूजन सामग्री की वास्तविकता	११३
३२	मेखला ऊपर की श्रेणियों का वर्णन	५६	६१	वैताद्वय के तीसरे व सातवें शिखर का वर्णन	११६
३३	उसमें स्थित नगरों का विवरण	५८	६२	शेष छः शिखर तथा उनके स्वाभियों की विगत	११७
३४	उसमें मुख्य नामों के विषय में	५९	६३	वे शिखर कैसे हैं?	११९
३५	उसमें प्रथम खंड के प्रवर का नाम	६२	६४	उन शिखरों के ऊपर के महलों के विषय में	१२०
३६	दूसरी श्रेणि के भोक्ता	६६			
३७	उनके आयुष्य तथा भवन आदि	६९			
३८	वैताद्वय के दूसरे खंड का वर्णन	७२			
३९	उसकी ऊँचाई-चौड़ाई तथा मान	७२			
४०	उसका घन गणित मान	७३			
४१	अभियोगी देवों की श्रेणि की ऊँचाई	७५			
४२	उनकी विशेषता के बारे में	७६			
४३	व्यन्तर देवों का क्रीड़ा स्थान	७७			

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
६५	उसमें स्थित मणिपीठिका का वर्णन	१२१	६७	बृभषकूट पर्वत का मान-स्थान-आकार	१६३
६६	उसमें स्थित सिंहासन का वर्णन	१२३	६८	उसकी लम्बाई-चौड़ाई तथा विष्कंभ	१६५
६७	उसके स्वामिओं की राजधानी के विषय में	१२४	६९	मतान्तर से स्पष्ट विस्तार	१६६
६८	वैतादय की गुफाओं के नाम	१२५	६०	बृभषकूट पर्वत के प्रासादों का विवरण	१७६
६९	उनका विवरण तथा ऊँचाई आदि मान	१२६	६१	उसके अधिपति देव का आयुष्य, समृद्धि के विषय में	१७७
७०	उनके द्वारों का वर्णन	१२७	६२	इन पर्वतों का प्रयोजन	१७८
७१	उनके अधिपति तथा उनके आयुष्य	१२८	६३	इस क्षेत्र की कुल नदियों की संख्या	१७९
७२	उनके कपाट का मान	१२९	६४	हिमवान पर्वत	
७३	उनके उद्घाटन का कारण एवं कार्य	१३०	६५	हिमवान पर्वत का वर्णन	१८१
७४	उन कपाटों के खोलने का वर्णन	१३१	६६	उसके विष्कंभ का मान	१८३
७५	गुफा में चक्रवर्ती के प्रवेश का वर्णन	१३२	६७	उसके शर का मान	१८४
७६	मंडल की योजना	१३३	६८	उसकी जीवा का मान	१८५
७७	मंडल के विषय में मतान्तर	पाठ	६९	उसके घनुपृष्ठ का मान	१८६
७८	उन्मन्जला नदी का स्थान-मान आदि	१३८	१००	उसके बाहा का मान	१८७
७९	नदी का स्वभाव	१४०	१०१	उसके प्रतर का मान	१८८
८०	निमग्नजला नदी का स्थान-मान आदि	१४३	१०२	उसके घन का मान	१९०
८१	निमग्नजला नदी का स्वभाव	१४५	१०३	उसके ११ कूटों का वर्णन तथा नाम	१९३
८२	नदी को पार करने के उपाय	१४८	१०४	सब शिखरों की ऊँचाई आदि आकार	१९७
८३	दूसरी गुफा का वर्णन	१५०	१०५	शिखरों के घेराव का मान	१९९
८४	नौ निधान का स्थान	१५७	१०६	प्रथम सिद्धायतन के सिद्ध मन्दिर का विवरण	२०१
८५	उत्तरभरताई की सीमा तथा स्थान	१५८	१०७	उसके तीन द्वारों का वर्णन	२०३
८६	उनके विष्कंभ, बाहा, क्षेत्रफल आदि	१५९	१०८	सिद्ध मन्दिर की मणिपीठिका का मान	२०४

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
१०६	उसमें स्थित देव छन्दक का वर्णन	२०५	१२८	उसके पर्वत ऊपर विचरण योजन का मान	२३७
११०	शेष शिखरों पर स्थित सिद्ध मन्दिरों का विवरण	२०७	१२९	उसकी लहरें भंवर आदि का वर्णन घोंघें, मगरमच्छ	२३६
१११	उनके अधिपति देव-देवियाँ	२०६	१३०	नदी के गिरने के स्थान गंगा प्रपात का विवरण	२४०
११२	अधिपति भोगवती छः देवियों के नाम	२१०	१३१	उस कुंड के आस पास का वर्णन	२४३
११३	उनका आयुष्य तथा राजधानी के नाम	२११	१३२	कुंड के अन्दर के गंगाद्वीप का वर्णन	२४५
११४	पद्म सरोवर की लम्बाई-चौड़ाई का मान	२१४	१३३	उसमें स्थित गंगा देवी के भवन का वर्णन	२४६
११५	पद्म वेदिका तथा वन का वर्णन	२१५	१३४	गंगा प्रपात से गंगा का आगे बहना तथा समुद्र में मिलन	२४७
११६	पद्म सरोवर के कमल का मान तथा उसका वर्णन	२१८	१३५	उसकी शुरूआत में गहराई व चौड़ाई	२५०
११७	कमल का मूल से ऊपर तक का वर्णन	२२१	१३६	उसकी समुद्र में मिलते समय गहराई व चौड़ाई	२५३
११८	कमल की कर्णिका में स्थित भवनों के बारे में	२२२	१३७	गंगा के संगम स्थान पर भगध तीर्थ का वर्णन	२५५
११९	उन भवनों का मान तथा उनमें स्थित मणिपीठ के बारे में	२२३	१३८	सिन्धु नदी के संगम स्थान पर प्रभास तीर्थ के विषय में	२५६
१२०	मूल कमल के फिरते वलय के बारे में	२२६	१३९	वरदाम तीर्थ का स्थान तीर्थ के अर्थ घटन	२५७
१२१	प्रथम वलय में कमलों की संख्या	२२७	१४०	उन तीर्थों के अधिपतियों तथा उनकी राजधानी के बारे में	२५८
१२२	दूसरे वलय में कमलों की संख्या	२२८	१४१	उन तीर्थों का विशेष प्रयोजन सिन्धु नदी का वर्णन	२५९
१२३	तीसरे वलय में कमलों की संख्या	२३२	१४२	एक सरोवर से उसका निकास सब वर्णन	२६३
१२४	चौथे-पाँचवें-छठे वलय में कमलों की संख्या	२३३	१४३	३६ बिलों के स्थान के बारे में	२६४
१२५	सब कमलों की संख्या	२३५	१४४	पद्म सरोवर की उत्तर तरफ से रोहिताशा का निकालना	२६७
१२६	छः वलयों के प्रकार के सम्बंध में विवरण	पाठ			
१२७	पद्म सरोवर से निकली गंगा नदी का प्रसार	२३६			

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
१४७	उसका पर्वत ऊपर विचरण योजन-मान तथा वर्णन	२६८		हैमवंत क्षेत्र	३२६
१४८	सरोवर से कुंड तक उसकी चौड़ाई-गहराई	२७४	१६५	हैमवंत क्षेत्र का स्थान-आकार	३२६
१४९	उसके किनारों की लम्बाई-चौड़ाई	२७८	१६६	हैमवंत नाम की सार्थकता	३२८
१५०	कुंड की लम्बाई-चौड़ाई का मान	२८०	१६७	इस क्षेत्रों के 'विष्कंभ' का मान	३२९
१५१	दाढ़ाओं का वर्णन	२८१	१६८	इस क्षेत्रों के 'शर' का मान	३३०
१५२	एक दाढ़ा ऊपर प्रथम द्वीप का मान	२८३	१६९	इस क्षेत्रों के 'जया' का मान	३३१
१५३	एक दाढ़ा ऊपर दूसरे द्वीप का मान	२८८	१७०	इस क्षेत्रों के 'घनु पृष्ठ' का मान	३३२
१५४	एक दाढ़ा ऊपर तीसरे द्वीप का मान	२९४	१७१	इस क्षेत्रों के 'बाहा' का मान	३३३
१५५	एक दाढ़ा ऊपर चौथे द्वीप का मान	२९७	१७२	इस क्षेत्रों के 'क्षेत्रफल' का मान	३३४
१५६	एक दाढ़ा ऊपर पाँचवें द्वीप का मान	३०१	१७३	वृत वैताढय का स्थान तथा आकार	३३६
१५७	एक दाढ़ा ऊपर छठे द्वीप का मान	३०४	१७४	शब्दापाती वृतवैताढय का मान	३३७
१५८	एक दाढ़ा ऊपर सातवें द्वीप का मान	३०८	१७५	उसके आस पास के विस्तार का मान व वर्णन	३३९
१५९	अन्य दाढ़ाओं के विषय में समन्वय	३११	१७६	उसके स्वामी देवों के नाम- आयुष्य व राजधानी	३४०
१६०	अग्नि कोण की दाढ़ा के द्वीपों के नाम	३१४	१७७	इस क्षेत्र की नदियों की संख्या	३४४
१६१	नैऋत्य कोण की दाढ़ा के द्वीपों के नाम	३१६	१७८	उनकी भूमि व कूल आदि की महत्ता	३४४
१६२	वायव्य कोण की दाढ़ा के द्वीपों का नाम	३१७	१७९	उनकी निर्मलता	३४५
१६३	इन द्वीपों में रहने वाले मनुष्यों का शरीर मान व आयुष्य	३२०	१८०	वहाँ पर अहिंसक भाव	३४६
१६४	उनकी पौंसली, आहार-युगलिक धर्म	३२२	१८१	वहाँ युगलिकों के शरीरमान- आयुष्य स्थिति	३४७
			१८२	उनकी आकृति-पौंसली तथा युगलिक धर्म	३४८
			१८३	निर्ममत्व का कारण	३४९
			१८४	संघयण तथा गति महाहिमवान पर्वत	३५१
			१९०	महाहिमवान पर्वत का मान	३५४
			१९१	इसका 'विष्कंभ' तथा 'शर' मान	३५५
			१९२	इसकी 'जया'	३५७

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
१६३	इसकी 'घनुपृष्ठ'	३५८	२१४	उसके 'विष्कंभ' का मान	३६४
१६४	इसकी 'बाहा'	३५९	२१५	उसके 'शर' का मान	३६५
१६५	इसका प्रतरात्मक गणित	३६०	२१६	उसके 'जया' का मान	३६६
१६६	इसके आठ कूटों के नाम	३६२	२१७	उसके 'घनुपृष्ठ' का मान	३६७
१६७	आठों कूटों का वर्णन	३६४	२१८	उसके 'बाहा' का मान	३६८
१६८	इसका घन गणित	३६२	२१९	उसके प्रतरात्मक गणित मान	३६९
	महापद्म सरोवर का वर्णन		२२०	गंधापाती वृत्तवैतादय का वर्णन	४०१
१६९	महापद्म सरोवर की लम्बाई- चौड़ाई-गहराई	३६८	२२१	उसके स्वामी देव की आयु स्थिति व नाम	४०२
२००	मूल कमल तथा वलय	३७०	२२२	इसकी सब नदियों की संख्या	४०३
२०१	कमलों की संख्या	३७१	२२३	युगलिक का शरीरमान व लक्षण	४०४
२०२	मूल कमल की स्वामिनी 'ह्रीं' देवी	३७२	२२४	इनकी आयु स्थिति	४०५
२०३	रोहिता नदी का विचरण	३७३	२२५	आहार का अन्तर तथा पांसली	४०६
२०४	इस नदी का पर्वत ऊपर विचरण मान	३७४	२२६	संतति पालन रूप युगलिक धर्म	४०७
२०५	इस नदी का निकलने से समुद्र में मिलने तक का वर्णन	३७७	२२६	क्षेत्र का प्रभाव, संहनन आदि	४०८
२०६	इसका प्रवाह-घोघ-कुंड-द्वीप का वर्णन	३८०	२२७	निषध पर्वत का वर्णन	४०९
२०७	हरिकान्ता नदी का बहना	३८१	२२८	निषध पर्वत का स्थान-मान	४०९
२०८	उसका पर्वत ऊपर से समुद्र तक का कार्य	३८३	२२९	इसका 'विष्कंभ' मान	४११
२०९	उसकी गहराई-चौड़ाई-शुरू से अन्त तक	३८७	२३०	इसका 'शर' मान	४१२
२१०	इसके घोघ की लम्बाई-चौड़ाई	३९०	२३१	इसका 'जया' मान	४१३
२११	कुंड की लम्बाई-चौड़ाई-गहराई	३९१	२३२	इसका 'घनुपृष्ठ' मान	४१४
२१२	इसके द्वीप की लम्बाई-चौड़ाई- ऊँचाई	३९२	२३३	इसका 'बाहा' मान	४१५
	हरिवर्ष का क्षेत्र		२३४	इसका प्रतर रूप गणित मान	४१६
२१३	हरिवर्ष क्षेत्र का आकार-स्थान	३९३	२३५	इसका 'घन' गणित मान	४१८
			२३६	इसके नौ कूटों के नाम तथा व्यवस्था	४२०
				निषध पर्वत पर स्थित तिगिछि सरोवर का वर्णन	
			२३७	इसका सार्थक नाम	३२३
			२३८	इसकी लम्बाई - चौड़ाई-गहराई	४२४
			२३९	इसके कमलों की संख्या	४२४

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
२४०	कमलों की चौड़ाई का मान	४२५	२६०	उत्तर कुरू का स्थान	
२४१	उनकी स्वामिनियों के नाम व आयु स्थिति	४२६	२६१	देव कुरू का स्थान	
२४२	मूल कमल की 'श्री' देवी के भवन का मान	४२६	२६२	पूर्व महाविदेह के दो भाग का ज्ञान	
२४३	उसमें से निकली 'हरि सलिला' नदी का वर्णन	४२७	२६३	पश्चिम महाविदेह के दो भाग का ज्ञान	२०
२४४	सरोवर से निकल कर कर समुद्र में गिरने तक वर्णन	४२८	२६४	अर्न्तनदी-वक्षस्कार-विजय की स्थापना	२३
२४५	इसके भंवर-कुंड-द्वीप-प्रवाह आदि का वर्ण	४३२	२६५	पश्चिम विदेह की विचित्रता	३१
२४६	शीतोदा नदी का उद्गम स्थान से समुद्र मिलन तक वर्णन	४३३	२६६	पूर्व विदेह के नदी-पर्वत तथा विजय के नाम	४६
२४७	कुंड के पास में गहराई, निकलते चौड़ाई	४३३	२६७	बत्तीस विजयों का संगम नाम	६१
२४८	समुद्र में गिरते समय चौड़ाई	४४२	२६८	उन विजयों का विष्कंभ	६६
२४९	कुंड की लम्बाई-चौड़ाई-ऊँचाई	४४५	२६९	वक्षस्कार पर्वत की लम्बाई	६८
२५०	द्वीप की लम्बाई-चौड़ाई-ऊँचाई	४४५	२७०	विजय-वक्षस्कार तथा नदी की लम्बाई	६९
२५१	नीलवान पर्वत से केशरी सरोवर से निकली सीता नदी का समुद्र मिलन तक का वर्णन	४४६	२७१	महाविदेह के वैताद्वय पर्वतों का वर्णन	७३
२५२	सर्ग समाप्ति	४५५	२७२	उनके ऊपर स्थित कूटों के नाम	८४
सत्रहवाँ सर्ग			२७३	अर्द्ध कूटों की लम्बाई	८७
महाविदेह क्षेत्र का वर्णन			२७४	वृषभ कूट के विषय में	८८
२५३	महाविदेह क्षेत्र नाम की सार्थकता		२७५	पर्वत के ऊपर गंगा तथा सिन्धु कुंडों का वर्णन	८९
२५४	उसके 'विष्कंभ' तथा मान		२७६	उनका प्रवाह व परिवार आदि	९२
२५५	उसकी 'जीवा' तथा मान		२७७	वृषभायल कूट के बारे में	९७
२५६	उसके 'शर' तथा 'घनुपृष्ठ' का मान		२७८	पर्वत ऊपर रक्ता व रक्तावती कुंड का वर्णन	९८
२५७	उसकी 'बाहा' का मान		२७९	रक्ता व रक्तावती नदियों का प्रवाह व परिवार	९९
२५८	उसके 'प्रतर' का गणित		२८०	शीतोदा के दक्षिण किनारों के आठ विजयों व वृषभायल पर्वत के विषय में	१०१
२५९	महाविदेह के चार विभाग				

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
२८१	उस पर स्थित कुंड तथा निकलती नदियों का विवरण	१०२	३०३	सीता के उत्तर किनारे की अन्तर नदियों के नाम	१५०
२८२	शीतोदा के उत्तर के वृषभायल के विषय में	१०४	३०४	उसके दक्षिण किनारे की नदियों के नाम	१५१
२८३	उसमें रहे कुंड तथा निकलती नदियों का वर्णन	१०५	३०५	शीतोदा के दक्षिण किनारे को नदियों के नाम	१५१
२८४	सब वृषभायल की संख्या	१०६	३०६	शीतोदा के उत्तर किनारे की नदियों के नाम	१५२
२८५	सब गंगा सिन्धु नदियों का स्वरूप	११०	३०७	इन नदियों के कुंड के स्थान	१५३
२८६	तीर्थ का स्वरूप	११२	३०८	इन कुंडों की लम्बाई-चौड़ाई- गहराई तथा विष्कंभ	१५४
२८७	दक्षिणार्द्ध के मध्य खंड के विजयों की राजधानी के नाम	११५	३०९	इन कुंडों के द्वीपों के नाम	१५५
२८८	उसके दक्षिण उत्तरार्द्ध की विजयों की राजधानी के नाम	११७	३१०	इन द्वीपों की लम्बाई-चौड़ाई- ऊँचाई व विष्कंभ	१५७
२८९	शीतोदा के दक्षिण उत्तरार्द्ध की विजयों की राजधानी के नाम	११९	३११	द्वीपों के मध्य भाग के भवनों का वर्णन	१५९
२९०	उसके उत्तरार्द्ध की दक्षिणार्द्ध विजयों की राजधानी के नाम	१२१	३१२	उनसे निकलती नदियों की चौड़ाई व गहराई	१६१
२९१	उसके मनुष्यों का देहमान	१२३	३१३	इनके विषय में भ्रतान्तर	पाठ
२९२	उनकी आयु स्थिति	१२३	३१४	जगती पास के वनों का विवरण	१६३
२९३	संघयण-संस्थान तथा गति	१२४	३१५	गंध मादन पर्वत के विषय में	१७७
२९४	काल मान	१२५	३१६	गंध मादन पर्वत का स्थान	१७७
२९५	सीता-शीतोदा के किनारों के देव गिरि तथा वक्षस्कार पर्वतों का वर्णन	१२७	३१७	नाम की सार्थकता	१७८
२९६	इन पर्वतों के विष्कंभ-ऊँचाई-मान	१३३	३१८	उसके शिखरों की संख्या	१८०
२९७	उनके आकार	१३५	३१९	शिखरों के नाम व स्थान	१८१
२९८	इन पर्वतों के अधिष्ठाता देव	१३७	३२०	उन शिखरों के स्वामी	१८६
२९९	पर्वतों के शिखरों के विषय में	१३८	३२१	उनकी राजधानियों के विषय में	१८७
३००	शिखरों के स्थान तथा नाम	१३९	३२२	माल्यवान पर्वत के विषय में	१८८
३०१	शिखरों का विशेष वर्णन	१४८	३२३	माल्यवान पर्वत का स्थान	१८८
३०२	अन्तर नदियों के विषय में	१५०	३२४	इस नाम की सार्थकता	१८९
			३२५	उसके शिखरों की संख्या	१९१

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
३२६	शिखरों के नाम व स्थान	१६२	३४६	यहाँ का कालमान	२३८
३२७	हरिस्सह शिखर के विषय में विशेष	१६७		यमक पर्वत के विषय में	
३२८	इन शिखरों के स्वामिओं के नाम व आयुष्य	२०४	३५०	यमक पर्वत का स्थान	२४०
३२९	गंध मादन व माल्यवान पर्वत की लम्बाई - चौड़ाई	२०६	३५१	उसके नाम की सार्थकता तथा आकार	२४१
३३०	इन पर्वतों पर पद्म वेदिका तथा बागीचा	२१४	३५२	उसकी चौड़ाई-लम्बाई आदि	२४३
३३१	उनकी आकृति के विषय में	२१५	३५३	उसके निकट पद्मवेदिका आदि का वर्णन	३४५
३३२	उत्तर कुरू क्षेत्र के विषय में	२१५	३५४	उसमें स्थित महलों की ऊँचाई आदि का मान	३४६
३३३	उत्तर कुरू क्षेत्र का स्थान	२१५	३५५	उसके स्वामी देवों के विषय में	३४७
३३४	उसका मान तथा आकार	२१७	३५६	उनकी राजधानी के विषय में	२४८
३३५	उसके स्वामी देव का नाम तथा आयुष्य	२१६	३५७	कुंड तथा पर्वतों के परस्पर अन्तर	२५२
३३६	इस क्षेत्र के नाम की सार्थकता	२१६	३५८	पाँच सरोवरों के विषय में	२५३
३३७	इसका विस्तार तथा मान	२२०	३५९	प्रथम सरोवर का नाम तथा सार्थकता	२५५
३३८	इसके विस्तार की उपपत्ति	२२२	३६०	दूसरे सरोवर का नाम तथा सार्थकता	२५६
३३९	उसकी जीवा का मान	२२३	३६१	तीसरे सरोवर का नाम तथा सार्थकता	२५७
३४०	उसका घनुपुष्प	२२५	३६२	चौथे सरोवर का नाम तथा सार्थकता	२५८
३४१	यहाँ की जमीन की सुन्दरता	२२७	३६३	पाँचवें सरोवर का नाम तथा सार्थकता	२५९
३४२	यहाँ के युगलियों की आयुः स्थिति	२२६	३६४	उसकी आकृति	२६२
३४३	उनकी पाँसली तथा कषाय की अल्पता	२३०	३६५	उसकी लम्बाई-चौड़ाई आदि	२६५
३४४	उनकी जाती के भेद तथा नाम	२३१	३६६	इन सरोवरों के स्वामियों की राजधानी के विषय में	२६६
३४५	उनके आहार का अन्तर तथा प्रमाण	२३२	३६७	इस पर्वत सरोवर के कांचन पर्वत के विषय में	२६६
३४६	उनका अपत्य फालन तथा गति	२३३	३६८	उसकी संख्या तथा प्रमाण	२७०
३४७	इसकी पृथ्वी की विशेषता	२३४			
३४८	यहाँ त्रियंच के विषय में विशेष विवरण	२३५			

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
३६६	उसकी ऊँचाई विस्तार आदि	२६८	३६३	विडिग शाखा के सिद्ध मन्दिर की लम्बाई-चौड़ाई	३१२
३७०	उसकी परिधि आदि	२७०	३६४	उसमें स्थित मणि पीठिका का वर्णन	३१३
३७१	उसकी शोभा का कारण	२७२	३६५	मूल जम्बू वृक्ष के परिवार, रूप जम्बू वृक्षों की संख्या	३१६
३७२	इस कांचन पर्वत के नाम की शोभा	२७३	३६६	वृक्ष की पद्म वेदिका के बारे में	३१८
३७३	इस पर्वत के ऊपर के महलों का वर्णन	२७४	३६७	इन वृक्षों का उपयोग	३१९
३७४	इसके अधिपतियों की आयु-समृद्धि तथा राजधानी	२७६	३६८	जम्बू वृक्ष में जिन भवन होते हैं या नहीं, इस विषय में मतान्तर	पाठ
३७५	सुदर्शन वृक्ष का वर्णन	२७७	३६९	स्वामी देव के परिवार के जम्बू वृक्षों की संख्या	३२०
३७६	सुदर्शन वृक्ष का स्थान	२७७	४००	इस जम्बू वृक्ष के तीन धनों का वर्णन	३३०
३७७	जम्बू पीठ का स्थान	२७९	४०१	वन खंड के ईशान कोण में रहे चार बावड़ियों का वर्णन	३३६
३७८	उसकी लम्बाई-चौड़ाई आदि	२८१	४०२	उनकी लम्बाई-चौड़ाई आदि	३३९
३७९	उसकी पद्म वेदिका आदि	२८३	४०३	वायव्य कोने में रहे बावड़ियों के नाम तथा नाम में मतान्तर	पाठ
३८०	पीठ के द्वारों का वर्णन	२८५	४०४	अग्नि कोण की चार बावड़ियों के नाम आदि	३४४
३८१	इस जम्बू वृक्ष के सब अंगों की विशेषता	२९४	४०५	नैऋत्य कोने की चार बावड़ियों के नाम आदि	३४२
३८२	विडिग शाखा विषय में विशेष वर्णन	२९६	४०६	आठ दिशाओं के आठ कूटों का वर्णन	३४७
३८३	इसके स्कंध की ऊँचाई आदि	२९९	४०७	उनकी लम्बाई-चौड़ाई आदि	३५६
३८४	विडिग शाखा की ऊँचाई	३००	४०८	इन कूटों के लगते बागीचों का वर्णन	३६०
३८५	सम्पूर्ण जम्बू वृक्ष की ऊँचाई	३०१	४०९	जम्बू वृक्ष के अन्य नाम	३६२
३८६	चार दिशाओं की शाखाओं के बारे में	३०२	४१०	इसके स्वामी देवों के पूर्व भव	३६५
३८७	जम्बू वृक्ष चौड़ाई का मान	३०४	४११	इनके सेवक देव	३६६
३८८	शाखा बीच स्वामी देवों के भवनों के विषय में	३०५			
३८९	इन भवनों की लम्बाई आदि मान	३०६			
३९०	उनमें मणि पीठिका का वर्णन	३०८			
३९१	उसकी अन्य शाखाओं का वर्णन	३०९			
३९२	भवन और प्रासादों में फेरबदल के विषय में	३११			

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
४१२	उनकी सभा-सैन्य-सेनापती की संख्या	३६७	४३५	इन सरोवरों के कमल तथा आदि	४०६
४१३	राजधानी के स्थान	३६६	४३६	इन सरोवरों के स्वामियों की राजधानी स्थान	४११
४१४	सौमनस पर्वत के विषय में		४३७	सरोवरों-पर्वतों आदि के परस्पर अन्तर	४१३
४१४	सौमनस पर्वत का स्थान	३७१	४३८	इस क्षेत्र के शाल्मली वृक्षों का स्थान	४१६
४१५	इस सौमनस नाम की सार्थकता	३७२	४३९	उनकी रचना आदि	४१७
४१६	इसके आकार आदि के विषय में	३७३	४४०	उनके स्वामी देवों के विषय में	४१६
४१७	इसके सात शिखरों के नाम	३७४	४४१	यहाँ के मनुष्य तिर्यच आदि के शरीर का मान आदि	४२०
४१८	इसके शिखरों के स्थान	३७६	४४२	इस क्षेत्र का काल मान	४२१
४१९	उनके स्वामी-देव-देवियों के विषय में	३७६	४४३	सर्ग समाप्त	४२२
४२०	इनकी राजधानियों के स्थान	३८०		अठारहवाँ सर्ग	
	विद्युत्प्रभ पर्वत के विषय में		४४४	पार्श्व भगवान की स्तुति	१
४२१	विद्युत्प्रभ पर्वत का स्थान	३८१		मेरु पर्वत का वर्णन	
४२२	इसके नाम की सार्थकता	३८२	४४५	मेरु पर्वत का स्थान	२
४२३	इसके नौ शिखरों का नाम	३८३	४४६	उसकी विशिष्ट उपमायें	३
४२४	उनकी लम्बाई आदि मान	३८६	४४७	उसकी उंचाई	१५
४२५	इसके कूटों के स्वामी की राजधानी के विषय में	३८८	४४८	चूलिकाओं की उंचाई	१६
४२६	उनके स्वामियों के नाम	३८९	४४९	मूल का विस्तार	१७
४२७	यहाँ की दिग् कुमारियों के कार्य	३९१	४५०	इसके मूल की परिधि आदि	१८
४२८	इस पर्वत की लम्बाई-चौड़ाई	३९६	४५१	ऊपर चौड़ाई का मान	१९
	दैव कुरू के विषय में		४५२	इसके भूतल के घेराव का मान	२०
४२९	देव कुरू का स्थान	३९७	४५३	इसके ऊपर के घेराव का मान	२१
४३०	इस नाम की सार्थकता	३९८	४५४	इच्छित स्थान की चौड़ाई निकालने के कारण	२२
४३१	इसके विष्कंभ आदि	३९९	४५५	उस पर दृष्टान्त	२४
४३२	चित्र-विचित्र कूटों के स्थान-मान आदि	४०१	४५६	दूसरा करण	२७
४३३	उनके स्वामी देवों की राजधानी के विषय में	४०३	४५७	उसका दृष्टान्त	२६
४३४	इस क्षेत्र के पाँच सरोवरों के नाम	३०४	४५८	व्यास ऊपर की उंचाई निकालने का कारण	३२

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
४५६	उसका दृष्टान्त	३४	४८०	मेरू के प्रथम बन में स्थित	१०४
४६०	सर्वत्र चौड़ाई की बढ़त-घटत जानने का कारण	३७		प्रासादों तथा गजकूटों के स्थान का नियम	
४६१	उसका दृष्टान्त	३६	४८१	उन गजकूटों की लम्बाई आदि	११४
४६२	नीचे से ऊपर जाते घेराव का कारण	४८	४८२	प्रासादों की लम्बाई आदि	११८
४६३	उसका दृष्टान्त	४६	४८३	इन प्रासादों के स्वामियों की आयु: स्थिति	११६
४६४	पर्वत की समानता में निर्णायक अंक कैसे ?	५७	४८४	इन कूटों के स्वामियों की आयु: स्थिति	१२०
४६५	उसका समाधान	५६	४८५	दूसरे नंदन वन के विषय में	१२४
४६६	मेरू पर्वत के तीन कांड	६५	४८६	नंदन वन का स्थान	१२४
४६७	प्रथम कांड की बनावट	६५	४८७	उसका विस्तार तथा मान	१२५
४६८	दूसरे कांड की बनावट	६६	४८८	इस स्थान पर मेरू के अभ्यन्तर	१२७
४६९	तीसरे कांड की बनावट	६७		घेराव का मान	
४७०	मेरू के चार बनों के नाम	७३	४८९	इस स्थान पर मेरू के बाह्य	१३२
४७१	पहले भद्रशाल बन की लम्बाई- चौड़ाई आदि	७४		घेराव का मान	
४७२	इसके बन के आठ भाग होने का कारण तथा भाग के स्थान	७८	४९०	मेरू की चार दिशाओं में चार सिद्ध मन्दिर	१३६
४७३	मेरू के चार दिशाओं में चार सिद्धायतन आदि	८३	४९१	प्रासादों तथा बावड़ियों की संख्या	१३७
४७४	उनके स्वरूप आदि	८४	४९२	ईशान कोण की बावड़ियों के नाम	१३८
४७५	उसकी चार विदिशा के चार प्रासादों के विषय में	८५	४९३	अग्नि कोण की बावड़ियों के नाम	१३९
४७६	उन प्रासादों की चार दिशाओं में चार बावड़ी के विषय में	८६	४९४	नैऋत्य कोण की बावड़ियों के नाम	१४०
४७७	उन प्रासादों के स्वामी देव	८८	४९५	वायव्य कोण की बावड़ियों के नाम	१४१
४७८	इस बन में ८ गजकूट पर्वत तथा उनके नाम	९०	४९६	इस वन में स्थित नौ शिखरों के नाम	१४४
४७९	उन कूटों के स्थान	९२	४९७	एक दूसरे का अन्तर	१४५
			४९८	उन शिखरों के स्थान तथा स्वामी देवों के नाम	१४६

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
५६६	इन शिखरों की मूल लम्बाई- चौड़ाई	१६३	५२२	वेदिका से शोभती शिला की उपमा	२१६
५००	इस नन्दनवन का विशेष उपयोग	१७२	५२३	शिला ऊपर रहे दो सिंहासन के विषय में	२२०
५०१	सौमनस वन के विषय में	१७४	५२४	उन सिंहासनों के मान आदि का वर्णन	२२२
५०२	सौमनस वन का स्थान	१७४	५२५	इन सिंहासनों का उपयोग क्या है?	२२३
५०३	वन का बाह्य विस्तार	१७७	५२६	उसके कारण दिखाने वाला वर्णन	२२५
५०४	उसकी विवरण सहित स्थापना	१७६	५२७	दूसरी शिला के बारे में	२३०
५०५	इस वन की चौड़ाई	१८२	५२८	उनका सर्व वर्णन	२३१
५०६	बावड़ी-प्रासाद का नाम पूर्वक वर्णन	१८६	५२९	तीसरी शिला के विषय में	२३६
	पांडक वन के विषय में		५३०	उनका सब वर्णन	२३७
५०७	पांडक वन का स्थान	१६४	५३१	चौथी शिला के विषय में	२४१
५०८	इसकी चौड़ाई	१६६	५३२	उसका सब वर्णन	२४२
५०९	इसकी चौड़ाई का ज्ञान	१६७	५३३	सब सिंहासनों की संख्या	२४६
५१०	इस वन का घेराव	१६६	५३४	एक साथ तीर्थंकरों के जन्मा-भिषेक के विषय में	२४७
५११	सिद्ध मन्दिर-बावड़ी-प्रासाद आदि २०१		५३५	चूलिकाओं का वर्णन	२५०
	बावड़ियों के नाम		५३६	ऊँचाई आदि सब विवरण पूर्वक वर्णन	२५२
५१२	ईशान कोण की बावड़ियों के नाम २०३		५३७	मेरू पर्वत के अलग-अलग नाम	२६६
५१३	अग्नि कोण की बावड़ियों के नाम २०४		५३८	मेरू नाम की सार्थकता	२७२
५१४	नैऋत्य कोण की बावड़ियों के नाम	२०५	५३९	महाविदेह में जघन्य-उत्कृष्टता-तीर्थंकर-चक्रवर्ती-वासुदेव-बलदेव	२७६
५१५	वायव्य कोण की बावड़ियों के नाम	२०६	५४०	सर्ग समाप्ति	२७८
५१६	प्रासादों के स्वामियों के नाम	२०७		उन्नीसवां सर्ग	
५१७	अभिषेक शिला के बारे में	२०६	५४१	नीलवान पर्वत	१
५१८	इन शिलाओं के नाम	२१०	५४२	नीलवान पर्वत का स्थान आदि	१
५१९	प्रथम का स्थान निश्चय	२११	५४३	इसके नाम की सार्थकता	२
५२०	उसकी लम्बाई-चौड़ाई-आकार आदि	२१२	५४४	इसके स्वामी देव की राजधानी-आयुष्य आदि	३
५२१	इन शिलाओं की खड़ाई-सीढ़ियाँ आदि	२१६			

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
५४५	इसकी लम्बाई-चौड़ाई आदि	४	५६७	उसके मुख्य कमल की लम्बाई आदि का मान	४५
५४६	नौ शिखरों की उपमा	६	५६८	उसके वलय आदि	४५
५४७	उनके नाम तथा स्वामी देवों के नाम	७	५६९	उसकी अधिष्ठात्री देवी के भवन आदि	४६
५४८	उसके ऊपर स्थित केशरी सरोवर के विषय में	१६	५७०	इससे निकलती नदियों के विषय में	४७
५४९	इसके नाम की सार्थकता	१७	५७१	नरकान्ता नदी के निकलने से समुद्र मिलन तक का वर्णन	४८
५५०	निकलती नदियों के विषय में	१८	५७२	रूपय कूला नदी के निकलने से समुद्र मिलन तक का वर्णन	५१
५५१	नारी कान्ता नदी के निकलने से समुद्र मिलन तक वर्णन	२०	५७३	हैरयेयवंत क्षेत्र	५५
५५२	सरोवर के मुख्य कमल का मान	२४	५७४	हैरएयवंत क्षेत्र का स्थान	५५
५५३	उसके वलय के कमलों का मान	२४	५७५	उसके नाम की सार्थकता	५६
५५४	उनकी स्वामिनियों के आयुष्य तथा स्थान	२५	५७६	प्रभाव-प्रमाण आदि	६१
	रम्यक क्षेत्र		५७७	विकटापाती वृत वैताढ्य का आकार आदि	६२
५५५	रम्यक क्षेत्र के स्थान आदि	२६	५७८	उसके नाम की सार्थकता	६३
५५६	इसके नाम की सार्थकता	२७	५७९	उसके स्वामी देवों के नाम तथा आयु स्थिति	६४
५५७	इसकी लम्बाई-जीवा-धनुषृष्ठ आदि का मान	२८	५८०	चारों वृत वैताढ्य के मतान्तर के विषय में	पाठ
५५८	इसमें आये माल्यवान वृत-वैताढ्य का स्थान	३०	५८१	शिखरी पर्वत	६६
५५९	इसके नाम की सार्थकता	३१	५८२	शिखरी पर्वत का स्थान	६६
५६०	इसके स्वामी देवों के नाम-आयुष्य-राजधानी	३२	५८३	इसके नाम की सार्थकता	६७
	रूक्मी पर्वत		५८४	ग्यारह शिखरों की उपमा	७०
५६१	रूक्मी पर्वत का स्थान	३४	५८५	उनके नाम तथा स्वामी देवों के नाम	७१
५६२	उसकी लम्बाई आदि	३५	५८६	पुंडरीक सरोवर, उसमें स्थित कमल आदि का वर्णन	७७
५६३	इसके नाम की सार्थकता	३६	५८७	इस पर्वत की जया-बाह्या आदि के मान	७९
५६४	आठ शिखरों का नाम तथा उनके स्वामियों के नाम	३८			
५६५	उन शिखरों के मान आदि	४३			
५६६	महापुण्डरीक सरोवर के विषय में	४४			

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
५८८	इससे निकलती तीन नदियों के नाम	८०	६११	सब मिलाकर पर्वतों की संख्या	१३७
५८९	(१) स्वर्ण कूला नदी के निकलने से समुद्र मिलन तक वर्णन	८१	६१२	सबके अलग-अलग शिखरों की संख्या	१४१
५९०	(२) रक्ता नदी के निकलने से समुद्र मिलन तक वर्णन	८५	६१३	परस्पर समानता वाले शिखरों के नाम	१४४
५९१	(३) रक्तवती नदी के निकलने समुद्र मिलन तक वर्णन	९२	६१४	सब मिलाकर शिखरों की संख्या	१४६
५९२	ऐरवत क्षेत्र	९९	६१५	सब ऋषभ कूटों की संख्या	१४७
५९३	ऐरवत क्षेत्र का स्थान	९९	६१६	सब भूमि कूटों की संख्या	१४८
५९४	इसके नाम की सार्थकता	१००	६१७	बड़े सरोवरों की संख्या	१५०
५९५	भरत क्षेत्र के साथ में समानता	१०१	६१८	उनकी आपस में समानता	१५१
५९६	इसके जीवा-शर आदि का मान	११०	६१९	सब सरोवरों की संख्या	१५१
५९७	इसके वैताडय का लम्बाई आदि	११२	६२०	उन सरोवरों के स्वामियों के नाम ऋद्धि आदि	१५२
५९८	उसके ऊपर स्थित नगर	११३	६२१	यहाँ की १४ महानदियों के नाम	१५३
५९९	वन वेदिका-श्रेणि आदि	११४	६२२	उनके निकलने तथा बहने के स्थान	१५७
६००	इस क्षेत्र के छः खंड	११५	६२३	उन नदियों के प्रत्येक के परिवार की संख्या	१६८
६०१	मध्य खंड का स्थान तथा नगरी का स्थान	११६	६२४	सब नदियों के परिवार की सर्व संख्या	१७४
६०२	आर्य-अनार्य की व्यवस्था	११९	६२५	अन्तर नदियों के मतान्तर के विषय में	पाठ
६०३	जम्बू द्वीप के क्षेत्रों के कर्म-अकर्म भूमि के विभाग	१२१	६२६	सीता-शीतोदा नदियों के परिवार की संख्या	पाठ
६०४	छः वर्षधर पर्वतों की विशेषता-समानता	१२६	६२७	दक्षिण सम्मुख बहने वाली नदियों के नाम	१८०
६०५	उनके शिखरों की संख्या तथा समानता	१२७	६२८	उत्तर सम्मुख बहने वाली नदियों के नाम	१८१
६०६	सब वैताडय पर्वतों की संख्या	१२९	६२९	उनके मुख्य विस्तार आदि	१८४
६०७	सब वृत वैताडय पर्वतों की संख्या	१३१	६३०	एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने में वृद्धि बताने के कारण	१८४
६०८	सब कांचन पर्वतों की संख्या	१३२			
६०९	गजदंत पर्वतों की संख्या	१३४			
६१०	वक्षस्कार पर्वतों की संख्या	१३६			

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
६३१	जम्बूद्वीप के सब कुंडों की संख्या	१६०		सूर्य मंडल के क्षेत्रों के विषय में	
६३२	उनके मान आदि	१६१	६५१	क्षेत्र का स्पष्टीकरण	७
६३३	उनके कुंड का स्वरूप	१६२	६५२	मंडल क्षेत्र का विस्तार	८
६३४	जम्बूद्वीप में आये सब तीर्थों की संख्या	१६४		सूर्य मंडलों की संख्या के विषय में	
६३५	वैतादय की सब गुफाओं की संख्या	१६५	६५३	सूर्य मंडलों की संख्या	१७
६३६	वैतादय के ऊपर आये सब नगरों की संख्या	१६६	६५४	सूर्य के मंडलों का योजन	१६
६३७	जम्बूद्वीप में आये विजयों की संख्या	१६७	६५५	मंडलों के विषय के व्यवस्था	२२
६३८	जम्बूद्वीप में जघन्य-उत्कृष्टता से तीर्थकर चक्रवर्ती-बलदेव-वासुदेव की संख्या	२००	६५६	इन मंडलों के क्षेत्र ऊपर विस्तार, स्थान	२४
६३९	जम्बूद्वीप में निधानों की संख्या	२०२	६५७	दोनों अयनों में सूर्य की आभा के विषय में	२८
६४०	उनके मिलने का समय तथा स्वामी	२०३	६५८	सूर्य का उदय व अस्त कैसे?	३१
६४१	रत्नों का उपयोग	२०४	६५९	सूर्य के उदय व अस्त की अनिश्चितता	३२
६४२	जम्बूद्वीप के ग्रह-नक्षत्र-सूर्य-चन्द्र की संख्या	२०५		मण्डलों की अबाधा प्ररूपण	
६४३	जम्बूद्वीप के तारों की संख्या	२०७	६६०	अनेक प्रकार	३६
६४४	तारों के सम्बंध में विशेष विवरण व मतान्तर	पाठ	६६१	(१) ओघ से अबाधा के विषय में	४५
६४५	जम्बूद्वीप की उपमा	२०८	६६२	(२) प्रत्येक मंडल की अबाधा के	५३
६४६	सर्ग समाप्ति	२०९		विषय में	
	बीसवां सर्ग		६६३	(३) मंडल-मंडल की परस्पर अबाधा	६०
६४७	जम्बूद्वीप में स्थित-सूर्य-चन्द्र की गति	१	६६४	(४) मंडलों के अन्तर के विषय में	६३
६४८	सूर्य की मुख्या कैसे है?	२		मंडलों की गति के विषय में	
६४९	पाँच अनुयोग द्वारों के नाम	३	६६५	उसके सात द्वारों के नाम प्रथम द्वार	६४
६५०	अंशों का विवरण	६	६६६	वर्ष में सूर्य की मंडलों में गति संख्या - दूसरा द्वार	६८
			६६७	वर्ष में हमेशा की रात्रि व दिन का प्रमाण	७५
			६६८	दिन का बड़ा व छोटा होना	७६

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
६६६	रात्रि का बड़ा व छोटा होना	७६	६८६	दृष्टान्त पूर्वक उसकी उपपत्ति	१२८
६७०	दिन का थोड़ा होने का कारण	७७	६८७	सूर्य के आतप की आकृति	१३६
६७१	रात की लम्बी होने का कारण	८०	६८८	आतप क्षेत्र की लम्बाई	१४५
६७२	दक्षिणायन की पूर्णता से अहोरात्रि की संख्या	८२	६८९	सूर्य के ताप क्षेत्र की चौड़ाई	१५१
६७३	दिन मान की कई संक्रान्तियाँ कितने पल की होती हैं	८८	६९०	ताप क्षेत्र की अनवस्थिता का कारण	१५६
६७४	सूर्य संवत्सर की पूर्णता बताने वाले दिन	९३	६९१	अन्धकार के विषय में और उसकी आकृति	१६५
६७५	वर्ष में बड़े से बड़े दिन की व्यवस्था	९४	६९२	मकर संक्रान्ति में सूर्य का आतप क्षेत्र तथा अन्धकार का स्वरूप	१७१
६७६	वर्ष में कम से कम दिन की व्यवस्था	९४	६९३	सूर्य की किरणों का ऊर्ध्व ताप	१८०
६७७	वर्ष में कम से कम रात्रि की व्यवस्था	९५	६९४	सूर्य की किरणों के नीचे ताप	१८१
६७८	जिस दिशा में रात्रि होती है उसके दूसरे तरफ क्या होता है इसका विवरण	९८	६९५	सबसे अन्दर के मंडल में रहे सूर्य की किरणों का विस्तार	१८३
६७९	वास्तव में अहोरात्र के मुहुर्तों की संख्या लोक रूढ़ि के प्रमाण से है	१०२	६९६	सर्वथा बाहर के मंडल में रहे सूर्य की किरणों का विस्तार	१८७
६८०	पितृ-देव-ब्रह्मा के अहोरात्र के विषय में	१०३	६९७	हर एक मंडल की परिधि	१९२
६८१	रात्रि दिन छोटे-बड़े होने के विषय में शंका तथा समाधान	१०४-१०५	६९८	प्रत्येक मंडल में सूर्य की प्रत्येक मुहुर्त में गति	२१०
६८२	उसके कारण तथा करण	१०७	६९९	दृष्टि पथ प्राप्ति	२२३
६८३	चार प्रारूपण दश विभाग की कल्पना	१२६	७००	सूर्य के उदय तथा अस्त के बीच में अन्तर योजन में	२३४
६८४	दो-दो विभाग को सूर्य प्रकाश देता है	१२६	७०१	सूर्य उदयास्त समय दूर होते हुए नजदीक कैसे?	२६६
६८५	दशांश की वृद्धि-हानि के विषय में	१२७	७०२	उसके अर्द्ध मंडल की स्थिति के विषय में	२७३
			७०३	चन्द्रमा गति के विषय में	३०४
			७०४	चन्द्रमा के मंडलों का क्षेत्र	३०७
			७०५	मंडलों के अन्तर की उपपत्ति	३१३
			७०६	चन्द्रमा के मंडलों की अबाधा	३२८
			७०७	चन्द्रमा के हर मंडल में परस्पर अन्तर	३३६

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
७०८	मंडल की गति के विषय में	३४३	७३०	ग्रहण के बारे में लोक प्रमाण	४४८
७०९	उनके चार अनुयोग द्वारों के नाम	३४७	७३१	राहु के नौ नाम	४५५
७१०	पहले द्वार का प्ररूपण	३४९	७३२	नक्षत्र व महीने के अहोरात्र	४५८
७११	चन्द्रमा के मंडलों की परिधि	३४९	७३३	उनकी समझ-बूझ	४६०
७१२	दूसरे द्वार का वर्णन	३५६	७३४	प्रथम उत्तरायण कैसे?	४६५
७१३	एक मंडल के पूर्ण करने का समय	३६०	७३५	बाद में दक्षिणायण कैसे?	४७४
७१४	उस विषय में प्रश्नोत्तर	३६५	७३६	युग के दिवस प्रमाण	४७५
७१५	इस विषय में जवाब तथा करण	३६६	७३७	युग के आरंभ पीछे अमुक दिन कैसे चन्द्रायण है	४७५
७१६	चन्द्रमा का दृष्टिगोचरपन योजन में ३८७	३६६	७३८	उसको जानने का करण, ४७६-४९०	
७१७	तीसरे द्वार का वर्णन	३६६		उसके द्रष्टान्त, चन्द्रमा नाम की सार्थकता	
७१८	चौथे द्वार का वर्णन	४००	७३९	नक्षत्रों के विषय में	४९३
७१९	चन्द्रमा से नक्षत्रों में अविरोह उन मंडलों का क्या नम्बर	४०१	७४०	उनके १५ द्वारों के नाम	४९४
७२०	चन्द्रमा से नक्षत्रों में विरोह से उन मंडलों के क्या नम्बर	४०३	७४१	(१) नक्षत्र मंडलों की संख्या का प्ररूपण	४९६
७२१	किन मंडलों में सूर्य-चन्द्र उन नक्षत्रों से सामान्य रहते हैं	४०५	७४२	(२) अभिजित नक्षत्र के बारे में शंका समाधान	५०५
७२२	किन चन्द्र मंडलों में सूर्य का गमनागमन नहीं है	४०७	७४३	(३) २८ नक्षत्रों के मंडलों की संख्या	५०८
७२३	चन्द्रमा की वृद्धि-हानि का प्रतिभाष के विषय में	४११	७४४	(४) नक्षत्रों के क्षेत्र के विषय में	५०९
७२४	राहु के विमान से चन्द्रमा का हास होता है, इस विषय में	४११	७४५	(५) नक्षत्रों के विमानों का परस्पर अन्तर	५१४
७२५	आधे योजन वाला राहु चन्द्रमा को किस तरह से ढक लेता है?	४३२	७४६	(६) मंडल की मेरू प्रति अबाधा ५१६	
७२६	इसका समाधान	४३४	७४७	(७) मंडल के विष्कंभादि	५१८
७२७	ग्रहण के विषय में	पाठ	७४८	(८) मुहूर्त गति	५१९
७२८	ग्रहण के बारे में	४४४	७४९	(९) चन्द्रामंडलावेश	५४६
७२९	चन्द्र व सूर्य का ग्रहण होने का समय	४४६	७५०	(१०) दिग योग	५५१
			७५१	मंडल के अर्द्ध भाग में गमन करते नक्षत्रों के नाम	५५२
			७५२	बाह्य-अभ्यन्तर मंडलों का गमन	५५९

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
	करते नक्षत्र		७६६ (१३) नक्षत्रों के आकार का वर्णन, रत्न माला ग्रन्थ के आधार पर	६२५	
७५३	चार नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ योग	५६०	७७० (१४) नक्षत्रों का सूर्य चन्द्रमा के साथ संयोग-काल का मान	६४४	
७५४	चन्द्रमा के साथ में किन-किन नक्षत्रों का योग होता है, कौन-कौन योग बनते हैं	५६४	७७१ रत्नमाला ग्रन्थ के आधार पर नक्षत्रों का आकार	६४१	
७५५	प्रमर्द योग के विषय में	५६६	७७२ चन्द्रमा के साथ संयोग काल मान	६४४	
७५६	मंडल छेद के विषय में	५७१	७७३ संयोग काल कहने का प्रयोजन	६४८	
७५७	मंडलों में नक्षत्र अंशों की कल्पना	५७४	७७४ सूर्य के साथ में संयोग काल मान	६५०	
७५८	उसकी शंका का समाधान	५७६	७७५ (१५) नक्षत्रों के कुल आदि के विषय में	६६१	
७५९	मंडल छेद की उपपत्ति	५७९	७७६ कुल आदि का प्रयोजन	६६६	
७६०	तीन प्रकार के नक्षत्रों के नाम और उनका विवरण	५८०	७७७ (१६) अमावस्या व पूर्णिमा योग के विषय में	६६७	
७६१	सत्र क्षेत्री नक्षत्रों के अंश	५८५	७७८ (१७) एक वर्ष में प्रत्येक, महीने में कौन-कौन नक्षत्र कितने कितने अहोरात्र तक होता है। उसका क्रम वार वर्णन	६७८	
७६२	अर्द्ध क्षेत्री नक्षत्रों के अंश	५८६	७७९ नक्षत्रों का प्रयोजन	६९४	
७६३	स्वार्द्ध क्षेत्री नक्षत्रों के अंश	५८७	७८० ग्रहों के विषय में	७००	
७६४	मंडल छेद का मान	५९१	७८१ ग्रहों की ८८ संख्या तथा उनके नाम	७०१	
७६५	मुहूर्त-गति-योजन के सम्बन्ध में करण	५९६	७८२ सूर्य-चन्द्र-ग्रह नक्षत्र तथा तारों का वर्णन	७१६	
७६६	नक्षत्रों की अंशात्मक मुहूर्त गति का कारण	६१०	७८३ सर्ग समाप्ति	७१८	
७६७	(११) देवता के विषय में- देवताओं के नाम	६१५			
७६८	(१२) हर एक नक्षत्र व तारों की संख्या, तारा शब्द का विस्तार से कथन	६२३			

दो-शब्द

अपने साधु जीवन के प्रारम्भिक काल से सुनता आ रहा था कि, उपाध्याय 'श्री विनय विजय' जी गणि वर्ण रचित 'लोक प्रकाश' महान ग्रन्थ है। अनेकों बार वयोवृद्ध श्रमण भगवंतों के मुखारविंद से इस ग्रन्थ में जैन दर्शन के सभी तत्त्वों का समावेश है, द्रव्य लोक-क्षेत्र-लोक काल लोक एवं भाव लोक के सभी पदार्थों का ज्ञान इसमें है। उस समय ज्ञान की इतनी क्षमता भी नहीं थी की तत्काल इस ग्रन्थ की अदभुत सूक्ष्मता को समझ पाता। जैसे-जैसे संयम साधना चलती रही, शास्त्रों का पठन-पाठन-मनन-अनुशीलन चलता रहा। बुद्धि में भी कुछ जानने-समझने की पात्रता आती गई। अनेकों दुर्लभ ग्रन्थों को पढ़कर-समझकर हिन्दी भाषा में रूपान्तर करने का क्रम भी अविरत गति से चलता रहा। इस ग्रन्थ के प्रति मन में अधिक-अधिक उत्कंठा जागृत होती गई। सौभाग्य से 'लोक प्रकाश' ग्रन्थ पढ़ने में आया। पूर्ण मनोयोग से दत्तचित्त होकर कई बार आद्यान्त पारायण किया। ग्रन्थराज में वर्णित गूढ़ तत्त्वों का भान होने पर पता चलता है कि वस्तुतः यह ग्रन्थ तो जैन साहित्य की अमूल्य निधि है। विभिन्न गुजराती भाषा में रूपान्तरित संस्करण पढ़ने में आये। मन में विचार जाग्रत हुआ कि ऐसे अनुपम और दुर्लभ ग्रन्थ का हिन्दी भाषा प्रचलन न होना बड़ा ही कष्टकारी है। हिन्दी तो राष्ट्र भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है और हिन्दी भाषी प्रदेश भी कितने ही हैं। बस इसी भावना से प्रेरित होकर बहुजन हिताय बहुजन सुखाय का आलम्बन प्रकर सम्पूर्ण 'लोक प्रकाश' ग्रन्थ सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद करने का द्रढ़ निश्चय कर लिया। श्रुत ज्ञान देव की परम कृपा एवं पूज्य गुरु भगवतों के शुभाशीर्वाद से दो वर्ष की अल्पावधि में ही सम्पूर्ण ग्रन्थ को पाँच भागों में हिन्दी भाषा में रूपान्तरित कर सका। यह वर्ष मेरी दीक्षा पर्याय का ५० वाँ साल चल रहा है, उधर ग्रन्थराज 'लोक प्रकाश' का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो रहा है। 'अहो कल्याणं परम्परा' मेरे लिये तो बहुत ही आनन्द दायक है। यह मणिकांचन योग बहुत ही श्रेयस्कर है।

इस ग्रन्थ का मनोयोग पूर्वक अध्ययन व चिन्तन करने से जैन दर्शन के गूढ़ व दुर्लभ तत्त्वों का ज्ञान मिलता है। जीव द्रव्य लोक-क्षेत्र लोक-काल लोक और भाव लोक के पदार्थों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान प्राप्त होता है। इन तत्त्वों को जानकर मनुष्य जीव हिंसा के पापों से भी बच सकता है और कर्म रहित भी हो सकता है। पवित्र वीतराग परमात्म-मार्ग की आराधना करके मुक्ति पथ का पथिक बनता है। ग्रन्थराज सम्पूर्ण पाँचों भागों में छप चुका है। अपनी अनुकूलताअनुसार पाठक गण प्राप्त कर पठन-पाठन करेंगे तो कल्याण होगा।

'क्षेत्र लोक (पूर्वाद्ध)' नाम से प्रसिद्ध 'लोक प्रकाश' ग्रन्थ का दूसरा भाग (सर्ग १२ से २० तक) आपके हाथों में हैं। वर्ण्य विषय की अनुक्रमणिका का इस ग्रन्थके प्रारम्भिक पृष्ठों पर दी गई है, इससे विषय अन्वेषण में सुविज्ञ पाठक जन को सुविधा होगी। इस ग्रन्थ का विषय यद्यपि दुरुह है फिर भी सूक्ष्मति सूक्ष्म विचार पूर्ण रूप से जैन शैली के अनुरूप हैं। भाषानुवाद में मेरी मतिमंदता अथवा कथंचित् प्रमादवश कहीं कोई स्खलनता रही है तो मिच्छामि दुक्कडं करोमि'।

सुहय एवं सुविज्ञजन विचार सहित अध्ययन करें। कहा भी है कि -

अवश्यं भाविनो दोषाः, छद्मस्थत्वानु भावतः।
समाधितन्वते सन्तः, किंनराश्चात्र वक्रगा ॥
गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, साधयन्ति सज्जनाः ॥

शिवं भवतु-सुखं भवतु-कल्याणं भवतु

आचार्य पद्म चन्द्र सूरि का धर्म लाभ

**परम पूज्य आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय पदम चन्द्र सूरीश्वर जी म० सा०
द्वारा प्रकाशित सरल आध्यात्म हिन्दी साहित्य**

	रु० पै०
१. योग शास्त्र	६०=००
२. संवेग रंगशाला	४०=००
३. जैन रामायण	२०=००
४. महाभारत (पांडव चरित्र)	२०=००
५. उपदेश माला	७०=००
६. वंदितु सूत्र	२५=००
७. समरादित्य महाकथा	३०=००
८. आध्यात्म सार	१२=००
९. युगादिदेशना	५=००
१०. पर्व कथा संग्रह	३=००
११. ज्ञान सार अष्टक	१=५०
१२. प्रशम रति	२=००
१३. देव वंदन माला	७=००
१४. पूजा कैसे करनी चाहिये	२=००
१५. तीर्थ हस्तिनापुर	०=५०
१६. प्राचीन तीर्थ (पुरिम ताल) इलाहाबाद	५=००
१७. ललित भक्ति दर्पण	०=३५
१८. श्री शान्ति नाथ चरित्र	२५=००
१९. श्री नेमिनाथ चरित्र	२०=००
२०. श्री पार्श्वनाथ चरित्र	२५=००
२१. श्री धर्म कथा संग्रह भाग-१	६०=००
२२. श्री धर्म कथा संग्रह भाग-२	६०=००
२३. श्री धर्म कथा संग्रह भाग-३	६०=००
२४. बीस स्थानक तप आराधना विधि	१२=००
२५. त्रैलोक्य प्रकाश	७०=००
२६. पंचाशक प्रकरण	१००=००
२७. लोक प्रकाश भाग-१	१५०=००
२८. लोक प्रकाश भाग-२	१५०=००
२९. लोक प्रकाश भाग-३	१५०=००
३०. लोक प्रकाश भाग-४	१५०=००
३१. लोक प्रकाश भाग-५	१५०=००

नोट - श्री ऋषभ देव चरित्र, पंच वस्तुक तथा श्राद्ध विधि कर्म प्रेस में हैं।

ॐ अर्हम् नमः

श्री आत्मवल्लभ, ललित, पूर्णानंद, प्रकाशचन्द्र सूरिभ्योः नमः
श्रीमद् विनय विजयोपाध्याय विरचित

श्री लोक प्रकाश

क्षेत्रलोक

द्वितीय विभाग

द्वादशः सर्गः

जयत्यभिनवः कोऽपि शंखेश्वरदिनेश्वरः ।
त्रिविष्टपोद्योतहेतुर्नरक्षेत्र स्थितोऽपि यः ॥१॥

बारहवां सर्ग

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव - इस तरह चार लोक में से इस दूसरे क्षेत्रलोक के विषय में कहते हैं - मनुष्य क्षेत्र में रहने पर भी तीन जगत् में प्रकाश करने वाला प्रकाशन कर रहा हुआ होने से मानो कोई अपूर्व सूर्य न हो, इस तरह दिखते श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान् सर्वत्र विजयी होते हैं । (१)

स्वरूपं क्षेत्रलोकस्य यथा श्रुतमथोच्यते ।

गुरु श्री कीर्ति विजय प्रसादाप्तधिया मया ॥२॥

श्रीमान् गुरुवर्य उपाध्याय कीर्तिविजय जी महाराज की कृपा के कारण जिसे बुद्धि ज्ञान मिला है, वह मैं अब क्षेत्रलोक का शास्त्रोक्त स्वरूप कहता हूँ । (२)

नरं वैशाखसंस्थानस्थितपादं कटीतटे ।

न्यस्तहस्तद्वयं सर्वदिक्षु लोकोऽनुगच्छति ॥३॥

दोनों हाथ कटि तट पर रखकर कोई पुरुष वैशाख संस्थान के समान (पैर चौड़े कर के) खड़ा हो इसके समान सर्वथा यह लोक होता है । (३)

चिरमूर्ध्वमतया चिरन्तनतयापि च ।

असौ लोकनरः श्रान्त इव कट्यां न्यथात् करौ ॥४॥

चिरकाल तक ऊर्ध्व दम लेने के कारण तथा वृद्धावस्था के कारण बहुत थक जाने के कारण कोई पुरुष कमर पर दो हाथ रखकर खड़ा हो इस प्रकार का यह लोक होता है । (४)

अथवाधोमुखस्थायि महाशराव पृष्ठागम् ।

एष लोकोऽनुकुरुते शरावसंपुटं लघु ॥५॥

अथवा अधोमुख में रहे एक बड़े शराव के पृष्ठ भाग पर एक छोटा शराव संपुट रखा हो — ऐसा आकार से यह लोक रहता है । (५)

धृतः कृतो न केनापि स्वयं सिद्धो निराश्रयः ।

निरालम्ब शाश्वतश्च विहायसि परं स्थितः ॥६॥

यह लोक सदा शाश्वत है, न किसीने धारण कर रखा है या न किसी ने बनाया है । यह स्वयं सिद्ध है और बिना आश्रय से और बिना आधार के आकाश में अधर रहता है । (६)

उत्पत्ति विलय श्रौष्यगुण षड्द्रव्यपूरितः ।

मौलिस्थ सिद्धमुदितो नृत्यायेवाततक्रमः ॥७॥

यह लोक उत्पत्ति, स्थिति और लय रूप अर्थात् त्रिगुणात्मक है । इसके जो छः द्रव्य कहे हैं इनसे सम्पूर्ण भरा हुआ है तथा अपने मस्तक पर सिद्ध पुरुष विराजमान होने से हर्ष में आकर मानो नृत्य करने के लिए चरण फैलाकर खड़ा हो — इस तरह लगता है । (७)

अस्य सर्वस्य लोकस्य कल्प्या भागाश्चतुर्दश ।

एकैकश्च विभागोऽयमेकैकरज्जु सम्मितः ॥८॥

इस प्रकार स्वरूप वाले अखिल-सम्पूर्ण लोक के चौदह विभाग कल्पे हुए हैं, और इसका प्रत्येक विभाग एक 'रज्जु' प्रमाण है । (८)

सर्वाधस्तन लोकान्तादारभ्योपरिगंतलम् ।

यावत् सप्तम मेदिन्या एका रज्जुरियं भवेत् ॥९॥

सर्वथा नीचे के लोकान्त से सातवें नरक के ऊपर तल पर्यन्त एक रज्जु (राजु) होता है । (९)

प्रत्येकमेवं सप्तानां भुवामुपरिवर्तिषु ।

तलेषु रज्जुरेकैकास्युरेवं सप्तरज्जवः ॥१०॥

इस तरह सातों नरक के एक के बाद एक ऊपर प्रत्येक तल तक गिनते, सब मिलाकर सात 'रज्जु' होते हैं । (१०)

रत्नप्रभोपरि तलादारभ्यादिमताविधे ।

पर्याप्तेषु विमानेषु स्यादेषा रज्जुरष्टमी ॥११॥

रत्नप्रभा नारकी के ऊपर तल से पहले दो देवलोक के विमान आ जाते हैं, वहां तक आठवां 'रज्जु' होता है । (११)

तत आरभ्य नवमी महेन्द्रान्ते प्रकीर्तिता ।

अतः परं तु दशमी लान्तकान्ते समाप्यते ॥५२॥

और वहां से चौथे माहेन्द्र देवलोक का अन्त आए वहां तक नौवां रज्जु है और वहां से छठे लान्तक देवलोक के अन्त तक दसवां रज्जु पूरा होता है । (१२)

भवेदेकादशी पूर्णा सहस्रारान्त सीमनि ।

स्यात् द्वादशयच्युतस्थान्ते क्रमादेवं त्रयोदशी ॥५३॥

भवेत् ग्रैवेयकस्यान्ते लोकान्ते च चतुर्दशी ।

धर्मोर्ध्वं भागादूर्ध्वाधः सप्त सप्तेति रज्जवः ॥५४॥ युगं ॥

वहां से लेकर आठवें सहस्रार देवलोक की सीमा पूर्ण हो जाय वहां तक ग्यारहवां रज्जु है और वहां से बारहवें अच्युत देवलोक की सीमा पूर्ण हो जाय वहां बारहवां रज्जु सम्पूर्ण होता है । इस तरह अनुक्रम से ग्रैवेयक के अन्तिम तक तेरहवां और लोक के अन्त में चौदहवां रज्जु पूर्ण होता है । इस तरह धर्मा नारकी के ऊपर के भाग सात और नीचे के भाग सात - इस प्रकार समग्र चौदह रज्जु लोक होते हैं । (१३-१४)

“अयं च आवश्यक निर्युक्ति चूर्णिं संग्रहण्याद्यभिप्रायः ॥ भगवत्यादौ च धर्माया अधोऽसंख्ययोजनैः लोकमध्यमुक्तम् । तदनुसारेण तत्र सप्त रज्जवः समाप्यन्ते । परं तदिह स्वल्पत्वान्न विवक्षितमिति संभव्यते ॥ योगशास्त्रं वृत्तौ तु तत्र धरणीतलात् समभागात् सौधर्मेशानौ यावत् सप्त रज्जुः सनत्कुमार माहेन्द्रौ यावत् सार्धं रज्जुद्रव्यं ब्रह्मलोके अर्धं चतुर्धारज्जवः अच्युतं यावत् पंच रज्जवः ग्रैवेयकं यावत् षट् रज्जवः लोकान्तं यावत् सप्त रज्जवः इति उक्तम् ॥ जीवाभिगमं वृत्तौ अपि बहु समरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उक्तुं चंदिमसूरियगहगणणखड्गत्तारा रूवाणं बहुइओ जोयण कोडिओ यावत् दूरं उक्तुं अप्पइत्ता एत्थणं सोहम्मीसाणेत्यादि सूत्र व्याख्याने । “अत्र बह्वीः योजन कोटीः ऊर्ध्वं दूरं उत्प्लुत्य गत्वा । एतच्च सार्धं रज्जु-पलक्षणम् इति उक्तम् ॥”

यह अभिप्राय आवश्यक सूत्र की निर्युक्ति और चूर्णि तथा संग्रहणी आदि ग्रन्थों का है । श्री भगवती सूत्र आदि के अभिप्राय से तो धर्मा नारकी के नीचे असंख्य योजन छोड़ने के बाद लोक का मध्य भाग आता है, इससे उस जगह से सात रज्जु

पूर्ण होते हैं । परन्तु यह बहुत विशेष नहीं होने से यहां नहीं कहा है । तथा योगशास्त्र की वृत्ति के अभिप्राय से तो समभाग पृथ्वीतल से सौधर्म और ईशान देवलोक तक में डेढ़रज्जु होता है, सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक तक में अढाई रज्जु होता है, ब्रह्म देवलोक तक में साढ़े तीन रज्जु होता है, अच्युत देवलोक तक में पांच रज्जु प्रमाण होता है, ग्रैवेयक तक में छः रज्जु और लोकान्तक में सात रज्जु होता है । जीवाभिगम सूत्र में भी सौधर्म-ईशान आदि सूत्र व्याख्यान में बहूसम भू भाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं छोड़कर बहुत करोड़ों (असंख्यात) योजन जाने पर डेढ़ रज्जु प्रमाण होता है । इस तरह कहा है ।

लोकनालि स्तवेऽपि -

सोहम्ममि दिवद्वा अद्वाइञ्जाय रज्जु माहिंदे ।

चत्तारि सहस्सारे पणच्युए सत्त लोंगन्ते ॥१४॥इत्युक्तं॥

लोकनालि स्तव में भी 'सौधर्म देवलोक तक डेढ़ माहेन्द्र तक अढाई, सहस्रार तक चार, अच्युत देवलोक में पांच और लोकान्त में सात रज्जु होता है ।' इस तरह कहा है । (१)

रज्जुवाश्चतुर्थो भागो यस्तत् खंडुकमिति स्मृतम् ।

विष्कम्भायाम पिंडैस्तत् समानं धनहस्तवत् ॥१५॥

रज्जु का चतुर्थ अंश - वह एक खंडुक कहलाता है और वह समचौरस हाथ के समान लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई में एक समान होता है । (१५)

षट् पंचाशत्खंडुकोच्चा सा चतुः खंडुकायता ।

त्रस नाडी भवेदत्र त्रसजीवाश्रयावधिः ॥१६॥

यहां छप्पन खंडुक ऊँची और चार खंडुक चौड़ी, त्रस जीवों के आश्रय वाली त्रस नाडी होती है । (१६)

रेखाः पंचोर्ध्वगाः सप्त पंचाशत्तिर्यगायताः ।

आलिख्य क्वापि पट्टादौ भावनीया तदाकृतिः ॥१७॥

पांच खड़ी और सत्तावन टेढ़ी (चौड़ी) लाईनें किसी पट्टे पर लिखें इसके समान त्रस नाडी की आकृति समझनी चाहिए । (१७)

सा चतुर्दश रज्जुच्चा तथैकरज्जु विस्तृता ।

सर्वं लोकस्याथ मानं वक्ष्ये खंडुक संख्याया ॥१८॥

सोलहवें श्लोक में छप्पन खंडुक कहे हैं इस तरह चौदह रज्जु ऊँचा और पंद्रहवें श्लोक में चार खंडुक कहा है वह एक रज्जु चौड़ा - इस तरह त्रस नाड़ी का मांप होता है । अब सारे 'लोक' का कहाँ-कहाँ कितना-कितना खंडुक मान है, उसे कहते हैं । (१८)

रज्ज्वाः सर्वाथः स्थितायाः खंडुकेषु चतुर्ष्वपि ।

स्युरष्टा विंशतिस्तिर्य कखंडुका नीति तद्विदः ॥१९॥

सबसे नीचे की रज्जु के चार खंडुक, इतने में ये तिरछे अट्ठाईस खंडुक चौड़े होते हैं । (१९)

तत्रोह्यं त्रसनाड़ीस्थं खंडुकानां चतुष्टयम् ।

द्वादश द्वादश ततः परितः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥२०॥

एवं सर्वत्रापि॥

इन अट्ठाईस में से चार त्रस नाड़ी में आते हैं और त्रस नाड़ी के दोनों तरफ बारह बारह खंडुक आते हैं । इस तरह कुल अट्ठाईस होते हैं । (२०)

दूसरे स्थान पर भी सर्वत्र इसी तरह समझना ।

षड विंशतिर्द्वितीयस्या रज्ज्वाः खंड चतुष्टये ।

तृतीयस्याः खंडुकेषु चतुर्षु जिनसंख्यया ॥२१॥

दूसरे रज्जु के चार खंडुक में छब्बीस खंडुक और तीसरे रज्जु के चारों में चौबीस खंडुक के समान इस लोक की चौड़ाई होती है । (२१)

नख संख्यानि तुर्याया रज्ज्वाः तेषु चतुर्ष्वपि ।

पंचम्याः षोडश दश षष्टयाः खंड चतुष्टये ॥२२॥

चौथी रज्जु में चार खंडुक में यह बीस खंडुक चौड़ाई वाला होता है, पांचवे में सोलह और छठे में दस खंडुक चौड़े होते हैं । (२२)

सप्तम्या अपि खंडेषु चतुर्षु तच्च तुष्टयम् ।

अष्टम्याः प्राक् खंडुके द्वे चतुः खंडुक विस्तृते ॥२३॥

अपरे द्वे खंडुके च षड्खंडुकसमातते ।

अष्ट खंडुक विस्तारं नवम्या आद्य खंडुकम् ॥२४॥

दश खंडुक विस्तारं द्वितीयं द्वे ततः परे ।

द्वादशखंडुकव्यासेस्युरित्थं नव रज्ज्वः ॥२५॥ त्रिभिविशेषं ।

और सातवीं रज्जु के चार खंडुक में इसकी चार खंडुक चौड़ाई है, आठवीं रज्जु के पहले दो खंडुक में चार खंडुक और दूसरे दो में छः खंडुक चौड़े होते हैं, नौवीं रज्जु के पहले खंडुक में आठ, दूसरे में दस और तीसरे-चौथे में बारह खंडुक समान इनकी चौड़ाई होती है। इस तरह नौ रज्जु तक की बात हुई। (२३ से २५)

दशम्याः प्राच्यमर्थं च षोडशखंडुकाततम् ।

परमर्थं तथैतस्या नख खंडुक विस्तृतम् ॥२६॥

दसवें रज्जु के पहले दो खंडुक में सोलह और दूसरे दो खंडुक में ये बीस खंडुक चौड़ाई वाले होते हैं। (२६)

एकादश्याः पूर्वमर्थमपि तावत्समाततम् ।

द्वितीयमर्थमस्याश्च षोडशखंडुकाततम् ॥२७॥

ग्यारहवें रज्जु के पहले दो खंडुक में बीस खंडुक चौड़ा और दूसरे में सोलह खंडुक चौड़ा होता है। (२७)

द्वादश्याः प्राक्तनं त्वर्थं प्रोक्तं द्वादशखंडुकम् ।

दशखंडुक विस्तारमन्त्यमर्थमुदीरितम् ॥२८॥

बारहवीं रज्जु के प्रथमार्ध में बारह और द्वितीयार्ध में दस खंडुक समान इनकी चौड़ाई होती है। (२८)

आद्य खंडं त्रयोदश्या निर्दिष्टं तावदाततम् ।

अष्ट खंडुकविस्तीर्णमग्रिमखंडुक त्रयम् ॥२९॥

तेरहवीं रज्जु के पहले खंडुक के अन्दर दस खंडुक के समान लोक की चौड़ाई होती है और शेष तीन में आठ-आठ खंडुक चौड़ाई होती है। (२९)

चतुर्दश्याः प्राक्तनेऽर्धे खंडुकानि षडायतिः ।

चत्वारि खंडुकान्यस्या विस्तृतिः पश्चिमेऽर्धके ॥३०॥

चौदहवीं रज्जु के प्रथमार्ध में छह खंडुक के समान और द्वितीयार्ध में चार खंडुक के समान इझकी चौड़ाई होती है। (३०)

प्रत्येकमेषामकानां स्वस्ववर्ग विधानतः ।

भवेद्भर्गित लोकस्यमितिः खंडुक संख्यया ॥३१॥

ये जो-जो अंक कहे हैं उनका वर्ग करने से वर्गित लोक के खंडुकों की संख्या आती है। (३१)

भवेत्स तद्गुणो वर्ग इति वर्गस्य लक्षणम् ।

यथाष्टाविंशतेः सप्तशती चतुरशीतियुक् ॥३२॥

प्रत्येक संख्या को उसी संख्या द्वारा गुणा करने से जो आता है वह उस संख्या का वर्ग कहलाता है । जैसे कि अट्ठाईस को अट्ठाईस से गुणा करके सात सौ चौरासी आता है, वह अट्ठाईस का वर्ग कहलाता है । (३२)

एवं सर्वत्र स्थापना विलोक्या ॥

यह सारा ग्रन्थ के प्रारंभ में रखी लोक नालिका देखने से समझ में आयेगा।

खंडुकानां शतान्यष्टावधिकानि च षोडश ।

इष्टलोके दृष्टलोकैरुक्तानि सर्व संख्यया ॥३३॥

श्री केवल ज्ञानियों ने दृष्टलोक में खंडुकों की सर्व संख्या आठ सौ सोलह है - इस तरह कहा है । (३३)

प्रोक्तं वर्गितलोके च सर्वाग्रं खंडुकोद्भवम् ।

सहस्राणि पंचदश द्वे शते नवतिश्च षट् ॥३४॥

तथा (वर्ग) करने पर लोक के सर्व खंडुकों की कुल पंद्रह हजार दो सौ छः की संख्या होती है । (३४)

लोकस्य वर्ग करणे ज्ञेयमेतत् प्रयोजनम् ।

प्रमाणं सर्वतोऽनेन लोकस्य भवति ध्रुवम् ॥३५॥

तथा वर्ग करने का प्रयोजन यह है कि इससे इसका अर्थात् लोक का सभी तरफ से निश्चय प्रमाण क्षेत्रफल निकलता है । (३५)

दश हस्त पृथोर्यद्वत्तावद्दीर्घस्य वेश्मनः ।

दशानां वर्ग करणे सर्व क्षेत्रफलं भवेत् ॥३६॥

जैसे कि दस हाथ चौड़ा और उतना ही लम्बा रखने से, दस का वर्ग करने से सौ हाथ क्षेत्रफल निकलता है । (३६)

षट्पंचाशत्खंडुकोच्चयथोक्त पृथुलस्य च ।

लोकस्यास्य त्रयो भेदा मध्याधऊर्ध्व भेदतः ॥३७॥

छप्पन खंडुक ऊँचा और पूर्व कहा उतना चौड़ा - ऐसा यह लोक अधः, मध्य और ऊर्ध्व - इस तरह तीन प्रकार का कहलाता है । (३७)

ऊर्ध्वमध्याधः स्थितत्वाद्वयपदिश्यन्त इत्यमी ।

यद्वोत्कृष्ट मध्यहीन परिणाभात्तथोददिताः ॥३८॥

सबसे नीचे, मध्य में और सर्व से ऊपर रहने से अर्थात् स्थान परत्व कहलाता है अथवा इसके हीन, मध्य और उत्कृष्ट परिणाम होने के कारण इसके इस प्रकार नाम पड़े हैं । (३८)

यदुक्तं भगवती वृत्तौ स्थानांग वृत्तौ च -

अहवा अहपरिणामो खेत्तणु भावेण जेण ओसन्नम् ।

असुहो अहो त्ति भणिओ दव्वाणं तेणहोलोगो ॥३९॥

उद्धं उवरिं जं ठिअं सुहखेत्तं खेत्तओ अ दव्वगुणा ।

उप्पज्जंति सुभावा जेण तओ उद्ध लोगोत्ति ॥४०॥

मज्झणु भावं खेत्तं जं तं तिरियं ति वयण पज्जवओ ।

भणइ तिरिय विसालं अओ य तं तिरिय लोगोत्ति ॥४१॥

भगवती तथा स्थानांग सूत्रों की वृत्ति में कहा है कि - इस लोक का अधः आदि भेद परिणाम को लेकर अथवा क्षेत्र के स्थान को लेकर कहा है । जैसे कि बहुत सारा जहाँ द्रव्यों का अशुभ परिणाम संभव है इसलिए वह अशुभ अधोलोक है अथवा अधः नीचे रहा है इसलिए अधोलोक है । ऊर्ध्व भाग में रहा है इसलिए अथवा वहाँ ऐसे क्षेत्र प्रभाव को लेकर शुभ परिणामी द्रव्यों का होना संभव है इसलिए ऊर्ध्व लोक कहलाता है । तथा मध्यम परिणाम वाले द्रव्यों की संभावना का योग होने के कारण अथवा मध्य में क्षेत्र आने से या तिर्यग होने से तिर्यग लोक कहा जाता है । (३९-४१)

रत्न प्रभाया उपरि क्षुल्लक प्रतर द्वये ।

मेर्वन्तः कन्दोर्ध्वभागे रूचकोऽष्ट प्रदेशकः ॥४२॥

रत्नप्रभा नारकी के ऊपर दो क्षुल्लक प्रतर में मेरु के अन्दर के कंद के ऊर्ध्व भाग में आठ प्रदेश वाले 'रूचक' आए हैं । (४२)

तत्रोपरिस्थे प्रतरे ख प्रदेश चतुष्टयम् ।

विद्यते गोस्तनाकारं तथैवाधस्तनेऽपि तत् ॥४३॥

ख प्रदेशाष्टकं तच्चोपर्यधो भावतः स्थिताम् ।

चतुरैश्चतुरस्रात्म प्रोच्यते रूचकाख्यया ॥४४॥

दो प्रतर में से ऊपर के प्रतर में गाय के स्तनों के समान चार आकाश प्रदेश रहे हैं, वैसे ही नीचे के प्रतर में भी चार प्रदेश रहे हैं । इस तरह नीचे-ऊपर रहे इन आठ आकाश प्रदेशों का ज्ञानी पुरुषों ने 'चौरस रूचक' नाम से परिचय दिया है । (४३-४४)

तस्मान्न वशतान्यूर्ध्वमधो नवशतानि च ।

एतावान् मध्य लोकः स्यादा कृत्या झल्लरीनिभः ॥४५॥

वहां से नौ सौ योजन ऊर्ध्व और नौ सौ योजन नीचे-इतना मध्य लोक होता है और वह झालर के आकार में रहता है । (४५)

योजनानां नव शतान्यतीत्य रूचकादितः ।

आंलोकांतमधोलोकस्तप्राकृतिरूदाहतः ॥४६॥

रूचक से नीचे नौ सौ योजन छोड़ने के बाद लोक के अन्त तक का जो भाग है वह अधोलोक है और वह कुंभ के आकार वाला है । (४६)

गत्वा नवशतान्येव रूचकाद्योजनान्यथ ।

उर्ध्वीकृत मृदंगाभ ऊर्ध्वलोकः प्रकीर्तितः ॥४७॥

रूचक से ऊपर नौ सौ योजन छोड़ने के बाद का जो भाग है वह ऊर्ध्व लोक है और इसका खड़े किए मृदंग के समान आकार होता है । (४७)

सातिरेक सप्त रज्जु मानोऽधोलोक इष्यते ।

ऊर्ध्वलोकः किचिदून सप्त रज्जु मितः स्मृतः ॥४८॥

अधोलोक प्रमाण में सात रज्जु से कुछ अधिक है और ऊर्ध्व लोक सात रज्जु से कुछ कम है । (४८)

धर्माधनोदधि धनतनु वातान् विहायसः ।

असंख्य भागं चातीत्य मध्यं लोकस्य कीर्त्तितम् ॥४९॥

अस्मादूर्ध्वमधश्चैव संपूर्णा सप्त रज्जवः ।

अथ त्रयाणां लोकानां प्रत्येकं मध्यमुच्यते ॥५०॥

धर्मा धनोदधि, धनवात, तनुवात और आकाश के असंख्यातवें भाग छोड़ने के बाद लोक का मध्य भाग कहा है । इससे ऊपर के भाग में सम्पूर्ण सात रज्जु है और नीचे के भाग में भी इतने ही अर्थात् सम्पूर्ण रज्जु प्रमाण है । अब तीन लोक के प्रत्येक के मध्य भाग कहते हैं । (४९-५०)

धर्मायां सर्वतः क्षुल्लमत्रास्ति प्रतर द्वयम् ।

मंडकाकारमेकैकं ख प्रदेशात्मकं च तत् ॥५१॥

रूचकेऽत्र प्रदेशानां यच्चतुष्कद्वयं स्थितम् ।

तत्समश्रेणिकं तच्च विज्ञेयं प्रतर द्वयम् ॥५२॥

धर्मा पृथ्वी के सर्वत्र क्षुल्लक - छोटे दो प्रतर हैं । उसमें प्रत्येक का मंडक समान आकार होता है और वह प्रत्येक एक आकाश प्रदेश प्रमाण वाला है । यहां रूचक के आकाश प्रदेश की जो दो चौकड़ी सम श्रेणि में रही हैं इससे ही ये दो क्षुल्लक प्रतर समझना । (५१-५२)

लोकवृद्धिरूर्ध्वमुखी तयोरुपरि संस्थितात् ।

अधः स्थितात्पुनः तस्माल्लोक वृद्धिरधोमुखी ॥५३॥

इन दोनों प्रतर के ऊपर लोक वृद्धि ऊर्ध्व मुखी है और नीचे इसकी अधोमुखी वृद्धि भी होती है । (५३)

तस्मिंश्च लोकपुरुष कटीतटपटीयसि ।

मध्यभागे सम भूमि ज्ञापको रूचकोऽस्ति यः ॥५४॥

स एव मध्य लोकस्य मध्यमुक्तं महात्मभिः ।

दिग्विदिग् निर्गमश्चास्मान्नाभेरिव शिरोदगमः ॥५५॥ युग्मं ।

लोकात्मक पुरुष के कटी तट रूप मध्यभाग में जो सम भूतल वाला रूचक प्रदेश है उसे ही महात्माओं ने मध्य-तिरछे लोक का मध्य कहा है और वहां से ही दिशा और विदिशा निकली हैं, जैसे नाभि प्रदेश में से नसें निकलती हैं । (५४-५५)

तथाहुः-

अट्ट पएसो रूअगो तिरिअलोगस्स मञ्जयारमि ।

एस पभावो दिशाणं एसेव भवे अणुदिसाणम् ॥५६॥

इस सम्बन्ध में कहा है कि- तिरछे लोक के मध्य भाग में आठ प्रदेश वाले रूचक हैं और यही दिशाओं का और विदिशाओं का उत्पत्ति स्थान है । (५६)

पूर्वा पूर्वदक्षिणा च दक्षिणा दक्षिणापरा ।

पश्चिमा पश्चिमोदीची चोत्तरोत्तर पूर्विका ॥५७॥

ऊर्ध्वा तथाधस्तनी च दशैवं गदिता दिशः ।

दिशः षट् तत्र शुद्धाख्या चतस्रो विदिशोऽपराः ॥५८॥ युग्मं ।

१- पूर्व, २- दक्षिण पूर्व (अग्नि), ३- दक्षिण, ४- दक्षिण पश्चिम (नैऋत्य), ५- पश्चिम, ६- उत्तर पश्चिम (वायव्य), ७- उत्तर, ८- उत्तरपूर्व (ईशान), ९- ऊर्ध्व और १०- अधः, इस तरह दस दिशाये हैं । इनमें छः शुद्ध दिशा कहलाती हैं और शेष चार - अग्नि नैऋत्य, वायव्य और ईशान विदिशा कोण कहलाती हैं । (५७-५८)

विजयद्वारदिक् प्राची प्रादक्षिण्यात्ततः पराः ।

एतासां देवतायोगान्नामान्यूचुः पराण्यपि ॥५९॥

विजय द्वार की दिशा वह पूर्व दिशा और इसके दाहिने ओर से प्रदक्षिणा देते अनुक्रम से शेष अन्य दिशा-विदिशा आती हैं । (५९)

ऐन्द्राग्नेयी तथा याम्या नैऋती किंच वारुणी ।

वायव्येतः परा सौम्येशानी च विमला तमा ॥६०॥

इन दसों दिशाओं का देव सम्बन्ध होने के कारण इनका दूसरा भी नाम है। वह इस तरह:- १- ऐन्द्री, २- आग्नेयी, ३- यामी, ४- नैऋती, ५- वारुणी, ६- वायव्या, ७- सौम्या, ८- इशानी, ९- विमला और १०- तमा । (६०)

रुचकानन्तरं दिक्षु द्वौ द्वौ व्योम्नः प्रदेशकौ ।

विदिक्षु पुनरेकैक एषाद्या पंक्तिराहिता ॥६१॥

रुचक प्रदेश के बाद प्रत्येक दिशा में दो-दो और प्रत्येक विदिशा में एक-एक आकाश प्रदेश है । इसे प्रथम 'पंक्ति' कहते हैं । (६१)

द्वितीयस्यां पुनः पंक्तौ चत्वारो दिक्प्रदेशकाः ।

एवं द्वौ द्वौ विवर्धते प्रति पंक्ति प्रदेशकौ ॥६२॥

दूसरी पंक्ति में चार दिक् प्रदेश हैं और इसी तरह प्रत्येक पंक्ति में दो-दो प्रदेश बढ़ते जाते हैं । (६२)

एवं च - असंख्येय तमा पंक्ति रसंख्येय प्रदेशिका ।

लोकान्तं स्पृशति द्वाभ्यामन्ताभ्यां भृशमायता ॥६३॥

इस तरह होने से असंख्य आकाश प्रदेशों को लेकर पंक्तियां भी असंख्य होती हैं । इसमें से अन्तिम पंक्ति अपने दो छोरों से लोक के अन्त अर्थात् सिरे का स्पर्श करके रहती है । (६३)

ततो लोकस्य वृत्तत्वात्प्रति पंक्ति प्रदेशकौ ।

हीयते तेन लोकान्ते पंक्तिश्चतुः प्रदेशिका ॥६४॥

तथा लोक के वर्तुलाकार -- गोलाकार होने से आगे जाने पर पंक्ति-पंक्ति से दो-दो प्रदेश घटते जाते हैं और इससे लोक के अन्त में रही पंक्ति चार प्रदेशों की होकर रहती है । (६४)

यदि लोक वर्तुलाकार है तो खंडुक की गिनती में प्रत्येक पंक्ति में तद्गुणा क्यों किया ? तद्गुणा खंडुक तो चौरस लोक हो तभी हो सकता है २ तत्त्व बहुश्रुत गम्य ।

एकतो द्विप्रदेशत्वं चतुः प्रदेशतान्यतः ।

ततो हि मुरजाकारो भवेल्लोक दिशामिह ॥६५॥

इसी तरह एक ओर से द्वि प्रदेशता और दूसरी ओर से चतुः प्रदेशता होती है। इन लोक दिशाओं का मुरज जैसा आकार होता है । (६५)

एकतो यस्य संकीर्णं मुखं पृथुलमन्यतः ।

स मृदंग विशेषः स्यान्मुरजेति प्रसिद्धि भाक् ॥६६॥

जिसका मुख एक ओर संकुचित होता है और दूसरी ओर से चौड़ा होता है, इस प्रकार के मृदंग को मुरज कहते हैं । (६६)

यथैकस्मिन् ख प्रतरे भाविता मुरजाकृतिः ।

सर्वेष्वपि प्रतरेषु तथा भाव्या दिगाकृतौ ॥६७॥

एक आकाश प्रतर में जैसे मृदंग की आकृति कही है वैसी ही सर्व प्रतर में दिशाओं की भी समझ लेना । (६७)

शकटोर्ध्वी स्थिताः किंचालोक व्यपेक्षया दिशः ।

तुंडं तु शकटस्यास्य रूचकोपरि भाव्यताम् ॥६८॥

इस लोक की अपेक्षा से दिशा उलटे शकट-गाड़ी के समान रही है, उसमें गाड़ी का मुख रूचक के ऊपर रहने का चिन्तन करना । (६८)

रूचकस्यो परितनं यत्प्रदेश चतुष्टयम् ।

विमलाया दिशस्तच्च प्रोक्तमादितया जिनैः ॥६९॥

रूचक के ऊपर जो चार आकाश प्रदेश हैं वहां से विमला-ऊर्ध्व दिशा का प्रारंभ जिनेश्वर ने कहा है । (६९)

तत्समश्रेणिकैस्तावन्मितैर्जाता प्रदेशकैः ।

ऊर्ध्वलोकालोकगता विमलादिगुदीरिता ॥७०॥

इस तरह से सम श्रेणिक चार प्रदेश द्वारा उत्पन्न होकर विमला दिशा ऊँचे लोक और अलोक में भी व्याप रही है । (७०)

रूचकस्याधस्तनं यत्प्रदेशानां चतुष्टयम् ।

तत्तमाया दिशः प्रोक्तं जिनैरादितया श्रुते ॥७१॥

तथा रूचक के नीचे के जो चार आकाश प्रदेश हैं उन्हें जिनेश्वरों ने 'तमा' दिशा का प्रारंभ कहा है । (७१)

तन्मूला विमला तुल्या किन्त्वधोगामिनी तमा ।

तदिमे रूचकाकारे चतुः प्रदेश विस्तृते ॥७२॥

विमला दिशा का जो मूल है वही इस तमा दिशा का भी मूल है । विमला रूचकगामी है तथा तमा अधोगामिनी है, इतना दोनों में अन्तर है । दोनों का एक समान रूचक समान ही आकार है और दोनों समान चार आकाश प्रदेश के विस्तार वाली हैं । (७२)

द्वयोर्द्वयोर्दिशोरन्तश्छिन्नमुक्तावली समाः ।

एक प्रदेशा विदशो लोकालोकान्तसीमया ॥७३॥

दो-दो दिशाओं के बीच अलग-अलग रही मालामुक्ता के समान एक प्रदेशी विदशाएँ हैं और वह लोक और अलोक की सीमा पर्यंत पहुँचती हैं । (७३)

दिशः स्युर्द्विप्रदेशादद्या द्वयुत्तरा रूचकोद्भवाः ।

विदिशोऽनुत्तरा एकं प्रदेशा रूचकोद्भवाः ॥७४॥

रूचक से निकली हुई दिशाएँ दो प्रदेश से दो-दो प्रदेश बढ़ते विस्तार वाली हैं । विदिशाएँ भी रूचक से उत्पन्न हुई हैं, फिर भी केवल एक प्रदेश के विस्तार वाली ही हैं । (७४)

दिशोऽप्येता असंख्येय प्रदेशा लोक सीमया ।

अलोकापेक्षया सर्वाः स्युरनन्त प्रदेशिकाः ॥७५॥

लोक सीमा की अपेक्षा से दस दिशायें असंख्यात प्रदेश के विस्तार में हैं और अलोक की अपेक्षा से अनन्त प्रदेश के विस्तार में हैं । (७५)

प्रत्येकमासां सर्वासां दिशां सर्वे प्रदेशकाः ।

कृतयुग्मामताः सन्ति सिद्धान्त परिभाषया ॥७६॥

इन सब दिशाओं के प्रत्येक के सर्व प्रदेश सिद्धान्त की परिभाषा में 'कृतयुग्म' नाम होते हैं । (७६)

तदुक्तमाचारांगनिर्युक्तौ । सच्चा य हवन्ति कडजुम्मे त्ति । कृतयुग्मादि स्वरूपं चैवम् ।

श्री आचारांग सूत्र की निर्युक्ति में भी इन सब बातों की साक्षी देते हैं । 'कृतयुग्म' आदि का स्वरूप कहते हैं । वह इस प्रकार :-

चतुष्केण द्वियमाणश्चतुः शेषो हि यो भवेत् ।

अभावात् भागशेषस्य स ख्यातः कृतयुग्मकः ॥७६अ॥

किसी भी संख्या को चार से भाग देने पर चार बढ़ते हैं, वह संख्या भाग शेष के अभाव से कृतयुग्म कहलाती है । दृष्टान्त रूप में सोलह है । (७६अ)

तदुक्तं भगवती १८ शतकस्य चतुर्थदशकं वृत्तौ -

“कृतं सिद्धं पूर्णं ततः परस्य राशि संज्ञान्तरस्या भावेन न तु ओजः-
प्रभृतिवत् अपूर्णं यत् युग्मं सम राशि विशेषः तत् कृतयुग्मम् इति ॥”

इस सम्बन्ध में भगवती सूत्र के अटठारहवें शतक, चौथे उद्देश में कहा है कि - 'कृत अर्थात् सिद्ध अथवा पूर्ण (क्योंकि उसके बाद अन्य राशि संज्ञा का अभाव है) परन्तु ओज आदि के समान अपूर्ण नहीं है, ऐसा जो युग्म अर्थात् तुल्य राशि विशेष है वह 'कृत युग्म' कहलाता है ।'

चतुष्केण द्वियमाणस्त्रिशेषस्यो ज उच्यते ।

द्विशेषो द्वापरयुग्मः कल्पोजश्चैकशेषकः ॥७६ब॥

यदि चार से भाग दिया जाय और तीन शेष रहे तो वह 'त्र्योज' कहलाता है (जैसे कि पंद्रह) तथा यदि चार से भाग देने पर दो शेष रहे तो वह द्वापर युग्म कहलाता है (जैसे कि चौदह) और यदि चार से भाग देने पर एक शेष रहे तो वह कल्पोज कहलाता है (जैसे कि तेरह) । (७६ब)

तथा च भगवती सूत्रे - “गोयम! जेणं रासी चउक्क गेणं अबहारेणं
अवहीरमाणे अवहीरमाणे चउ पञ्जवसिए सेणं कडजुम्मे । एवं ति पञ्जवसिए
तेउए । दु पञ्जवसिए दावरजुम्यं । एग पञ्जवसिए कलि ओगं । इति ॥”

लोकमाश्रित्य साद्यन्ता एताः सर्वा अपि स्फुटम् ।

साद्यन्ता विनिर्दिष्टा अलोकापेक्षया पुनः ॥७७॥

यह सर्व दिशा लोक की अपेक्षा से साद्यन्त है परन्तु अलोक की अपेक्षा से सादि अनन्त कहलाता है ।

दिशामन्येऽपि भेदाः नाम दिक् स्थापनाख्यदिक् ।

द्रव्य क्षेत्र ताप भाव प्रज्ञापकाभिध्या दिशः ॥७८॥

और एक दूसरे प्रकार से दिशाओं के सात भेद भी होते हैं । जैसे कि १- नाम दिशा, २- स्थापना दिशा, ३- क्षेत्र दिशा, ४- द्रव्य दिशा, ५- ताप दिशा, ६- भाव दिशा और ७- प्रज्ञापक दिशा ! (७८)

यद् द्रव्यस्य सचित्तादेः दिगित्येवं कृताभिधा ।

सा नामदिग् विनिर्दिष्टा शिष्टैर्दृष्ट जगत्त्रयैः ॥७९॥

सचित आदि किसी भी द्रव्य को अमुक दिशा का नाम देना, उसे जिनेश्वर भगवन्त ने 'नामदिशा' कहा है । (७९)

पट्टादौ चित्रितस्याथ जम्बू द्वीपादिकस्य यत् ।

दिग्विदिक् स्थापनं सोक्ता स्थापनाशा विशारदैः ॥८०॥

पट्ट आदि में चित्रण कर जम्बू द्वीप आदि की दिशा विदिशा में स्थापना करना उसे 'स्थापना दिशा' ऐसा नाम दिया है । (८०)

स्यात् द्रव्यदिगागमतो नोआगमत इत्यपि ।

दिक् पदार्थ बुधस्तत्रानुपयुक्तः किलादिमा ॥८१॥

त्रिधा च नोआगमतः प्रज्ञप्ता द्रव्यतो दिशः ।

तत्राद्या दिक् पदार्थज्ञशरीरं जीव वर्जितम् ॥८२॥

द्वितीया च दिक् पदार्थ ज्ञास्यन् बालादि रुच्यते ।

ज्ञशरीर भव्य देह व्यतिरिक्ताप्यधोच्यते ॥८३॥

या प्रवृत्ता समाश्रित्य द्रव्यं त्रयोदशाणुकम् ।

तावद्द्वयोर्मांशावगाढं द्रव्यदिक् सा निवेदिता ॥८४॥

इतो न्यूनाणुजाते तु दिग्विदिक् परिकल्पनम् ।

न स्यात् द्रव्ये ततश्चैतज्जघन्यं दिगपेक्षया ॥८५॥

त्रिबाहुकं नव प्रादेशिकं समभिलिख्य च ।

कार्यैकैक गृहवृद्धिः शुवं दिक्षु चतसृषु ॥८६॥

तीसरी जो द्रव्य दिशा है वह आगम से और नो आगम से, इस तरह दो प्रकार से है । दिग् पद के अर्थ का बोध होता है परन्तु यदि इसमें चित्त का उपयोग आचरण न हो तो वह आगम से द्रव्य दिशा जानना और नो आगम से द्रव्य दिशा तीन प्रकार की होती है । दिक् पद के अर्थ का जिसको बोध था उस बोध वाले के शरीर में जीव न हो वह ज़शरीर रूप प्रथम भेद है । दिक् पद अर्थ का बोध जिसको होगा वह जीव बालक हो अथवा ऐसा कोई भी हो वह दूसरा भेद है - भव्य शरीर । अब ज़शरीर को भव्य शरीर से व्यतिरिक्त हो वह तीसरा भेद कहलाता है । तेरह परमाणु वाला और उतने ही आकाश प्रदेश का अवगाहन कर रहे द्रव्य के आश्रित रही दिशा यह तीसरा भेद है । तेरह से कम परमाणु वाले द्रव्य से दिशा विदिशा की कल्पना नहीं हो सकती है, इसलिए दिशा की अपेक्षा से ये तेरह परमाणु जघन्य प्रमाण है । इस तीसरे प्रकार में नौ प्रदेशी तीन हाथ का चित्रण कर चारों दिशाओं में एक एक घर की वृद्धि करना । (८१-८६)

क्षेत्राशास्त्वधुनैवोक्तास्तापाशाः पुनराहिताः ।

सूर्योदयापेक्षयैव पूर्वाद्याः ता यथाक्रमम् ॥८७॥

चौथी क्षेत्र दिशा का वर्णन पूर्व में आ गया है । अब पांचवीं ताप दिशा के विषय में कहते हैं । यह ताप दिशा सूर्य की अपेक्षा से ही कही है और वह अनुक्रम से पूर्व आदि दिशा है । (८७)

तत्र यत्रोदेति भानुः सा पूर्वानुक्रमात् पराः ।

विसंवदन्त एताश्च क्षेत्रदिग्भिः यथायथम् ॥८८॥

तथा हि- रूचकापेक्षया या स्यादक्षिण क्षेत्रलक्षणा ।

तापाशापेक्षया सा स्यादस्माकं ध्रुवमुत्तरा ॥८९॥

जिस दिशा में सूर्य का उदय होता है वह पूर्व दिशा कहलाती है और इसी अनुक्रम से दूसरी दिशाएं जानना । इन दिशाओं के क्षेत्र दिशा के साथ में लक्षण नहीं मिलते हैं, क्योंकि रूचक की अपेक्षा से जो क्षेत्र दिशा दक्षिण कहलाती है वह ताप दिशा की अपेक्षा से हमारी उत्तर दिशा है । (८८-८९)

आष्टादशविधा भावदिशास्तु जगदीश्वरैः ।

प्रोक्ता मनुष्यादि भेदभिन्ना इत्थं भवन्ति ताः ॥९०॥

छठी भाव दिशा है, इसके जिनेश्वर भगवान् ने मनुष्य आदि के भेद के कारण अठारह भेद कहे हैं । (९०)

वह इस प्रकार से :-

कर्माकर्म भूमिजान्तद्वीपं संमूर्छजा नराः ।

तथा द्वि त्रि चतुः पंचेन्द्रियास्तिर्यच आहिताः ॥६१॥

कायाश्चतुर्द्धा पृथिवी जल तेजोऽग्निना इति ।

स्युः वनस्पतयो मूल स्कन्धाग्रपर्व सम्भवाः ॥६२॥

षोडशैता दिशो देवनारकांगि समन्विताः ।

भवन्त्यष्टादश भावदिशस्तीर्थकरोदिताः ॥६३॥ त्रिभि विशेषकम् ॥

१- कर्मभूमि के मनुष्य, २- अकर्मभूमि के मनुष्य, ३- अन्तर्द्वीप के मनुष्य, ४- संमूर्छिम मनुष्य, ५- द्वीन्द्रिय तिर्यच, ६- त्रीन्द्रिय तिर्यच, ७- चतुरिन्द्रिय तिर्यच, ८- पंचेन्द्रिय तिर्यच, ९- पृथ्वीकाय, १०- अपकाय, ११- तेजकाय, १२- वायुकाय, १३- वनस्पतिमूल, १४- उसका स्कंध, १५- इसकी शिखर, १६- इसका पर्व, १७- देव और १८- नारकी । इस तरह से अठारह भाव दिशा तीर्थकर परमात्मा ने कही हैं । (६१-६३)

यत्र ववचिदपि स्थित्वा प्रज्ञापको दिशां वलात् ।

निमित्तं वक्ति धर्मं वा गुरुः प्रज्ञापकाख्य दिक् ॥६४॥

यह सातवें प्रकार की प्रज्ञापन दिशा है । किसी भी स्थान पर बैठकर निमित्तज्ञ निमित्त ज्ञान के बल से निमित्त कहता है अथवा गुरु धर्म का उपदेश करे वह प्रज्ञापक दिशा जानना । (६४)

यस्या दिशः संमुखस्थः प्रज्ञापकः प्ररूपयेत् ।

धर्मं निमित्तादिकं वा सा पूर्वानुक्रमात्पराः ॥६५॥

जिस दिशा के संमुख रहकर उपदेशक धर्म का उपदेश-ज्ञान दे अथवा निमित्त आदि कहे, वह पूर्व दिशा और इससे अनुक्रम से दूसरी दिशा समझनी चाहिए । (६५)

एताश्चाष्टादश विधाः स्युस्तिर्यक् तत्र षोडश ।

त्रिस्त्रस्तिस्त्रः प्रति विदिक् दिक्ष्वेकैकेति कल्पनात् ॥६६॥

शकटोद्धास्थिताः प्रज्ञापकोपान्तेऽति संकटाः ।

विस्तीर्णा बहिरूर्ध्वाधोयुक्ताश्चष्टादश स्मृता ॥६७॥ युग्मं ।

इसके भी अठारह भेद होते हैं । प्रत्येक विदिशा के तीन-तीन कल्पना करने

से बारह भेद होते हैं । जैसे कि- पूर्व इशान, इशान और उत्तर इशान । इस तरह चारों विदिशाओं के लिए समझना चाहिए । प्रत्येक दिशा की एक-एक कल्पना करते चार प्रकार और एक ऊर्ध्व और दूसरी अधोदिशा । इस प्रकार कुल अठारह दिशा हुई । उनमें प्रथम सोलह तिरछी हैं और ये शकट-गाड़ी की उधनी के समान रहते हैं । प्रज्ञापक के नजदीक में अत्यन्त थोड़ा और आगे बहुत विस्तार समझना । (६६-६७)

अथ प्रकृतम् -

पृथिव्योस्तुर्यपंचभ्योमध्ये यद्विद्यदन्तरम् ।
तदर्धेऽधस्तने न्यूनेऽधोलोकमध्यमीरितम् ॥६८॥

अब प्रस्तुत बात पर आते हैं - चौथी और पांचवीं नरक के बीच जो आकाश का अन्तर है उसके लगभग आधे नीचे के भाग में अधोलोक का मध्य कहा है । (६८)

अधस्तात् ब्रह्मलोकस्य रिष्टाख्य प्रस्तरे स्फूटम् ।
मध्यं तत्रोर्ध्वं लोकस्य लोकनाथैर्विलोकितम् ॥६९॥

ब्रह्मलोक के नीचे रिष्ट नामक प्रतर में ऊर्ध्व लोक का मध्य है । इस तरह श्री जिनेश्वर भगवान् ने देखा है । (६९)

यथा - पूर्णकररज्जुपृथुलात् क्षुल्लक प्रतरादितः ।
ऊर्ध्वगतेऽङ्गुलासंख्यभागे तिर्यग्विवर्द्धते ॥१००॥

अंगुलस्यासंख्यं भागः परमत्रेति भाव्यताम् ।
ऊर्ध्वगादंगुलस्यांशादंशस्तिर्यग्गतो लघुः ॥१०१॥

तथा सम्पूर्ण एक रज्जु चौड़ा क्षुल्लक प्रतर से अंगुल का असंख्यातवां भाग ऊर्ध्व-ऊँचा जाये तब तिर्यक् अंगुल का असंख्यातवां भाग बढ़ता है । परन्तु यह तिरछा बढ़ा हुआ अंगुल का असंख्यातवां भाग ऊर्ध्वगत अंगुल के असंख्यातवें भाग से छोटा जानना । (१००-१०१)

एवमधोऽपि ॥

एवं चोर्ध्वं लोक मध्यं पृथुलं पंच रज्जवः ।
हीयतेऽतस्तथैवोर्ध्वं रज्जुरेकावशिष्यते ॥१०२॥

इस तरह नीचे भी समझना । इस प्रकार वृद्धि होते ऊर्ध्वलोक के मध्य में

देखें तब चौड़ाई पांच रज्जु होती है और वहां से ऊँचे जाने पर इसी तरह से घटता जाता है और अन्त में एक रज्जु रह जाता है । (१०२)

किं च- रज्जु मानात् द्वितीयस्मात् क्षुल्लक प्रतराच्चितिः ।

अधोमुखी च तिर्यक् चांगुलासंख्यांश भागिका ॥१०३॥

और रज्जु प्रमाण अन्य क्षुल्लक प्रतर से अधोमुखी तिरछी वृद्धि अंगुल के असंख्यवें भाग के समान होती है । (१०३)

एवं चाधोलोकमूले पृथुत्वं सप्तरज्जवः ।

अथात्र सूचीरज्जवादि मानं किञ्चिन्निगद्यते ॥१०४॥

इस तरह बढ़ते हुए अधोलोक के मूल के पास में चौड़ाई सात रज्जु होती है। अब यहां सूची रज्जु आदि के माप के विषय में कुछ कहते हैं । (१०४)

“इदं च संग्रहणी वृत्त्यनुसारेण ॥ लोकनाडी स्तवे तु प्रदेश वृद्धि हानीदश्येते लोकतिर्यग्बद्धौ ॥”

यह संग्रहणी की टीका अनुसार से कहा जाता है 'लोकनाडी स्तव में तो लोक की तिरछी वृद्धि में ही प्रदेश की वृद्धि-हानि कही है ।'

चतुर्भिः खंडुकैः सूचीरज्जुः श्रेण्या व्यवस्थितैः ।

ताभिश्चतुर्भिः प्रतररज्जुः षोडश खंडुकाः ॥१०५॥

चतसृभिश्च प्रतर रज्जुभिर्जायते किल ।

घनरज्जुश्चतुः षष्टिः खंडुकाः सर्वतः समाः ॥१०६॥

श्रेणिबद्ध रहे चार खंडुक का एक सूची रज्जु होता है और चार सूची रज्जु का सोलह खंडुक प्रमाण एक प्रतर रज्जु होता है । चार प्रतर रज्जु का एक घनरज्जु होता है अर्थात् एक घनरज्जु में चारों तरफ से समान- चौखंडे चौसठ खंडुक होते हैं । (१०५-१०६)

अष्टाविंशं शतमथ ऊर्ध्व षट्सप्ततिर्मता ।

सर्वाश्चतुर्भिरधिके द्वे शते सूचिरज्जवः ॥१०७॥

नीचे अधोलोक में एक सौ अट्ठाईस और ऊपर ऊर्ध्व लोक में छिहतर, इस तरह दोनों मिलकर सूची रज्जु की संख्या दो सौ चार है । (१०७)

दनैर्मिता अधोलोके ऊर्ध्वमेकोनविंशतिः ।

एक पंचाशदाख्याताः सर्वाः प्रतर रज्जवः ॥१०८॥

तथा प्रतर रज्जु अधोलोक में बत्तीस और ऊर्ध्वलोक में उन्नीस - इस तरह दोनों को मिला कर इक्यावन होती है । (१०८)

अधोष्टादूर्ध्वलोके च निर्दिष्टा घनरज्जवः ।

पादोना पंच सर्वांगे स्युः पादोनास्त्रयोदशः ॥१०९॥

इदं दृष्टलोक माननम् ॥

और घनरज्जु अधो लोक में आठ और ऊर्ध्व लोक में पौने पांच मिलाकर कुल पौने तेरह होते हैं । (१०९)

इस तरह दृष्ट लोक मान कहा ।

वर्गितस्य च लोकस्याधोलोके घन रज्जवः ।

सार्धया पंच सप्तत्याधिकमेकं शतं मतम् ॥११०॥

ऊर्ध्व लोके भवेत्सार्धा त्रिषष्टिः सर्वसंख्यया ।

ध्रुवमेकोनया चत्वारिंशताद्यं शतद्वयम् ॥१११॥

अब वर्गित लोकमान के विषय में कहते हैं । इस लोकमान का वर्ग अधोलोक में एक सौ साढ़े पचहत्तर और ऊर्ध्वलोक में साढ़े तरेसठ मिलाकर कुल दो सौ उन्तालीस घनरज्जु कहा है । (११०-१११)

आसां चतुर्गुणत्वे च सर्वाः प्रतर रज्जवः ।

शतानि नव षट् पंचाशता युक्तानि तत्र च ॥११२॥

शतानि सप्तद्वयधिकान्यधोलोके प्रकीर्तिताः ।

ऊर्ध्वलोके द्वे शते च चतुः पंचाशताधिके ॥११३॥

इस तरह चार गुना करने से सर्व मिलाकर प्रतर रज्जु नौ सौ छप्पन होते हैं तथा अधो लोक में सात सौ दो और ऊर्ध्व लोक में दो सौ चौवन की संख्या होती है । (११२-११३)

चतुर्गुणत्वे चैतासां भवन्ति सूचिरज्जवः ।

चतुर्विंशत्युपेतानि त्वष्टात्रिंशच्छतानि वै ॥११४॥

तत्रापि - अधोलोके शतान्यष्टाविंशतिः स्फुटमष्ट च ।

ऊर्ध्व लोके पुनस्तासां सहस्रं षोडशाधिकम् ॥११५॥

इति वर्गित लोकमानम् ॥

और इन नौ सौ छप्पन को चार गुना करने से तीन हजार आठ सौ चौबीस

संख्या आती है इतने सूची रज्जु होते हैं, इनमें से अट्ठाईस सौ आठ अधो लोक में और एक हजार सोलह ऊर्ध्व लोक में हैं । (११४-११५)

इस तरह वर्गित लोकमान समझना । (सूची रज्जु को चार गुणा करते १५२६६, खंडुक दोनों लोक के मिलकर होते हैं । उनमें से ११२३२ अधो लोक के और ४०६४ ऊर्ध्व लोक के होते हैं।)

घनीकृतो भवेल्लोकः सप्तरज्जुमितोऽभितः ।

विष्कम्भायाम् बाहल्यैः सद बुद्धयैव विधीयते ॥११६॥

अब घन लोकमान के विषय में कहते हैं। विष्कम्भ, आयाम और बाहल्य अर्थात् लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई - इस तरह सर्वतः इस लोक का सात रज्जु प्रमाण है । यह घन बुद्धिमानों को नीचे कहे अनुसार समझना चाहिए । (११६)

एक रज्जु विस्तृतायास्त्रसनाडयास्तु दक्षिणाम् ।

अधो लोक वर्ति खंडमूनरज्जु त्रयाततम् ॥११७॥

सर्वाधस्तात् हीयमान विस्तारत्वादुपर्यथ ।

रज्ज्वसंख्येय भागोरू सप्तरज्जुच्छ्रयं च तत् ॥११८॥

गृहीत्वोत्तर दिग्भागे त्रसनाडयाः प्रकल्प्यते ।

विरचय्याधस्तनांशमुपर्युपरिगं त्वद्यः ॥११९॥

ततोऽधस्तन लोकार्ध किंचिदून चतुष्टयम् ।

रज्जु नामा ततं सातिरेकं सप्तकमुच्छ्रितम् ॥१२०॥

क्वचित्किंचिदूनसप्तरज्जु बाहल्यमप्यद्यः ।

अपरत्रत्वनिधतं बाहल्यमिदमास्थितम् ॥१२१॥

एक रज्जु चौड़ी त्रस नाड़ी के दक्षिण में अधो लोक में अन्दर रहा खण्ड लगभग तीन रज्जु चौड़ा होता है, क्योंकि नीचे से ऊपर जाते चौड़ाई दोनों तरफ बढ़ती गई है । उसकी ऊँचाई सात रज्जु और ऊपर रज्जु का असंख्यातवां भाग है । इस खंड को लेकर त्रस नाड़ी के उत्तर दिग् भाग में जोड़ देना । इसमें नीचे के भाग के ऊपर और ऊपर के भाग के नीचे कल्पना करना । इस तरह करने से लोक के नीचे आधे भाग का विस्तार लगभग चार रज्जु और ऊँचाई सात रज्जु से कुछ ही अधिक होती है । यद्यपि नीचे का विस्तार कहीं लगभग सात रज्जु के समान भी है परन्तु अन्यत्र तो वह अनियमित है । (११७-१२१)

किं च—ऊर्ध्वलोके त्रसनाडया दक्षिण भागवर्तिनी ।
 द्वे खंडे ये कटीन्यस्तहस्त कूर्पर संस्थिते ॥१२२॥
 ब्रह्मलोक मध्यदेशादधस्तनं तथोर्ध्वगम् ।
 ते प्रत्येकं ब्रह्मलोके मध्ये द्विरञ्जुविस्तृते ॥१२३॥
 किं त्रिदूनार्धाधरञ्जु त्रयोच्छ्रुते च ते उभे ।
 त्रसनाडया वामपाश्वे वैपरीत्येन कल्पयेत् ॥१२४॥
 ततश्च रज्ज्वाततया त्रसनाडया समन्वितम् ।
 यादक्षमूर्ध्वं लोकार्धं जातं तदभिधीयते ॥१२५॥
 अंगुल सहस्रांशाभ्यां द्वाभ्यां रञ्जुत्रयं युतम् ।
 विष्कम्भतः किंचदूना रज्जवः सप्त चोच्छ्रयात् ॥१२६॥
 बाहल्यतो ब्रह्मलोक मध्ये तत् पंच रञ्जुकम् ।
 अन्य स्थले त्वनियत बाहल्यमिदमास्थितम् ॥१२७॥

और ऊर्ध्व लोक के विषय में त्रस नाड़ी के दक्षिण भाग में कटि न्यस्त हस्त की कोहनी पर दो खंड होते हैं । एक ब्रह्मलोक के मध्य प्रदेश से ऊपर और दूसरा इससे नीचे । इन दोनों में प्रत्येक ब्रह्मलोक के मध्य में दो रञ्जु चौड़ा है और साढ़े तीन रञ्जु ऊँचा है । इन दोनों के विपरीत रूप में त्रस नाड़ी के बाँये ओर कल्पना करना । अतः रञ्जु प्रमाण त्रस नाड़ी से समन्वित ऊर्ध्व लोकार्ध की चौड़ाई तीन रञ्जु और दो सहस्रांश अंगुल है, ऊँचाई लगभग सात रञ्जु है तथा मोटाई ब्रह्मलोक के मध्य में पांच रञ्जु है और अन्य स्थान पर कम या अधिक अनियमित रूप होता है । (१२२-१२७)

तदेतत्तदुपरितनं गृहीत्वार्धं निवेशयेत् ।

अधस्तनं संवर्तितलोकार्धस्योत्तरांतिके ॥१२८॥

अब इस ऊर्ध्व लोकार्ध को लेकर उलटा करने से नीचे के लोकार्ध के उत्तर भाग के पास में स्थापना करना । (१२८)

एवं संयोजने चोधोलोक खंडोच्छ्रयेऽस्ति यत् ।

अतिरिक्तमुपरितनान्तत्खंडित्वाभिगृह्य च ॥१२९॥

ऊर्ध्वं लोकार्धं बाहल्यं पूर्णं चोर्ध्वायतं न्यसेत् ।

एवमस्य सातिरेका बाहल्यं पंच रज्जवः ॥१३०॥

तथास्त्यधोलोक खंडं देशोन सप्तरज्जुकम् ।
 बाहल्ये नोपरितनं त्वधिक पंच रज्जुकम् ॥१३१॥
 ततश्चाधस्तने खंडे न्यूनं रज्जुद्वयं किल ।
 अतिरिक्तमतोऽस्यार्धे द्वितीयस्मिन्निवेशयेत् ॥१३२॥
 सर्वस्यास्य चतुरस्रीकृतस्य भवति क्वचित् ।
 रज्ज्व संख्येय भागाद्या बाहल्यं रज्जवो हि षट् ॥१३३॥
 तथापि व्यवहारेण बाहल्यं सप्त रज्जवः ।
 मन्यते व्यवहारो हि वस्तुन्यूनेऽपि पूर्णताम् ॥१३४॥

इस तरह संयोजन करते अधोलोक खंड की ऊँच्चाई सात रज्जु से अतिरिक्त-अधिक है। उसकी ऊपर से यानि वहां से लेकर ऊर्ध्व लोकार्ध की मोटाई की पूर्णता की प्राप्ति के लिए स्थापना करना। इस प्रकार करने से इसकी मोटाई पांच रज्जु से कुछ अधिक होगी। अब अधो लोक खंड की मोटाई लगभग सात रज्जु है और इसकी मोटाई लगभग पांच रज्जु आती है, अतः अधो लोक लगभग दो रज्जु बढ़ जाता है। यह बढ़ा हुआ भाग इसके अन्य अर्ध में डालकर इन सबको चौखंडा करना। इससे इसकी मोटाई छः रज्जु से ऊपर रज्जु का असंख्यवां भाग आयेगा। अर्थात् सात रज्जु से तो कम रहेगा, फिर भी व्यवहार से यह सात रज्जु गिना जायेगा क्योंकि व्यवहार नय से कुछ कम वस्तु को भी पूर्ण रूप में कहा जाता है या माना जाता है। (१३६-१३४)

विम्भाकयामतोऽध्येवं देशोनाः सप्त रज्जवः ।
 व्यवहारेण विज्ञेयाः संपूर्णाः सप्त रज्जवः ॥१३५॥

इसी ही तरह चौड़ाई और लम्बाई भी सात रज्जु से कुछ कम होने पर भी व्यवहार नय से पूरे सात रज्जु गिना जाता है। (१३५)

एवमेष सप्तरज्जुमानो लोको घनीकृतः ।
 यत्र क्वाप्यागमेऽध्नांश श्रेणिरूक्तास्य सा ध्रुवम् ॥१३६॥

अस्मिन् घनीकृते लोके प्रज्ञप्ता घनरज्जवः ।
 त्रिचत्वारिंशताद्यानि शतानि त्रीणि तात्त्विकैः ॥१३७॥

इसके अनुसार इस लोक का घन करने के लिए तीन ओर से समाप्त होना चाहिए। इन तीनों का मान सात-सात रज्जु नहीं हुआ। आगम में कहीं-कहीं पर आकाश प्रदेश की श्रेणि कही है, वह निश्चय ही घनीकृत लोक की सात रज्जु ही

समझना । तत्त्वतः तीन सौ तेतालीस कहलाता है । (१३६-१३७)

तच्चैवम् - आयाम रज्जवः सप्तः सप्तभिर्व्यास रज्जुभिः ।

हता एकोनपंचाशत् भवन्ति घनरज्जवः ॥१३८॥

सप्तभिर्गुणिता एता बाहल्य सप्त रज्जुभिः ।

यथोक्तमानाः पूर्वोक्ता भवन्ति घनरज्जवः ॥१३९॥

वह इस प्रकार से है - इस लोक का घन ७×७ से गुणा करने से उनचास (४९) होता है और उसे सात से गुणा करने से तीन सौ तेतालीस (३४३) घन रज्जु होता है क्योंकि प्रत्येक वस्तु की लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई का गुणाकार घन कहलाता है । (१३८-१३९)

चतुर्गुणत्वे चासां स्यु सर्वाः प्रतररज्जवः ।

अधिकानि द्विसप्तत्या शतान्येव त्रयोदश ॥१४०॥

आसामपि चतुर्णत्वे भवन्ति सूचि रज्जवः ।

चतुः पंचाशच्छतानि ह्यष्टाशीत्यधिकानि च ॥१४१॥

चतुर्भिर्गुणने त्वासां खंडुकान्येकविशन्तिः ।

सहस्राणि नवशती द्विपंचशत्समन्विता ॥१४२॥

इति घनीकृत लोक माननम् ॥

इन तीन सौ तेतालीस घन रज्जु को चार से गुणा करने से तेरह सौ बहत्तर प्रतर रज्जु होता है और इन प्रतर रज्जु को चार से गुणा करने से पांच हजार चार सौ अठ्ठासी संख्या होती है । यह इसकी सूची रज्जु होती है, और इसको भी चार से गुणा करने पर इक्कीस हजार नौ सो इक्यावन संख्या होती है । यह इसके खंडुक होते हैं । (१४०-१४२)

असंख्याभिर्योजनानां कोटा कोटीभिरुन्मितः ।

नायं लोको गणनया यक्तुं केनापि शक्यते ॥१४३॥

ततो दृष्टान्ततः स्पष्टं निर्दिष्टो ज्ञान दृष्टिभिः ।

स चायमुदितः पंचमांगस्यैकादशे शते ॥१४४॥

यह लोक असंख्य कोटा कोटि योजन प्रमाण का होता है । इसकी गणना किसी से भी नहीं हो सकती है । इसलिए ज्ञानियों ने इसके स्पष्ट निर्देश के लिए

एक दृष्टान्त दिया है । वह दृष्टान्त पांचवे अंग के भगवती सूत्र के ग्यारहवें शतक में इस तरह कहा है । (१४३-१४४)

तथाहि- जम्बू द्वीपाभिधे द्वीपे परितो मेरु चूलिकाम् ।

षट् निर्जराः स्थिताः किञ्च चतस्रो दिक्कुमारिकाः ॥१४५॥

बलि पिंडान् समादाय बाह्याभिमुखतः स्थिताः ।

जम्बू द्वीपस्य पर्यन्त देशे दिक्षु चतसृषु ॥१४६॥ युग्मं ।

क्षिपन्ति बलि पिंडास्ताः स्व स्व दिक्षु बहिर्मुखान् ।

तेषामथैककः कश्चित् षणां मध्यात् सुधाभुजाम् ॥१४७॥

पृथ्वी पीठमसंप्राप्तान् सर्वानप्याददीत् तान् ।

जम्बू द्वीपस्य परितो भ्राम्यन् गत्या यथा द्रुतम् ॥१४८॥

तथा गत्याथ ते देवा लोकान्तस्य दिदृक्षया ।

आशासु षट्सु युगपत्प्रस्थिताः पथिका इव ॥१४९॥ विशेषकं ।

जम्बू द्वीप में मेरु पर्वत की चूलिका ऊपर चारों तरफ छः देव खड़े हैं और जम्बू द्वीप के आखिर में जगती के ऊपर चारों दिशाओं में चार दिक् कुमारियां बलि के पिंड को लेकर लवण समुद्र की तरफ चारों दिशाओं के सन्मुख खड़ी हैं। ये कुमारियां पिंडों को अपनी-अपनी दिशा में बाहर की ओर फेंकती हैं। उस समय उन छहों में से कोई भी एक देव जो अपनी शीघ्र गति से जम्बू द्वीप के आस-पास भ्रमण करते उन पिंडों को पृथ्वी पर गिरने से पहले ग्रहण करे, उसी तरह शीघ्रता वाली गति से वे छहों देव लोकांत देखने को इच्छातुर होकर एक ही साथ छः दिशाओं के मार्ग में जैसे चलने लगे । (१४५-१४९)

इतश्च तस्मिन् समये कस्यचिद्द्वयवहारिणः ।

पुत्रो वर्ष सहस्रायुर्जातोऽसौ वर्धते क्रमात् ॥१५०॥

अब उस समय किसी गृहस्थ के यहां एक पुत्र का जन्म हुआ, उस पुत्र का आयुष्य एक हजार वर्ष का था । वह पुत्र अनुक्रम से उम्र में बढ़ने लगा । (१५०)

क्रमादथास्य पितरौ विपन्नावायुषः क्षयात् ।

स्वायुः समापयामास ततएषोऽप्यनुक्रमात् ॥१५१॥

कालेन कियता चास्य अस्थिमग्जाः क्षयं गताः ।

लोकान्तं न च ते देवाः प्रापुः श्रान्ता इवाश्रयम् ॥१५२॥

अस्य वंशः सप्तभोजपि क्रमेणैवं क्षयं गतः ।

कालेन तस्य नामादि समस्तमस्तमीयिवत् ॥१५३॥

इतने में उसके माता-पिता की आयुष्य पूर्ण होने से मृत्यु हो गयी । अनुक्रम से पुत्र का आयुष्य पूर्ण हुआ और वह भी मर गया । उसके बाद कुछ काल में उसके अस्थि-मज्जा भी नष्ट हो गये । इतना हुआ तब तंक भी वे देव लोक के अन्तिम विभाग में नहीं पहुँच सके । उस पुरुष की अनुक्रम से सात पीढ़ी हो गई हों और उनका नाम आदि भी नष्ट हो जाय, तब भी वे देव लोक के अन्त का पार नहीं प्राप्त कर सकते । (१५१-१५३)

अथास्मिन् समये कश्चित् सर्वज्ञं यदि पृच्छति ।

क्षेत्रं तेषां किमगतं गतं वा बहुलं प्रभो ॥१५४॥

तदादिशेज्जिनः तेषां गतं बह्वं गतं मितम् ।

गतादन्यदसंख्याशं संख्यघ्नमगताच्च तत् ॥१५५॥

उस समय कोई मनुष्य केवली भगवन्त से प्रश्न करे कि 'हे प्रभु ! उस देव ने कितना रास्ता पार किया है? अब उसे कितना रास्ता पार करना है?' तब केवली भगवन्त उत्तर देते हैं कि उसने बहुत मार्ग पार कर लिया है अब थोड़ा रास्ता पार करना है । नहीं पार किया मार्ग पार किए पार मार्ग से असंख्यातवें भाग का है और पार किया मार्ग, नहीं किए मार्ग से संख्यात गुणा है । (१५४-१५५)

संवर्तितं चतुर स्त्री कृतस्य लोकस्य मानमेतदिति ।

संभवति यथावस्थित लोके तु तस्य वैषम्यात् ॥१५६॥

इति भगवती शतक ११ उद्देशे १०॥

लोक का यह मान संवर्तित करने पर और चौखण्ड घन रूप करने पर ही लोक संभव है । यह लोक जिस तरह स्थित है इसमें तो यह असंभव है । (१५६)

इस प्रकार भगवती सूत्र के ग्यारहवें शतक के दसवें उद्देश में कहा है ।

वसन्ति तत्राधोलोके भवनाधिप नारकाः ।

तिर्यक् च व्यन्तर नराब्धि द्वीप ज्योतिषादयः ॥१५७॥

वैमानिकाः सूराः सिद्धा ऊर्ध्व लोकै वसन्ति च ।

इति सामान्यतो लोकस्वरूपमिह वर्णितम् ॥१५८॥

इसके अन्दर अधो लोक में भवनपति देव और नारकी जीव रहते हैं, तिर्यक्

लोक में व्यन्तर मनुष्य, समुद्र, द्वीप और ज्योतिष्क देव आदि रहते हैं तथा ऊर्ध्व लोक में वैमानिक देव और सिद्ध पद प्राप्त करने वाले निवास करते हैं । इस तरह सामान्य रूप में लोक का स्वरूप कहा है । (१५७-१५८)

अथ त्रयाणां लोकानां प्रत्येकं तन्निरूप्यते ।

तत्रादौ कथ्यते किञ्चिदधोलोको विशेषतः ॥१५९॥

अब तीनों लोकों का अलग-अलग स्वरूप कहते हैं । इसमें प्रथम अधोलोक का कुछ विशेष स्वरूप कहता हूँ । (१५९)

पृथिव्यस्तत्र निर्दिष्टा सप्त सप्तभयापहैः ।

गोत्रतो नामतश्चैवं गोत्रभित्प्रणतकमैः ॥१६०॥

अधोलोक में सात पृथ्वी कही हैं और इसके सात प्रकार के भय का नाश करने वाले तथा सुरेन्द्र वंदित चरण कमल वाले श्री जिनेश्वर भगवन्त ने गोत्र और नाम दो बात कही हैं । (१६०)

आद्या रत्नप्रभा पृथ्वी द्वितीया शर्करा प्रभा ।

ततः परा च पृथिवी तृतीया बालुका प्रभा ॥१६१॥

पंकज प्रभा चतुर्थी स्यात् धूमप्रभा च पंचमी ।

षष्ठी तमः प्रभा सप्तमीस्थात्तमस्तमः प्रभा ॥१६२॥

अन्वर्थं जानि सप्तानां गोत्राण्याहुरमूनि वै ।

रत्नादीनां प्रभा योगात्प्रथितानि तथा तथा ॥१६३॥

प्रथम रत्नप्रभा, दूसरी शर्करा प्रभा, तीसरी बालुका प्रभा, चौथी पंक प्रभा, पांचवीं धूमप्रभा, छठी तमः प्रभा और सातवीं तमः तम प्रभाः - इस तरह सात पृथ्वी के सार्थक गोत्र अनुसार नाम कहे हैं क्योंकि रत्न, शर्करा, बालुका, धूम और तम आदि की प्रभा के योग से उस उस प्रकार से प्रसिद्ध है । (१६१-१६३)

धर्मा वंशा तथा शैलांजनारिष्टा मघा तथा ।

माघवतीति नामानि निरन्वर्थान्यमूनि यत् ॥१६४॥

तथा धर्मा, वंशा, शैला, अंजना, रिष्टा, मघा और माघावती - इनके ऐसे नाम नर्थ बिना हैं । (१६४)

अधो महत्तमं छत्रं तस्योपरि ततो लघु ।

छत्राणा मिति सप्तानां स्थापितानां समा इमाः ॥१६५॥

नीचे एक बड़ा छत्र है, इसके ऊपर इससे छोटा, इससे ऊपर और छोटा - इस तरह करते सात छत्र एक दूसरे पर रहते हैं - इसी प्रकार से सात नरक भूमि रहती हैं। (१६५)

स्यातामायाम विष्कम्भौ सप्तम्याः सप्त रज्जवः ।

षष्ट्या षट् पंच पंचम्यास्ताश्चतस्तस्त्रौजना भुवः ॥१६६॥

रज्जुत्रयं तृतीयाया द्वितीयायास्तु तद् द्वयम् ।

स्यातामायामविष्कम्भौ रज्जुरेकादिमक्षितेः ॥१६७॥ युग्मं ।

सातवीं नरक भूमि की लम्बाई-चौड़ाई सात रज्जु प्रमाण है, छठी नरक की छः रज्जु है, पांचवीं की पांच, चौथी की चार, तीसरी की तीन, दूसरी की दो और पहली की एक रज्जु है। इसी तरह लोक नालिका स्तव में भी कहा है। (१६६-१६७)

रत्नप्रभाया बाहल्यं योजनानां प्रकीर्तितम् ।

एक लक्षं सहस्राणामशीत्या साधिकं किल ॥१६८॥

रत्नप्रभा की मोटाई, जो कि उसकी लम्बाई भी गिनी जाती है - वह एक लाख अस्सी हजार योजन से कुछ अधिक होती है। (१६८)

तच्चैवम् - सहस्राणि षोडशाद्यं खरकांडं द्वितीयकम् ।

सहस्राः पक्वबहुलं चतुरशीतिरिरितम् ॥१६९॥

तृतीयं जल बहुलं स्यादशीति सहस्रकम् ।

ततोऽशीति सहस्राद्यं लक्षं पिंडोऽग्निमक्षितेः ॥१७०॥

वह इस तरह - इसके तीन कांड होते हैं, पहला खरकांड सोलह हजार योजन का है, दूसरा पंक बहुल कांड चौरासी हजार योजन का है और तीसरा जल बहुल कांड अस्सी हजार योजन का है। अतः समग्र मिलाकर एक लाख अस्सी हजार योजन प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी का पिंड है। (१६९-१७०)

खरकांडे च कांडानि षोडशोक्तानि तात्विकैः ।

प्रत्येकपेषां बाहल्यं योजनानां सहस्रकम् ॥१७१॥

तत्रादिमं रत्नकांडं वज्रकांडं द्वितीयकम् ।

वैडूर्यं लोहिताख्यं च मसारगल्लं संज्ञकम् ॥१७२॥

हंसगर्भं च पुलकं सौगन्धिकाभिर्धं परम् ।

ज्योतीरसमंजनं चांजनं पुलकं संज्ञकम् ॥१७३॥

रजतं जातरूपं च अंकं स्फटिक संज्ञकम् ।

रिष्ट कांडं चेत्यमूनि यथार्थाख्यान्यनुक्रमात् ॥१७४॥

खरकांड में हजार-हजार योजन की मोटाई वाले सोलह कांड हैं, इस तरह तत्ववेत्ताओं ने कहा है। वह इस प्रकार - १- रत्न कांड, २- वज्र कांड, ३- वैदूर्य कांड, ४- लोहित कांड, ५- मसारगल्ल कांड, ६- हंसगर्भ कांड, ७- पुलक कांड, ८- सौगन्धिक कांड, ९- ज्योति रस कांड, १० - अंजन कांड, ११- अंजन पुलक कांड, १२- रजत कांड, १३- सुवर्ण कांड, १४- स्फटिक कांड, १५- अंक कांड और १६- रिष्ट कांड। इस तरह सोलह कांड यथार्थ नाम वाले हैं। (१७१-१७४)

एतेषु तत्तज्जातीय रत्न बाहुल्य योगतः ।

रत्नप्रभेति गोत्रेण पृथ्वीयं परिकीर्त्त्यते ॥१७५॥

सोलह कांड में उस उस जाति के पुष्कल (बहुत) रत्न होने से उसे पृथ्वी का रत्नप्रभा गोत्र नाम पड़ा है। (१७५)

तिर्यग् लोके भवन्त्यस्या योजनानां शता नव ।

ऊर्ध्वगाः शेषापिंडस्तु स्यादधोलोक संस्थितः ॥१७६॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर का नौ सौ योजन प्रमाण भाग तिर्यग् लोक में है और शेष पिंड अधोलोक में रहता है। (१७६)

चतुर्भिश्च किलाधारैर्भूमिरेषा प्रतिष्ठिता ।

घनोदधि घन वाततनुवातमस्त्वथैः ॥१७७॥

यह भूमि घनोदधि, घनवात, तनुवात और आकाश - इन चार पदार्थों के आधार पर रहती है। (१७७)

त्रिभिश्च वलयैरेषा परितः परिवेष्टिता ।

घनोदधि घनवात तनुवातात्मकैः क्रमात् ॥१७८॥

तथा यह भूमि अनुक्रम से घनोदधि, घनवात और तनुवात - इन तीन प्रकार के तीन वलयाकार से लिप्त है। (१७८)

तत्र प्रतिष्ठिता भूमिराधारेण घनोदधेः ।

महाकटाह विन्यस्तस्त्यानाज्य घनपिंडवत् ॥१७९॥

बड़ी कड़ाही में रखा, जमा हुआ सख्त घी का घट- पिंड हो, वह घनोदधि है। इसके आधार पर यह पृथ्वी रही है। (१७६)

योजनानां सहस्राणि विंशतिः परिकीर्तितम् ।

घनोदधेर्मध्यभागे बाहृत्यं क्रमतस्ततः ॥१८०॥

प्रदेशहान्यासौ हीयमानोऽत्यन्ततनू भवन् ।

पृथ्वीं वलयाकारेण स्वयमावृत्य तिष्ठति ॥१८१॥ युग्मं ।

घनोदधि मध्य भाग में बीस हजार योजन मोटा है और उसके बाद अनुक्रम से प्रदेश के घटने से यह घनोदधि पतला होता जाता है और आखिर में अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है, जैसे पृथ्वी वलयाकार रूप से स्वयं को लिप्त कर रही हो। (१८०-१८१)

वलयास्यास्य विष्कम्भः प्रज्ञप्तो योजनानि षट् ।

उच्चत्वं तु वसुमती वाहृत्यस्यानुसारतः ॥१८२॥

आखिर में इस वलय की चौड़ाई छः योजन है और उसकी लम्बाई पृथ्वी की मोटाई के समान (१८००००) योजन की है। (१८२)

असौ घनोदधिरपि घनवाते प्रतिष्ठितः ।

असंख्यानियोजनानि मध्ये तस्यापि पुष्टता ॥१८३॥

प्रदेशहान्या तनुतां भजमानो घनोदधेः ।

आवृत्य वलयं तस्थौ वलयाकृति नात्मना ॥१८४॥

घनोदधि भी घनवायु के ऊपर रहता है। यह घनवायु मध्यभाग में असंख्य योजन की मोटाई में है परन्तु फिर प्रदेश के घटने से सूक्ष्म होते जाते घनोदधि के वलय को वलयाकार रूप में लिप्त कर रहता है। (१८३-१८४)

अस्यापि वलयस्यैवं मानमाष्टरूदीरितम् ।

चतुष्टयी योजनानां सार्धोच्चत्वं तु पूर्ववत् ॥१८५॥

आद्य पुरुष ने इस वलय का प्रमाण अन्तिम में साढ़े चार योजन का कहा है, ऊंचाई तो पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। (१८५)

घनवातोऽपि सततं तनुवाते प्रतिष्ठितः ।

अस्यापि मध्ये बाहृत्यमसंख्यध्नं धननिलात् ॥१८६॥

ततस्तनूभवन्नेष घनवातस्य सर्वतः ।

आवृत्य वलयं तस्थौ वलयाकृतिनात्मना ॥१८७॥

अब तीसरा वल तनुवात का है । तनुवात घनवात के नीचे साथ में ही रहता है । यह तनुवात मध्य में घनवात से असंख्य गुणा मोटाई वाला है, फिर प्रदेश घटते जाने से हीन होता जाता घनवातरूप वलय को वलयाकार से लिप्त कर रहता है । (१८६-१८७)

तनुवातस्य वलये विष्कम्भः परिकीर्तितः ।

एकं योजनमध्यर्द्धमुच्चत्वं पुनरुक्तवत् ॥१८८॥

तनुवातोऽप्यसौतस्थावाधारेण विहायसः ।

तच्च प्रतिष्ठितं स्वस्मिन्नसंख्य योजनोन्मितम् ॥१८९॥

तनुवात के वलय की चौड़ाई आखिर-अन्त में डेढ़ योजन है और ऊँचाई पूर्ववत् है । यह तनुवात आकाश के आधार पर रहता है और आकाश असंख्य योजन प्रमाण का रहता है । (१८८-१८९)

सप्तस्वपिमहिष्वेवं घनोदध्यादयो मताः ।

वलयानां तु विष्कम्भो यथास्थानं प्रवक्ष्यते ॥१९०॥

जिस तरह इस रत्नप्रभा पृथ्वी के चारों ओर घनोदधि आदि तीन वलय रहते हैं उसी तरह अन्य छः पृथ्वी में भी रहते हैं । इन वलयों का प्रमाण आगे उचित स्थान पर कहा जायेगा । (१९०)

भाति भूः स्व समश्रेणि स्थायिभिर्वलयैस्त्रिभिः ।

पूर्णेन्दुवत्परिधिभिः सुधा कुंडमिवोरगैः ॥१९१॥

स्व समान श्रेणि में रहे तीन वलयों के कारण यह रत्नप्रभा पृथ्वी, चारों तरफ परिधि के कारण जिस तरह पूर्ण चन्द्र शोभता है, वैसे शोभती है और लिपटे हुए भुजंगों (सर्पों) के कारण अमृतकुंड के समान शोभ रही है । (१९१)

भवेत्येवमलोकश्च धर्मापर्यन्त भागतः ।

योजनैर्दशभिर्द्वाध्यामतिरिक्तैः समन्ततः ॥१९२॥

इस तरह से 'धर्मा' के पर्यन्त भाग से फिरते तीन प्रकार के वलयों का $६ + ४\frac{१}{२} + १\frac{१}{२}$ इस तरह कुल मिलाकर १२ योजन होता है । इस बारह योजन के बाद अलोक आता है । (१९२)

अथैतस्यां रत्नकांडस्याधस्तनं तथोर्ध्वगम् ।
 विमुच्य शतमेकैकं मध्येऽष्टशत योजने ॥१६३॥
 असंख्येयानि भौमेय नगराण्यासते सदा ।
 बर्हि विभागे वृत्तानि चतुरस्राणि चान्तरे ॥१६४॥
 अधोभागेऽनुकुर्वन्ति चारुपुष्कर कर्णिकाम् ।
 गम्भीरखात परिखाप्राकारालंकृतानि च ॥१६५॥
 शतघ्न्यादि महायंत्र जटिलानि समन्ततः ।
 दुःप्रवेश्यान्ययोध्यानि गुप्तानि श्री भूतानि च ॥१६५॥
 उल्लासिपूर्णं कलश तोरण द्वार वन्ति च ।
 अनारतं रक्षितानि दण्डिभिः किंकरामरैः ॥१६७॥
 परिष्कृतानि कुसुमैः पंचवर्णैः सुगन्धिभिः ।
 काकतुंड तुस्कादिधूप सौरभ्यवन्ति च ॥१६८॥ षड्भि कुलकम् ।

अब हजार योजन के पहले रत्नकांड में ऊपर और नीचे सौ-सौ योजन छोड़कर बीच के आठ सौ योजन में असंख्य भूमि नगर हैं वे बाहर से गोल हैं, अन्दर से चौकोर और नीचे के भाग में कमल की कर्णिका के समान हैं । इनके आस-पास गहरी खाई और सुन्दर किला शोभ रहा है तथा शतघ्नी अर्थात् तोप आदि महायंत्रों से युक्त हैं, दुष्प्रवेश्य हैं, अयोध्य हैं, गुप्त हैं एवं समृद्धि पूर्ण हैं । इन नगरों में चमकते पूर्ण कलश और तोरण वाले दरवाजे लगे हुए हैं और दंडधारी देव किंकर निशदिन इनका रक्षण किया करते हैं । वहां पंचरंगी पुष्पों की सुगन्ध, अगुरु तथा किंदरू आदि धूप की सुवास लगातार फैल रही है । (१६३ से १६८)

जम्बूद्वीपोपमानानि विष्कंभायाममानतः ।
 उत्कृष्टानि विदेहानुकारीणि मध्यमान्यपि ॥१६६॥
 अपि यान्यल्प मानानि निरूपितानि तान्यपि ।
 भरतक्षेत्र सदृशान्येतेषु च वसन्त्यमी ॥२००॥

ये जो नगर होते हैं वे उत्कृष्ट बड़े से बड़े जम्बू द्वीप के समान होते हैं । मध्य नगर छोटे होते हैं । वे महाविदेह के समान हैं और जो छोटे होते हैं वह भी भरत क्षेत्र के समान होते हैं । (१६६-२००)

अष्टधा व्यन्तरा देवा महासमृद्धिशालिनः ।
 पिशाचा भूतयक्षाख्या राक्षसाः किन्नरा अपि ॥२०१॥

किं पुरुषा महोरगा गन्धर्वाश्च तथापरे ।

सर्वेऽप्येते दाक्षिणात्योदीच्य भेदात् स्मृता द्विधा ॥२०२॥ युग्मं ।

इस नगर के अन्दर पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गन्धर्व - ये आठ प्रकार के अत्यन्त समृद्धिवान व्यन्तर देव रहते हैं । इनके १- दक्षिण दिशा वाले और २- उत्तर दिशा वाले - इस तरह दो भेद होते हैं । (२०१-२०२)

सर्वेऽप्येतेऽति सुभगाः सुरूपाः सौम्य दर्शनाः ।

हस्तग्रीवादिषु रत्नमय भूषण भूषिताः ॥२०३॥

गान्धर्व गीतरतयः कौतुकाक्षिप्त चेतसः ।

प्रिय क्रीडा हास्य लास्या अनवस्थित चेतसः ॥२०४॥

ये अति सुभग, स्वरूपवान् देखने में सौम्य होते हैं । हाथ, गले आदि में रत्नमय अलंकारों से विभूषित होते हैं और गान्धर्व गीत गाने में प्रेम वाले होते हैं । इनके कौतुक देखने में बहुत रुचिकर होते हैं और इससे क्रीड़ा, हास्य, नृत्य आदि पर आसक्ति वाले होते हैं । इससे इनका चित्त अनवस्थित - अस्थिर होने से ये घूमते फिरते हैं । (२०३-२०४)

विकुर्वित स्फारवनमाला मुकुट कुंडलाः ।

स्वैरोल्लापाः स्वैररूपधारिणः स्वैरचारिणः ॥२०५॥

ये सुन्दर वनमाला, मुकुट, कुंडल आदि उत्पन्न करके धारण करने वाले, इच्छानुसार आलाप-संलाप करने वाले, यथेष्ट रूप करने वाले और स्वेच्छाचारी होते हैं । (२०५)

नाना वर्ण वस्त्र नाना देशनेपथ्य धारिणः ।

मुदगरासिकुन्त शक्ति चापादि व्यग्रपाणयः ॥२०६॥

तथा उन्हें विविध रंग वाले वस्त्रों को धारण करने का शौक होता है, नये-नये देशों के कपड़े पहनने वाले तथा मुदगर, तलवार, कुन्त, शक्ति और बाण आदि शस्त्रों को धारण करने वाले होते हैं । (२०६)

तत्र यक्षाः पिशाचाश्च गन्धर्वाश्च महोरगाः ।

किञ्चित् कृष्णाः किंपुरुषा राक्षसाश्च सितत्विषः ॥२०७॥

किन्नराः श्याम भासोऽपि किञ्चिन्नीलत्विषो मत्तः ।

भूताः पुनः कालवर्णाः कञ्जलैर्घटिता इव ॥२०८॥

इनमें से जो यक्ष, पिशाच, गंधर्व और महोरग जाति के हैं उनका वर्ण कुछ श्याम होता है, किंपुरुष तथा राक्षस का वर्ण श्वेत होता है। किन्नरों का आभास श्याम होने पर भी नील वर्ण वाला होता है और भूत जाति का तो मानो काजलमय हो - इतना श्याम होता है। (२०७-२०८)

कदम्बः सुलसश्चैव वटः खट्वांगमेव च ।

अशोकश्चम्पको नागः तुम्बरुश्च यथाक्रमम् ॥२०६॥

भवन्ति चिह्नान्यष्टानां पिशाचादि सुधा भुजाम् ।

ध्वजेषु तत्र खट्वांगं बिना सर्वेऽपि पादपाः ॥२१०॥ युग्मं ।

खट्वांगं तूपकरणं तापसानामुदीरितम् ।

प्रायः क्रीडा विनोदार्थं नरलोके चरन्त्यमी ॥२११॥

इन आठ जाति के व्यन्तरो के ध्वजाओं में अनुक्रम से १- कदम्ब, २- सुलस, ३- वट, ४- खट्वांग, ५- अशोक, ६- चंपक, ७- नाग और ८- तुम्बरु चिन्ह होते हैं। खट्वांग एक प्रकार का तापस लोक का उपकरण होता है, शेष सात प्रसिद्ध वृक्ष होते हैं। ये व्यन्तर देव मनुष्य लोक में प्रायः क्रीडा के, विनोद के लिए विचरते रहते हैं। (२०६ से २११)

चैत्यवृक्षास्तथैवैषामष्टानां कृमतो मताः ।

कदम्बाधास्तथा चोक्तं तृतीयांगे गणाधिपैः ॥२१२॥

तथा इन आठ नाम वाले कदम्ब आदि चैत्य वृक्ष भी हैं। इस सम्बन्ध में तीसरे अंग में गणधर भगवन्त कथित वचन है कि। (२१२)

“ए ए सिणं अट्टविहाणं वाणमंतर देवाणं अट्ट चइत्तररत्खा पण्णत्ता।
तं जहां ॥”

अर्थात् - आठ प्रकार के वाण व्यन्तर देवों के आठ चैत्य वृक्ष कहे हैं। वह इस प्रकार कहा है -

कलंबो उ पिसायाणं वडो जख्खाण चेतितं ।

तुलसी भूयाण भवे रक्खसाणं च कंडओ ॥२१३॥

असोओ किन्नराणं च किंपुरिसाण चंपओ ।

गागरूखओ भुअंगाणं गंधव्वाण य तेंदुओ ॥२१४॥

पिशाचों का कदम्ब वृक्ष होता है, यक्ष का वट वृक्ष, भूत जाति का तुलसी,

राक्षसों का कंडक, किन्नरों का अशोक, किं पुरुषों का चंपक, उरग जाति का नाग वृक्ष और गन्धर्वों का तेन्दुक वृक्ष होता है । (२१३-२१४)

“चैत्य वृक्षा मणि पीठिका नामुपरिवर्तिनः सर्वरत्नमया उपरि छत्रध्वजादिभिः अलंकृता सुधर्मादि सभानामग्रतो ये श्रूयन्ते, ते एते इति संभाव्यन्ते ॥ ये तु चिंधाङ्गं कलंबझण्ण, इत्यादि ते चिह्नभृता एतेभ्यः अन्य एव इति । स्थानांग ८ सूत्र वृत्तौः ।”

“सुधर्मा आदि सभा के आगे मणि पीठिका के ऊपर, सर्वरत्नमय और छत्र ध्वजादि से शोभायमान चैत्य वृक्ष होते हैं - ऐसा सुना है । वह संभव है और कदंब आदि चिह्न रूप अन्य वृक्ष कहे हैं वे इससे अलग हैं । इस तरह स्थानांग सूत्र के आठवें सूत्र में और उसकी वृत्ति में भी कहा है ।”

प्रायः शैलकन्दरादौ यच्चरन्ति वनान्तरे ।

ततः पृषोदरादित्वात् एते स्युः वानमन्तराः ॥२१५॥

ये व्यन्तर प्रायः वनान्तर में पर्वत की गुफा आदि में विचरने - भ्रमण करने वाले होने से 'वानमन्तर' कहलाते हैं । संस्कृत व्याकरण में पृषोदरादि नाम से प्रसिद्ध समास के नियम के आधार पर 'वनान्तरे चरन्तीति वानमन्तराः' इस तरह समास होता है । (२१५)

भृत्यवच्चक्रवर्त्याद्यां धनादिकृतस्ततः ।

व्यन्तरा वाभिधीयन्ते नरेभ्यो विगतान्तराः ॥२१६॥

अथवा सेवक के समान चक्रवर्ती आदि की आराधना आदि करने वाला होने से नरेभ्यो विगतान्तराः अर्थात् मनुष्य से बहुत अन्तर वाला नहीं होता है, इस तरह समास करने से भी व्यन्तर कहलाता है । (२१६)

एकैकस्मिन्कायेऽथ द्वौ द्वाविन्द्वावुदाहृतौ ।

दक्षिणोत्तर भेदेन कालाद्यास्ते च षोडश ॥२१७॥

इन आठ जाति के व्यन्तर देवों में, प्रत्येक जाति के दो-दो इन्द्र कहे हैं - १- दक्षिण दिशा का और २- उत्तर दिशा का । इस तरह समग्र सोलह इन्द्र होते हैं । (२१७)

कालश्चैव महाकालः पिशाचचक्रवर्तिनौ ।

सूरूपः प्रतिरूपश्च भृतेन्द्रौ दक्षिणोत्तरौ ॥२१८॥

पूर्णभद्रमाणिभद्रौ यक्षाणामाधिपा बुभौ ।
 भीमश्चैव महाभीमो राक्षसानामधीश्वरौ ॥२१६॥
 किन्नरश्च किंपुरुषः किन्नराणां महीक्षितौ ।
 इन्द्रौ किंपुरुषाणां च सन्महापुरुषौ स्मृतौ ॥२२०॥
 अतिकाय महाकायौ महोरगधराधिपौ ।
 गन्धर्वाधिपती गीतरतिर्गीतयशा इति ॥२२१॥

इनके नाम इस तरह - पिशाच के इन्द्र काल और महाकाल हैं, भूत जाति के इन्द्र सुरूप और प्रतिरूप हैं, यक्षों के इन्द्र पूर्णभद्र और मणिभद्र हैं, राक्षसों के इन्द्र भीम और महाभीम हैं, किन्नरों के इन्द्र किन्नर और किंपुरुष नाम हैं, किंपुरुष के इन्द्र का सत्पुरुष और महापुरुष नाम है । महोरग जाति के इन्द्र के अतिकाय और महाकाय नाम हैं और गन्धर्वों के इन्द्र गीतरति और गीतयशा नाम के हैं । (२१८ से २२१)

सुरेन्द्राः षोडशाप्येते महाबला महाश्रियः ।
 महासौख्या महोत्साहाः स्युरनुत्तरशक्तयः ॥२२२॥

ये सोलह इन्द्र महा बलवान् होते हैं, बहुत समृद्धिशाली, अत्यन्त सुखी, सम्पूर्ण उत्साही और अपूर्व सामर्थ्य वाले होते हैं । (२२२)

कमला चैव कमल प्रभोत्पला सुदर्शना ।
 प्रत्येकमेतन्नाम्यः स्युः प्रियाः पिशाचराजयोः ॥२२३॥
 रूपवती बहुरूपा सुरूपा सुभगापि च ।
 भूताधिराजयोरग्रमहिष्यः कथिता जिनैः ॥२२४॥
 पूर्णा बहु पुत्रिका चोत्तमा तथा च तारका ।
 पूर्णभद्र माणिभद्र देवयोर्दयिता इमाः ॥२२५॥
 वसन्तिका केतुमती रतिसेना रतिप्रिया ।
 गदिता दयिता एताः किन्नराणांमधीशयोः ॥२२६॥

और इन सोलह इन्द्रों में प्रत्येक की चार-चार पट्टरानी (इन्द्राणी) होती हैं । इनमें प्रत्येक पिशाचेन्द्र की कमला, कमलप्रभा, उत्पला और सुदर्शना नाम की चार प्रिया-इन्द्राणी हैं । प्रत्येक भूतेन्द्र की रूपवती, बहुरूपा, सुरूपा और सुभगा नाम वाली चार प्रिया होती हैं । प्रत्येक यक्षेन्द्र की पूर्णा, बहुपुत्रिका, उत्तमा और तारका नाम वाली चार इन्द्राणी होती हैं । प्रत्येक किन्नेन्द्र की वसन्तिका, केतुमती, रतिसेना और रतिप्रिया नाम की चार इन्द्राणी होती हैं । (२२३ से २२६)

रोहिणी च नवमिका ह्रीनाम्नी पुष्पवत्यपि ।
 प्राणप्रिया इमाः प्रोक्ता जिनैः किं पुरुषेन्द्रयोः ॥२२७॥
 भुजगा भुजगवती महाकच्छा स्फुटाभिधा ।
 चतस्रो जीवितेश्वर्यो महोरगाधि राजयोः ॥२२८॥
 सुघोषा विमला चैव सुस्वरा च सरस्वती ।
 चतस्रः प्राणदयिता गन्धर्वाणमधीशयोः ॥२२९॥

तथा प्रत्येक किंपुरुषेन्द्र को रोहिणी, नवमिका, ह्री और पुष्पवती नाम की चार पट्टरानी हैं। प्रत्येक उरगेन्द्र को भुजगा, भुजगवती, महाकच्छा और स्फुटा नाम की चार इन्द्राणी हैं। प्रत्येक गन्धर्वेन्द्र को सुघोषा, विमला, सुस्वरा और सरस्वती नाम की चार पट्टरानी होती हैं। (२२७-२२९)

साम्प्रतीनास्तु - कालादीनां दक्षिणात्येन्द्राणां याः कमलादयः ।

ता नागपुरवास्तव्या द्वात्रिंशत्पूर्वजन्मनि ॥२३०॥

महाकालाद्योत्तरात्येन्द्राणां याः कमलादयः ।
 साकेतपुर वास्तव्यास्ता द्वात्रिंशदपि स्मृताः ॥२३१॥
 एवं चतुःषष्टिरपि महेभ्यवृद्ध कन्यकाः ।
 स्व स्व नाम प्रतिरूप जननी जनकाभिधाः ॥२३२॥
 पुष्प चूलार्थिका शिष्याः श्री पार्श्वार्पित संयमाः ।
 शबलीकृत चारित्रा मासार्धानशनस्पृशः ॥२३३॥
 अति चाराननालोच्या प्रतिक्रम्य मृतास्ततः ।

कालादि व्यन्तरेन्द्राणां बभूवुः प्राणवल्लभाः ॥२३४॥ पंचभि कुलकम् ।

सोलह इन्द्रों में से दक्षिण भाग के जो काल आदि आठ इन्द्र हैं उनकी कमला आदि बत्तीस इन्द्राणी पूर्व जन्म में नागपुर वासी वृद्ध कन्या (बड़ी उम्र होने पर भी कन्या रही थी) थी और उत्तर दिशा के महाकाल आदि इन्द्र की कमला आदि जो बत्तीस इन्द्राणी हैं वे साकेतपुर वासी वृद्ध कन्या थी। इस तरह समग्र चौंसठ बड़े श्रेष्ठियों की उमर लायक कन्या थीं। इनके माता-पिता के नाम भी इनके अपने नाम के अनुसार ही थे। ये सभी पुष्प चूला नाम की आर्या की शिष्या बनी थीं। इन्होंने श्री पार्श्वनाथ भगवान् के पास में दीक्षा स्वीकार की थी। इनका चारित्र अतिचार वाला था। अर्द्ध मास-पखवार (पंद्रह दिन) का अनशन किया। जब उनकी मृत्यु हुई तब वे अतिचार की आलोचना किए बिना और प्रतिक्रमण रह

जाने से यहां काल आदि व्यन्तरेन्द्रों की इन्द्राणियां हुई है । (२३०-२३४)

प्रत्येक मासां साहस्रः परिवारो भवेदथ ।

एकैकेयं च देवीनां सहस्रं रचितुं क्षमाः ॥२३५॥

इन चौंसठ इन्द्राणियों में से प्रत्येक को हजार-हजार देवियों का परिवार होता है और इनमें हजार-हजार देवियां नयी उत्पन्न करने की सामर्थ्य होती है । (२३५)

प्रत्येकमेषाभिन्द्राणां चतुःसहस्रसंभिताः ।

अवरोधे भवत्येवं देव्यो लावण्य बन्धुराः ॥२३६॥

इस गिनती के अनुसार प्रत्येक इन्द्र के अन्तःपुर के अन्दर चार हजार लावण्य - अत्यन्त सुन्दरता वाली देवियां होती हैं । (२३६)

प्रत्येकमेषां सर्वेषां तिस्रो भवन्ति पर्षदः ।

ईषा तथा च त्रुटिता सभा दृढरथाभिधा ॥२३७॥

तथा इन प्रत्येक इन्द्र की ईषा, त्रुटिता और दृढरथ नाम की तीन सभा होती हैं । (२३७)

सहस्राण्यष्ट देवानां तत्राभ्यन्तर पर्षदि ।

मध्यायां दश बाह्यायां द्वादशेति यथा क्रमम् ॥२३८॥

इसमें अन्दर की सभा में आठ हजार देव होते हैं, मध्य की सभा में दस हजार और बाहर की सभा में बारह हजार देव होते हैं । (२३८)

देवीनां शतमेकैकं पर्षत्सु स्यात्तिसृष्वपि ।

देवदेवीनामथात्र स्थितिः क्रमान्निरूप्यते ॥२३९॥

और प्रत्येक सभा में देवियां भी सौ-सौ होती हैं । अब इन तीन सभा के देव-देवियों के आयुष्य की स्थिति क्रमशः कहते हैं । (२३९)

पूर्ण पत्योपमस्यार्थं तद्देशोनं तथाधिकम् ।

पत्योपमस्य तुर्यांशो देवानां क्रमशः स्थितिः ॥२४०॥

साधिकः पत्युतुर्यांश पूर्णः स एव च स्थितिः ।

स एव देशेन न्यूनो देवीनां क्रमतः स्मृता ॥२४१॥

प्रथम ईषा सभा वाले देवों की अर्द्ध पत्योपम आयुष्य होती है । दूसरी सभा वाले देवों की आधे पत्योपम से कुछ कम होती है और तीसरी सभा वाले देवों की आयुष्य एक चतुर्थांश पत्योपम से कुछ अधिक होती है । प्रथम सभा की देवियों

की आयुष्य स्थिति एक चतुर्थांश पल्योपम से सामान्य अधिक होती है । दूसरी सभा की देवियों की इसके बराबर एक चतुर्थांश पल्योपम की और तीसरी सभा की देवियां एक चतुर्थांश पल्योपम से कम आयुष्य वाली होती हैं । (२४०-२४१)

एव च - सामानिका नामेतेषां तथाग्रयोषितामपि।

पर्षदस्तिस्त्र इषा त्रुटिता दढरथाभिधा ॥२४२॥

सोलह इन्द्रों की जैसे तीन-तीन सभा कही हैं वैसे ही इनके सामानिक देव और अग्रमहिषियों की भी इषा, त्रुटियां और दृढ़रथा नाम की तीन-तीन सभाएं होती हैं । (२४२)

चतुर्भिरैवं सर्वेऽमी सामानिक सहस्रकैः ।

प्रेयसीभिश्चत सृभिः स्वपरिच्छदचारुभिः ॥२४३॥

पार्षदैस्त्रिविधैर्देवैः सप्तभिः सैन्यनायकैः ।

गन्धर्वनट हस्त्यश्वरथ पादात्यकासरैः ॥२४४॥

अमीभिः सप्तभिः सैन्यैश्चतुर्भिश्चात्त्व रक्षिणां ।

स्थितैः प्रत्याशं सहस्रैरन्वहं सेवितां ह्यः ॥२४५॥

स्वस्व भौमेय नगर लक्षाणं चक्रवर्तिताम् ।

असंख्येया नामजस्वं प्रत्येकं विभ्रतोऽद्भुताम् ॥२४६॥

व्यन्तराणां व्यन्तरीणां स्व स्व निकाय जन्मनाम् ।

स्व स्व दिग्वर्तिनां स्वैरं साम्राज्यमुपभुञ्जते ॥२४७॥ पंचभिः कुलकम् ॥

इस तरह चार-चार हजार सामानिक देव, हजार-हजार के परिवार वाली चार-चार इन्द्राणी, तीन प्रकार के पर्षदा के देव, सात-सात सेनापति, गंधर्व, नट हस्ती, अश्व, रथ, पैदल तथा महिष रूप सात प्रकार की सैन्य, चारों दिशा में रहे चार-चार हजार आत्म रक्षक, इस प्रकार विशाल परिवार वाले और अपने-अपने लाखों नगरों में अद्भुत चक्रित्व धारण करने वाले होते हैं । ये सभी इन्द्र अपने-अपने निकाय में उत्पन्न हुए और अपनी-अपनी दिशाओं में रहे असंख्यात व्यन्तर व्यन्तरियों का राज्य भोगते हैं । (२४३ से २४७)

दिव्य स्त्री संप्रयुक्तेषु नाटयेषु व्यापृतेन्द्रियाः ।

न जानते गतमपि कालं पल्योपमायुषः ॥२४८॥

तथा देवांगनाओं के द्वारा प्रायोजित नाटक में इतने सारे फंसे रहते हैं कि इनका पल्योपम आयुष्य कहां चला जाता है, इसका भी उन्हें ज्ञान नहीं होता । (२४८)

तथोक्तम् - तर्हि देवा चंतरिया वरतरुणीगीयवाङ्मयवेणम् ।

निच्चं सुहिया पमुङ्गया गयंपि कालं न याणति ॥१॥

अन्य स्थान पर भी कहा है कि - 'मनोहर तरुणियों के गीत-वाद्य के नाद के कारण व्यन्तर देव हमेशा इतने सुख एवं प्रमोद में रहते हैं कि काल कितना चला गया है, वे ऐसा नहीं जानते ॥ '

व्यन्तराणाममी अष्टौ मूल भेदाः प्रकीर्तिताः ।

अष्टावान्तर भेदाः स्युः अणपर्णीमुखाः परे ॥२४६॥

तथापि - अणपन्नी पणपन्नी इसी वाई भूयवाई ए चेव ।

कंदी य महाकंदी कोहंडे चेव पयए अ ॥२५०॥

यहां जो व्यन्तर देवों के आठ भेद कहे हैं वे मूल भेद हैं । इनके दूसरे आठ अणपन्नी आदि अवान्तर भेद भी हैं । वह इस प्रकार से १- अणपन्नी, २- पणपन्नी, ३- ऋषिवादी, ४- भूतवादी, ५- कंदीत, ६- महाकंदीत, ७- कोहंड और ८- पतग हैं । (२४६-२५०)

प्राग्वत् प्रतिनिकायेऽत्र द्वौ द्वाविन्द्रावुदीरितौ ।

क्षेत्रयोः रूचकाद्याभ्योत्तरा हयोरधीश्वरौ ॥२५१॥

पहले के समान यहां भी आठ निकायों में प्रत्येक निकाय के दो-दो इन्द्र होते हैं और ये रूचक से दक्षिण में और उत्तर में आए हुए क्षेत्रों के अलग-अलग अधीश्वर होते हैं । (२५१)

इन्द्रौ सन्निहितः सामानिकश्चाद्यनिकाययोः ।

धाता विधातेत्यधिपौ निकाये च द्वितीयके ॥२५२॥

पहले अर्थात् अणपन्नी निकाय के व्यन्तरों के सन्निहित और सामानिक नामक दो इन्द्र हैं और दूसरे पणपन्नी निकाय के व्यन्तरों के धाता और विधाता नामक दो इन्द्र होते हैं । (२५२)

तार्तीयिकनिकायेन्द्रौ ऋषिश्च ऋषिपालितः ।

चतुर्थस्य निकायस्य तावीश्वर महेश्वरौ ॥२५३॥

तीसरे ऋषिवादी निकाय के व्यन्तरों के ऋषि और ऋषिपालित नामक इन्द्र हैं तथा चौथे भूतवादी के ईश्वर और महेश्वर नामक इन्द्र हैं । (२५३)

सुवत्सश्च विशालश्च निकाये पंचमेऽधिपौ ।

षष्ठे निकाये नेतारौ हास्य हास्यरती इति ॥२५४॥

पंचवें निकाय के सुवत्स और विशाल नामक इन्द्र हैं और छठे निकाय के हास्य और हास्य रति नामक इन्द्र होते हैं । (२५४)

श्रेयोमहाश्रेयांसौ च निकाये सप्तमेऽधिपौ ।

पदगः पदगपतिः निकायस्याष्टमस्य तौ ॥२५५॥

सातवें निकाय के श्रेयांस और महाश्रेयांस इन्द्र हैं तथा आठवें निकाय के पदग और पदगपति नामक इन्द्र कहे हैं । (२५५)

तथाहुः स्थानांगे - "दो अणपनिंदा पन्नत्ता इत्यादि ॥"

'स्थानांग सूत्र में भी अणपन्नी आदि के दो इन्द्रादि कहे हैं ।'

एतेऽपि रत्नकांडस्य शतं शतमूर्पबंधः ।

परित्यज्य वसन्त्यष्टशतयोजनमध्यतः ॥२५६॥

और ये भी रत्नकांड के सौ योजन ऊँचे और सौ योजन नीचे छोड़कर शेष आठ सौ योजन में निवास करते हैं । (२५६)

तथा हुः प्रज्ञापनायाम् - "कहिणं भंते वाणमंतराणं देवाणं भोमेज्जा नगरा पण्णत्ता । कहिणं भंत्ते वाणमंतरा देवा परिवसन्ति ॥ गोयमा से रयणप्प भाए पुढवीए रयणा मयस्स कंडस्स जोअण सहस्स वाहलस्य उवरि एणं जोअणसयं ओगा हेत्ता हेठावि एणं जोअणसयं वज्जेत्ता मज्झे अट्टसु जो अणसए सु एत्थणं वाणमंतराणं तिरियम संखेज्जा भोमेज्जा नगरा वास सय सहस्सा भवन्ति इति मक्खाया । तेणं इत्यादि । तत्थणं बहवे वाणमंतरा देवा परिवसन्ति । तं जहां । पिसाया भूया जक्खा यावत् अणपन्निय पणपन्निय इत्यादि ॥"

इस सम्बन्ध में प्रज्ञापना सूत्र में भी कहा है कि - 'श्री गौतम गणधर ने पूछा - हे भगवन्त ! वाणमंतर देवों के भूमि नगर कहां आये हैं ? और ये वाणमंतर देव कहां रहते हैं ? इसके उत्तर में भगवान् ने कहा- हे गौतम ! रत्नप्रभा पृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नकांड में सौ योजन ऊपर और सौ योजन नीचे, इस तरह दो सौ योजन छोड़कर मध्य के आठ सौ योजन में वाणमंतर देवों का असंख्यातलक्ष

वास नगर हैं और वहीं बहुत वाणमंतर देव रहते हैं । जैसे कि पिशाच, भूत और यक्ष आदि आठ और अणपन्नी-पणपन्नी आदि आठ मिलाकर सोलह होते हैं ।'

संग्रहण्यां तु -

इय पद्मजोअणसए रयणए अट्टुवंतरा अवरे ।

तेसिं इह सोलसिंदा रूअगहो दाहिणुत्तरओ ॥१॥

संग्रहणी में तो इस तरह कहा है कि - रत्नप्रभा पृथ्वी के पहले एक सौ योजन को छोड़कर आठ जाति के व्यन्तर रहते हैं और इनके रूचक से दक्षिण में आठ और उत्तर में आठ मिलकर सोलह इन्द्र हैं।

योगशास्त्र चतुर्थ प्रकाश वृत्तौतु एवम् । 'रत्नप्रभायामेव प्रथमस्य शतस्य अध उपरि च दश-दश योजनानि मुक्त्वा मध्ये अशीति योजनेषु अणपन्निय प्रभृतय इति ।'

योगशास्त्र के चौथे प्रकाश की टीका में तो अलग ही कहा है - 'रत्नप्रभा पृथ्वी में ही पहले सौ योजन में से ऊपर के दस और नीचे के दस- इस तरह बीस योजन छोड़कर शेष मध्य के अस्सी योजन में अणपन्नी आदि देव निवास करते हैं ।'

एषां वक्तव्यता सर्वा विज्ञेया प्राक्तनेन्द्रवत् ।

जाता द्वात्रिंशदित्येवं व्यन्तरामर नायकाः ॥२५७॥

इन व्यन्तरो का स्वरूप भी पूर्वोक्त व्यन्तरो के समान ही समझना । इस कारण से सब मिलकर बत्तीस व्यन्तरेन्द्र होते हैं । (२५७)

भौमेय नगरेष्वेषु व्यन्तराः प्रायशः खलु ।

उत्पद्यन्ते प्राच्यभवानुष्ठिताज्ञानकष्टतः ॥२५८॥

पूर्व जन्म में अज्ञान पूर्वक कष्ट दायक तपस्या करने से प्राणी इस भूमि नगर में व्यन्तर रूप में उत्पन्न होते हैं । (२५८)

मृतापाशविषाहार जलाग्नि क्षुत्तुडादिभिः ।

भृगुपातादिभिश्चस्युः व्यन्तराः शुभभावतः ॥२५९॥

पाश-गले में फांसा, विषपान, अग्नि प्रवेश, ऊपर से गिरकर तथा भूख और प्यास सहन करने से भी जो मृत्यु अंगीकार करता है और उस मनुष्य का शुभ भाव हो तो वह यहां व्यन्तर होता है । (२५९)

स्थितिरुत्कर्षतोऽमीषां पल्यमर्धं च योषिताम् ।

सहस्राणि दशाब्दानां उभयेषां जघन्यतः ॥२६०॥

व्यन्तर देवों की उत्कृष्ट आयु स्थिति एक पल्योपम की होती है और उनकी देवियों की अर्ध पल्योपम होती है और जघन्य आयुष्य इन दोनों की दस हजार वर्ष की होती है । (२६०)

स्वाभाविकं सप्तहस्तमानं उत्कर्षतो वपुः ।

अंगुलासंख्यांशमानं जघन्यं प्रथमक्षणे ॥२६१॥

इनका स्वाभाविक शरीर मान उत्कर्षतः सात हाथ का है और जघन्यतः प्रथम क्षण में एक अंगुल के असंख्यवें अंश जितना होता है । (२६१)

लक्षयोजन मानं चोत्कृष्टमुत्तरवैक्रियम् ।

प्रक्रमेऽङ्गुलसंख्येय भागमानं जघन्यतः ॥२६२॥

इनका उत्तर वैक्रिय शरीर उत्कर्षतः लाख योजन का हो सकता है जबकि जघन्यतः प्रारम्भ में अंगुल के संख्यात भाग जितना होता है । (२६२)

एषां लेश्याश्च तस्रः स्युः पद्मां शुक्लां विना पराः ।

उच्छ्वसन्ति सप्तभिस्ते स्तोकेर्जघन्य जीविनः ॥२६३॥

इनको पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्यासिवाय चार लेश्या होती हैं । इनमें जघन्य आयुष्य वाला होता है । ये सात स्तोक में श्वास लेते हैं और एकान्तर में क्षुधातुर होते हैं । (२६३)

बुभुक्षवश्चैक दिनान्तरेऽथोत्कृष्ट जीविनः ।

समुच्छ्वसन्त्याहरन्ति मुहूर्ताहः पृथक्त्वकैः ॥२६४॥

तथा जिनका उत्कृष्ट आयुष्य होता है वे चार मुहूर्त में श्वासोच्छ्वास लेते हैं और चार दिन में क्षुधातुर होते हैं । (२६४)

आहारे चित्त संकल्पोपस्थिताः सार पुद्गलाः ।

सर्वाङ्गेषु परिणमन्त्येषां कावलिकस्तु न ॥२६५॥

आहार की इच्छा होते ही संकल्प मात्र से ही सार-सार पुद्गल इनके सर्व अंगों में व्याप्त होता है । इनको कवल आहार नहीं होता है । (२६५)

ये तु हिंसा सुरा वीर चंडिका कालिकादयः ।

मद्य मांसाद्याहुतिभिस्तुष्यन्ति तर्पिता इव ॥२६६॥

तेऽपि पूर्वाभवाभ्यासात् पापा मिथ्यात्व मोहिताः ।

मद्य मांसादि वीक्ष्यैव तुष्यन्ति न तु भुञ्जते ॥२६७॥

और जो वीर, चंडिका, कालिका आदि हिंसक देव तृप्त होते हो तो वे मांस-मद्य आदि की आहुति से तुष्टमान होते हैं । वे पापी मिथ्यात्व मोहित देव पूर्व जन्म की आदत होने से इन वस्तुओं को देख कर ही सन्तुष्ट होते हैं, इनका आहार नहीं करते हैं । (२६६-२६७)

संमूर्च्छिमा गर्भजाश्च तिर्यचो गर्भजा नराः ।

उत्पद्यन्ते षड्भिरपि युताः संहननैरिह ॥२६८॥

संमूर्च्छिम तथा गर्भज तिर्यच तथा गर्भज मनुष्य मृत्यु के बाद यहां व्यन्तर जाति में उत्पन्न होते हैं तथा इनकी संघयण छः होती हैं । (२६८)

च्युत्वोत्पाद्यन्त एते नृतिरश्चोर्गर्भ जन्मनोः ।

पर्याप्त बादरक्षाम्भः प्रत्येक भूरूहेषु च ॥२६९॥

ये व्यन्तर यहां से च्यवन कर गर्भज तिर्यच तथा गर्भज मनुष्य में तथा पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय, अपकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय में उत्पन्न होते हैं । (२६९)

एकेन समये नैकादयोऽसंख्यावसानकाः ।

उत्पद्यन्ते च्यवन्तेऽमी उत्कृष्टमेषु चान्तरम् ॥२७०॥

वे एक ही समय में एक से लेकर असंख्यात तक उत्कृष्ट से उत्पन्न होते हैं और च्यवन होते हैं । (२७०)

ज्ञेयं मुहूर्त्तानि चतुर्विंशतिस्तज्जद्यन्यतः ।

एक सामयिकं नूनं च्यवनोत्पत्ति गोचरम् ॥२७१॥

और इनमें च्यवन तथा उत्पत्ति के बीच का उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त्त का, जद्यन्य अन्तर एक समय का है । (२७१)

पश्यन्त्यवधिना पंच विशति योजनान्यमी ।

जद्यन्य जीविनोऽन्ये च संख्येययोजनावधि ॥२७२॥

इनमें से जद्यन्य आयुष्य वाला अवधि ज्ञान से पच्चीस योजन तक होता है और अन्य संख्यात योजन तक हो सकता है । (२७२)

तिर्यग्लोकवासिनोऽपि व्यन्तरा यदिहोदिताः ।

तद्वै रत्नप्रभा पृथ्वी वक्तव्यता प्रसंगतः ॥२७३॥

इस तरह यहां तिरछे लोक में रहने वाले व्यन्तरो का वर्णन किया है तथा रत्नप्रभा पृथ्वी के वर्णन के प्रसंग को लेकर किया गया है । (२७३)

इति व्यन्तराणां सुराणां पुराणाम् पुराणोपदिष्ट व्यवस्थान्यरूपि ।

तृतीयाच्चतुर्थादुपांगाच्च शेषम् विशेषं विदन्तु प्रबुद्धाः समेधाः ॥२७४॥

इस प्रकार से व्यन्तर देवों के नगरों का शास्त्र में वर्णन किया है, उसी तरह से मैंने यहां वर्णन किया है । विशेष वृत्तान्त के जिज्ञासु बुद्धिमान पंडितजन को इसके लिए तीसरे और चौथे उपांग सूत्र को देखना चाहिए । (२७४)

विश्वाश्चर्यद कीर्ति कीर्ति विजय श्री वाचकेन्द्रान्तिष

ब्राज श्री तनयोऽतनिष्ट विनयः श्री तेजपालात्मजः ।

काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जगत्तत्त्व प्रदीपोपमे

सर्गो निर्गलितार्थ सार्थ सुभगः पूर्ण सुखं द्वादशः ॥२७५॥

इति द्वादश सर्गः

सारे विश्व को आश्चर्य में लीन करने वाली जिसकी कीर्ति है, ऐसे श्री कीर्ति विजय उपाध्याय भगवन्त के अन्तेवासी तथा माता राजश्री और पिता तेजपाल के सुपुत्र विनय विजय जी रचित जगत के तत्वों को दीपक के समान प्रकाश में लाने वाले इस काव्य के अन्दर से निकले हुए अर्थ समूह से सुभग यह बारहवां सर्ग सुखपूर्वक समाप्त हुआ । (२७५)

॥ बारहवां सर्ग समाप्त ॥

तेरहवां सर्ग

योजनानां सहस्रं च मुक्त्वैकैकमुपर्यधः ।

मध्येऽष्ट सप्तितिसहस्राढये लक्षेक्षिताविह ॥१॥

वसन्ति भवनाधीशानिकाया असुरादयः ।

दृशैतेऽपि द्विधा प्राग्वदक्षिणोत्तर भेदतः ॥२॥ युग्मं ।

अब यह तेरहवां सर्ग है । एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण वाली रत्नप्रभा में एक हजार योजन ऊपर और एक हजार नीचे इस तरह कुल दो हजार योजन सिवाय शेष रहे मध्य के एक लाख अठहत्तर हजार योजन में असुर आदि दस प्रकार के भवनपति देव रहते हैं और इनके १- दक्षिण दिशा के और २- उत्तर दिशा के दो भेद होते हैं । (१-२)

तेषु प्रत्येकमिन्द्रौ द्वौ भवतो दक्षिणोत्तरौ ।

भवनेन्द्रा विंशतिः स्थिरित्येवं चमरादयः ॥३॥

दस प्रकार के भवनपतियों में दक्षिण का एक और उत्तर का एक, इस तरह दो इन्द्र होते हैं इस तरह $10 \times 2 = 20$ बीस भवनेन्द्र होते हैं । जैसे कि चमरेन्द्र आदि हैं । (३)

तथोक्तम् - असुरानागसुवर्णा विञ्जु अग्नी य दीव उदहीय ।

दिसि पवणथणि य दस विह भवणवइ तेसु दुदुइंदा ॥४॥

कहा है कि - १- असुर २- नाग कुमार ३- सुवर्ण कुमार ४- विद्युत कुमार ५- अग्नि कुमार ६- द्वीप कुमार ७- समुद्रकुमार ८- दिक् कुमार, ९- वायु कुमार और १०- स्तनित कुमार । ये दस जाति के भवन पति देव हैं और इन प्रत्येक में दो-दो इन्द्र हैं । (४)

अन्ये तु आहुः । नवति योजन सहस्राणामधस्तात् भवनानि ॥ अन्यत्र च उपरितनमधस्तनं च योजन सहस्रं मुक्त्वा सर्वत्रापि यथा संभवभावासा इति ॥ आवासा नाम कायामानसन्निभा महा मंडपा इति लघु संग्रहणी वृत्तौ तत्त्वार्थ भाष्ये ऽपि । तत्र भवनानि रत्नप्रभायां बाहल्यार्धमवगाह मध्ये भवन्ति इति शक्यम् । इति ज्ञेयम् ॥

कई आचार्यों का कहना है कि - 'नब्बे हजार योजन से नीचे भवनपति देव हैं ।' तथा अन्यत्र इस तरह भी कहा है कि ऊपर और नीचे के हजार हजार योजन

सिवाय के शेष भाग में सर्वत्र यथा संभव आवास है । आवास का अर्थ 'लघु संग्रहणी' की टीका में तथा तत्वार्थ भाष्य में काया के अनुसार महा मंडप होता है ऐसा कहा है तथा वहां इस तरह भी कहा है कि - यह 'भवन' है, वह रत्नप्रभा पृथ्वी में इसकी आधी मोटाई अवगाही के मध्य में रहा है ।' ऐसा जानना चाहिए ।

चतुस्त्रिंशत्क्रमास्त्रिंशल्लक्षाः स्युर्दक्षिणोत्तराः ।

भवना असुराणां ते चतुःषष्टिश्च मीलिताः ॥५॥

असुरों के भवन चौसठ लाख है उसमें चौतीस लाख दक्षिण दिशा और तीस लाख उत्तर दिशा में होते हैं । (५)

लक्षाश्चतुश्चत्वारिंशच्चत्वारिंशद्द्वयोर्दिशोः ।

नागालयानां चतुर शीतिर्लक्षाश्च मीलिताः ॥६॥

नाग कुमार के चौरासी लाख भवन होते हैं । दक्षिण में चौवालीस लाख और उत्तर में चालीस लाख होते हैं । (६)

अष्टात्रिंशच्चतुस्त्रिंशल्लक्षाः क्रमात् द्वयोर्दिशोः ।

सर्वांग्रेण सुपर्णानां गृहलक्षा द्विसप्ततिः ॥७॥

सुवर्ण कुमारों के दोनों ओर दिशाओं में अनुक्रम से अड़तीस लाख तथा चौतीस लाख मिलकर कुल बहत्तर लाख भवन होते हैं । (७)

चत्वारिंशच्च षट्त्रिंशद्दक्षिणोत्तरयोः क्रमात् ।

वैद्यतावासलक्षाः स्युः षट्सप्ततिश्च मीलिताः ॥८॥

विद्युत कुमारों के दोनों दिशा में अनुक्रम से चालीस लाख और छत्तीस लाख मिलाकर कुल छहत्तर लाख भवन होते हैं । (८)

एवमग्नि कुमाराणां द्वीपवार्धि दिशां तथा ।

विद्युतकुमारवत् संख्या भवनानां प्रकीर्तिता ॥९॥

अग्नि कुमार, द्वीप कुमार, समुद्र कुमार और दिक् कुमारों के भवनों की संख्या अनुसार कही है । (९)

पंचाशदथ षट्चत्वारिंशद्दिशोर्द्वयोः क्रमात् ।

लक्षा वायु सुरावासाः सर्वे षण्णवतिश्च ते ॥१०॥

वायु कुमार के भवन दक्षिण दिशा में पचास लाख और उत्तर दिशा में छियालीस लाख मिलाकर कुल छियानवे लाख होते हैं । (१०)

चत्वारिंशत्तथा षट्त्रिंशदुक्ता दिग्द्वये क्रमात् ।

स्तंनितानां गृहाः सर्वेलक्षाः षट्सप्ततिः किल ॥११॥

स्तनित कुमार के भवन दक्षिण दिशा में चालीस लाख व उत्तर दिशा में छत्तीस लाख मिलाकर कुल छहत्तर लाख है (११)

चतस्रः कोटयो लक्षाः षट् गृहा दक्षिणाश्रिताः ।

उत्तराहास्तु षट्षष्टिः लक्षास्तित्रस्रश्च कोटयः ॥१२॥

इस तरह कुल गिनती करने से दक्षिण दिशा में कुल चार करोड़ छः लाख भवन है तथा उत्तर दिशा में तीन करोड़ छियासठ लाख है । (१२)

द्वयोर्दिशोश्च सर्वाग्रं भवनानामुदाहृतम् ।

कोटयः सप्त लक्षाणां द्वासप्तत्या समन्विताः ॥१३॥

इस तरह दोनों दिशाओं के समग्र मिलाकर कुल सात करोड़ इकहत्तर लाख भवन होते हैं । (१३)

आकारेण सुषमया प्राकारपरिखादिभिः ।

व्यन्तराणां नगरवत् प्रायो ज्ञेयान्यमून्यपि ॥१४॥

ये भवन आकार में शोभा में तथा कोट और खाई आदि में प्रायः पूर्वोक्त व्यन्तरो के नगरों के समान होते हैं (१४)

गुरुणि तान्यसंख्येयैर्मितानि खलु योजनैः ।

मध्यानि संख्येयैर्जम्बूद्वीपाभानि लघून्यपि ॥१५॥

इसमें भी बहुत बड़े बड़े आवास- भवन होते हैं वह असंख्य योजन प्रमाण होते हैं । मध्यम आवास होता है, वह भी संख्यात् योजन प्रमाण का होता है और छोटा आवास होता है । वह भी जम्बूद्वीप समान होता है ।

तत्रासुरनिकायस्य दक्षिणस्यां दिशि प्रभुः ।

चमरेन्द्रः शरच्चन्द्रचन्द्रिकाविलसद्यशः ॥१६॥

वहां दक्षिण दिशा में असुर कुमारों का स्वामी चमरेन्द्र है । जिसका शरद ऋतु के चन्द्रमा की चान्दनी समान स्वच्छ निर्मल यश चारों दिशा में फैल रहा है ।

(१६)

तथाहि - विद्यते दक्षिणदिशि तिर्यग्मेरोः सुदर्शनात् ।

असंख्य द्वीपाब्धिपरो द्वीपोऽरूपावसभिधः ॥१७॥

वह इस प्रकार है - जम्बू दीप में सुदर्शनीय मेरूपर्वत से तिरछी दक्षिण दिशा में असंख्य द्वीप, समुद्रों के पीछे अरूण वर नामक द्वीप आता है । (१७)

तस्य बाह्य वेदिकान्तात् मध्येऽरूण वराम्बुधेः ।

योजनानां द्विचत्वारिंशत्सहस्राण्यतीत्य वै ॥१८॥

चभरस्यासुरेन्द्रस्य महानुत्पात पर्वतः ।

तिर्गिच्छिकूटनामास्ति प्रशस्त श्रीभरोधुरः ॥१९॥

योजनानां सप्तदश शतान्यथैकविंशतिः ।

उच्छ्रितस्तस्य तुर्यांशो निमग्नो वसुधान्तरे ॥२०॥ विशेषकं ।

इसकी बाह्य वेदिका के अन्त भाग से बियालीस हजार योजन छोड़कर अरूण वर समुद्र के मध्य भाग में 'चभर' नामक असुरेन्द्र का 'तिर्गिच्छि कूट' नाम का मनोहर, लक्ष्मी से शोभित महान उत्पात पर्वत आया है । यह एक हजार सात सौ इक्कीस योजन ऊँचा है और ऊँचाई के चौथे अंश से पृथ्वी में घुसा हुआ है । (१८-२०)

मूले सहस्रं द्वाविंशं योजनानां स विस्तृतः ।

मध्ये शतानि चत्वारि चतुर्विंशानि विस्तृतः ॥२१॥

शतानि सप्त विस्तीर्णस्त्रयोविंशानि चोपरि ।

ऊर्ध्वाधो विस्तृतो मध्ये क्षामो महामुकुन्दवत् ॥२२॥

मुकुन्दः वाद्य विशेष इति ॥

इसका विस्तार मूल आगे एक हजार बाईस योजन है, मध्य में चार सौ चौबीस योजन है और शिखर के आगे सात सौ तेईस योजन है । अर्थात् जैसे एक बड़ा मुकुन्द होता है, वह नीचे ऊपर विस्तार वाला होता है और मध्य में क्षाम अर्थात् पतला होता है । (२१-२२)

'मुकुन्द' नाम का एक वाजिंत्र (वाजा) होता है ।

सर्वरत्नमयस्यास्य वेदिका वनशालिनः ।

शिरस्तले मध्यदेशे स्यात्प्रासादावतसंकः ॥२३॥

सान्द्धे द्वे योजनशते तुंगः सपंचविंशतिः ।

ततः शतं योजनानि रम्योत्सोचमहीतलः ॥२४॥

पद्मवेदिका और वनखंड के कारण शोभायमान इस सर्वरत्नमय पर्वत के

शिखर पर मध्य में एक सुन्दर प्रासाद महल है । उस प्रासाद की ऊँचाई अढाई सौ योजन है और विस्तार में सवा सौ योजन है तथा फर्स आदि अत्यन्त रमणीय है ।
(२३-२४)

अष्ट योजन मानाथ तत्रास्ति मणिपीठका ।

चमरेन्द्रस्यात्र सिंहासनं सहपरिच्छदम् ॥२५॥

इसके अन्दर एक आठ योजन के प्रमाण वाली मणि पीठ है और उस मणि पीठ पर चमरेन्द्र का परिवार युक्त सिंहासन है । (२५)

तिर्यग्लोकं जिगमिषुः जिन जन्मोत्सवादिषु ।

प्रथमं चमरेन्द्रोऽस्मिन्नुपैति स्वाश्रयात् गिरौ ॥२६॥

ततो यथेप्सितं स्थानमुत्पतत्य विलम्बतः ।

तेनायं चमरेन्द्रस्य ख्यात् उत्पात पर्वतः ॥२७॥

श्री जिनेश्वर भगवान के जन्म महोत्सव आदि प्रसंग पर चमरेन्द्र को तिरछे लोक में से आने का हो तब अपने आवास से निकल कर प्रथम इसी ही पर्वत पर आता है और फिर जहां जाजा हो वहां उत्पतन पूर्वक अर्थात् उडकर जाता है । इसी कारण से ही यह चमरेन्द्र का उत्पात पर्वत कहलाता है । (२६-२७)

षट् शतान्यथ कोटीनां पंचपंचाशदेव च ।

कोटयो लक्षाण्यथ पंचत्रिंशल्लक्षार्धमेव च ॥२८॥

योजनानि तिर्यगस्मात्तिगिंछिकूटपर्वतात् ।

अति क्रम्य दक्षिणस्यां मध्येऽरुणवरोदधेः ॥२९॥

यो देशस्तदधोभागे मध्ये रत्नप्रभाक्षिते ।

चत्वारिंशद्योजनानां सहस्राण्यवगाह्य च ॥३०॥

राजधान्यस्ति चमरचंचा चंचन्मणिमयी ।

व्यासायामपरिक्षेपैर्जम्बूद्वीपसधर्मिणी ॥३१॥ कलापकं ।

इस तिगिंछि कूट पर्वत से तिरछे दक्षिण दिशा में छह सौ पचपन करोड़ साठे पैंतीस लाख योजन छोड़ने के बाद अरुण वर समुद्र के मध्य भाग में जो प्रदेश है उसके अधोभाग में रत्नप्रभा पृथ्वी के मध्य में चालीस हजार योजन अवगाही वाली चमरेन्द्र की विशाल मणिरत्नों के कारण प्रकाशमय लम्बाई-चौड़ाई युक्त परिधि के अन्दर जम्बू द्वीप समान चमरचंचा नामक राजधानी है । (२८-३१)

वप्रश्चास्या योजनानामध्यर्थं शतमुन्नतः ।

पंचाशद्विस्तृतो मूले मौलौ द्वादश सार्द्धकाः ॥३२॥

इसका एक सौ पचास योजन ऊँचा किला है । इस किले के नीचे नीचे पचास योजन और ऊपर साढ़े बारह योजन चौड़ाई है । (३२)

आयतैर्योजनस्यार्धं न्यूनार्धयोजनोच्छ्रितैः ।

क्रोशं विस्तीर्णेश्च रम्यो रत्नजैः कपिशिर्षकैः ॥३३॥

इस कोट के मनोहर, मणिमय कांगरे (किल्ला कलाप) हैं । उसकी लम्बाई आधे योजन है तथा ऊँचाई आधे योजन से कुछ कम है और चौड़ाई में एक कोश जितना है । (३३)

एकैकस्यां स बाहायां पंचद्वारशतांचितः ।

सार्धे द्वे योजनशते द्वारं चैकैकमुच्छ्रितम् ॥३४॥

सपादशतविस्तीर्णतोरणाद्युपशोभितम् ।

मध्येऽथ वप्रस्यैतस्य पीठ बन्धो विराजते ॥३५॥ युग्मं ।

और इसके प्रत्येक दिशा में पांच सौ पांच सौ सुन्दर दरवाजे बने हैं प्रत्येक दरवाजे अढ़ाई सौ योजन ऊँचे है, सवा सौ योजन चौड़े है और सब तोरण आदि से अलंकृत है । इस कोट के मध्य भाग में एक पीठ बंध शोभ रही है । (३४-३५)

योजनानां षोडशैष सहस्रान्विस्तृतायतः ।

पद्मवरवेदिकया परीतः काननेन च ॥३६॥

वह सोलह हजार योजन विस्तार वाली है और चारों दिशाओं से सुन्दर पद्मवेदिका युक्त है, उसके चारों ओर बगीचा है । (३६)

तस्य मध्ये रम्य भूमावस्ति प्रासाद श्रेखरः ।

साधे द्वे योजन शते तुंगस्तदर्थविस्तृतः ॥३७॥

इस प्रकार रमणीय भूमि पर एक उत्तम प्रासाद है जो कि अढ़ाई योजन ऊँचा और सवा सौ योजन चौड़ा है । (३७)

चतुर्भिरेष प्रासादैश्चतुर्दिशमलंकृतः ।

शतं सपादमुत्तुंगैः सार्धद्विषष्टि विस्तृतैः ॥३८॥

इस प्रासाद के चारों तरफ सवा सौ योजन ऊँचे और साढ़े बासठ योजन चौड़े अन्य चार प्रसाद स्थित हैं । (३८)

प्रत्येकमेतेऽपि चतुर्दिशं चतुर्भिराश्रिताः ।

सार्धं द्विषष्टिमुत्तुंगैस्तदर्थं विस्तृतैस्तथा ॥३६॥

इन प्रासादों में भी प्रत्येक की चारों दिशाओं में अन्य साढ़े बासठ योजन ऊँचे और सवा इकत्तीस योजन चौड़े चार-चार प्रासाद हैं । (३६)

सपादैकत्रिंशदुच्चैस्तदर्थंविस्तृतैवृत्ताः ।

प्रासादास्तेऽपि प्रत्येकं पुनस्तेऽपि चतुर्दिशम् ॥४०॥

इनके भी प्रत्येक की चार दिशाओं में सवा इकत्तीस योजन ऊँचा और इससे आधा चौड़े चार-चार प्रासाद हैं । (४०)

ससार्धद्विकोशपंचदसयोजनं तुंगकैः ।

तदर्थं विस्तृतैरेवं चतुर्दिशमलंकृताः ॥४१॥ युग्मं ।

इन प्रत्येक के चारों दिशा में पंद्रह योजन अढाई कोश ऊँचे और इससे आधा चौड़े चार-चार प्रासाद हैं (४१)

एवं समूल प्रासादाः प्रासादाः सर्वसंख्यया ।

चमरस्य भवन्त्येकचत्वारिंशंशतत्रयम् ॥४२॥

इस तरह एक मूल प्रासाद और अन्य इसके चारों तरफ सब मिलाकर कुल तीन सौ एकतालीस प्रासाद चमरेन्द्र के होते हैं । (४२)

प्रासादास्ते रत्नमया मरूच्चंचल केतवः ।

मृदुस्पर्शांश्चारुगन्धा दृश्याः सुवर्णं वालुकाः ॥४३॥

वायु से प्रेरित ध्वजाएं उनके ऊपर लहरा रही हैं। ये सब प्रासाद रत्नमय, सुगन्धमयी सुवर्ण की रेती वाले और कोमल स्पर्श वाले होने से वास्तव में देखने योग्य है । (४३)

अथ प्रासादेभ्य एभ्य ऐशान्यां स्युर्यथाक्रमम् ।

सभा सुधर्मा सिद्धायतनं सभोपपातकृत् ॥४४॥

हृदोऽभिषेकालंकार व्यवसाय सभाः क्रमात् ।

सर्वेऽप्यमी सुधर्माद्या षट्त्रिंशद्योजनोच्चिताः ॥४५॥

दीर्घा पंचाशतं पंचविंशतिविस्तृता इह ।

वैमानिक सभादिभ्यो मानतोऽर्धमिता इति ॥४६॥ विशेषकं ।

अब इन प्रासादों से इशान कोने में अनुक्रम से १- सुधर्मा सभा,

२- सिद्धायतन, ३- उपपात सभा, ४- द्रह, ५- अभिषेक सभा, ६- अलंकार सभा और ७- व्यवसाय सभा आई हुई है । ये सभी छत्तीस योजन ऊंची, पचास योजन लम्बी और पच्चीस योजन चौड़ी होती है अतः वैमानिक देवों की सभा से प्रमाण में आधी है । (४४-४६)

इत्यर्थतो भगवती द्वितीय शतकाष्टमोद्देशके ॥ अत्रायं विशेषः ॥
चमरस्सणं सभा सुहम्भा एकावन्न खंभसय सन्निविद्वायं । एवं बलीयस्सवि
इति तुर्यागे ॥

इसका भावार्थ भगवती सूत्र के दूसरे शतक के आठवें उद्देश में कहा है । यहां विशेष इतना है कि चमरेन्द्र की सुधर्मा सभा एकावन स्तंभ पर स्थिर है ऐसा कहा है । बलीन्द्र की भी इसी प्रकार की कही है । इस तरह से चौथे अंग में है ।

अथैतस्यामुपपातसभायां सुकृती जनः ।

देव दूष्यच्छन्न शय्योत्संग उत्पद्यतेक्षणान्त ॥४७॥

जो कोई पुण्यशाली जीव महा चमरेन्द्र रूप में उत्पन्न होता है वह उक्त उपपात सभा में देव दूष्य वस्त्रों से आच्छादित शय्या में क्षण भर में उत्पन्न होता है । (४७)

चमरेन्द्रतयाथासावुत्थाय शयनीयतः ।

गत्वा हृदे कृतस्नानस्ततौऽभिषेकपर्वदि ॥४८॥

कृताभिषेक सोत्साहैरसुरैः समहोत्सवम् ।

अलंकार सभायां च गत्वालंकृत भू धनः ॥४९॥

व्यवसाय सभां गत्वा पुस्तकावसित स्थितिः ।

स्नात्वा नन्दा पुष्करिण्यां भक्त्या कृतजिनार्चनः ॥५०॥

समागत्य सुधर्मायां सभायां सपरिच्छदः ।

दिव्यान्सिंहासनासीनो भोगान् भक्ते यथा रूचि ॥५१॥ पंचभि कुलकम् ।

वहां उत्पन्न होने के बाद शय्या में से उठता है फिर वह चमरेन्द्र 'द्रह' - सरोवर में जाकर स्नान करके अभिषेक सभा में आता है । वहां उत्साही असुरों से अभिषेक किया जाता है उसके बाद महोत्सव पूर्वक अलंकार सभा में जाकर शरीर पर आभूषण धारण करता है, फिर व्यवसाय सभा में जाता है । वहां पुस्तक देख-पढ़कर परम्परागत रिवाज से जानकार बनता है फिर नन्दा बावड़ी में जाकर पवित्र होकर भक्तिपूर्वक जिन पूजा करता है उसके बाद वहां से परिवार सहित

सुधर्मा सभा में जाकर सिंहासन पर आरूढ होकर यथेच्छ रूप में दिव्य भोग को भोगता है । (४८-५१)

कामकेलिलालसस्तु जिनस्याशातना भयात् ।
गत्वा बहिः सुधर्माया रमते रूचितास्यदे ॥५२॥

वहां इसको काम भोग की इच्छा जागृत होती है तब श्री जिनेश्वर भगवन्त के अवशेष-अस्थि की आशातना के भय के कारण सभा के बाहर मनपसन्द स्थान में जाकर वहां विषयोपभोग करता है । (५२)

कदाचिच्चैष चमरचंचावासे मनोरमे ।
सकांतः क्रीडितुं याति क्रीडोद्याने नृपादिवत् ॥५३॥

वह कई बार अपनी देवियों को लेकर अपनी रमणीय चमरचंच नगरी के आवास में क्रीडार्थ जाता है । जिस तरह पृथ्वी पति राजा अपनी रानियों को लेकर क्रीडोद्यान में जाता है । (५३)

सचैवम् - अस्याश्चमरचंचाया नैऋत्यां ककुभिधुवम् ।
षट् कोटिनां शतान् पंचपंचाशत्कोटी संयुतान् ॥५४॥

पंचत्रिंशच्च लक्षाणि पंचाशच्च सहस्रकान् ।
योजनानामतिक्रम्य तस्मिन्नेवारूणोदधौ ॥५५॥

आवासो भाति चमरचंचश्चच्छ्रियां निधिः ।
कम्पः क्रीडारतिस्थानं चमरस्या सुरेशितुः ॥५६॥ विशेषकं ।

सहस्राण्येष चतुर शीतिमायतविस्तृतः ।
समंततः परिक्षिप्तः प्राकारेण महीयसा ॥५७॥

सर्वचमरचंचावत् प्रासादादि भवेदिह ।
न विद्यन्ते परं पंच सुधर्माद्याः सभाः शुभाः ॥५८॥

उस आवास का स्वरूप इस तरह है - वह आवास चमर चंचा नगरी से नैऋत्य कोण में छः सौ पंचावन करोड़ पैंतीस लाख पचास हजार योजन छोड़ने के बाद इसी अरूणोदधि समुद्र में आया है । वहां शोभायमान लक्ष्मी के निधान स्वरूप होने से चमरेन्द्र को रति क्रीड़ा करने योग्य मनोहर स्थान है । इसकी लम्बाई चौड़ाई चौरासी हजार योजन की है और इसके चारो तरफ बड़ा किला है यहां प्रासाद आदि सारी बातें चमरचंचा नगरी के अनुसार है, केवल अन्तर इतना है कि यहां सुधर्मादि पांच मनोहर सभा नहीं होती । (५४-५८)

स एष साम्प्रतीनस्तु जम्बूद्वीपेऽत्र भारते ।
 वेभेलाख्ये सन्निवेशे विन्ध्याचल समीपे ॥५६॥
 आसीत् गृहपति श्रेष्ठः पूरणाख्यो महर्द्धिकः ।
 जाग्रत्कुटुम्बजागर्या निशि संवेगमाप सः ॥६०॥ युगम् ।
 प्रातर्निमन्त्रय स्वजनान् भोज्य वस्त्रादिभिः भृशम् ।
 सन्तोष्य ज्येष्ठ पुत्राय कुटुम्ब भारमार्षयत् ॥६१॥
 पतद्ग्रहं दारूमयं कारयित्वा चतुः पुटं ।
 दीक्षां लात्वा दानमयीं चक्रे सातापनं तपः ॥६२॥
 षष्टस्यैव पारणायामुत्तीर्यातापनास्थलात् ।
 भिक्षार्थमाटीत् बेभेले करे धृत्वा पतद्ग्रहम् ॥६३॥
 भिक्षां ददानः पान्थेभ्यः पतिनां प्रथमे पुटे ।
 काकशाला वृकादीनां द्वितीयपुटसंगताम् ॥६४॥
 तां मत्स्यकच्छपादीनां तृतीयपुटगां ददत् ।
 पतितां च पुटे तुर्ये भिक्षामादत्स्वयं मिताम् ॥६५॥ युगम् ।

वर्तमान काल का चमरेन्द्र इसी ही जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र के अन्दर विन्ध्य पर्वत के समीप में बेमेल नामक गांव था । वहां पूरण नाम का महा समृद्धिशाली गृहस्थ रहता था । एक समय इनके कुटुम्ब में रात्रि जागरण था, उस समय इसे वैराग्य उत्पन्न होने से प्रभात होते ही स्वजनों को बुलाकर उनको भोजन वस्त्रादि सत्कार करके ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब-परिवार का भार सौंपकर, चार खाने वाला लकड़ी का पात्र बनवा कर, इसने अपने से सभी को दान दे सके ऐसी दीक्षा ली थी । दीक्षित अवस्था में आतपना पूर्वक तपस्या प्रारंभ की छट्ट-छट्ट (दो-दो उपवास) के पारणे में हाथ में पात्र लेकर वह उसी बेमेल गांव में भिक्षार्थ घूमता था । पात्र के पहले खाने में जो षठी भिक्षा पड़ती थी उसे पथिक जन को देता था दूसरे विभाग में भिक्षा पड़ती थी वह कौए, भेड़िया आदि को देता था तथा तीसरे विभाग में जो भिक्षा पड़ती थी वह मछली कछुए आदि को देता था और चौथे खाने में पड़ी भिक्षा स्वयं खाता था ।

एवं द्वादश वर्षाणि तपः कृत्वादि दुष्करम् ।
 स पादपोपगमनमङ्गीकृत्यैकमासिकम् ॥६६॥

मृत्वामुष्यां राजधान्यां चमरेन्द्रतयाभवत् ।

सर्वं पर्याप्ति पर्याप्तः तत्कालोत्पन्न एव सः ॥६७॥

ऊर्ध्वमालोकयामास स्वभावात् ज्ञान चक्षुषा ।

आसौधर्मं देवलोकं तत्र दृष्ट्वा सुरेश्वरम् ॥६८॥

शक्रसिंहासनासीनं पीनतेजः सुखश्रियम् ।

अचिन्तयत् मुमुर्षुः कः क्रीडत्येष ममोपरि ॥६९॥ कलापकम् ।

इस तरह बारह वर्ष तक अति दुष्कर तपस्या की । अन्तिम समय में एक महीने का पादपाधोपगमन अनशन करके (पादप अर्थात् वृक्ष आदि गिरा हो जैसे पड़े रहना) इस तरह पड़े रहकर मृत्यु प्राप्त करके वह इस समय की राजधानी अमरेन्द्र रूप में उत्पन्न हुआ है और सर्व पर्याप्ति से युक्त उत्पन्न हुआ, साथ में ही स्वाभाविक रूप से ज्ञान चक्षु से आखिर सौधर्म देवलोक तक दृष्टिपात करके शक्र के सिंहासन पर बैठे अत्यन्त तेजस्वी और सुख संपत्ति वाले सौधर्म इन्द्र को देखा । इसे देखकर विचार करने लगा कि - मेरे सिर पर यह कौन मौज आनंद कर रहा है ? यह क्या मौत मांग रहा है ? (६८-६९)

ततः सामानि कान् देवान् स आहूयेति पृष्टवान् ।

भो भो क एष योऽस्माकमपि मूर्द्धनि तिष्ठति ॥७०॥

इस तरह विचार कर उसने अपने सामानिक देवों को बुलाकर पूछा- अरे ! अपने मस्तक पर यह कौन है ? (७०)

तेऽपि व्यजिज्ञपत् नत्वा स्वामिनेष सुधर्मराट् ।

नित्या स्थान व्यवस्थेयं सौधर्मेन्द्रासुरेन्द्रयोः ॥७१॥

उस समय उसने भी नम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि - हे स्वामिन् ! यह तो सौधर्मेन्द्र है । सौधर्मेन्द्र और असुरेन्द्र का इसी ही तरह रहने का परा पूर्व से चलता आया रिवाज है । (७१)

हन्त तेऽन्ये येऽसुरेन्द्रा एनमित्थं सिरः स्थितम् ।

सेहिरे न सहेऽहं तु पातयिष्याम्यधः क्षणात् ॥७२॥

यह सुनकर उसने कहा- ऐसे को अपने मस्तक पर रहने दे वह दूसरा है । मैं इसे सहन करने वाला नहीं हूँ । मैं तो इसको क्षण में नीचे गिरा देने वाला हूँ । (७२)

निश्चित्येति पुनश्चित्ते व्यमृशत् सोऽपि वज्रभृत् ।

यद्यनेनाभिहन्येऽहं शरणं मम कस्तदा ॥७३॥

इस तरह इसने निश्चय किया, परन्तु इसके साथ में इसको विचार आया कि - यह भी वज्रधारी इन्द्र है । इससे कभी इसके वज्र द्वारा यदि मुझे मरने का समय आया हो तो मेरा शरण किसका होगा ? (७३)

विचिन्त्येत्यवधिज्ञानोपयोगाच्चमराधिपः ।

सुसुमार पुरोधानेऽपश्यत् वीरजिनेश्वरम् ॥७४॥

इस तरह चिन्तन कर इसने अवधिज्ञान से उपयोग दिया तो सुसुमार नगर के उद्यान में विराजमान श्री वीर परमात्मा को उसने देखा । (७४)

दध्यौ चायं जिनोवीरः प्रतिमामेकरात्रिकीम् ।

प्रतिपद्याष्टमतया एक पुद्गलदत्तदृक् ॥७५॥

निर्निमेषो निष्प्रकम्पः कायोत्सर्गेऽस्त्यवस्थितः ।

एका दशाब्द पर्याये शरण्योऽस्तु स एव मे ॥७६॥ युग्मं

वीर परमात्मा को देखकर उसी समय उसने विचार किया कि आज वीर प्रभु का अट्टम तप हैं । एक ही वस्तु पर अनिमेष दृष्टि रखकर एक रात्रि की 'पडिमा' अंगीकार की है । निश्चय रूप में ग्यारह वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले कायोत्सर्ग ध्यान में स्थिर हैं इनका मुझे शरण स्वीकार हो । (७५-७६)

इति ध्यात्वावश्यकार्यं त्यक्त्वाहर्दर्चनादिकम् ।

उत्थायोत्पादशय्यायाः तद्देवदूष्येसंवृतः ॥७७॥

उपादाय प्रहरणरत्नं परिघमुद्धतः ।

तिगिञ्छिकूटमुत्पातगिरिमागत्य सत्वरम् ॥७८॥

नव्यं वपुर्विधायैत्य सुसुमारपुरात बहिः ।

अशोककाननेऽशोकतरोर्मूले शिलोपरि ॥७९॥

नमस्कृत्य जिनं युष्मन्निश्रया याम्यहं युधे ।

युयं मे त्राणमित्युक्त्वा भूयोऽप्युत्तरवैक्रियम् ॥८०॥

वपुर्भीष्मं माषराशिकुहूरात्रि सहोदरम् ।

कृत्वा योजन लक्षोच्चमुत्पपात नभस्तलय ॥८१॥ पंचभि ।

इस प्रकार निश्चय करके उत्पाद शय्या से उठकर जिन पूजा सद्दश, अवश्य करने योग्य कार्य करने में लग गया, फिर शय्या में ही देव दूष्य वस्त्र परिधान किया, अपना परिघ नामक प्रहरण रत्न अर्थात् शस्त्र लेकर सत्वर उद्धत रूप में तिगिञ्छिकूट नामक उत्पात पर्वत पर आया, वहां उत्तर वैक्रिय शरीर धारण कर वहां से सुसुमार

नगर के बाहर अशोक बन में जाकर अशोक वृक्ष के नीचे शिलापर कायोत्सर्ग ध्यान में रहे वीर परमात्मा को नमस्कार करके आप का आश्रय, मैं युद्ध के लिए जा रहा हूँ, मुझे आप का शरण हो ? इस तरह कहकर पुनः उड़द की राशि और अमावस्या की रात्रि समान भीषण लाख योजन प्रमाण उत्तर वेक्रिय शरीर धारण कर वह आकाश मार्ग में उड़ गया । (७७-८१)

कुर्वन्कवचित् सिंहनादं क्वचिच्च गजगर्जितम् ।

हय हेषारवं क्वापि क्वचित्कलकल ध्वनिम् ॥८२॥

क्षोभयन्निव पातालं कम्पयन्निव मेदिनीम् ।

तिर्यग्लोकं व्याकुलयन् स्फोटयिष्यन्निवाम्बरम् ॥८३॥

विद्युदृष्टि गर्जितानि रजस्तमांसि चोत्किरन् ।

त्रासयन् व्यन्तरान् देवान् कुर्वान् ज्योतिषिकान् द्विधा ॥८४॥

विमानस्याथ सौधर्मावतंसकस्य वेदिकाम् ।

आक्रम्यैकेनापरेण सुधर्मासंसदड पदा ॥८५॥

जघान परिघेणेन्द्र कीलकं त्रिस्ततोऽवदत् ।

क्व रे शक्रः क्व रे सामानिकाः क्व रे सुगः परे ॥८६॥ कुलकम् ।

कभी सिंहनाद करने लगा, कभी हस्ती के समान गर्जना करने लगा तो कभी अश्व समान हिनहिनाता था तो कभी कल कलाट कर देता था। मानो पाताल को क्षोभित न करता हो, पृथ्वी को कम्पायमान न करता हो और आकाश मंडल फाड़ देता हो इस तरह तिरछे लोक को आकुल व्याकुल करता, चारों दिशाओं में बिजली, वर्षा, गर्जना, धूल तथा अंधकार फैलाता व्यन्तर देवों को डराता और ज्योतिषियों के दो विभाग कर अलग करता, एक पैर से सौधर्मेन्द्र के विमान की वेदिका पर तथा दूसरे पैर से सुधर्मा सभा पर आक्रमण करके, उसने अपनी परिघ द्वारा इन्द्र कील पर तीन प्रहार किये और फिर बोला - 'अरे ! सौधर्म ! इसके सामानिक देव और अन्य सब देव कहां है ?' (८२-८६)

पातयामि घातयामि शातयाम्यधुनाखिलान् ।

करोम्यप्सरसः सर्वाः स्वायत्ताः सह वैभवैः ॥८७॥

फलं मदाशातनायाः शक्रोऽनुभवतादिति ।

गिरः श्रुत्वा श्रुतपूर्वाः भ्रुकुटी भीषणो हरिः ॥८८॥

अभी ही इन सब को गिरा देता हूँ, भार देकर हेरान परेशान कर देता हूँ । इन

अप्सराओं को और इनके परिवार को भी अभी ही काबू कर देता हूँ। मेरे जैसे की आशातना करने का फल क्या आता है ? इसकी अब इन्द्र को खबर पड़ेगी। इस तरह अश्रुत पूर्व चमरेन्द्र के वचन सुनकर सौधर्मन्द्र ने भी भ्रुकुटी चढ़ा दी।

सक्रोधहासमित्याह किं रे चमर दुर्दश ।

नवोत्पन्नोऽसि रे मूढ मुमुर्षस्यधुनैव किम् ॥८६॥

यद्वा तवेयानुत्साहोनर्थायैव न संशयः ।

पक्षौ पिपीलिकानां हि जायेते मृत्युहेतवे ॥८७॥

और क्रोध तथा हास्यपूर्वक कहने लगा। - अरे श्याम मुख वाले मूढ चमर ! अभी ही नया उत्पन्न हुआ है और शीघ्र ही क्यों मौत मांग रहा है ? अथवा तेरा यह सारा उत्साह निश्चय से अनर्थ के लिए ही है। चींटी की पांखे आती है, वह उसकी मृत्यु का ही कारण हो जाती है। (८६-८७)

इमां गृहाणातिथेयी भदवज्ञा फलं मनाक् ।

मुमोच वज्रमित्युक्त्वाज्वलज्ज्वालाकरालितम् ॥८९॥

तद् दृष्ट्वा चकितोऽत्यन्तं नश्यन् संकोच्य भूधनम् ।

प्रविष्टो रक्ष रक्षेति वदन् वीर क्रमान्तरे ॥९०॥

अब तुम भी मेरे आतिथ्य-मेरी अवज्ञा का फल प्राप्त करो। इस तरह कहकर सौधर्मन्द्र ने अपना जाज्वल्यमान भीषण वज्र छोड़ा। यह देखकर चमरेन्द्र डर गया और भागने लगा तथा जहां श्री वीर परमात्मा ध्यानस्थः थे वहां जाकर त्राहिमाम्-त्राहिमाम् अर्थात् रक्षा करो, रक्षा करो इस तरह बोलता हुआ शरीर को संकुचित (छोटा) करके उनके दोनों पैरों के बीच घुस गया। (८९-९०)

ततः शक्रोऽपि विज्ञाय वीरं तच्छरणी कृतम् ।

चतुरंगुलमप्राप्तमादाय पविमित्यवक् ॥९३॥

कम्प से किमिदानीं भोः पशुः सिहेक्षणादिव ।

वीर प्रसादात् मुक्तोऽसि न ते भक्तोऽधुना भयम् ॥९४॥

अतः शंकरेन्द्र भी कि, यह श्री वीर परमात्मा के चरणों में गया है ऐसा जानकर, इससे चार ही अंगुल अंतर पर रह गये वज्र को लेकर बोला "अरे सिंह को देखकर पशु कांपता है अब तुम भी कहां से कांपने लगे ?" जाओ, अब मैं तुझे श्री वीर परमात्मा की कृपा के कारण से जाने देता हूँ। अब तुझे मेरी ओर से भय नहीं होगा। (९३-९४)

इत्युक्त्वा वामपादेन त्रिः ग्रह्यातथ वसुन्धराम् ।

क्षमयित्वा जिनेन्द्रं च सुरेन्द्रः स्वास्पदं ययौ ॥६५॥

इस प्रकार कहकर, बायें चरण से पृथ्वी पर तीन बार प्रहार करके प्रभु से क्षमा मांगकर सौधर्मेन्द्र अपने स्थान पर गया । (६५)

ततो वज्रभयात् मुक्तश्चमरेन्द्रो निजाश्रयम् ।

गत्वा सामानिकादीनामुवाचोदन्तमादितः ॥६६॥

उसके बाद चमरेन्द्र भी वज्र के भय से मुक्त हो गया और विघ्न रहित अपने स्थान पर पहुँच गया । वहाँ उसने सर्व बीती बात को अपने सामानिक देवों को सुनाया । (६६)

भद्रं स्तात् त्रैशलेयाय तस्मै त्रैलोक्य बन्धवे ।

येन त्रातोऽस्मि मरणात् हंत चप्राग्निदुस्सहात् ॥६७॥

उपकारमिति प्राज्ञः तं स्मरन् सपरिच्छदः ।

गत्वा पुनर्हावीरमभ्यर्च्य ताण्डवादिभिः ॥६८॥

आगत्य स्वास्पदं प्रीतो विस्मृतेन्द्र पराभव ।

धर्मं कर्म स्थितिं सर्वामाराध्य सुखभागभूत् ॥६९॥ विशेषकं ।

तीन जगत् के बन्धु श्री वीर परमात्मा का कल्याण हो कि जिन्होंने विनाशकारी दुःसह, वज्राग्नि से मुझे मृत्यु से बचाया है । इस तरह इनके उपकार को स्मरण करते हुए बुद्धिमान बना वह चमरेन्द्र अपने सारे परिवार को लेकर पुनः प्रभु के पास आया, वहाँ उसने प्रभु के आगे नृत्यादि करके इसी तरह उनको सम्मान से प्रसन्न करके वापिस अपने स्थान पर आया । वहाँ इन्द्रकृत पराभव को भूलकर सर्वप्रकार के धर्म कार्यों को करते हुए अभी सुखपूर्वक रहता है । (६७-६९)

अयं च चमरोऽयासीद्यत्सौधर्मावतंसकम् ।

आश्चर्यमेतद्विज्ञेयमनन्तकालसम्भवि ॥१००॥

यह चमरेन्द्र सौधर्म देवलोक में लड़ने गया । यह अनन्तकाल में ऐसा हुआ है । यह एक आश्चर्य रूप समझना चाहिए । (१००)

चतुः षष्टि सहस्राणि सामानिक सुधा भुजः ।

अस्यत्रायस्त्रिंशकाश्च त्रयस्त्रिंशत्सुधाशिनः ॥१०१॥

इस चमरेन्द्र के चौसठ हजार सामानिक देव हैं और तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देव होते हैं । (१०१)

एते च जम्बूद्वीपेऽत्र क्षेत्रे भारतनामनि ।
 काकन्द्यां पूर्यवर्तन्त त्रयस्त्रिंशत् महर्द्धिकाः ॥१०२॥
 श्रद्धालवो ज्ञात तत्त्वा सहायाश्च परम्परम् ।
 पूर्वं ते भावितात्मानोऽभूवन्नुग्रक्रियाश्रयाः ॥१०३॥
 पश्चाच्च कर्मवशतो जाता धर्मेशलाथाशयाः ।
 पार्श्वस्था अवसन्नाश्च कुशीलाः स्वैरचारिणः ॥१०४॥
 एवं च भूरि वर्षाणि श्रमणोपासक क्रियाम् ।
 आराध्यार्द्धं, मासिकीं ते कृत्वा संलेखनामपि ॥१०५॥
 अनालोच्या प्रतिक्रम्याति चारंस्तान् पुराकृताम् ।
 मृत्वात्रयस्त्रिंशक्त्वंलेभिरे चमरेशितुः ॥१०६॥ युरम् ।

ये तैत्तिरीय देव पूर्वजन्म में जम्बू द्वीप के क्षेत्र में काकंदी नगरी में तैत्तिरीय अति समृद्धशाली सेठ थे । वे श्रद्धालु तत्त्वज्ञान को जानने वाले, परम्पर-सहायक, भाविक और उग्र क्रिया करने वाले थे । परन्तु बाद में कर्मवशात् इनका धर्म के प्रति आदर शिथिल हो जाने से वे तटस्थ, अवसन्न, कुशील और स्वेच्छाचारी हो गये । इन्होंने बहुत वर्षों तक श्रावक क्रिया का पालन करके अन्तिम समय में पंद्रह दिन की संलेखना की परन्तु पूर्व में इनको लगे अतिचारों की आलोचना किए बिना और प्रतिक्रमण किए बिना मृत्यु प्राप्त कर इसी चमरेन्द्र के त्रयस्त्रिंशक देव उत्पन्न हुए हैं । (१०२-१०६)

त्रयस्त्रिंशक रूढिस्तु नैतेभ्य एव किन्तु ते ।
 उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च स्वस्वस्थित्या परापराः ॥१०७॥

इन त्रयस्त्रिंशक देवों की प्रथा इनके कारण ही नहीं पड़ी है, परन्तु ये इनकी स्थिति के कारण से अन्य अन्य उत्पन्न होते हैं और च्यवन होता है । (१०७)

तिस्त्रोऽस्य पर्षदस्तत्राभ्यन्तरा समिताभिधा ।
 मध्या चंडाभिधा ज्ञेयाबाह्या जाताह्वया पुनः ॥१०८॥

इस चमरेन्द्र की तीन पर्षदा होती है १- अभ्यन्तर में आई पर्षदा का नाम समिता है २- मध्य में चंडा नाम की पर्षदा है और ३- बाहर की नामा जाता पर्षदा है । (१०८)

स्युश्चतुर्विंशतिः देव सहस्राण्याद्यपर्षदि ।
 सार्धपत्योपमद्वंद्वस्थितिन्यथा तत्र पर्षदि ॥१०९॥

शतान्यद्धं तृतीयानि सान्द्रं पल्योपमायुषाम् ।
 देवीनां मध्यमायां चाष्टाविंशतिः सहस्रकाः ॥११०॥
 द्विपल्यायुर्निर्जराणां देवीनां त्विहपर्षदिं ।
 शतानि त्रीण्येकपल्यायुषामथान्त्यपर्षदि ॥१११॥
 स्यु द्वात्रिंशत्सहस्राणि सान्द्रं पल्यायुषः सुराः ।
 शतान्यद्धं चतुर्थानि देव्योद्धं पल्यजीविताः ॥११२॥

पहले में अढाई पल्योपम की स्थिति वाले चौबीस हजार देव होते हैं और ढेड पल्योपम की स्थिति वाली अढाई सौ देवियां होती हैं । दूसरी मध्य सभा में दो पल्योपम के आयुष्य वाले अढाईस हजार देव और एक पल्योपम के आयुष्य वाली तीन सौ देवियां हैं तीसरी अन्तिम पर्षदा में ढेड पल्योपम के आयुष्य वाले बत्तीस हजार देव और आधे पल्योपम के आयुष्य वाली साढ़े तीन सौ देवियां हैं । (१०६-११२)

यथैव पर्षदः तिस्त्रौ वर्णिताश्चमरेशितुः ।
 एवं सामानिकत्रायस्त्रिंशकानां तदा ह्वयाः ॥११३॥
 पर्षदो लोक घालानां पुनस्तिस्त्रो भवन्ति ताः ।
 तपाथ त्रुटिता पर्वा इत्येतैर्नामभिर्युताः ॥११४॥

चमरेन्द्र की इस तरह तीन सभाओं का वर्णन किया है। इस तरह इसी नाम की सामानिक तथा त्रायस्त्रिंशक देवों की भी सभाएं हैं तथा लोकपाल देवों की भी- १- तपा २- त्रुटिता और ३- पर्वानाम की तीन सभा होती हैं । (११३-११४)

इदमर्थतः स्थानांग सूत्रे ।

यह वृत्तान्त स्थानांग सूत्र में है ।

काली राजी च रन्ती च विद्युत् मेघाभिधा परा ।
 पंचास्याग्रमहिष्यः स्युः रूपलावण्यबन्धुराः ॥११५॥

इस चमरेन्द्र को १- काली २- राजी ३- रन्ती ४- विद्युत् और ५- मेघा नाम वाली पांच मनोहर रूप - लावण्य युक्त अग्रमहिषी अर्थात् पट्टरानियां हैं । (११५)

कालीयं प्राग्भवे जम्बूद्वीपे दक्षिणभारते ।
 पुर्यामामलकल्यायां कालाख्यस्य गृहेशितुः ॥११६॥

कालीश्रीतनुसंभूताकाली नामाभवत् सुता ।

वृहत्कुमारी श्रीपार्श्वपुष्पचूलार्पितव्रता ॥११७॥

यथा छन्दीभूयं दोषानप्रतिक्रम्य पाक्षिकीम् ।

कृत्वा संलेखनां भृत्वा चमरेन्द्र प्रिया भवत् ॥११८॥ विशेषकं ।

इसमें काली नाम की प्रथम पट्टरानी है । पूर्वजन्म में इसी जम्बूद्वीप के अन्दर दक्षिण भारत में आमल कल्या नामक नगर था, उसमें काम नाम का गृहस्थ था उसकी कालश्री नाम की स्त्री की कुक्षि से जन्मी हुई काली नाम की पुत्री थी । इसने कुमारी अवस्था में ही योग्य उम्र होने के बाद श्री पार्श्वनाथ भगवान की पुष्पचूला नाम की साध्वी के पास दीक्षा ली थी । परन्तु बाद में वह स्वच्छ रूप में आचरण करने लगी । और मृत्यु के समय में दोषों की आलौचना बिना प्रतिक्रमण बिना एक पक्ष की संलेखना करते हुए मृत्यु प्राप्त कर चमरेन्द्र की स्त्री हुई है । (११६-११८)

कालावतंस भवनं कालं सिंहासनं भवेत् ।

काल्या देव्याः परासामप्येवं स्वाख्यानुरूपतः ॥११९॥

इसी काली देवी का कालावतंस नाम का भवन और काल नाम का सिंहासन है । अन्य चारों देवियों को भी इनके नाम के अनुसार ये दोनों ही वस्तु समान जानना । (११९)

स्व स्वनाम सहक् नाम जननी जनका इति ।

ज्ञेयाः शोभाश्चतस्रोऽपि तथैव मलिनव्रताः ॥१२०॥

तथा इन चारों के माता पिता के नाम इनके अपने नाम समान जानना और इनके व्रत को पहले के समान अतिचार दूषित समझना । (१२०)

स्वाख्यावतंसे भवने स्वाख्ये सिंहासनेऽभवन् ।

चमरेन्द्र प्रिया एताः सार्द्धपल्यद्वयायुषः ॥१२१॥

इस प्रकार अपने अपने नाम के भवन तथा अपने-अपने नाम का सिंहासन है इस तरह पांचों पट्टरानियां चमरेन्द्र की अढाई पल्योपम की आयुष्य वाली है । (१२१)

बलीन्द्रदयितानामप्यैतिह्यमनया दिशा ।

श्रावस्त्यासां पुरी सार्द्धमायुः पल्यत्रयं पुनः ॥१२२॥

बलि इन्द्र की पटरानियों का वृत्तान्त भी इस चमरेन्द्र की पटरानियों के समान समझना । अन्तर इतना है कि इनकी नगरी श्रावस्ती है और इनका आयुष्य साढ़े तीन पल्योपम का है ।-(१२२)

एकै काग्रमहिष्यष्टसहस्रपरिवारयुक् ।

सहस्राण्यष्ट देवीनां नव्यानां रचितुं क्षमा ॥१२३॥

चमरेन्द्र की प्रत्येक पटरानियों का आठ हजार परिवार कहलाता है क्योंकि उनमें आठ हजार नयी देवियां उत्पन्न करने का सामर्थ्य होता है (१२३)

चत्वारिंशत् सहस्राणि स्युर्देव्यः सर्व संख्यया ।

भुंक्तेऽसुरेन्द्रश्चैताभिः कृतैतावत्तनुः सुखम् ॥१२४॥

इस गिनती से चमरेन्द्र को चालीस हजार देवियां कहलाती है, उनके साथ में इतने ही शरीर धारण कर सुख भोगता है । (१२४)

सोमोयमश्च वरूणस्तथा वैश्रमणाभिधः ।

चत्वारोऽस्य लोकपालाश्चतुर्दिग्धिकारिणः ॥१२५॥

और चमरेन्द्र के सोम, यम वरूण और कुबेर नाम के लोकपाल चार दिशाओं के चार अधिकारी कहलाते हैं । (१२५)

चतुर्णामप्यथै तेषां चतस्रः प्राण बल्लभाः ।

कनका कनकलता चित्रगुप्ता वसुधरा ॥१२६॥

इस चारों में प्रत्येक को कनका, कनकलता, चित्रगुप्ता और वसुधरा चार-चार प्राण बल्लभा अर्थात् देवियां होती है । (१२६)

एकैकेयं च साहस्रपरिवारविराजिता ।

देवी सहस्रयेकैकं नव्यं विकुर्वितुं क्षमा ॥१२७॥

और ये प्रत्येक हजार-हजार परिवार वाली हैं, क्योंकि इनको हजार-हजार नयी देवियां उत्पन्न करने का सामर्थ्य होता है । (१२७)

स्वस्वनाम राजधान्यां स्वस्वसिंहासने स्थिताः ।

चत्वारोऽमी लोकपाला भुंजते दिव्य सम्पदम् ॥१२८॥

चारों लोक पाल को अपने-अपने नामानुसार राजधानी है वहां ये अपने-अपने सिंहासन पर रहकर दिव्य सुख सम्पदा भोगते हैं । (१२८)

तथास्य चमरेन्द्रस्य सप्त सैन्यानि तत्र च ।

पादात्याश्वेभ्यहिषरथ संज्ञानि पंच वै ॥१२६॥

चमरेन्द्र की सात सैना होती है उसमें पांच इस प्रकार है १- पैदल २- अश्व ३- हस्ती ४- महिष और ५- रथ इस तरह नाम है । (१२६)

एते सुरा अपि स्वामि शासनात् कार्यहेतवे ।

तांद्रूप्यं प्रतिपद्यन्ते नायकोक्तेः नटा इव ॥१३०॥

इनका भी देव रूप है, परन्तु कार्य की आवश्यकता पड़ने पर स्वामी का आदेश होने पर ऐसा रूप धारण कर सकते हैं । जैसे नायक के कहने अनुसार नट नया-नया वेष धारण करता है । (१३०)

एतानि पंच सैन्यानि युद्धसज्जान्यहर्निशम् ।

गन्धर्वनट सैन्ये ये ते भोगायेति सप्तकम् ॥१३१॥

ये पांचो सेना हमेशा युद्ध के लिए तैयार रहती है और दूसरी दो सेना, एक गन्धर्व और दूसरी नट की है इस तरह सब मिलाकर सात होती है । (१३१)

सप्त सेनान्योऽप्यमीषां सर्वदा वशवर्तिनः ।

सेवन्ते सुरनेतारं चमरं विनयानताः ॥१३२॥

इन सात सेनाओं के सात सेनाधिपति हैं जो हमेशा चमरेन्द्र के आधीन होकर विनयपूर्वक सेवा करते हैं । (१३२)

द्रुमः सौदामश्च कुंथुः लोहिताक्षश्च किन्नरः ।

रिष्टो गीतरतिश्चेति सेनान्यामभिधाः क्रमात् ॥१३३॥

इन सेनापतियों के नाम इस प्रकार है - १- द्रुम २- सौदाम ३- कुंथु ४- लोहिताक्ष ५- किन्नर ६- रिष्ट ७- गीतरति । (१३३)

द्रुमस्य तत्र पादात्याधिपस्य चमरेशितुः ।

स्युः सप्तकच्छाः कच्छा च स्ववशो नाकिनां गणः ॥१३४॥

इस सात में पैदल सेना का अधिपति द्रुम है इसके हाथ के नीचे सात "कच्छा" है । अर्थात् हाथ नीचे देवों का समूह है । (१३४)

आद्यकच्छयां सुराणां चतुःस्त्राष्टिं सहस्रकाः ।

ततो यथोत्तर कच्छाः षडपि द्विगुणाः क्रमात् ॥१३५॥

पहले कच्छ में चौसठ हजार देव है उसके बाद छः कच्छों में अनुक्रम से उत्तरोत्तर दोगुणा करते जायं इतने देव हैं । (१३५)

इन्द्राणामपरेषामप्येवं पत्तिचमूपतेः ।

वाच्याः सप्त सप्त कच्छः स्थानाद्विगुणितामिथः ॥१३६॥

चतुः षष्टिः सहस्राणि प्रत्याशमात्मरक्षकाः ।

लक्षद्वयं षट्पंचाशत्सहस्राणीति तेऽखिलाः ॥१३७॥

इसी तरह अन्य इन्द्रों के पैदल सेनापति के हाथ नीचे सात-सात कच्छ और इसमें भी उत्तरोत्तर एक-दूसरों से दो गुने देव होते हैं । चमरेन्द्र के प्रत्येक दिशा के चौसठ-चौसठ हजार मिलाकर समग्र दो लाख छप्पन हजार आत्म रक्षक देव है । (१३६-१३७)

एवमुक्त परीवार सुरैराराधितकमः ।

धनश्यामस्निग्धवर्णः किञ्चिदारक्तलोचनः ॥१३८॥

विद्रु मोष्टः श्वेतदन्तः शरलोलुंग नासिकः ।

दीप्ररक्ताम्बरो मेघ इव सन्ध्याभ्रसंभृतः ॥१३९॥

मुकुटेनांकितो मौलौ सच्चुडामणिंलक्ष्मणा ।

पूर्वाद्रिरिव तिग्मांशु बिम्बेनोदित्वरश्रिया ॥१४०॥

चतुस्त्रिंशल्लक्षमान भवनानामधीश्वरः ।

सर्वेषां द्राक्षिणात्यानामसुराणां सयोषिताम् ॥१४१॥

साम्राज्यं शास्ति दिव्यस्त्री नाटक दिषु दत्तदृक् ।

एकार्पा वायुश्च्युत्वेतो भवे भाविनिसेत्स्यति ॥ १४२॥ कुलकम् ।

इस प्रकार के देव और उनके परिवार उनकी हमेशा सेवा करते रहे हैं उस चमरेन्द्र का अतिश्याम और स्निग्ध वर्ण है, लाली भरी आँखें हैं, मूंगे समान होठ है, उज्ज्वल दंतपंक्ति है और शरभ पक्षी समान उत्तुंग नासिका तथा ये देदीप्यमान और रक्त वर्ण अम्बर रूपी वस्त्राकाश के कारण, संध्याकाल के बादल का भ्रम उत्पन्न करने वाला मेघ हो इस तरह दिखता है तथा उसके मस्तक पर उत्तम चुडामणि वाला मुकुट चमक रहा है, वह मानो उदय हुए सूर्यबिम्ब युक्त पूर्वाचल हो इस तरह दिखता है । तथा चौतीस लाख भवनों का तथा सर्व दक्षिणत्य असुरों का और इनकी स्त्रियों का स्वामी है तथा हमेशा देवांगनाओं का नाटक आदि देखने में

तल्लीन रहकर साम्राज्य भोगते यह चमरेन्द्र एक सागरोपम का आयुष्य पूर्ण कर वहां च्यवन कर आगामी जन्म में सिद्ध पद प्राप्त करेगा । (१३८-१४२)

च्युते चास्मिन्नस्य पदे पुनरुत्पत्स्यतेऽपरः ।

एवंमव्युच्छित्तिनयान्नित्य एवैष उच्यते ॥१४३॥

यह यहां से च्यवन होगा तब इसके स्थान पर अन्य चमरेन्द्र उत्पन्न होगा । इस तरह अविच्छेद रहने से चमरेन्द्र नित्य ही कहलाता है । (१४३)

पूर्णजम्बूद्वीपमेकमेष पूरयितुं क्षमः ।

असुरैरसुरीभिश्च निजशक्त्या विकुर्वितैः ॥१४४॥

और इस चमरेन्द्र में इतना सारा सामर्थ्य है कि यदि यह चाहे तो इतने देव और देविया बना सकता है जिससे पूरा जम्बूद्वीप सम्पूर्ण भर सकता है । (१४४)

तिर्यक् पुनरसंख्येयान् द्वीपपाथोनिर्धोस्तथा ।

एवं सामानिकाः त्रायस्त्रिंशाः चास्य प्रभूष्णावः ॥१४५॥

तिरछा तो इसी तरह असंख्य द्वीप समुद्र भर देने का इसमें सामर्थ्य है ऐसा सामर्थ्य इसके सामानिक तथा त्रायस्त्रिंशक देवों में भी होता है । (१४५)

अस्यैवं लोकपालाग्रमहिष्योऽप्यथ किन्तु ते ।

शक्ताः पूरयितुं तिर्यक् संख्येय द्वीपवारिधीन् ॥१४६॥

इत्यर्थतो भगवत्याम् ।

और इसके लोकपाल देव तथा पटरानियां भी इसी तरह तिर्छालोक में संख्यात द्वीप समुद्र भर देने का सामर्थ्य धारण करते हैं । (१४६)

ऐसा भावार्थ श्री भगवती सूत्र में कहा है ।

देवेन्द्र स्तवे तु -

जावय जम्बूद्वीवो जावय चमरस्स चमरचंचाओ ।

अंसुरेहि असुरकन्नाहि अत्थि विसओ भरेओ से ॥१४७॥

देवेन्द्र स्तव में तो इस तरह कहा है कि - चमरेन्द्र अपनी चमर चंचा से लेकर जहां तक जम्बू द्वीप है वहां तक का सारा भाग देव ओर देवियों से भरने को समर्थ होता है । (१४७)

अथान्योऽसुर देवेन्द्रो बली नामा निरूप्यते ।

उत्तरस्यां दिशि विभुः योऽसौ सौभाग्यसेवधि ॥१४८॥

अब बलीन्द्र नामक दूसरे असुरेन्द्र के विषय में कहते हैं - सौभाग्यनिधि यह बलीन्द्र उत्तर दिशा का स्वामी है । (१४८)

तथाहि दिशि क्रौबेर्या जम्बूद्वीपस्थमेरुतः ।

असंख्यद्वीपाब्धिपरो द्वीपोऽरूणवराभिधः ॥१४९॥

तस्य बाह्यवेदिकान्तात् तस्मिन्नेव पयोनिधौ ।

द्विचत्वारिंशत्सहस्रयोजनानां व्यतिक्रमे ॥१५०॥

रूचकेन्द्राभिधोऽस्त्यत्र बलेरूत्पात पर्वतः ।

तिर्यंग्लोके जिगमिषोः बलेरूत्पतनास्पदम् ॥१५१॥ युग्मं ।

जम्बू द्वीप में रहे मेरूपर्वत से उत्तर दिशा में असंख्य द्वीप समुद्र छोड़कर अरूणवर नाम का द्वीप आता है इससे बाहर की वेदिका के किनारे से इसी समुद्र में बयालीस हजार योजन छोड़कर बलीन्द्र का 'रूचकेन्द्र' नाम का उत्पात पर्वत आता है तिच्छर्लोक में जाना होता है तब बलीन्द्र सर्वप्रथम वहां आकर फिर वहां से उड़ता है । (१४८-१५१)

तिगिच्छिकूटतुल्योसौ प्रमाणादिस्वरूपतः ।

बलेप्रसादोऽस्ति तत्र प्राग्वत् सिंहसनांचितः ॥१५२॥

यह रूचकेन्द्र का प्रमाण आदि तिगिच्छिकूट समान है वहां से आगे पूर्वोक्त समान सिंहासनादि युक्त बलीन्द्र का प्रासाद है (१५२)

कोदयः पंचपंचाशत् षट् कोटीनां शतानि च ।

पंचत्रिंशच्च लक्षाणि पंचाशच्च सहस्रकाः ॥१५३॥

योजनानि व्यक्तिक्रम्याम्भोधावुत्पातपर्वतात् ।

गर्भे रत्नप्रभा पृथ्व्या गत्वाधो योजनानि च ॥१५४॥

चत्वारिंशत्सहस्राणि वर्तन्ते तत्र मंजुला ।

बलिचंचा राजधानी स्त्यानीभूताः इव त्विषः ॥१५५॥ विशेषम् ।

इस उत्पात पर्वत से समुद्र में छः सौ पचपन करोड़ साढ़े पैंतीस लाख योजन जाने के बाद नीचे रत्नप्रभा पृथ्वी के गर्भ में चालीस हजार योजन छोड़कर कान्तिमय समस्त पिंडीभूत हो रही हो ऐसी मनोहर बलीन्द्र की बलि चंचा नगरी आई हुई है । (१५३-१५५)

अस्याः चमरचंचावत् स्वरूपमखिलं भवेत् ।

वप्रप्रासादादि तेषां प्रमाणानुक्रमादि च ॥१५६॥

इस बलि चंचा नगरी का समस्त स्वरूप अर्थात् इसका किला इसका प्रासाद, इसका प्रमाण आदि अनुक्रम से चमर चंचा के समान समझना । (१५६)

अत्रोपपादसदसि देवदूष्यपरिष्कृते ।

इन्द्रत्वे नोत्पद्यतेऽङ्गी शय्योत्संगे महातपाः ॥१५७॥

जो कोई महा तपस्वी होता है वह यहां उपपाद सभा में देवदूष्य से आच्छादित शय्या में इन्द्र रूप में उत्पन्न होता है । (१५७)

अस्य षष्टिः सहस्राणि सामानिक सुधा भुजाम् ।

त्रायस्त्रिंशकदेवाश्च त्रयस्त्रिंशदुदीरिताः ॥१५८॥

इस बलीन्द्र को साठ हजार सामानिक देव और तेतीस त्रयस्त्रिंशक देव होते हैं । (१५८)

साम्प्रतीनास्त्वभी बेभेलकग्रामनिवासिनः ।

श्रद्धालवस्त्रयस्त्रिंशत् सुहृदश्च परम्परम् ॥१५९॥

प्रागेते दृढधर्माणः पश्चाद्विश्लथचेतसः ।

उत्पन्ना अत्र चमर त्रायस्त्रिंशकदेववत् ॥१६०॥

अभी वर्तमान काल में जो त्राय स्त्रिंशक देव वहां है वे पूर्व जन्म में बेभलक गांव के निवासी थे, श्रद्धालु और परस्पर प्रीति रखने वाले तेतीस मित्र थे । पहले तो वे धर्म के विषय में दृढ़ थे परन्तु बाद में शिथिल हो जाने से चमरेन्द्र के त्राय स्त्रिंशक देवों समान यहां उत्पन्न हुए हैं । (१५९-१६०)

प्राग्वल्लिस्त्रः पर्षदोऽस्य तिसृष्वपि सुराः क्रमात् ।

सहस्राणं विशन्तिः स्युः चतुरष्टाधिका च सा ॥१६१॥

पहले के समान इनकी भी तीन सभा होती है, जिसमें अनुक्रम से बीस हजार, चौबीस हजार और अट्ठाईस हजार देव है ।

सार्द्धं द्वे च शते द्वे च सार्द्धं शतमनुक्रमात् ।

देव्यः पर्षत्सु तिसृषु देवानां क्रमतः स्थितिः ॥१६२॥

और उस तीन सभाओं के अन्दर अनुक्रम से अट्ठाईस सौ, दो सौ, तथा ढेड़ सौ देवियां होती हैं । (१६२)

पत्न्यानां त्रितयं सार्धं त्रयं द्वयं क्रमात् ।

देवीनां तु स्थितिः सार्धं द्वे ते द्वे सार्धमेव च ॥१६३॥ युगम् ॥

देवों की आयुष्य स्थिति अनुक्रम से साढ़े तीन, तीन और अढ़ाई पल्योपम की है और देवियों की अनुक्रम से अढ़ाई, दो और ढेड पल्योपम की है (१६३)

तिस्त्रस्तिस्त्रः पर्षदोऽस्य भवन्ति प्राग्वदेव च ।

सामानिकत्रायस्त्रिंशलोकपालाग्रयोषिताम् ॥१६४॥

तथा इस बलीन्द्र के सामानिक, त्रायस्त्रिंशक और लोकपाल, देव और पटरानियों की भी तीन पर्षदा और सभा है । (१६४)

शुभानि शुभा रम्भा च निरम्भा मदनेति च ।

स्युः पंचाग्रमहिष्योऽस्य प्राग्वदासां परिच्छदः ॥१६५॥

इसके शुभा, निशुभा, रंभा, निरंभा और मदना नाम की पांच अग्रमहिषियां होती है । उनका परिवार पूर्व अनुसार है । (१६५)

एवं सहस्रैः चत्वारिंशतान्तःपुरिकाजनैः ।

सुधर्मायाः बहिः भुंक्ते कृतैतावद्वपुः सुखम् ॥१६६॥

इसी तरह से बलीन्द्र भी चालीस हजार देवियों के साथ में इतने ही शरीर बनाकर सुधर्मा सभा के बाहर भोग भोगता है । (१६६)

चत्वारोऽस्य लोकपालश्चतुर्दिगधिकारिणः ।

सोमो यमश्च वरुणस्तुर्यो वैश्रमणाभिधः ॥१६७॥

इसके भी सोम, यम, वरुण, और वैश्रमण (कुबेर) नाम के चार दिशाओं के चार लोक पाल देव है । (१६७)

एषां चतस्रं प्रत्येकं दयिताः नामतस्तु ताः ।

मीनका च सुभद्रा च विद्युदाख्या तथाशनिः ॥१६८॥

स्वस्व नाम राजधान्यां सिंहासने स्वनामनि ।

उपष्टिः सुखं दिव्यं मुदा तेऽप्युपभुंजते ॥१६९॥

और इन प्रत्येक को मेनका, सुभद्रा, विद्युत और अशनि नाम की चार-चार स्त्रियां होती हैं, इनके साथ में वे अपने-अपने नाम सदृश नाम वाली राजधानी में अपने नाम वाले सिंहासन पर हर्षपूर्वक दिव्य सुखभोगता है । (१६८-१६९)

महाद्गुमो महासौदासाह्वयः परिकीर्तितः ।

मालंकारोऽपि च महालोहिताक्षाभिधः सुरः ॥१७०॥

किंपुरुषो महारिष्टस्तथा गीतयशा इति ।

बलि नाम्नोः सुरपतेः क्रमात् सप्तेति सैन्यपाः ॥१७१॥ युग्मं ।

बजीन्द्र को भी १- महा द्रुम २- महासौदास ३- मालंकान ४- महालोहिताक्ष
५- किं पुरुष ६- महारिष्ट और ७- गीतयशा इन नाम वाले सात सेनाधिपति होते
हैं (१७०-१७१)

पत्नीशस्याद्य कच्छयां षष्टिर्देवसहस्रकाः ।

कच्छः षडन्याश्चततः स्युरस्य द्विगुणाः क्रमात् ॥१७२॥

पैदल सेना के अधिपति के हाथ के नीचे पहली कच्छ में साठ हजार देव
है इसके बाद की छः कच्छओं में अनुक्रम से उत्तरोत्तर दो गुणा करते उतनी
संख्या होती है । (१७२)

एवं सामानिकैस्त्रायस्त्रिंशकैर्लोकपालकैः ।

सेव्योऽग्रमहिषीभिश्च सप्तभिः सैन्यसैन्यपैः ॥१७३॥

षष्टया सहस्रैः प्रत्याशं सेव्यमानोऽङ्गरक्षकैः ।

चत्वारिंशत्सहस्राढयलक्षद्वयमितैः समैः ॥१७४॥

श्यामवर्णो रक्तवासश्चुडामण्यंकमौलिभूत ।

सुरूपः सातिरेकैक सागरोपम जीवितः ॥१७५॥

भवनावास लक्षणां त्रिंशतोऽनुभवत्यसौ ।

असुरीणां चासुराणामुदीच्यानामधीशताम् ॥१७६॥ कलापकं ॥

इस तरह सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक देव, लोकपाल देव, पटरानियां,
सैन्य, सेनापति और प्रत्येक के साठ-साठ हजार मिलकर कुल दो लाख चालीस
हजार रक्षक परिवार वाला और श्याम वर्ण वाला, लाल वस्त्र युक्त चुडामणि से
अंकित मुकुट वाला, मनोहर रूप वाला और एक सागरोपम से अधिक आयुष्य
वाला यह बलीन्द्र तीस लाख भवन तथा उत्तर दिशा के देव देवियों पर साम्राज्य
भोगते हैं । (१७३-१७६)

परिवारयुतस्यास्त शक्तिर्विकुर्वणाभ्रिता ।

चमरेन्द्रस्यैव किन्तु सर्वत्र सातिरेकता ॥१७७॥

इस बलीन्द्र की तथा इसके परिवार की वैक्रिय शक्ति चमरेन्द्र के समान है,
फिर भी सर्वत्र कुछ अधिक है । (१७७)

इत्येवमस्त्रिन्नसुरनिकाये प्रभवो दश ।

चमरेन्द्रो बलीन्द्रश्च लोकपालास्तथाष्ट च ॥१७८॥

इसी तरह से इस असुर निकाय में दस अधिकारी हैं चमरेन्द्र, बलीन्द्र और आठ लोकपाल होते हैं । (१७८)

लक्ष्णेष्वेवं चतुः षष्टौ भवनेष्वपरेऽपि हि ।

उत्पद्यन्तेऽसुनवराः स्वस्वपुण्यानुसारतः ॥१७९॥

इसी तरह चौसठ लाख भवनो में अपने-अपने पुण्य के अनुसार से अन्य भी असुरवर उत्पन्न होते हैं । (१७९)

उत्पत्ति काले शय्यायां भूषणाम्बर वर्जिताः ।

ततश्चालंक्तास्तेन वपुष्वा नूतनेन वा ॥१८०॥

शय्या में उत्पन्न होते हैं तब वे वस्त्र आभूषण रहित होते हैं परन्तु फिर वे वहीं अथवा नूतन शरीर पर वस्त्रालंकार धारण करते हैं । (१८०)

सर्वेऽप्यमी श्यामवर्णा बिम्बोष्ठाः कृष्णमूर्द्धजाः ।

शुभ्रदन्ता वामकर्णावसक्तदीप्रकुंडलाः ॥१८१॥

सर्व का वर्ण श्याम, होठ लाल, केश काले और दाँत सफेद होते हैं तथा उनके दाहिने कान में चमकते कुंडल होते हैं । (१८१)

दन्ताः केशाश्च अमीषां वैक्रिया दृष्टव्या न स्वाभाविकाः ।

वैक्रिय शरीरस्वात् । इति जीवाभिगम वृत्तौ ॥

यहां इनके दाँत और केश कहे हैं वे स्वभाविक नहीं समझना परन्तु वैक्रिय समझना, क्योंकि उनका शरीर वैक्रिय शरीर होता है । इस तरह जीवाभिगम सूत्र की टीका में कहा है ।

आर्द्रचन्दनलिप्तांगा अरूणाम्बरधारिणः ।

चिह्नेन चूडामणिना सदालंक्तमौलयः ॥१८२॥

कुमारत्वमतिक्रान्ता असंप्राप्ताश्च यौवनम् ।

ततोऽतिमुग्ध मधुर मृदु यौवन शालिनः ॥१८३॥

केयूरांगदहाराधैर्भूषिता विलसन्ति ते ।

दीप्रा दशस्वंगुलीषु मणिरत्नांगुलीयकैः ॥१८४॥ विशेषकं ।

ये सभी शरीर पर हमेशा आर्द्र चन्दन का विलेपन करते हैं लाल वस्त्र धारण

करते हैं और चूड़ामणि से अंकित मुकुट को धारण करते हैं । कुमारावस्था उल्लंघन करने के बाद भी यौवनावस्था प्राप्त न होने से उनका यौवन अति मधुर और मृदु हो ऐसा बहुत शोभायमान होता है । शरीर पर केयूर, अंगद, मुक्ताहार आदि आभूषण परिधान करते हैं और दस अंगुलियों में मणिरत्न की अंगूठियां धारण करके वे वहां सदा विलास करके रहते हैं । (१८२-१८४)

देव्योऽप्येवं विधाः काम क्रीडा विधि विचक्षणाः ।

घनस्तना युवजनोन्मादि लावण्ययौवनाः ॥१८५॥

इसी तरह इनकी देवियां भी काम क्रीडा विधि में चतुर, कठिन स्तन युगल से शोभती और युवानों को उन्माद उत्पन्न कराने वाली लावण्यमय यौवन से युक्त होती हैं । (१८५)

सप्तहस्ताः देहमानमेषामुत्कर्षतो भवेत् ।

अंगुलासंख्यांशमानमुत्पत्तौ तज्जघन्यतः ॥१८६॥

इन देवों का देह प्रमाण उत्कृष्ट सात हाथ का होता है और जघन्य उत्पत्ति समय में अंगुल के असंख्यावे अंश सदृश होता है । (१८६)

लक्ष योजनमानं चोत्कर्षादुत्तरवैक्रियम् ।

प्रारम्भेऽङ्गुलसंख्येयभागमानं जघन्यतः ॥१८७॥

उनका उत्तर वैक्रिय शरीर उत्कृष्ट लाख योजन हो सकता है और जघन्य प्रारंभ समय अंगुल के संख्यातवे भाग प्रमाण होता है । (१८७)

एषां च दक्षिणात्यानां स्थितिरुत्कर्षतो भवेत् ।

सागरोपममेकं तदुदीच्यानां च साधिकम् ॥१८८॥

इनमें जो दक्षिण दिशा के हैं उनकी उत्कृष्ट आयु स्थिति एक सागरोपम की और जो उत्तर दिशा के हैं उनकी स्थिति कुछ अधिक है । (१८८)

देवीनां दक्षिणात्यानां सार्धं पल्यत्रयं स्थितिः ।

ज्येष्टोत्तराहदेवीनां सार्धं पल्यचतुष्टयम् ॥१८९॥

दक्षिण दिशा की देवियों की आयुष्य स्थिति उत्कृष्ट साढे तीन पल्योपम की है और उत्तर दिशा की साढे चार पल्योपम की होती है । (१८९)

जघन्या तु वत्सराणां सहस्राणि दश स्थितिः ।

सर्वेषां मध्यमा ज्येष्ठाकनिष्टन्तरनेकधा ॥१९०॥

और इन सब की जघन्य आयु स्थिति दस हजार वर्ष की है और मध्यम स्थिति तो उत्कृष्ट और जघन्य के बीच अनेक प्रकार की है । (१६०)

ज्येष्ठयुषो दाक्षिणात्या मासार्धेनोच्छ्वसन्त्यथ ।

आहारकांक्षिणो वर्षसहस्रेण भवन्ति च ॥१६१॥

उत्कृष्ट आयुष्य वाले दक्षिण दिशा के देव आर्ध मास (पंद्रह दिन) में श्वासोच्छ्वास लेते हैं और इनको एक हजार वर्ष में आहार की इच्छा होती है । (१६१)

उदीच्या सातिरेकेण मासार्धेनोच्छ्वसन्ति वै ।

साधिकाब्द सहस्रेण भवन्त्याहारकांक्षिणः ॥१६२॥

इसी तरह उत्तर दिशा के देव पंद्रह दिन होने के बाद श्वासोच्छ्वास लेते हैं और इनको एक हजार वर्ष से अधिक होने पर आहार की इच्छा होती है । (१६२)

माध्यमस्थितयस्त्येते स्वस्वस्थित्यनुसारतः ।

मुहूर्त्ताहः पृथक्त्वैः स्युरुच्छ्वासाहार कांक्षिणः ॥१६३॥

मध्य आयुष्य स्थिति वाले देव अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार चार मुहूर्त्त में श्वासोच्छ्वास लेते हैं इनको आहार की अभिलाषा भी चार दिन में होती है । (१६३)

जघन्य जीविनः स्तैकैः सप्तभिः प्रोच्छ्वसन्त्यमी ।

एकाहान्तरमाहारं समीहन्ते च चेतसा ॥१६४॥

जघन्य आयुष्य वाले देव सात स्तोक में श्वासोच्छ्वास लेते हैं और इनको एकांतर में आहार लेने की भी इच्छा होती है ।

ततः संकल्प मात्रेणोपस्थितैः सारपुदगलैः ।

ते तृप्येयुः कावलिकाहारानपेक्षिणः सदा ॥१६५॥

उसके बाद उनकी इच्छा होते ही प्राप्त हुए उत्तम पुर्दगलों द्वारा तृप्त होते हैं उनको कभी कवलाहार की अपेक्षा नहीं होती । (१६५)

विषयः स्यात् गतेरेषामथस्तमस्तमार्वाधि ।

तृतीयां पुनरवनीं गता यास्यन्ति च स्वयम् ॥१६६॥

प्रयोजनं तत्र पूर्वरिपोः पीडाप्रवर्धनम् ।

प्राग्वजन्मसुहृदस्तावत्कालं पीडानिवर्त्तनम् ॥१६७॥

उनकी गति नीचे आखिर तमः तमा नरक तक है । तीसरे नरक तक तो वे स्वयमेव गये हैं और जायेंगे । वहां जाने का प्रयोजन यह है कि वहां जाकर पूर्वजन्म के शत्रु को इतने समय अधिक दुःख देना और मित्रों का दुःख इतने समय में दूर करना । (१६६-१६७)

तिर्यक् चैषामसंख्याब्धि द्वीपाः स्युर्विषयो गतेः ।

नन्दीश्वरं पुनर्द्वीपं गता यास्यन्ति च स्वयम् ॥१६८॥

तत्र प्रयोजनं त्वर्हात्कल्याणकेषु पंचसु ।

संवत्सर चतुर्माक्षादिषु चाष्टाहिकोत्सवः ॥१६९॥

उनकी तिर्यक् गति असंख्य द्वीप समुद्र तक की होती है । नन्दीश्वर में तो वे स्वयमेव जाते हैं और जाने वाले भी हैं । वहां जाने का उनका प्रयोजन यह है कि वहां जाकर वे भगवान के पांच कल्याणक दिन, संवत्सरी पूर्व और चतुर्मासादि में अट्ठाई महोत्सव करते हैं । (१६८-१६९)

तथैषां गतिविषय ऊर्ध्वमप्यच्युतावधि ।

स्वर्गं सौधर्मं च यावत् गता यास्यन्ति च स्वयम् ॥२००॥

प्रयोजनं तत्र भवप्रत्ययं वैरमूर्जितम् ।

मातंगपंचाननवदेषां वैमानिकैः सह ॥२०१॥

ततो वैरादमी मत्ता गत्वा वैमानिकाश्रयान् ।

कुर्वन्ति व्याकुलं स्वर्गं त्रासयन्त्यात्मरक्षकान् ॥२०२॥

शक्रमप्याक्रोशयन्ति प्रागुक्तचमरेन्द्रवत् ।

वैरं प्रसिद्धिर्लोकेऽपि देवदानवयोरिति ॥२०३॥

रत्नान्यप्सरसस्तेषां प्रसह्यापहरन्ति च ।

गत्वैकान्तै स्वानुरक्तास्ताः स्वैरं रमयन्त्यपि ॥२०४॥

और ये देव उच्चे अच्युत देवलोक तक जा सकते हैं । सुधमदिव लोक तक तो वे स्वयं गये हैं और जाने वाले हैं । वहां वे इसलिए जाते हैं कि इनको वैमानिक देवों के साथ में हाथी और सिंह समान वैर होता है । इन वैर के कारण वे वैमानिकों के आवास में जाते हैं और वहां स्वर्ग लोक को अकुल व्याकुल कर वहां के रक्षकों को हैरान-पेशान करते हैं । पूर्व में जो चमरेन्द्र का उदाहरण दिया है वैसे वे शक्रेन्द्र पर भी आक्रोश करते हैं । लोक में भी देव दानव के वैर की बात प्रसिद्ध है । उनकी स्त्री रत्न को वे बलात्कार-जबरदस्ती हरण कर जाते हैं और एकांत में जाकर उनको

अपने विषय में अनुरक्त करके इनके साथ में यथेच्छ विलास करते हैं ।
(२००-२०४) इस तरह दो सौ चार श्लोक तक असुरकुमार जाति के देवों का वर्णन किया ।

अथनागनिकायस्य दाक्षिणात्यः सुरेश्वरः ।

धरणेन्द्रो वरिवर्ति साम्प्रतीनस्त्वसौ पुरा ॥२०५॥

आसीदहिर्बहिः काशीपुरतः काननान्तरे ।

शुष्ककाष्ठकोटरान्तः सोऽर्क तापादितोऽविशत् ॥ युगम् ।

अब अन्य नागकुमार जाति के देव के विषय में कहते हैं । नाग कुमार जाति के देवों का दक्षिण दिशा का इन्द्र धरणेन्द्र है । वर्तमान में जो धरणेन्द्र है वह पूर्वजन्म में काशी नगरी के बाहर किसी एक वन में एक सर्प था । वह एक समय सूर्य के ताप से घबराकर सूखे लकड़ी के कोटर में चला गया था । (२०५-२०६)

कमठेन परिप्लुष्टः पंचाग्नि कष्ट कारिणा ।

तापार्तः कर्षितः काष्ठात् श्री पार्श्वेन कृपालुना ॥२०७॥

स चार्हदर्शनान्ष्टपाप्मा श्रुतनमस्कृतिः ।

उपार्जितोर्जितश्रेया धरणेन्द्रतयाभवत् ॥२०८॥

उस समय वहां एक कमठ नाम का तापस पंचाग्नि तप करता था । उसने उसी सूखी लकड़ी को लाकर अपनी धूनी में जलाया । अतः इसमें रहा वह सर्प जलने लगा, परन्तु इनते में कृपालु श्री पार्श्वकुमार ने आकर जलते हुए सर्प को लकड़ी से बाहर निकलवाया । वे पार्श्व कुमार भावी तीर्थकर होने वाले थे । उनके दर्शन से पाप मात्र खतम कर तथा नवकार मंत्र सुनकर उत्तम पुण्य उपार्जन किया और उसी समय मरकर वहां से नागकुमार निकाय देव में इन्द्र रूप में उत्पन्न हुआ । (२०७-२०८)

ततो मेघसूरीभूतकमठेनाकालिकाम्बुदैः ।

एष पार्श्वमुपद्रुयमानमाच्छादयत्फणैः ॥२०९॥

वह कमठ तापस काल धर्म प्राप्तकर मेघ कुमार जाति के देव रूप में उत्पन्न हुआ । इसने पूर्वजन्म के बैर के कारण श्री पार्श्वनाथ भगवान को अकाल में बरसात बरसाकर उपद्रव करने लगा, तब धरणेन्द्र ने अपना पूर्वजन्म का उपकारी समझकर भगवान पर अपने फण को धारण कर रखा था । (२०९)

श्री पार्श्वस्तोत्रमंत्राख्यास्मरणात्तुष्ट मानसः ।

अद्यापि शमयन् कष्टमिष्टानि वितरत्यसौ ॥२१०॥

आज भी यदि हम लोग श्री पार्श्वनाथ भगवान का स्तोत्र या मंत्र अथवा नाम मात्र का भी स्मरण करें तो यह धरणेन्द्र संतुष्ट होकर अपने कष्ट शान्त कर देते हैं और अपना इच्छित पूर्ण करते हैं । (२१०)

षष्टिश्च सप्ततिश्चैवाशीतिः क्रमात् सहस्रकाः ।

पर्षत्त्रये स्युर्देवानां स्थितिश्चैवा यथा क्रमम् ॥२११॥

पल्यस्यार्ध सातिरेकमर्ध देशोनितं च तत् ।

सपंचसप्तति शतं पंचाशं पंचविंशकम् ॥२१२॥

देव्यः पर्षत्सु देशोनं पल्यस्यार्धमिह स्थितिः ।

साधिकः पल्यतुर्याशः तुर्याशं एव च क्रमात् ॥२१३॥ विशेषकं ।

इन धरणेन्द्र की तीन पर्षदा हैं । उसमें अनुक्रम से साठ हजार, सत्तर हजार और अस्सी हजार देव है । तीनों पर्षदा के देवों की आयुष्य स्थिति अनुक्रम से १- आधा पल्योपम से कुछ अधिक, २- ठीक आधा पल्योपम और ३- आधा पल्योपम से कुछ कम है । तीनों पर्षदा की देवियां अनुक्रम से पौने दो सौ, ढेड़ सौ, और सवा सौ है । इनकी आयुष्य स्थिति अनुक्रम से १- आधा पल्योपम से कम २- एक चतुर्थाश पल्योपम से सहज अधिक और ३- एक चतुर्थाश पल्योपम होता है । (२११-२१३)

समिता चंडा जयाख्याः स्युः सभाः धरणेशितुः ।

अपि सामानिकत्रायस्त्रिंशानामेतदाह्वयाः ॥२१४॥

धरणेन्द्र की जो तीन पर्षदा हैं उनका नाम १- समिता, २- चंडा और ३- जया है और इसके सामानिक देव की और त्रायस्त्रिंशक देवों की भी इन्हीं नामों की तीन, तीन पर्षदा हैं । (२१४)

लोकपालानां तथाग्रमहिषीणां भवन्ति ताः ।

ईषा तथान्या त्रुटिता ततो दृढरथभिधा ॥२१५॥

इसके लोकपाल देवों की तथा इसकी अग्रमहिषियों की भी ईषा, त्रुटियां और दृढरथा नाम की तीन-तीन पर्षदाएं हैं । (२१५)

शेषाणां भवनेन्द्राणां पर्षदामभिधाः किल ।

तृतीय मंगलमालोक्य विज्ञेया धरणेन्द्रवत् ॥२१६॥

शेष सब भवनेन्द्रों की पर्वदा आदि नाम धरणेन्द्र के समान जानना । इस तरह दूसरे अंश में कहा है । (२१६)

स्युः षडग्रमहिष्योऽस्य अला मक्का शतेरिका ।

सौदामिनीन्द्रा च धनविद्युतेति च नामतः ॥२१७॥

और धरणेन्द्र को छह अग्रमहिषी-पटरानियां हैं १- अला २- मक्का ३- शतेरिका ४- सौदामिनी ५- इन्द्रा और ६- धनविद्युता नाम है । (२१७)

षड्भिः सहस्रैः देवीनां प्रत्येकं परिवारिताः ।

षट् सहस्राणि देवीनां विकुर्वितुमपि क्षमाः ॥२१८॥

प्रत्येक पटरानी के छः-छः हजार देवियों का परिवार है । क्योंकि ये प्रत्येक इतनी ही देवियां बना सकती हैं । (२१८)

शेषाणामप्यथेन्द्राणामष्टानां यामम्यदिग्भवाम् ।

षड् षडग्रमहिष्यः स्युरेतैरेव च नामभिः ॥२१९॥

ये शेष और आठ दक्षिणात्य इन्द्रों की भी इसी ही नाम की छः-छः पटरानियां होती हैं । (२१९)

काशीनगर वास्तव्याश्चतुर्भ्यंचाशदप्यम् ।

वृहत्कन्याः स्वाभिधानुरुपाख्यपितरोऽभवन् ॥२२०॥

पार्श्वं पार्श्वीदत्त दीक्षाः शिक्षिता, पुष्य चूलया ।

विराद्धसंयमाः पक्षं संलिख्य च मृतास्ततः ॥२२१॥

स्वाख्याचतंसभवने स्वाख्यसिंहासन स्पृशि ।

देवीत्वेन समुत्पन्नाः सार्धपल्यमितायुषः ॥२२२॥ युग्मं ।

ये सारी पूर्वजन्म में काशी नगरी में अपने नाम सदश नाम वाले माता-पिता की बड़ी उम्र कुमारिका थीं । इन्होंने श्री पार्श्वनाथ भगवान के पास व्रत अंगीकार करके पुष्यचूला आर्या के पास में अभ्यास किया था परंतु संयम की विराधना कर वे आधे मास की संलेखनापूर्वक मृत्यु प्राप्त कर वहां से अपने-अपने नाम समान नाम युक्त सिंहासनवाली अवतंस भवन में ढेड पल्योपम की आयुष्य वाली देवियां हुई हैं । (२२०-२२२)

भूतानंदाद्योत्तराहेन्द्राणामपि मनःप्रियाः ।

सन्ति षड् षड् वक्ष्यमाणै रूपाद्यैः षड्भिराह्वयैः ॥२२३॥

भूतानंदादिक उत्तर दिशा के इन्दु हैं उनकी भी छः-छः पटरानियां है । इनके रूपा आदि नाम है वह आगे कहा जायेगा । (२२३)

चतुष्पंचाशतोऽप्यूनपल्योपमयुगायुषाम् ।
प्रागासां नगरी चम्पा बाच्चा शेषमिहोक्तवत् ॥२२४॥

उन चव्वन का आयुष्य दो पल्योपम से कुछ कम है और ये पूर्वजन्म में चम्पापुरी की रहने वाली थी । शेष वृत्तान्त पूर्व के समान है । (२२४)

कालपालः कोलपालः शैलपालोऽस्य च क्रमात् ।
शंखपालश्च चत्वारो लोकपालः सुरेशितुः ॥२२५॥

अशोका विमला चैव सुप्रभा च सुदर्शना ।
एषां चतस्रो दयिताः प्रत्येकमेतद्बाह्वयाः ॥२२६॥

इस इन्द्र के १- काल पाल २- कोलपाल ३- शैलपाल और ४- शंखपाल इन नाम वाले चार लोकपाल हैं । इन प्रत्येक को अशोका, विमला, सुप्रभा और सुदर्शना नाम की चार-चार पटरानियां है । (२२५-२२६)

भद्रसेनोऽस्य च यशोधरः सुदर्शनः क्रमात् ।
नीलकंठस्तथानन्दो नन्दनस्तेतलीति च ॥२२७॥

पत्तिबाजीभमहिषरथांख्यानां यथाक्रमम् ।
नट गन्धर्वयोश्चापि सैन्यानामधिपाः स्मृताः ॥२२८॥ युग्मं ।

तथा इस धरणेन्द्र की १- पैदल, २- अश्व, ३- हस्ती, ४- महिष, ५- रथ, ६- नट और ७- गंधर्व - ये सात प्रकार की सेना है और इसके अनुसार क्रम से भद्रसैन, यशोधर, सुदर्शन, नीलकंठ, आनंद, नंदन और तेतली बरन नाम के सेनाधिपति है । (२२७-२२८)

अस्याद्य कच्छयां पत्तिनेतुर्देवसहस्रकाः ।
स्युरध्याविंशतिः कच्छाः षडन्या द्विगुणाः क्रमात् ॥२२९॥

पैदल सेना के अधिपति के हाथ के नीचे पहली कच्छा में अट्ठाईस हजार देव है और शेष छः कच्छा में अनुक्रम से उत्तरोत्तर दुगने-दुगने देव होते हैं । (२२९)

एतदेव च सप्तानां कच्छानां मानमूहताम् ।
उक्तान्यभवनेशेन्द्रपत्तिसैन्याधिकारिणाम् ॥२३०॥

इसके अलग अन्य भवन पतियों की पैदल सेना के अधिपतियों के हाथ नीचे की सात कंछाओं में भी इसी तरह देव संख्या जानना । (२३०)

षड्भिः सहस्रैरिन्द्रोऽयं सामानिकै रूपासितः ।

पर्षत् त्रायस्त्रिंशलोकपालसैन्यतदधीश्वरैः ॥२३१॥

छः हजार सामानिक देवों की तीन तो पर्षदा है और तैतीस त्राय स्त्रिंशक देव, चार लोकपाल, सात सेना और उतने ही सैन्याधिपति धरणेन्द्र की सेवा में तैयार रहते हैं । (२३१)

प्रत्याशं सेवितः षड्भिः सहस्रैरात्मरक्षणाम् ।

सर्वाग्रेण चतुर्विंशत्या सहस्रैर्महाबलैः ॥२३२॥

तथा प्रत्येक दिशा में छः-छः हजार मिलाकर चौबीस हजार महाबलवान देव इसके अंगरक्षक रूप में बैठे रहते हैं । (२३२)

भवनानां चतुश्चत्वारिंशल्लक्षाणि पालयन् ।

समुद्भः शास्ति साम्राज्यं सार्धपत्न्योपम स्थितिः ॥२३३॥ विशेषकम् ।

इस प्रकार समृद्धि वाला और ढेड पत्न्योपम के आयुष्य वाला यह इन्द्र चवालीस लाख भवनों का अनुपालन करता हुआ साम्राज्य भोगता है । (२३३)

दधिपाण्डुरवर्णांगो नीलाम्बर मनोरमः ।

सर्पस्फटाचिह्नशालिभूषणो गतदूषणः ॥२३४॥

किसी प्रकार के दूषण बिना इस धरणेन्द्र का देह-शरीर दही के समान पांडुर वर्ण वाला है, वह हमेशा मनोहर नीला वस्त्र परिधान करता है । और सर्प की फन से अंकित सुन्दर आभूषण रूप मुकुट धारण करता है । (२३४)

भूषणमत्र मुकुटो दृष्टव्य इति जीवाभिगम वृत्तौ । एवमग्रेऽपि ।

जीवाभिगम वृत्तौ में भी कहा है भूषण रूप यहां मस्तक पर मुकुट सदैव विराजमान होता है ।

एकया स्फटया जम्बूद्वीपं छादयितु क्षमः ।

धरणेन्द्र साधिकं तं वक्ष्यमाणो भुजंगराट् ॥२३५॥

अपनी एक ही फन से सम्पूर्ण जम्बू द्वीप को आच्छादित कर सकता है, इतना धरणेन्द्र में सामर्थ्य है और अब जिसके विषय में कहना है उस नागेन्द्र में तो इससे भी अधिक सामर्थ्य है । (२३५)

इस तरह दक्षिण दिशा के नाग कुमार के इन्द्र की बात की ।

इन्द्रो नागनिकायस्योदीच्योऽथ परीकीर्त्यते ।

भूतानन्दोऽस्य पर्षत्सु तिसृष्वपि सुराः क्रमात् ॥२३६॥

पंचाश दथ षष्टिश्च सप्ततिश्च सहस्रकाः ।

पत्यं देशोनमर्धं च पत्यस्य साधिकं तथा ॥२३७॥

अर्धं पत्योपमं चैषां स्थितिः क्रमात् शतद्वयम् ।

पंचविंशं द्वे शते च शतं द्वेष्यः क्रमादिह ॥२३८॥ विशेषकं ॥

अब उत्तर दिशा के नाग कुमारों का इन्द्र भूतानंद है, उसके विषय में कहते हैं । इस भूतानंद की भी तीन पर्षदा है । प्रत्येक पर्षदा में अनुक्रम से पचास हजार, साठ हजार और सत्तर हजार देव है, जिनकी आयुष्य स्थिति क्रमशः एक पत्योपम से कुछ कम, आधा पत्योपम से कुछ अधिक तथा सम्पूर्ण आधा पत्योपम है । इन तीनों पर्षदाओं में अनुक्रम से दो सौ पच्चीस दो सौ और एक सौ देवियां है ।

(२३६-२३८)

आसां पत्योपमस्यार्धं देशोनमर्धमेव च ।

सातिरेकश्च तुर्यांशः स्थिति ज्ञेयायथाक्रमम् ॥२३९॥

उसकी आयुष्य स्थिति अनुक्रम से आधा पत्योपम, आधे पत्योपम से कुछ कम, तथा एक चतुर्थांश पत्योपम से कुछ अधिक होती है । (२३९)

रूपा रूपांशा सुरूपा प्रेयस्यी रूपकावती ।

रूपकान्ता तथा रूपप्रभास्य नागचक्रिणः ॥२४०॥

और इसकी १- रूपा २- रूपांशा ३- सुरूपा ४- रूपकावती ५- रूपकान्ता और ६- रूपप्रभा नाम की छह पटरानियां होती है । (२४०)

आसां परिच्छदः प्राग्वल्लोकपालास्तथास्य च ।

काल कौल शंखशैलाः स्यु पालोपषदा अमी ॥२४१॥

सुनन्दा च सुभद्रा च सुजाता सुमना इति ।

एषां चतुर्णां प्रत्येकं चतस्रो दयिता स्मृताः ॥२४२॥

इनका परिवार पूर्वोक्तवत् होता है और इनके काल पाल, कौलपाल, शंखपाल, और शैलपाल नाम के चार लोकपाल होते हैं । इनके प्रत्येक को सुनन्दा, सुभद्रा, सुजाता और सुमना इस तरह चार-चार पटरानियां होती है । (२४१-२४२)

सप्त सेनान्योऽस्य दक्षः सुग्रीवश्च सुविक्रमः ।

श्वेतकंठः क्रमानन्दोत्तरो रतिश्च मानसः ॥२४३॥

सैन्य क्रमस्तु प्रागुक्त एव ।

और इनकी सात सैना पूर्व के समान है, इनके अनुक्रम से १- दक्ष २- सुग्रीव ३- सुविक्रम, ४- श्वेतकंठ ५- नन्दोत्तर, ६- रति और ७- मानस इन नाम के सात अधिपति हैं । (२४३)

षड्भिः सहस्रैरिन्द्रोऽयं सामानिकैरूपासितः ।

त्रायस्त्रिंशैः लोकपालै पार्षदैः सैन्यसैन्यैः ॥२४४॥

सहस्रेः षड्भिरेकैकदिश्यात्परक्षकैः श्रितः ।

चतुर्विंशत्या सहस्रैरित्येवं सर्व संख्यया ॥२४५॥

चत्वारिंशच्च भवनलक्षाणि परिपालयन् ।

साम्राज्यं शास्ति नागानां न्यूनद्विपत्य जीवितः ॥२४६॥ त्रिभिविशेषकम् ।

इसके अनुसार छः हजार सामानिक देव तथा लोकपाल और त्रायस्त्रिंशक देव, सभा सदस्य, सैन्य और सेनाधिपति इनकी हमेशा सेवा करते रहते हैं और प्रत्येक दिशाओं में छः हजार इस तरह चारों दिशाओं में कुल चौबीस हजार देव व अंगरक्षक रहते हैं । इस तरह साहिबी वाला, लगभग दो पत्योपम के आयुष्य वाला नागेन्द्र चालीस लाख भवनों का परिपालन करते हुए नागनिकाय पर साम्राज्य भोग रहा है । (२४६)

देहवर्ण वस्त्र चिन्होत्कृष्ट स्थित्यादिकं भवेत् ।

सर्वेषां भवनेशानां स्वजातीय सुरेन्द्रवत् ॥२४७॥

सर्व भवनपति देवों का शरीर, वर्ण, वस्त्र, चिन्ह तथा उत्कृष्ट आयुष्य स्थिति आदि अपने-अपने जाति के इन्द्रों के समान होती है । (२४७)

इन्द्राणां वक्ष्यमाणेषु निकायेष्वष्टसु स्थितिः ।

तिसृणां पार्षदां देवदेवीसंख्याथ तत्स्थितिः ॥२४८॥

लोकपाल प्रिया भिख्याः सामानिकात्परक्षिणाम् ।

संख्याग्रमहिषीणां च संख्यानाम परिच्छदाः ॥२४९॥

अष्टानां दक्षिणात्यानां विज्ञेया धरणेन्द्रवत् ।

अष्टानामीत्तराहाणां भूतानन्द सुरेन्द्रवत् ॥२५०॥ विशेषकं ।

जिसका वर्णन अब करना है उन आठ निकाय के दक्षिण दिशा के इन्द्रो की स्थिति, पर्षदा, देव देवियों की संख्या और स्थिति, लोक पाल और उनकी स्त्रियों के नाम, सामानिक तथा आत्मरक्षकों की संख्या, पटरानियों की संख्या, इनके नाम और परिवार यें सब धरणेन्द्र के समान जानना । और इसी तरह उत्तर दिशा के आठ इन्द्रों की सर्व बातें भूतानन्द नाम के इन्द्र तुल्य समझना । (२४८-२५०)

केवलं लोकपालानां सुरेन्द्राणां च नामसु ।

विशेषोऽस्ति स एवाथ लाघवाय प्रतन्यते ॥२५१॥

दक्षिणोत्तरयोर्लोकपालानां किन्तु नामसु ।

सर्वत्रापि व्यतीहारः स्यात्तृतीय तुरीययोः ॥२५२॥

दक्षिणस्यां तृतीयो यः तुरीयः स भव्युदक् ।

दक्षिणात्यतुरीयस्तु स्यादुदीच्यां तृतीयकः ॥२५३॥

केवल लोकपाल और इन्द्र के नाम में अन्तर है । वह संक्षेप में कहते हैं - दक्षिण और उत्तर दिशा के लोकपाल के नाम में सर्वत्र तीसरे और चौथे में फेरफार है । दक्षिण दिशा का जो तीसरा है, वह उत्तर दिशा का चौथा है और दक्षिण को जो चौथा है, वह उत्तर का तीसरा है । (२५१-२५३)

वेणुदेवो वेणुदारी स्वर्णांभौ श्वेतवाससौ ।

द्वौ सुपर्णकुमारेन्द्रौ गरुडांकित भूषणौ ॥२५४॥

चित्रो विचित्रश्च चित्रपक्षो विचित्रपक्षकः ।

एतयोरिन्द्रयोर्लोकपालाः स्युरीति नामतः ॥२५५॥

जम्बूद्वीपं वेणुदेवः पक्षेणावरितुक्षमः ।

एनमेव सातिरेकं वेणुदारी सुपर्णराट् ॥२५६॥

सुपर्ण कुमार जाति के देवो का दोनों दिशा के वेणुदेव और वेणुदारी नाम के दो इन्द्र हैं । इनका पीला वर्ण है श्वेतवस्त्रधारी और गरुड के चिन्ह से अंकित मुकुट को धारण करने वाले होते हैं । इनके चित्र, विचित्र चित्रपक्ष और विचित्रपक्ष नाम के चार लोकपाल हैं । वेणुदेव में अपनी एक पंख से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को आच्छादित (ढक) कर देने का सामर्थ्य है और वेणुदारी में इससे अधिक सामर्थ्य होता है । (२५४-२५६)

इन्द्रो विद्युत्कुमारेषु हरिकान्तहरिस्सहौ ।
 तप्त स्वर्णारूपां नीलाम्बरौ वज्रांकभूषणौ ॥२५७॥
 प्रभस्तथा सुप्रभश्च प्रभाकान्तस्तथापरः ।
 सुप्रभाकान्त इत्येते लोकपालाः स्युरेतयोः ॥२५८॥
 एकया विद्युता जम्बूद्वीपं हरिः प्रकाशयेत् ।
 विद्युत्कुमाराधिपतिः साधिकं तं हरिस्सहः ॥२५९॥

विद्युत कुमार जाति के देवों के दोनों दिशा के हरिकान्त और हरिस्सह नाम के इन्द्र है इनका तपाया हुआ सुवर्ण सदृश लालवर्ण है, नीले वस्त्र है और वज्र के चिन्ह से अंकित मुकुट है इनको प्रभु सुप्रभु प्रभाकांत और सुप्रभाकांत इन नाम के चार लोकपाल हैं दोनों विद्युत कुमार इन्द्रों में जो हरिकान्त है वह विद्युत के एक बार ही चमकाने से सारे जंबूद्वीप में प्रकाश ही प्रकाश कर सकता है, और हरिस्सह इससे भी अधिक विभाग को प्रकाशमय कर सकता है । (२५७-२५९)

स्यातामग्निकुमारेन्द्रावग्निशिखग्निमाणवौ ।
 तप्तस्वर्णतन् नीलवस्त्रौ कुम्भांकम् भूषणौ ॥२६०॥
 तेजस्तेजः शिखस्तेजः कान्त स्तेजः प्रभोऽपि च ।
 एतयोः स्युर्लोकपाला विशिष्टोत्कृष्ट बुद्धयः ॥२६१॥
 एकाग्निज्वालाया जम्बूद्वीपं प्लोषयितुं क्षमः ।
 सुरेन्द्रोऽग्निशिखस्तं सातिरेकमग्निमाणवः ॥२६२॥

अग्नि कुमार जाति के देवों के दोनों दिशा के दो इन्द्र, अग्नि शिख और अग्नि माणव नाम के हैं । इनका तप्त सुवर्ण समान वर्ण है, इनके नीले वस्त्र हैं और कुम्भ के चिन्ह से अंकित मुकुट है । इनके तेज, तेजः शिख, तेजःकान्त और तेजःप्रभ नाम के चार महा बुद्धिशाली लोकपाल हैं । अग्नि शिख में एक ही ज्वाला द्वारा समस्त जम्बूद्वीप को जला देने का सामर्थ्य होता है जबकि अग्नि माणव में इससे भी विशेष सामर्थ्य होता है । (२६०-२६२)

इन्द्रो द्वीप कुमाराणां पूर्णो वसिष्ठ इत्युभौ ।
 तप्त स्वर्णं प्रभौ नीलक्षोमौ सिंहाकभूषणौ ॥२६३॥
 रूपो रूपांशश्च रूपकान्ते रूप प्रभोऽपि च ।
 लोकपाला अमी द्वीपकुमार चक्रवर्त्तिनोः ॥२६४॥

जम्बूद्वीपं हस्ततलेनैकं स्थगयितुं क्षमः ।

पूर्णे द्वीपकुमारेन्द्रो वसिष्ठस्तं च साधिकम् ॥२६५॥

द्वीप कुमार जाति के देवों के दोनो दिशाओं के पूर्ण और वसिष्ठ नामक दो इन्द्र हैं, इनकी तपे हुए स्वर्ण समान कान्ति है, इनके नील वस्त्र हैं, और सिंह के चिन्ह के अंकित मुकुट इनके सिर पर होता है । इन दोनों इन्द्रों के रूप, रूपांश रूप कान्त और रूप प्रभ नाम के चार-चार लोकपाल होते हैं । पूर्ण इन्द्र में सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को हथेली में छिपाने का सामर्थ्य होता है जबकि वसिष्ठेन्द्र में जम्बू द्वीप से भी अधिक को छिपा देने का सामर्थ्य होता है । (२६३-२६५)

अथोदधि कुमारेन्द्रौ जलकान्तजलप्रभौ ।

शुक्लद्यूती नीलवस्त्राश्वरूपांक भूषणौ ॥२६६॥

जलश्च जलरूपश्च जलकान्तो जलप्रभः ।

लोकपालाः स्युरुदधिकुमारसुरराजयोः ॥२६७॥

एकेनाम्बुतरंगेण जम्बू द्वीपं प्रपूरयेत् ।

जलकान्तः सुराधीशः साधिकं तं जलप्रभः ॥२६८॥

उदधि कुमार जाति के देवों के दोनों दिशा के जलकांत और जल प्रभ नामक दो इन्द्र हैं उनका श्वेत वर्ण है, नील वस्त्र धारण करने वाले हैं, और अश्व चिन्ह से अंकित मुकुट को धारण करने वाले हैं । इनके जल, जलरूप, जलकांत और जलप्रभ नामों के चार-चार लोकपाल हैं । जलकांत इन्द्र जल की एक तरंग से समस्त जम्बूद्वीप को पूरा भर सकने में समर्थ हैं जबकि जो जलप्रभ है, वह इससे अधिक भरने में समर्थ हो सकता है । (२६६-२६८)

दिक्कुमारेशावमितगतिश्चामित वाहनः ।

स्वर्ण गौरौ शुभ वस्त्रौ गजरूपांक भूषणौ ॥२६९॥

एतयोस्तवरितः क्षिप्रः सिंहश्च सिंहविक्रमः ।

चत्वारो गत्युपपदा लोकपालाः प्रकीर्तिताः ॥२७०॥

एकपाष्णिप्रहारेण जम्बूद्वीपं प्रकम्पयेत् ।

इन्द्रोऽमितगतिः सातिरेकं त्वमितवाहनः ॥२७१॥

दिक्कुमार जाति के देवों के दोनों दिशा के अमित गति और अमित वाहन नामक दो इन्द्र हैं । इनका वर्ण सुवर्ण जैसा पीला है, वस्त्र सफेद और मस्तक का मुकुट हस्त के चिन्ह से अंकित है । दोनों इन्द्रों के त्वरित गति, क्षिप्रगति, सिंहगति,

और सिंह विक्रम गति नामक चार-चार लोकपाल है । अमित गति इन्द्र में इतना सामर्थ्य है कि एक चरण प्रहार से जम्बूद्वीप को कम्पायमान कर सकता है । जबकि दूसरा अमितवाहन इससे भी विशेष प्रदेश को कम्पायमान करने में समर्थ है ।
(२६६-२७१)

इन्द्रौ वायुकुमारेषु वेलंबाख्यप्रभंजनौ ।
श्यामौ सन्ध्यारागवस्त्रौ मकरांकितभूषणौ ॥२७२॥
कालश्चाथ महाकालोजनश्च रिष्ट एव च ।
स्युर्लोकपाला वेलंबप्रभंजनसुरेन्द्रयोः ॥२७३॥
मरूत्तरंगेणैकेन जम्बूद्वीपंप्रपूरयेत् ।
वेलंबेन्द्र सातिरेकं तं पूरयेत् प्रभंजनः ॥२७४॥

वायु कुमार जाति के देवों के दोनों दिशा के वेलम्ब और प्रभंजन नाम के इन्द्र है । इनकी कान्ति श्याम है और संध्या के वर्ण सदृश वस्त्र है और इनका मकर चिन्ह से अंकित मुकुट होता है । दोनों को काल, महाकाल, अंजन और रिष्ट नाम के चार-चार लोकपाल होते हैं । वेलम्ब इन्द्र में पवन चपेट से जम्बू द्वीप को भर देने में समर्थता होती है जब कि प्रभंजन इन्द्र में इससे भी अधिक प्रदेश को भर देने की समर्थता होती है । (२७२-२७४)

इन्द्रौ घोषमहोघोषौ स्तनिताख्यकुमारयोः ।
स्वर्णवर्णौ शुक्लवस्त्रौ वर्द्धमानांक भूषणौ ॥२७५॥
आवर्तौ व्यावर्तनामा नन्द्यावर्तस्तथापरः ।
महानन्द्यावर्त एते लोकपालाः स्युरेतयोः ॥२७६॥
स्तनितध्वनिनैकेन बधिरीकर्तुमीश्वरः ।
घोषो जम्बूद्वीपमेनं महाघोषस्तु साधिकम् ॥२७७॥

अब अन्तिम दसवां स्तनिक कुमार जाति के देवों के दोनों दिशा के घोष और महाघोष नामक इन्द्र हैं । इनका सुवर्ण समान वर्ण है और इनके वस्त्र सफेद होते हैं तथा स्वस्तिक के चिन्ह से अंकित मुकुट होता है । दोनों इन्द्रों को आवर्त व्यावर्त नन्द्यावर्त और महानन्द्यावर्त नाम के चार-चार लोकपाल होते हैं । जो घोष नाम का इन्द्र है वह अपनी गर्जना की आवाज से समग्र जम्बूद्वीप को बहरा कर देने में सामर्थ्य रखता है और महाघोष इन्द्र इससे अधिक प्रदेश को बहरा करने में समर्थ है । (२७५-२७७)

एवं सर्वनिकायेषु देवा दश दशाधिपाः ।

दाक्षिणात्योत्तराहेन्द्रौ लोकपालास्तथाष्ट च ॥२७८॥

इस तरह सर्व निकायो में उत्तर दक्षिण के दो इन्द्र और आठ लोकपाल मिलकर दस-दस अधिपति देव होते हैं । (२७८)

इस तरह बीस इन्द्रों में से असुर जाति के चमरेन्द्र और बलीन्द्र दोनों का विस्तार सहित स्वरूप कहा गया है अतः शेष रहे धरणेन्द्र आदि अठारह के विषय में विशेष कहने को है वह कहते हैं ।

एवं च धरणेन्द्राद्या इन्द्रा अष्टादशाप्यमी ।

स्वैः स्वैः सामानिकैस्त्रायस्त्रिंशकैर्लोकपालकैः ॥२७९॥

पार्षदैः त्रिविधैरग्रमहिषीभिरूपासिताः ।

सेनानीभिस्तथा सैन्यैः समन्तादात्परक्षकैः ॥२८०॥

दाक्षिणात्योदीच्यनिजनिकायजैः परैरपि ।

सेविताः स्वस्वभवनलक्षाणां दधतीशताम् ॥२८१॥ विशेषकं ।

इस प्रकार धरणेन्द्र अठारह इन्द्रों की सेवा में भी उनके - उनके सामानिक, त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल, तीन-तीन पर्षदाएं, पटरानियां, सैन्य, सेनाधिपतियों, अंगरक्षकदेव तथा उनकी जाति में उत्पन्न होने वाले अन्य देव लगातार हाजर हजुर (सेवा) में रहते हैं । और ऐसा ऐश्वर्य भोगते हुए ये अठारह इन्द्र अपने-अपने लाखों भवनों पर स्वामित्व भोगते हैं । (२७९-२८१)

रूपलावण्य सौभाग्यादिभिस्तु चमरेन्द्रवत् ।

महर्द्धिका महासौख्या महबला महोदयाः ॥२८२॥

और इनका चमरेन्द्र के समान रूप, लावण्य, सौभाग्य, महासुख, महान् अर्द्धि, महाबल और महान् उदयवान् होते हैं । (२८२)

एकं जम्बूद्वीपमेते रूपैः पूरयितुं क्षमाः ।

स्वजातीयैर्नवैस्तिर्यक् संख्येय द्वीपवारिधीन् ॥२८३॥

तथा वे अपने रूप द्वारा एक जम्बू द्वीप को भर देने का समर्थता है, परन्तु स्व-स्वजातीय नये रूप धारण करना पड़े तो तिर्च्छालोक के संख्यातवे द्वीप समुद्र को भी भर देते हैं । (२८३)

एवं सामानिकास्त्रायस्त्रिंशकाः लोकपालकाः ।
 एषामग्रमहिष्योऽपि कर्तुं विकुर्वणा क्षमाः ॥२८४॥
 अल्पाल्पकान् किन्तु तिर्यक् द्विपाब्धीन् पूरयन्त्यमी ।
 प्राच्यपुण्यप्रकर्षात् स्वस्वलब्धयनुसारतः ॥२८५॥

इन अठारह इन्द्रों के समान सामानिक लोकपाल त्रायस्त्रिंशक और पटरानियां भी नये नये रूप धारण करने में समर्थ होते हैं । परन्तु ये सभी पूर्वजन्म के पुण्य प्रकर्ष से प्राप्त हुई लब्धि के अनुसार तिच्छर्छा लोक में थोड़े ही द्वीप समुद्र भर सकती है विशेष नहीं । (२८४-२८५)

तथाहुः धरणेण भते नाग कुमारिन्दे नाग कुमार राया । इत्यादि भगवती सूत्रे ।

अर्थात् यह बात श्री भगती सूत्र में कहा है ।

जम्बूद्वीपं मेरूमूर्ध्नि धृत्वा छत्राकृतिं क्षणात् ।
 कर्तुं मेघामन्यतमः क्षमः स्वबललीलाया ॥२८६॥

तथा इन अठारह में प्रत्येक इन्द्र में बल इतना सारा है कि वह चाहे तो जम्बूद्वीप को उठाकर मेरूपर्वत के शिखर पर छत्राकार रूप में रख सकता है । (२८६)

इत्थं प्रत्येकं प्रागुक्ता चैषा शक्तिः देवेन्द्र स्तवे ।

अर्थात् ऐसी शक्ति की बात 'देवेन्द्र स्तव' में कही गई है ।

शक्तेर्विषय एवायं नाकारोन्न करिष्यति ।
 न चैवं कुरुते कश्चिद्विकुर्वाणादिशक्तिवत् ॥२८७॥

इतना सारा इन में करने का सामर्थ्य होता है । इस तरह कहने का सामर्थ्य है । वह कभी ऐसा उन्होंने नहीं किया है, ऐसा करना भी नहीं है तथा ऐसा करने वाले नहीं है । (२८७)

उत्पद्यन्ते परेऽप्येवं निकायेषु नवस्विह ।
 सुखानि भुञ्जते देवाः प्राच्य पुण्यानुसारतः । २८८॥

इन नौ निकाय में अन्य भी देव उत्पन्न होते हैं वे भी पूर्व पुण्य के अनुसार वहां सुख भोगते हैं । (२८८)

दशानामसुरादीनां भवनाधिपनाकिनाम् ।
 अश्वत्थाद्याश्चैत्यवृक्षा दश प्रोक्ता यथाक्रमम् ॥२८९॥

भवनपति निकाय असुर आदि दस जाति के इन्द्रों के अनुक्रम से दस चैत्य वृक्षा कहे है । (२८६)

तथोक्तं स्थानांगे दसमस्थानके
अस्सत्थ सत्तवन्ने सामलि उम्बर सिरीस दहिवन्ने ।
वंजुल पलास वण्णो तत्ते य कणियाररूखे य ॥२६०॥
अनेन क्रमेण अश्वत्थादयः चैत्य वृक्षाः ये सिद्धायतना दि
द्वारेषु श्रूयन्ते । इति स्थानांग वृत्तौ ॥

स्थानांग सूत्र के दसवें स्थानक में ये वृक्ष सिद्धायतन आदि के द्वारों में क्रमवार इस तरह से कहे हैं - १- अश्वत्थ २- सप्तवर्ण, ३- श्यामजि, ४- उम्बर ५- शिरीष ६- दधिवर्ण ७- वंजुला ८- वप्रोत्तप्त और १०- कर्णिकार । (२६०)

एतेषा दाक्षिणात्यानां सार्धं पल्योपम स्थितिः ।
उदीच्यानां तु देशोनं स्थितिः पल्योपमद्वयम् ॥२६१॥

इन देवों में जो दक्षिण दिशा के देव हैं वे ढेड़ पल्योपम की आयुष्य की स्थिति वाले हैं और जो उत्तर दिशा के देव हैं वे दो पल्योपम से कुछ कम होते हैं । (२६१)

देवीनां दाक्षिणात्यानार्धं पल्योपमं स्थितिं ।
उदीच्यानां तु देशोनेमेकं पल्योपमं स्थितिः ॥२६२॥

दक्षिण दिशा की देवियों की आयुष्य स्थिति आधे पल्योपम की है और उत्तर दिशा की देवियों की एक पल्योपम से कुछ कम कही है । (२६२)

दशाब्दानां सहस्राणि सर्वेषां सा जघन्यतः ।
आहारोच्छ्वास कालांगमानं व्यन्तरदेववत् ॥२६३॥

और सर्वदेवियों की जघन्य आयुष्य स्थिति दस हजार वर्ष की है । सभी का आहार, श्वासोच्छ्वास का काल और देहमान आदि व्यन्तर देवे के समान समझना । (२६३)

वसन्ति यद्यप्यसुरा आवासापरन्मसु ।
प्रायो महामंडपेषु रामणीय कशालिषु ॥२६४॥
कदाचिदेव भवनेष्वन्ये नागादयः पुनः ।
वसन्ति भवनेष्वेव कदाचित् मंडपेषु तु ॥२६५॥

तथापि भवनेष्वेषां निवास रूढयपेक्षया ।

सामान्यतोऽपि भवनवासिनः स्युर्दशापि हि ॥२६६॥

असुर जाति के देव प्रायः रमणीक आवास अर्थात् महामंडपों में और कदाचित भवनों में रहते हैं जबकि दूसरे नागकुमार आदि देव प्रायः भवन में और कभी आवास में रहते हैं । फिर भी सर्व जाति वालों को भवन में रहने की रूढि की अपेक्षा से इनको भवनवासी ऐसा सामान्य नाम होता है । (२६४-२६६)

सम्मूर्च्छिमा गर्भजाश्च तिर्यचो गर्भजा नराः ।

षट्संहननसंपन्ना विराद्द्वार्हतदर्शनाः ॥२६७॥

मिथ्यात्विनश्चोग्रबालतपसः प्रोत्कटक्रुधः ।

गर्वितास्तपसा वैरकूरा द्वैपायनादिवत् ॥२६८॥

उत्पद्यन्ते एषु मृत्वा च्युत्वामी यान्ति चामराः ।

गर्भजेषु नृतिर्यक्षु संख्येय स्थिति शलिषु ॥२६९॥

पर्याप्तबादरक्ष्माम्बु प्रत्येक पादपेषु च ।

आरभ्यैकमसंख्येया वध्येकसमयेन ते ॥३००॥

उत्पद्यन्ते च्यवन्तेऽत्र जघन्यं गुरु चान्तरम् ।

संमयश्च मूहूर्त्ताश्च चर्तुविशतिसंमिताः ॥३०१॥ कुलकं ।

१- सम्मूर्च्छिम, २- गर्भज तिर्यच, ३- छः संघयण वाले गर्भज मनुष्य, ४- इसी प्रकार के मिथ्यावी, ५- समझे बिना उग्र तपस्या करने वाले और ६- द्वैपायन ऋषि आदि के समान अति क्रोधी, अति वैर द्वारा और तपस्या के गर्व वाले - इस प्रकार के जीव अरिहंत के शासन की विराधना के कारण से मृत्यु के बाद इन निकायों में उत्पन्न होता है । और यहां से च्यवन कर ये देव संख्यात् आयु स्थिति वाले १- गर्भज मनुष्य २- गर्भज तिर्यच तथा पर्याप्त बादर ३- पृथ्वीकाय, ४- अप्पकाय तथा ५- प्रत्येक वनस्पतिकाय में उत्पन्न होते हैं । वे एक समय में एक से लेकर असंख्यात तक उत्पन्न होते हैं और च्यवन होता है । इनमें उत्पत्ति और च्यवन के बीच में जघन्य अन्तर एक समय का है और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त्त का होता है । (२६७-३०१)

एषां लेश्याः कृष्ण नील तेजः कापोत्तसंज्ञिकाः ।

स्युश्चतस्रो नान्तिमे द्वे तथाभवस्व भावतः ॥३०२॥

इनको चार लेश्या होती है कृष्ण लेश्या, नील लेश्या तेजो लेश्या और कापोत लेश्या । अन्तिम दो लेश्या नहीं होती, क्योंकि संसार स्वभाव में उनको नहीं होती है । (३०२)

किं चिन्यूनार्धपाथोधिजीविनोऽवधिचक्षुषा ।

संख्येयानि योजनानि पश्यन्ति भवनाधिपाः ॥३०३॥

परे पुनरसंख्यानि तान्येवं तत्र भावना ।

यथा यथायुषो वृद्धिः क्षेत्र वृद्धिस्तथा तथा ॥३०४॥

इन भवन पति निकाय के देवों में जिनका आयुष्य आधे सागरोपम से कम होता है, वह अवधिज्ञान द्वारा संख्यात योजन तक देख सकता है । जबकि अन्य असंख्य योजन तक देख सकता है । इस कारण से जैसा जैसा आयुष्य अधिक होगा उतना-उतना देखने का क्षेत्र प्रदेश भी अधिक होता है । (३०३-३०४)

एवं च अवधेर्विषयो नागादिषु संख्येय योजनः ।

असुरेषुत्वसंख्येय द्वीप वाद्धिमितो गुरुः ॥३०५॥

और इस कारण से असुर कुमार जाति वाले उत्कृष्ट से असंख्य द्वीप समुद्र तक देख सकते हैं । जबकि अन्य नौ जाति के देव उत्कृष्ट संख्यात योजन तक देख सकते हैं । (३०५)

सर्वेष्वपि लघुः पंचविंशत्या योजनैर्मितः ।

विषयः स्यात् स च दशसहस्रवर्षजीविषु ॥३०६॥

सबसे कम में कम पच्चीस योजन तक देख सकते हैं, और इतना देखने वाले की दस हजार वर्ष की आयुष्य होती है । (३०६)

भवनेशा व्यन्तराश्च पश्यन्त्यवधिना बहु ।

ऊर्ध्वं यथासौ चमरोऽद्राक्षीत्सौधर्मवासवम् ॥३०७॥

अधस्तिर्यक् चाल्यवेवमाकृतिर्जायतेऽवधेः ।

तप्रस्येवायतत्र्यस्वस्तप्रः स विदितो जने ॥३०८॥

भवनपति देव और व्यन्तरदेव अपने अवधिज्ञान के बल से ऊँचे बहुत दूर तक देख सकते हैं । जैसे कि चमरेन्द्र सौधर्म इन्द्र को देख सकता है । परन्तु तिरछे और नीचे तो बहुत अल्प क्षेत्र प्रदेश देख सकते हैं और इस तरह होने से इस

अवधि की आकृति 'तत्र सदृश कहलाती है । तत्र अर्थात् चौड़ा त्रिकोन लोक में प्रसिद्ध है ।' (३०७-३०८)

भवनपतिभिरैवं भूषितः स्वप्रभाभिः तिमिर निकर भीष्मः कोऽप्यधोलोक एषः ।

ततिभिरिव निशीथो दीप दीपांकुराणाम् इव धनवनखंडः पुण्डरीकैः प्रफुल्लैः ॥३०६॥

बिलकुल गाढ अन्धकार पूर्ण यह अधोलोक भवनपति देव की चमकती कान्ति के कारण मध्य रात्रि में तेजस्वी दीपकों की हारमाला के कारण शोभायमान होती है और बहुत घना झाड़ी वाला जगत प्रफुल्लित कमल श्रेणि के कारण शोभायमान होता है वैसा शोभायमान होता है । (३०६)

विश्वाश्चर्यद कीर्ति कीर्ति विजय श्री वाचकेन्द्रान्तिष द्राजश्रीतनयोऽतनिष्ट विनयः श्री तेजपालात्मजः ।
काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जगतत्व प्रदीपोपमे, सर्गाय सुभगः त्रयोदशतमः सार्धः समाप्तः सुखम् ॥३१०॥

इति त्रयोदशः सर्गः ॥

समग्र जगत को आश्चर्य में गायी जाती कीर्ति वाले श्री कीर्ति विजय जी वाचकेन्द्र के अन्तेवासी तथा माता राजश्री और पिता तेजपाल के सुपुत्र विनय विजय जी ने जगत के निश्चित तत्वों को दीपक के समान प्रकाश में लाने वाले जो इस ग्रन्थ की रचना की है उसका मनोहर सुन्दर अर्थवाला तेरहवां सर्ग विघ्नरहित समाप्त हुआ है । (३१०)

॥ तेरहवां सर्ग समाप्त ॥

चौदहवां सर्ग

मुक्तवैकैकं सहस्र चोपर्यथः प्रथमक्षितेः ।

सहस्रैरष्टसप्तत्याऽधिके योजन लक्षके ॥१॥

त्रयोदश प्रस्तराः स्युः नरकावास वीथयः ।

समश्रेणि स्थायिभिस्तैरकैकः प्रस्तटोहियत् ॥२॥ युग्मं ।

चौदहवें सर्ग में प्रथम नरक पृथ्वी के एक लाख अस्सी हजार योजन पिंड में से ऊपर नीचे हजार-हजार छोड़कर शेष एक लाख अठहत्तर हजार योजन में तेरह प्रस्तर आते हैं, वहाँ नरकवास की श्रेणियों वाले तेरह प्रस्तट-प्रतर हैं क्योंकि समश्रेणि में रहे उस नरकावास द्वारा एक-एक प्रतर होते हैं । (१-२)

तथोक्तमंरीजीवाभिममे - "इमीसेणं रयणुप्यभाए पुढवीए असीउत्तरजो अण सय सहस्स बाहल्लाए उवरि एगं जो अण सहस्सं ओगा हेत्तो हेठाचेगं जो अण सहस्सं वज्जिता मज्जे अट्टहुत्तरे जो अण सय सहस्से इत्थणं रयणुप्य भाए, पुढवीए तीसं नरयावास सयसहस्सा भवन्ती तिंमख्खाया ।"

"इस सम्बन्ध में श्री जीवाभिमम सूत्र में इस तरह वचन मिलते हैं - एक लाख अस्सी हजार योजन के विस्तार वाली रत्नप्रभा पृथ्वी में ऊपर एक हजार योजन तथा नीचे भी एक हजार योजन छोड़कर मध्य में एक लाख अठहत्तर योजन प्रदेश में तीस लाख नरक वास के स्थान है ।"

सर्वेऽध्यमी योजनानां सहस्रत्रयमुच्छ्रिताः ।

सर्वास्वपि क्षितिष्वेषां मानं ज्ञेयमिदं बुधैः ॥३॥

समग्र प्रस्तर तीन हजार योजन ऊँचे हैं । दूसरे नरको में भी प्रस्तरों की इसी तरह ऊँचाई है । (३)

एकादश सहस्राणि शतानि पंच चोपरि ।

त्र्य शीतियेजिनान्यंशस्तृतीयो योजनस्य च ॥४॥

और यह प्रस्तर एक दूसरे से ग्यारह हजार पांच सौ तिरासी पूर्ण अंक और एक तृतीयांश योजन अन्तर से है । (४)

एतावदन्तरं ज्ञेयं प्रस्तटानां परस्परम् ।

प्रति प्रतटमेकैको भवेच्च नरकेन्द्रकः ॥५॥

तथाहि - सीमन्तकः स्यात्प्रथमे द्वितीये रोरकाभिधः ।

भ्रान्तास्तृतीये उद्भ्रान्तश्चतुर्थे प्रस्तटे भवेत् ॥६॥

संभ्रान्तः पंचमेज्ञेयः षष्टेऽसंभ्रान्त संज्ञकः ।

विभ्रान्तः सप्तमे तप्तसंज्ञितः पुनरष्टमे ॥७॥

नवमे शीतनामा स्याद्वक्रान्तो दशमे भवेत् ।

एकादशे त्वक्क्रान्तो विक्रान्तो द्वादशे भवेत् ॥८॥

त्रयोदशे रोरूकः स्यादेवमेते त्रयोदश ।

प्रति प्रतरमेभ्यश्च निर्गता नरकालयाः ॥९॥

प्रत्येक प्रस्तर पर एक नरकेन्द्र है । उनके प्रत्येक के नाम इस तरह है - प्रथम प्रस्तर में सीमन्तक, दूसरे में रोरक, तीसरे में भ्रान्त, चौथे में उद्भ्रान्त, पांचवें में संभ्रान्त, छठे में असंभ्रान्त, सातवें में विभ्रान्त, आठवें में तप्त, नौवें में शीत, दसवें में वक्रान्त, ग्यारहवें में अवक्रान्त, बारहवें में विक्रान्त और तेरहवें में रोरूक, इस तरह तेरह है । इससे प्रत्येक प्रतरप्रति नरकवास निकला है । (५ से ९)

प्रथम प्रतरे तत्र सीमन्त नरकेन्द्रकात् ।

निर्गता नरकावासावल्थोदिक्षु विदिक्षु च ॥१०॥

एकोनपंचासशद्वासा दिशां नरकपंक्तिषु ।

अष्ट चत्वारिंशदेते विदिक् नरकपंक्तिषु ॥११॥

त्रिंशत्येकोननवतिः प्रथमे सर्वपंक्तिगाः ।

प्रतिप्रतरमेकैकन्यूना अष्टापि पंक्तयः ॥१२॥

इसमें प्रथम प्रस्तर या प्रतर में सीमन्तक नरकेन्द्र से नरकावास की आठ पंक्तियां निकलती हैं । चार प्रत्येक दिशा में और चार प्रत्येक विदिशा में । तथा चार दिशाओं की प्रत्येक पंक्ति में उनचास आवास है और चार विदिशाओं की प्रत्येक पंक्ति में अड़तालीस आवास है । अतः इस प्रथम प्रस्तर में सर्व आठ पंक्तियों में सब मिलाकर तीनसौ नवासी (३८६) आवास होते हैं । और उसके बाद अन्य प्रस्तरों की आठ पंक्तियों में क्रमशः एक एक आवास कम होते जाते हैं । (१०-१२)

सैकाशीतिस्त्रिंशती च त्रिंशती च त्रिसप्ततिः ।

त्रिंशती पंचषष्ठिश्च स्यात् द्वितीयादिषु त्रिषु ॥१३॥

त्रिशती सप्तपंचाशत् पंचमे प्रतरे भवेत् ।

त्रिशत्येकोनपंचाशत् षष्टे प्रतर इष्यते ॥१४॥

एक चत्वारिंशदाढ्या त्रिशती सप्तमे मता ।

त्रिशती च त्रयस्त्रिंशत् त्रिशती पंचविंशतिः ॥१५॥

त्रिशती सप्तदश च त्रिशती स्थान्नवोत्तरा ।

एकाधिका च त्रिशती प्रतरेष्वष्टमादिषु ॥१६॥

त्रयोदशेऽथ प्रतरे आवलीनरकालयाः ।

त्रिनवत्यधिके प्रोक्ते द्वे शते तत्त्ववेदिभिः ॥१७॥

अतः दूसरे प्रस्तर में तीन सौ इकासी नरकावास होते हैं, तीसरे में तीन सौ तिहत्तर नरकावास होते हैं, चौथे में तीन सौ पैंसठ होते हैं, पांचवें में तीन सौ सत्तावन, छठे में तीन सौ उनचास, सातवें में तीन सौ एकतालीस, आठवें में तीन सौ तैंतीस, नौवें में तीन सौ पच्चीस; दसवें में तीन सौ सत्तरह, ग्यारहवें में तीन सौ नौ, बारहवें में तीन सौ एक और तेरहवें में दो सौ तिरानवें आवली गत आवास होते हैं । (१३-१७)

शेषाः पुष्यावकीर्णाः स्युः पंक्तीनामन्तरेषु ते ।

सर्वेष्वपि प्रतरेषु विर्कीर्ण कुसुमौघवत् ॥१८॥

और यह आवली गत नरक आवास के उपरांत अन्य आवलियों के बीच के भाग में पुष्यावकीर्ण कहलाने वाले आवास भी होते हैं । (१८)

चत्वारि स्युः सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ।

त्रयस्त्रिंशच्च धर्मायामावलीनरकालयाः ॥१९॥

इस तरह प्रथम धम्मा नरक में आवलीगत आवास कुल मिलाकर चार हजार चार सौ तैंतीस होते हैं । (१९)

एकोनत्रिंशल्लक्षाणि शतानि पंच चोपरि ।

सहस्राः पंचनवतिः सप्तषष्टिः प्रकीर्ण काः ॥२०॥

तथा पुष्यावकीर्ण आवासों की संख्या उन्तीस लाख पंचानवे हजार पांच सौ सड़सठ कही है । (२०)

त्रिंशल्लक्षाश्च निखिला धर्मायां नरकालयाः ।

सर्वेऽपि चैतेऽन्तर्वृत्ता बहिश्च चतुरस्रकाः ॥२१॥

अर्थात् घम्मा नरक में सर्व मिलाकर तीस लाख नरकावास होते हैं । यह नरकवास अन्दर से गोलाकार और बाहर से चतुष्कोण है । (२१)

यदुक्त प्रज्ञापनायां - 'तेण णरगा अन्तोवट्टा वार्हिचउरंसा । इति ॥

प्रज्ञापना सूत्र में भी कहा है कि - नरकावास अन्दर से गोलाकार तथा बाह्य के भाग से चतुष्कोण आकृति का होता है ।

पीठादि सर्व चापेक्ष्य वृत्ताः स्युः केऽपि केऽपि च ।

त्र्यस्त्रश्च चतुरस्त्रश्च पांक्तेया नरकालयाः ॥२२॥

पीठ आदिक सर्व की अपेक्षा से तो कितने गोलाकार कितने त्रिकोण और कितने चतुष्कोण होते हैं । (२२)

वृत्ता एवं भवन्त्यत्र सर्वेऽपि नरकेन्द्रकाः ।

ततश्चानन्तरं त्र्यस्त्रा नूनमष्टासु पंक्तिषु ॥२३॥

चतुरस्त्रस्ततो वृत्ताः त्र्यस्त्राश्चेति यथाक्रमम् ।

ज्ञेयाः पुष्पावकीर्णास्तु नाना संस्थान संस्थिताः ॥२४॥

सर्व नरकेन्द्र तो गोलाकार ही है उसके बाद आठ पंक्तियों के आवास त्रिकोण है उसके बाद के चतुष्कोण है, और उसके बाद वापिस गोलाकार, त्रिकोण आदि अनुक्रम से है जबकि पुष्पावकीर्ण आवास तो विविध आकृति वाले हैं । (२३-२४)

योजनानां सहस्राणि त्रीणि सर्वेऽपि चोच्छ्रिताः ।

अधोमुख्यस्त कुंडाकाराः कारागृहोपमाः ॥२५॥

इन सर्व आवासों की ऊँचाई तीन हजार योजन है, अधोमुख में कुंड रहा हो, इस तरह वे रहे हैं और मानो बन्दी खाने में हो इस तरह रहते हैं । (२५)

योजनानां सहस्रं च पीठे बाहल्यमीरितम् ।

सहस्रमेकं शुभिरं स्तूपिकैक सहस्रिका ॥२६॥

पीठिका के भाग में उनकी एक हजार योजन मोटाई है बीच में एक हजार योजन खाली भाग है और एक हजार योजन का स्तूप है । (२६)

यदुक्तम् - हेट्टा घणा सहस्सं उप्पिं संकोयओ सहस्सं तु ।

मज्झे सहस्स छुसिरा तिन्नि सहस्सूसिया निरया ॥२७॥

अन्य स्थान पर भी इस विषय में कहा है कि नीचे एक हजार योजन

धन-मोटा, ऊपर हजार योजन संकुचित, मध्य में हजार योजन खाली तथा तीन हजार योजन ऊँचा नरकावास है । (२७)

संख्यातयोजनाः केऽपि परेऽसंख्यातयोजनाः ।

विस्ताराद्द्वैर्धृतश्चापि प्रज्ञप्ता नरकालयाः ॥२८॥

और ये नरकावास लम्बे चौड़े कितने संख्यात योजन है ? और कितने असंख्यात योजन है ? (२८)

सर्वास्वपि पृथिवीषु तादृशाः किन्तु मानतः ।

सीमन्तकः पञ्चचत्वारिंशद्योजनलक्षकः ॥२९॥

अप्रतिष्ठानश्च लक्षयोजनः सप्तमक्षितौ ।

परितस्तं च चत्वारोऽसंख्यातकोटियोजनाः ॥३०॥

सातों नरकों में ये आवास इतने ही लम्बे चौड़े हैं परन्तु सीमन्तक जो प्रथम नरक पृथ्वी का नरकेन्द्र है वह पैंतालीस लाख योजन के प्रमाण वाला है, और सातवीं नरक पृथ्वी का अप्रतिष्ठान नाम का है वह लाख योजन का है और इसके आस पास के और चार असंख्यात कोटि योजन प्रमाण के है । (२९-३०)

धर्माद्यप्रतरे सीमन्तकाद्य नरकेन्द्रकात् ।

आवली नरकाः प्रोक्ताः सीमन्तकं प्रभादयः ॥३१॥

धर्मा नामक नरक के पहले प्रस्तर में पहली सीमन्तक नरक में से जो आवलीगत नरकावास निकलने का कहा है वह सीमन्तप्रभ आदि है । (३१)

तदुक्तं स्थानांग वृत्तौ -

सीमन्त गप्पयो खलु नरओ सीमन्त गस्स पुब्बेण ।

सीमन्तगमझिझमओ उत्तर पासे मुणेयब्बो ॥३२॥

सीमन्ता वत्तो पुण नरओ सीमन्त गस्स अवरेण ।

सीमन्तगावसिट्ठो दाहिण पासे मुणे यब्बो ॥३३॥

इसके सम्बन्ध में स्थानांग सूत्र की टीका में उल्लेख इस तरह मिलता है कि - सीमान्तक की पूर्व में प्रभ नामक नरकावास है, उत्तर में सीमन्तक मध्य नाम की है पश्चिम में, सीमन्तावर्त नाम की है और दक्षिण दिशा में सीमन्तका वसिष्ठ नाम की है । (३२-३३)

आवल्याश्चन्तिमौ द्वौ स्तो लोल लोलुपसंज्ञकौ ।
 विशतितमैकविंशौ सीमन्तनरकेन्द्र कात् ॥३४॥
 उद्दग्ध निर्दग्धसंज्ञौ ज्वरप्रज्वरकौ पुनः ।
 पंचत्रिंशदत्रिंशौ प्राच्यावल्यां स्मृता अमी ॥३५॥ युग्मं ।

इस आवली के आखिर के दो के नाम लोल और लोलुप है और सीमन्तक नरकेन्द्र से बीसवीं और इक्कीसवीं का नाम उद्दग्ध और निर्दग्ध है तथा पैंतीस और छत्तीसवीं का ज्वर और प्रज्वर नाम है । यह सब पूर्व पंक्ति में है । (३४-३५)

उदीच्याद्यावलिकासु मध्यावर्त्तावशिष्टकैः ।
 पदैर्विशिष्टाः प्रज्ञप्ताः प्रागुक्ता नरकाः क्रमात् ॥३६॥
 यथोदीच्यां लोलमध्यलोलुपमध्यसंज्ञकैः ।
 पश्चिमायां लीलावर्त्तलोलुपावर्त्तसंज्ञाकौ ॥३७॥
 लीलावशिष्टलोलुपावशिष्टसंज्ञकाव पाग् ।
 भाव्या नामव्ययस्थैवं प्रागुक्तेष्वखिलेष्वपि ॥३८॥

उत्तर पंक्ति के नरकावासो के नाम पूर्व कहे नरकावास को मध्य अर्थात् पद लगाने से निकलता है जैसे कि - लोल मध्य, लोलुप मध्य पश्चिम पंक्ति के आवासों के नाम आवर्त पद लगाने से साधित होता है, जैसे कि लीलावर्त्त दक्षिण पंक्ति के आवास के नाम अवशिष्ट पद लगाने से निकलता है जैसे कि लीलाव शिष्ट लोलुपावशिष्ट । इसी ही तरह पूर्वोक्त सर्व नरकावासो में नामों की व्यवस्था समझ लेना चाहिए । (३६-३८)

तदुक्तंस्थानांगवृत्तौ -

मज्जा उत्तरपासे आवत्ता अवर ओ मुण्येयव्वा ।
 सिद्धा दाहिणं पासे पुच्छिलाओवि भइयव्वत्ति ॥३९॥

इस विषय में स्थानांग सूत्र की वृत्ति में इस तरह कहा है - उत्तर पास मध्य, पश्चिम में आवर्त्त, दक्षिण में अवशिष्ट और पूर्व में भजना जानना । (३९)

सर्वेऽपि ते रौद्र रूपाः क्षुरप्रोपमभूमयः ।
 देहिनां दर्शनादेवोद्वेजकाः कम्पकारिणः ॥४०॥

सर्व नरकावास का दिखाव ही भयंकर है उनकी भूमि तो मानो बरछी तलवार ही न हो इस तरह देखने मात्र से ही प्राणी का शरीर कांप उठे इस तरह का नरकावास है । (४०)

पुद्गलानां परिणतिर्दशधा बन्धनादिका ।

सापि क्षेत्रस्य स्वभावात्त्र दुःख प्रदा भवेत् ॥४१॥

पुद्गलों के बन्धनादि दस प्रकार के पुद्गल परिणाम होते हैं । वह भी वहां दुःख दायक ही होता है, यह उस क्षेत्र का स्वभाव है । (४१)

तथाहि - बन्धनं चानु समय माहा र्यैः पुद्गलैः सह ।

सम्बन्धो नारकाणां स ज्वलज्ज्वलनदारूणः ॥४२॥

इसका स्वरूप इस तरह है - बंधन अर्थात् नरक को प्रत्येक समय में होने वाला आहार पुद्गल के साथ का सम्बन्ध यह मानो जाज्वल्यमान अग्नि न हो इस तरह भयंकर है । (४२)

गतिरूट्टखरादीनां सहशी दुस्सहभ्रमा ।

तप्तलोहपदन्यासादपि दुःखप्रदा भृशम् ॥४३॥

इनकी गति गधे और ऊंट आदि की गति के समान अत्यन्त दुःखमेय है, तपे हुए लोहखंड पर पैर रखने पड़ें इससे भी अधिक दुःखदायक है । (४३)

संस्थानमत्यन्त हुंडं लूनपक्षाण्डजोपमम् ।

कुडयादिभ्यः पुद्गलानां भेदः सौऽप्यस्त्र वरकटुः ॥४४॥

इनका संस्थान अत्यन्त कनिष्ठ समान हुंड (कुब्ज) होता है । पंख काट दिए हो ऐसे पक्षी समान विरूप होता है तथा कुडयादि से इनके जो पुद्गल अलग हो जाते हैं वह भी इनको शस्त्र के प्रहार समान अत्यन्त दुःखदायक हो जाता है । (४४)

वर्णः सर्वनिकृष्टोऽति भीषणो मलिनस्तथा ।

नित्यान्यतमसा ह्येते द्वारजालादिवर्जिताः ॥४५॥

इनका वर्णन करना अत्यन्त निकृष्ट अति भीषण तथा मलिन है और वहां द्वार अथवा खिडकी, जाली आदि कुछ भी नहीं होने से गाढ अंधकारमय स्थान में रहते हैं । (४५)

किंचामी श्लेष्मविण्मूत्रकफाद्यालिप्त भूतलाः ।

मांस केशन नरवदन्त चर्मास्तीर्णाः शमशानवत् ॥४६॥

वहां भूमि श्लेष्म, विष्टा, मूत्र तथा कफ आदि से गन्दी बनी रहती है तथा वहां शमशान की तरह मांस केश, नखून दांत और चमड़े आदि के समूह के ढेर पड़े हुए होते हैं । (४६)

कुथित श्वाहिमाज्जर मृत केभ्योऽपि दारुणः ।

गन्धस्तत्ररसोनिम्बघोषातक्यादितः कटु ॥४७॥

वहां की गंध सड़ा हुआ श्वान, सर्प तथा बिल्ली आदि के कलेवरों की गंध से भी उत्कट होती है और रस तो नीम से भी अतीव कड़वा होता है । (४७)

स्पर्शो वह्नि वृश्चिकादि स्पर्शादप्याति दारुणः ।

परिणामोऽगुस्त्वधुरप्यतीव व्यथाकरः ॥४८॥

इनको अग्नि स्पर्श अथवा बिच्छू आदि के स्पर्श से भी अत्यन्त दारुण कष्ट होता है और इनके परिणाम अगुरु लघु होने पर भी अतीव व्यथाकर है । (४८)

शब्दोऽपि सततं पीडाक्रान्तानामतिदारुणाः ।

विलापरूपः श्रवणादपि दुःखैक कारणम् ॥४९॥

लगातार पीड़ित होते नरक के शब्द भी मानो विलाप करते हो । इस तरह दारुण होता है, यह सुनने वाले को भी दुःख उत्पन्न होता है । (४९)

कुडयेषु वाज्रिकेष्वत्र सन्ति वातायनोपमाः ।

अचिता योनयस्तासूत्पद्यन्ते नारकाः किल ॥५०॥

वहां वज्र की कुंभि में खिड़की समान अचित योनियां होती हैं जो इन नारकों का उत्पत्ति स्थान है । (५०)

तथोक्तं तत्वार्थवृत्तौ -

शीतोष्णक्षुत्पिपासाख्याः कण्डुश्च परतन्त्रता ।

च्चरो दाहो भयं शोकस्तत्रैता दश वेदना ॥५१॥

तत्वार्थ वृत्ति में नरक की दस प्रकार की वेदना गिनायी है वह इस प्रकार से ठंडी, धूप, भूख, प्यास खसरा परतंत्रता, च्चर, दाह, भय और शोक । (५१)

माघरात्रौ शीतवायौ हिमाद्रौ खेऽभ्रवर्जिते ।

निरग्नेर्वातविकृतेर्दुःस्यपुंसो निरावृत्तेः ॥५२॥

तुषारकणासिक्तस्य या भवेच्छीतवेदना ।

ततोऽप्यनन्तगुणिता तेषु स्याच्छीतवेदना ॥५३॥

तेभ्यः शीत वेदनेभ्यो नरकेभ्यश्च नारकाः ।

यथोक्त पुरुष स्थाने स्थाप्यन्ते यदि ते तदा ॥५४॥

प्राप्नुवन्ति सुखं निद्रां निर्वातस्थानगा इव ।

अथोष्णकाले मध्याह्ने निरभ्रेवियदंगणे ॥५५॥

माघ महीने की रात्रि में शीत वायु चलती हो, उस समय हिमालय पर्वत पर बादल रहित आकाश में अग्नि बिना और वायु के व्याधि वाले निःवस्त्र दरिद्री मनुष्य को जल के छिड़काव की ठंडी से जितनी वेदना हो उससे भी अनन्त गुना शीत वेदना इन नरक के जीवों को होती है । और यदि इन नरक जीवों को शीत वेदना वाले नरक में से उठाकर किसी मनुष्य की स्थान पर रखा जाय तो वह मानो किसी हवा रहित स्थान पर रहा हो इस तरह सुखपूर्वक निद्रावश हो जाता है ।

(५२-५५)

पुंसः पित्तप्रतप्तस्य परितो ज्वलनस्पृशः ।

योष्णापीडा ततोऽनन्तगुणा तेषूष्णा वेदना ॥५६॥

तथोष्णवेदनेभ्यस्ते नरकेभ्यश्च नारकाः ।

उत्पाद्य किंशुकाकार खदिरांगार राशि षु ॥५७॥

ध्यायन्ते यदि निक्षिप्य तदा ते चन्दनद्रवैः ।

लिप्ता इवात्यन्त सुखान्निद्रां यान्ति क्षणादपि ॥५८॥

गरमी के दिन हो और मध्याह्न-समय तप रहा हो, आकाश में कही बादल नहीं दिखता हो उस समय पित्त की व्याधि वाले मनुष्य को चारों तरफ प्रज्वल रही अग्नि के ताप की जो पीड़ा होती है उससे भी अनन्त गुणा उष्ण वेदना इन नरकों में होती है । और उनको इस तरह उष्ण वेदना वाली नरक में से उठाकर यदि किंशुभ समान लाल खादिर के अंगारे में रखा जाय और उस अंगारे को गरम किया जाय फिर भी यह तो मानो कि चन्दन रस के विलेपन से विलिप्त हो इस तरह क्षण भर में वहाँ अत्यन्त सुखपूर्वक सो जाता है । (५५-५८)

सदा क्षुद्धहिना दह्यमानास्ते जगतोऽपि हि ।

धृतान्नादिपुद्गलौधैः न तृप्यन्ति कदाचन ॥५९॥

उनकी जठराग्नि इतनी प्रदीप्त रहती है कि जगत में रहे समस्त अन्नधृत आदि से भी उनको तृप्ति नहीं होती है । (५९)

तेषां पिपासा तु तालु कण्ठ जिह्वा दिशोषणी ।

सकलाम्भोधि पानेऽपि नोप श्नाभ्यति कर्हि चित् ॥६०॥

सारे समुद्र जल का पान करने पर भी शान्त न हो इस तरह इनकी तालु, कंठ तथा जीभ आदि को प्यास-शेष वाली तृषा होती है । (६०)

क्षुरिकाद्यैरप्यजघ्नाकुण्डू देहेऽति दुःखदा ।

अनन्त गुणितोऽत्रत्याद्यावज्जीवं ज्वरस्तथा ॥६१॥

चाकू आदि से खुजलाने पर भी शान्त न हो इस तरह इनके शरीर पर अत्यंत दुःखदायी खुजली होती है और बुखार भी इनको अपने से अनन्त गुणा और वह भी जीवन तक होता है।

अनन्तघ्नं पारवश्यं दाह शोकभया द्यपि ।

कष्टं विभंगमप्येषां वैरिशस्त्रादि दर्शनात् ॥६२॥

और इनको पराधीनता, दाह-जलन शोक तथा भय भी अनंत गुणा होता है । इस तरह इनकी दस प्रकार वेदना का वर्णन किया । तथा वैरी शस्त्र आदि देखकर इनको विभंगज्ञान होता है वह भी उनको कष्टदायक होता है । (६२)

तत्रत्यक्ष्माभ्योऽग्नि मरूत् द्रुम स्पर्शोऽति दुःखदः ।

अग्निस्त्वत्रोप चरितः क्ष्मादि कायास्तु वास्तवाः ॥६३॥

तथा वहां पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति का स्पर्श भी अति दुःखदायक होता है । यहां अग्नि उपचरित तथा पृथ्वी आदिक वास्तविक रूप जानना । (६३)

तथोक्तम् - रयणप्य भापुढ विनेरइ आणं भन्ते केरिसयं पुढविकासं पच्चणुप्भव माणा विहरन्ति । गोयम अणिट्टुजाव अमणांमं एवं जाव अहो सत्तमा पुढविणेरइ आ एवं वाउफांस जाव वणस्सइफांस । इति भगवत्याम् शतक १३ उद्देश ॥

इस सम्बन्ध में श्री भगवती सूत्र के तेरहवें शतक के चौथे उद्देश में उल्लेख मिलता है वह इस प्रकार है - हे भगवन्त ! रत्नप्रभा नरक की पृथ्वी का स्पर्श कैसा लगता है ? गौतम के प्रश्न का उत्तर वीर परमात्मा ने कहा- हे गोतम ! वह अनिष्ट से वह अन्तिम अमनोज्ञ तक इस तरह नीचे अन्तिम सातवी नरक के नारकी जीव को भी वायु के स्पर्श से लेकर अन्तिम वनस्पति स्पर्श तक भयंकर दुःख अनुभव होता है ।

इत्येवं विविधा तेषु वर्तते क्षेत्रवेदना ।

मिथ्यादृशां नारकाणां परस्परकृतापि सा ॥६४॥

इस तरह की नरक जीवों को नाना प्रकार की क्षेत्र वेदना का वर्णन किया तथा मिथ्यात्वी नारक को परस्पर कृत वेदना भी होती है । (६४)

तथाहि -

दूरादन्योऽन्यमालोक्य श्वानः श्वानमिवा परम् ।

ते युद्धयन्ते संसरम्भं ज्वलन्तः क्रोधवह्निना ॥६५॥

और वह इस प्रकार है जैसे कुत्ते जाति के दूर से ही एक दूसरे को देखकर लड़ने लगता है, वैसे ही नरक के जीव क्रोधग्नि से जलते परस्पर लड़ाई करते हैं । (६५)

विधाय वैक्रियं रूपं शस्त्रैः क्षेत्रानुभावजैः ।

पृथ्वी रूपै वैक्रियैर्वा कुन्तासितोमरादिभिः ॥६६॥

करांहिदन्ताघातैश्च ते निघ्नन्ति परस्परम् ।

भूमौ लुठन्ति कृत्तांगाः शूनान्तर्महिषादिवत् ॥६७॥ युग्मं ।

वे वैक्रिय रूप धारण करके क्षेत्र प्रभावोत्पन्न पृथ्वीरूप अथवा वैक्रिय भाले, तलवार बाण आदि के द्वारा तथा हाथ पैर या दांत आदि से परस्पर प्रहार करते हैं और इसमें उनका शरीर छेदन भेदन हो जाता है । इससे कत्ल खाने में भैंस आदि जैसे लौटता है । वैसे पृथ्वी पर लोटने लगता है । (६६-६७)

परोदीरित दुःखानि सहन्ते नापरेषु ते ।

उदीरयन्ति सम्यक्त्ववन्तः तत्त्वविचारणात् ॥६८॥

अतः एव स्वल्प पीडाः स्वल्पकर्माण एव च ।

मिथ्यादृग्भ्यो नारकेभ्यो नारकाः शुद्धदृष्ट यः ॥६९॥

परन्तु इसमें जो समकित दृष्टि जीव होता है वह तो तत्व के चिन्तन वाला होता है इसलिए अन्यकृत दुःख सहन कर लेता है, परन्तु सामना करके स्वयं दुःख नहीं देता । इस कारण से ही वे मिथ्या दृष्टि नारक से कम दुःखी होते हैं और कर्मबन्धन भी कम करते हैं । (६८-६९)

मिथ्यादृशस्तु क्रोधेनोदीरयन्तः परस्परम् ।

पीडाः कर्माण्यर्जयन्ति भूयांसि भूरिवेदनाः ॥७०॥

मिथ्यादृष्टि नरक जीव तो क्रोध करके अन्य को दुःख देता है और स्वयं भी दुःख सहन करता है और बहुत कर्मों को भी उर्पाजन करता है । (७०)

तथाहुः - नेरइआ दुविहा । माइमिथ्यदिद्वीउववणणागा अमाइ सम्म दिद्वी उववणणागा य । तथ्थणं जे से माइ माइ मिथ्यदिद्वी सेणं महाकम्म तराए चेव जाव महावेयण तरा चेव । तथ्थणं जे से अमाइसम्म दिद्वी सेणं अप्प कम्मतराए चेव अप्पवेयण तराए चेव ॥ भगवती शतक १८ उद्देश ॥

इस सम्बन्ध में श्री भगवती सूत्र के अठारहे शतक पांचवे उद्देश में कहा है कि - नरकी दो प्रकार की है - १- माया युक्त मिथ्या दृष्टि वाला और २- माया रहित समकित दृष्टि वाला । इसमें प्रथम प्रकार का मिथ्या दृष्टि है वह भारी कर्मों वाला होता है तथा अत्यन्त वेदना भोगने वाला होता है जो दूसरे प्रकार है उनके कर्म अल्प होते हैं और वह वेदना भी अल्प भोगता है ।

मनोदुःखापेक्षया तु सददृशो भूरिवेदनाः ।

यदेते पूर्व कर्माणि सोचन्ति न तथा परे ॥७१॥

मनो दुःख की अपेक्षा तो सम्यकदृष्टि नरकजीव बहुत दुःखी है क्योंकि पूर्व कर्मों का वह जितना सोच विचार करता है, वैसा सोच विचार अन्य को नहीं होता । (७१)

तथाहुः - तथ्थणं जेते सन्निभूया तेणं महावेअणा । तथ्थणं जेते असन्निभूया तेणं अप्पवेअणा ॥ अत्र सन्निभूय इति ॥ संज्ञा सम्यक् दर्शनम् तद्वन्तो भूताः यद्वा पूर्व भवे संज्ञि पंचेन्द्रियाः सन्तः नारकप्राप्ताः । अथवा संज्ञी भूताः पर्याप्त की भूताः । तद्वीपरीताः सर्वत्र असंज्ञी भूताः ॥ इति भगवती शतक १३०-२ ॥

इस सम्बन्ध में भी भगवती सूत्र में उल्लेख मिलता है वह इस प्रकार - जो संज्ञी है, इनको अत्यन्त दुःख होता है, परन्तु जो असंज्ञी है उनको स्वल्प दुःख होता है । यहां संज्ञी अर्थात् १- संज्ञा वाला सम्यग् दर्शन वाला इस तरह अर्थ लेना अथवा २- पूर्व जन्म में जो संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव थे और फिर नरक में उत्पन्न हुए है इस तरह अर्थ करना ३- संज्ञी अर्थात् पर्याप्ता इस प्रकार का अर्थ लिया जाता है । इससे विपरीत सर्वत्र असंज्ञी समझना । (शतक १ उद्देश २)

इस प्रकार परस्पर कृत वेदना का वर्णन किया है । अब परमाधार्मिक कृत

वेदना के विषय करते हैं दुष्कर्मों के वश होकर नरकजीवों को नाना प्रकार की परमाधामी कृत वेदना भी सहन करनी होती हैं वह इस प्रकार :-

तप्तायः पुत्रिकाश्लेषः संतप्तत्रपुपायनम् ।
 अयोघनादिघाताश्चारोषणं कूटशाल्मलौ ॥७२॥
 क्षते क्षारोष्ण तैलादिक्षेपणं घ्राष्ट्भर्जनम् ।
 कुन्तादिप्रोतनं यन्त्रे पीडनं च तिलादिवत् ॥७३॥
 क्रकचैः पाटनं तप्तवालुकास्वातरणम् ।
 वैक्रियोलूकहर्यक्षकंकादिभिः कदर्शनम् ॥७४॥
 प्लावनं वैतरण्यां च योधनं कुर्कुटादिवत् ।
 प्रवेशनं चासिपत्रवने कुम्भीषु पाचनम् ॥७५॥
 परमाधार्मिकैः क्लृपता इत्याद्या विविधा व्यथाः ।
 वेदयन्ते नारकास्ते दुःकर्मवशवर्तिनः ॥७६॥

तपी हुई लोहे की पुतली का आलिंगन करना पड़ता है, गरम किये शीशे को पीना, लोहे के घन आदि की मार खाना, काटिमय शाल्मली वृक्ष पर बैठना, चोट खाना पड़ता है, उस पर क्षार अथवा गरमागरम तेल आदि डालें, उसे सहन करना, भट्टी पर पकाना, भाले आदि पर पिरोना, धाणी कोल्हू में तेल पिलता हो इस तरह पिलना, करवत (आरे) से कट जाना, तपी हुई रेती में चलना, वैक्रिय, उल्लू सिंह इत्यादि जानवरों की कर्दथना सहन करना, वैतरणी नदी में डूब जाना, मुर्गा आदि के समान युद्ध करना, तलवार की धार वाले वृक्षों में प्रवेश करना कुम्भी में पकाना इत्यादि वेदना सहन करना होता है । (७२-७६)

यदाहुः - श्रवणलवनं नेशोद्धारं करक्रमपाटनम् हृदयदहनं नासाष्ठेदं प्रतिक्षणदारणम् ।

कटविदहनं तीक्ष्णाघातं त्रिशूलविभेदनम् दहनवदनैः कंकैर्धैरिः सहन्ति च भक्षणाम् ॥७७॥

कहा है कि - परमाधामी नरक जीवों के कान काट देते हैं, आंखें उखाड़ देते हैं, हाथ पैर फाड़ देते हैं, छाती जला देते हैं, नाक काट लेते हैं, कढ़ाई के तेल में तलते हैं, तीक्ष्ण त्रिशूल से भेदन करते हैं और अग्नि-मुखा भयंकर जानवरों को भक्ष्य रूप में देते हैं । (७७)

छिद्यन्ते कृपणाः कृतान्त परशो स्तीक्ष्णेन धारासिनां ।

क्रन्दन्तो विषविच्छुभिः परिव्रताः संभक्षण व्यापृतै ।

पाटयन्ते क्रकचेन दारूवदसिप्रच्छिन्न बाहुद्वया ।

कुम्भीषु त्रपुणानदग्धतनयो मूषासु चान्तर्गताः ॥७८॥

परमाधामी नरक जीव की, यम की कुहाड़ी से भी अधिक तीक्ष्ण धार वाली तलवार से छेदन करते हैं वे रूदन करते रहें और भक्षण में तत्पर विषधर, बिच्छुओं से घेर लेते हैं, उनके दोनों हाथ तलवार से छेदन कर फिर उनको करवट से काटते हैं उनको शीशा पिला कर शरीर जला देते हैं, कुम्भी के भूसो में पकाते हैं । (७८)

भृन्धन्ते ज्वलदम्बरीषहुत भुग्जालाभिरारावणाः ।

दीप्तांगारनिभेषु वज्रभवनेष्वंगारकेषुत्थिताः ।

दहन्ते विकृतोर्ध्वबाहु वदनाः क्रन्दत आर्त्तस्वराः,

पश्यन्तः कृपणा दिशो विशरणा स्व्राणाय को नो भवेत् ॥७९॥

ये नरक के जीव चिल्लाते रहते हैं फिर भी उनको जाज्वल्यमान खदिर की अग्नि ज्वालाओं से सेकते हैं और जलते आग के समान वज्र के भवन में उत्पन्न होते हैं, वहाँ विकृत हाथ मुंह वाले वे दीन स्वर से रूदन करते रहते हैं, फिर भी उनको जलाया जाता है, ये दीन हीन जीव चारों तरफ देखा करते हैं, परन्तु इनकी कोई सहायता या रक्षण नहीं करता है । (७९)

तीक्ष्णौरसिभिर्दीप्तैः कुनैर्त्रिषमैः परश्वधैः चक्रैः ।

परशुत्रिशूलमुदगरतामरवासीमुसंडीभिः ॥८०॥

संभिनतालु शिरसः छिन्न भुजाः छिन्न कर्णनासौष्ट्याः ।

भिन्न हृदयोदरान्त्रा भिन्नाक्षिपुटाः सुदुःखार्त्ता ॥८१॥

निपतन्त उन्त्यन्तों विचेष्टा माना मही तले दीना ।

नेक्षन्ते त्रातारं नैरयिकाः कर्मपटलान्धाः ॥८२॥ इत्यादि ।

तीक्ष्ण तलवार के द्वारा तेजस्वी भालाओं से, विषम कुल्हाड़ी से तथा चक्र, परशु- त्रिशूल, मुदगल, बाण, बास और हथौड़े से इनके तालु तथा मस्तक को चूर्ण बना देते हैं, इनके हाथ, कान, नाक और होठ को छेदन करते हैं तथा हृदय, पेट आंखें एवं आंतों का भेदन कर देते हैं । इस तरह के दुःख भोगते ये कर्म से पतित बने दीन नरकजीव पृथ्वी पर गिरते उठते लोटते रहते हैं, परन्तु इनका कोई रक्षण नहीं करता है । (८०-८२)

तथा -

कुम्भीषु पच्यमानास्ते प्रोच्छलन्त्यूर्ध्वमर्दिताः ।

उत्कर्षतो योजनानां शतानि पंच नारकाः ॥८३॥

त्रोटयान्ते निपतन्तस्ते वज्रचंचूविहंगमैः ।

व्याघ्रादिभिर्विलुप्यन्ते पतिताभुवि वैक्रियैः ॥८४॥

इन नरक के जीवों को कुंभी में पकाते हैं तब वे पांच सौ पांच सौ योजन ऊँचे उछलते हैं । वहां से वापिस पृथ्वी पर गिरते ही उनका वज्रतुल्य चोंच वाले वैक्रिय पक्षी छेदन-भेदन करते हैं । और वैक्रिय व्याघ्र आदि हिंसक जीव इनका विनाश करते हैं । (८३-८४)

परमाधार्मिकास्ते च पापिनोऽत्यन्त निर्दयाः ।

पंचाग्न्यादितपः कष्टप्राप्तासुरविभूतयः ॥८५॥

मृगयासक्तवत् मेषमहिषाद्याजिदर्शिवत् ।

एते हृष्यन्ति ताच्छील्यत् दृष्टातन् हन्तनारकान् ॥८६॥

दृष्टाः कुर्वन्त्यद्रुहासं त्रिपद्यास्फालनादिकम् ।

इत्थं यथैषां स्यात् प्रीतिः न तथा नाटकादिभिः ॥८७॥

ये परमाधामी अत्यन्त पापी और निर्दय होते हैं । पंचाग्नि तप आदि कष्ट कारक तपस्या करने से इनको असुर रूप की विभूति प्राप्त होती है । मृगयासक्त लोगों के समान तथा मेष, भैंसा आदि के युद्ध देखने वालों के समान स्वाभाविक रूप में ही ये पीड़ित होते नरक जीवों को देखकर हर्षित होते हैं तथा ताली बजाकर अद्रुहास करते हैं, उसमें वे आनंद मानते हैं । ऐसा आनंद नारक आदि देखने में भी उन्हें नहीं आता । (८५-८७)

मृत्वाण्डगोलिका भिख्याः तेऽपि स्युः जलमानुषः ।

भक्ष्यैः प्रलोभ्या नीतास्ते तटेऽण्ड गोलकार्थिभिः ॥८८॥

यन्त्रेषु पीड्यमानाश्च सोढकष्टकदर्थनाः ।

षड्भिर्मासैर्मृता यान्ति नरकेष्वसकृत्तथा ॥८९॥

और ये भी मरकर फिर अंडगोलिक नामक जलमनुष्य होते हैं । इनको अंडगोल लेने के लिए, भक्ष्य पदार्थ से आसक्त कर, किनारे पर लाते हैं । वहां इनको कोल्हू में डालकर पेलते हैं । वे छः महीने तक कदर्थना (दुःख) सहन कर मृत्यु प्राप्तकर नरक में जाते हैं । (८८-८९)

इस तरह तीसरी परमाधामी कृत वेदना का वर्णन हुआ ।

धर्मायां च त्रिधाप्येताः पूर्वोक्तासन्ति वेदनाः ।

परं शीतोष्णयोर्मध्ये उष्णैव क्षेत्रवेदना ॥९०॥

धर्मानारकी में उपरोक्त तीन प्रकार की वेदना है, परन्तु वहां शीत और उष्ण क्षेत्र वेदना होती है । (६०)

तथाहि -

उत्पत्तिस्थानकान्वेषां सन्त्यावृतगवाक्षवत् ।
तत्रोत्पत्त्याधः पतन्ति कष्टात् पुष्टवपुर्भूतः ॥६१॥
अन्यत्र चोत्पत्ति देशात् प्रालेयाचलशीतलात् ।
सर्वत्र नरकेषु क्ष्मा खदिराङ्गारसन्नि भा ॥६२॥
ततः शीतयोनिक्कानां तेषां नारकं देहिनाम् ।
जनयत्यधिकं कष्टं क्षेत्रमुष्णं हुताशवत् ॥६३॥

वह इस प्रकार - धर्मा नारक जीव के उत्पत्ति स्थान गोलाकार खिड़की समान हैं, वहां उत्पन्न होकर पुष्ट शरीर वाला वह नरक जीव कष्ट पूर्वक नीचे गिरता है । उनकी उत्पत्ति प्रदेश तो हिमालय पर्वत समान बहुत शीतल है, परन्तु उसके इसके बिना अन्य सर्व प्रदेश की पृथ्वी खादिर के अंगार समान जलती है । इससे शीतयोनि वाले इस नारकी को उष्ण क्षेत्र, अग्नि के समान अधिक कष्ट उत्पन्न करने वाली है । (६१-६३)

प्रथमप्रतरे चास्यां नारकाणां भवेद्वपुः ।
हस्तत्रयं द्वितीयेऽस्मिन् हस्ताः पंचाधिकानि च ॥६४॥
अष्टांगुलानि सार्धानि तृतीये प्रस्तटे पुनः ।
सप्तहस्ताः सप्तदशांगुलान्युपरि निर्दिशेत् ॥६५॥
चतुर्थे प्रस्तटे हस्तादश सार्धं तथांगुलम् ।
दशांगुलाधिका ज्ञेया हस्ता द्वादश पंचमे ॥६६॥
षष्ठे चतुर्दश कराः ससार्धाष्टादशांगुलाः ।
सप्तमे च सप्तदश कराः स्युः त्र्यंगुलाधिकाः ॥६७॥
एकोनविंशतिहस्ताः ससार्धैकादशांगुलाः ।
अष्टमे प्रस्तटे देहो नवमप्रस्तटे पुनः ॥६८॥
युक्तांगुलानां विंशत्या करणामेक विंशतिः ।
दशमे जिन संख्यास्ते ससार्धं चतुरंगलाः ॥६९॥
एकादशे कराः षड् विंशतिस्त्रयोदशांगुलाः ।
द्वादशेष्टाविंशतिस्तेऽङ्गुलाः सार्धैकविंशतिः ॥१००॥

षडंगुलाधिका एकत्रिंशद्दसतास्त्रयोदशे ।

प्रतटेषु वपुर्मानं क्रमाद्गुणप्रभाक्षितेः ॥१०१॥

इस नरक के पहले प्रतर में नारको का शरीरमान तीन हाथ का होता है, दूसरे प्रतर में पांच हाथ और साढ़े आठ अंगुल का है तीसरे प्रतर में सात हाथ और सत्तरह अंगुल है, चौथे में दस हाथ और ढेड अंगुल का है, पांचवे में बारह हाथ दस अंगुल है । छठे में चौदह हाथ साढ़े अठारह अंगुल है, सातवें में सत्तरह हाथ और तीन अंगुल है आठवें में उन्नीस हाथ साढ़े ग्यारह अंगुल है, नौवें में इक्कीस हाथ बीस अंगुल है, दसवें में चौबीस हाथ साढ़े चार अंगुल है, ग्यारहवें में छब्बीस हाथ तेरह अंगुल है, बारहवें में अठ्ठाईस हाथ और ऊपर साढ़े इक्कीस अंगुल है और अन्तिम तेरहवें प्रतर में एकतीस हाथ और छः अंगुल है । इस तरह धर्मा रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रतरों में नरकों का शरीर मान होता है । (६४-१०१)

स्वाभाविकतनोर्देहमानमेतदुदीरितम् ।

स्वस्वदेहात् द्विगुणितं सर्वत्रोत्तरवैक्रियम् ॥१०२॥

ये सर्व प्रमाण कहे हैं वह उनका स्वाभाविक शरीर का समझना । इनका उत्तर वैक्रिय शरीर तो अपने-अपने शरीर से गुना ही होता है । (१०२)

जघन्यतस्तु सहजोत्तर वैक्रिययोः क्रमात् ।

अंगुलासंख्यसंख्याशौ मानं प्रारंभ एव तत् ॥१०३॥

उनके स्वाभाविक तथा उत्तर वैक्रिय शरीर का मान जघन्यतः अनुक्रम से अंगुल के असंख्यात तथा संख्यातवें भाग समान है और वह प्रारंभ समय में ही होता है । (१०३)

सर्वास्वधि क्षितिष्वेवं सर्वेषां नारकाग्निनाम् ।

स्वाभाविकांगात् द्विगुणं ज्ञेयमुत्तर वैक्रियम् ॥१०४॥

इस तरह से सर्व नरक जीवों का उत्तर वैक्रिय शरीर मान इनका स्वाभाविक शरीर मान से दोगुना जानना । (१०४)

अत्र अयं आम्नायः -

पइपयर बुद्धि अंगुल सद्गु छप्पन्न हुंति रयणाए ।

तिकरतिअंगुल कर सत्तं अंगुलासद्धि गुणवीसम् ॥१०५॥

पणधणु अंगुल वीसं वारसधणु दुन्नि हन्थ सक्का य ।

वासक्कि धणुह सक्का बीया इसु पयर बुद्धि कम्मा ॥१०६॥

यहां आम्नाय इस प्रकार से है - प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी में देहमान उत्तरोत्तर प्रत्येक प्रतर में पूर्व पूर्व से साढ़े छप्पन अंगुल बढ़ता है । यह हम लोग पहले देख गये है । अब दूसरे में के प्रत्येक प्रतर में इसी ही तरह से तीन हाथ और तीन अंगुल बढ़ता है, तीसरे में प्रत्येक के सात हाथ साढ़े उन्नीस अंगुल, चौथे में प्रत्येक के पांच धनुष्य वीस अंगुल, पांचवें में प्रत्येक बारह धनुष्य अढ़ाई हाथ और छटे में प्रत्येक के उत्तरोत्तर में साढ़े बासठ धनुष्य बढ़ता है । (१०५-१०६)

यह देहमान कहां है अब देह स्थिति के विषय में कहते हैं :-

सहस्राणि दशाब्दानां प्रथम प्रतरे स्थितिः ।

जघन्या पुररूत्कृष्टा सहस्रानवतिः स्मृताः ॥१०७॥

पहले प्रतर में नारकी की स्थिति जघन्यतः दस हजार वर्ष की है और उत्कर्षतः नब्बे हजार वर्ष की है । (१०७)

दस लक्षाश्च वर्षाणां लक्षाणां नवति स्तथा ।

क्रमाञ्जघन्योत्कृष्टा च द्वितीय प्रतरेस्थिति ॥१०८॥

दूसरे प्रतर में स्थिति इसी तरह से अनुक्रम से दस लाख वर्ष की है और नब्बे लाख वर्ष की उत्कृष्ट से है । (१०८)

एवं च - नवत्यब्द सहस्रेभ्यः समयाद्यधिकस्थितिः ।

दशाब्द लक्षोनायुश्च न संभवति नारकः ॥१०९॥

इस कारण यह सिद्ध होता है कि किसी भी नारक की आयु स्थिति नब्बे हजार वर्ष से अधिक हो तो वह जघन्य दस लाख वर्ष की तो समझ ही लेना चाहिए दस लाख से कम तो नहीं होता । (१०९)

वर्षाणां नवतिर्लक्षाः पूर्व कोटिस्तथैव च ।

तृतीय प्रतरे ज्ञेया जघन्योत्कर्षतः स्थितिः ॥११०॥

तीसरे प्रतर में जघन्यतः नब्बे लाख वर्ष का है और उत्कर्षतः करोड़ पूर्व की स्थिति होती है । (११०)

जघन्या पूर्व कोटयेकां चतुर्थ प्रतरे स्थितिः ।

दशभागीकृतस्यैको भागोऽब्धेः परमा पुनः ॥१११॥

चौथे प्रतर में जघन्य से एक करोड़ पूर्व की है और उत्कर्षतः एक दशांश सागरोपम की स्थिति होती है । (१११)

एको भागः पंचमे च जघन्योत्कर्षतः पुनः ।

स्यातां द्वौ दशमौ भागौ तौ षष्टे च जघन्यतः ॥११२॥

उत्कर्षतश्च षष्टे स्युस्त्रयो भागास्त एव च ।

जघन्यतः सप्तमे स्युरुत्कर्षात्तच्चतुष्टयम् ॥११३॥ युगम् ।

पांचवे प्रतर में सागरोपम के एक दशांश जघन्य स्थिति है । और इसकी दो दशांश उत्कृष्ट स्थिति है, छठे में इतनी ही दो दशांश सागरोपम जघन्य स्थिति है और तीन दशांश सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है । सातवें प्रतर में तीन दशांश सागरोपम जघन्य और चार दशांश सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति होती है । (११२-११३)

जघन्यतोष्टमे भागाश्चत्वार एव तादृशाः ।

उत्कर्षतश्चाष्टमे स्युर्भागा.पंच पयोनिधेः ॥११४॥

आठवें प्रतर में नारक की आयु स्थिति जघन्यतः वही चार दशांश सागरोपम की है और उत्कर्षतः पांच दशांश सागरोपम की है । (११४)

पंचैव भागास्तादृक्षा नवमे तु जघन्यतः ।

उत्कर्षान्नवमे षट् ते दशमे षड् जघन्यतः ॥११५॥

उत्कर्षाद्दशमे सप्तैकादशे ते जघम्यतः ।

एकादशेऽष्ट चोत्कर्षात् द्वादशेऽष्ट जघन्यतः ॥११६॥

द्वादशे पुनरुत्कर्षान्नव भागास्त्रयोदशे ।

नव भागा जघन्येनोत्कर्षतः सागरोपमम् ॥११७॥ विशेषकं ।

नौवें प्रतर में यह जघन्य स्थिति, अर्थात् पांच दशांश सागरोपम की है और उत्कृष्ट छह दशांश सागरोपम की है । दसवें में जघन्य छह दशांश सागरोपम की और उत्कृष्ट सात दशांश सागरोपम की है । ग्यारहवें प्रतर में सात दशांश सागरोपम की जघन्य स्थिति है और आठ दशांश सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है । बारहवें प्रतर में यही आठ दशांश की जघन्य और नौ दशांश की उत्कृष्ट स्थिति है । अन्तिम तेरहवें प्रतर में नौ दशांश सागरोपम की जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति सम्पूर्ण एक सागरोपम की है । (११५-११७)

अस्यां लेश्या च कापोती जघन्योऽवधि गोचरः ।

गव्यूतानां त्रयं सार्द्धं परस्तेषां चतुष्टयम् ॥११८॥

इस नरक में कापोत लेश्या होती है तथा अर्वाधि ज्ञान के विषय में जघन्य साढे तीन कोश का और उत्कृष्ट चार कोश का होता है । (११८)

उत्पद्यन्ते च्यवनते च सर्वदा नारका इह ।

कदाचित् विरहोऽपि स्याज्जघन्यः समयं स च ॥११६॥

उत्कर्षतो मुहूर्त्तानां चतुर्विंशतिराहिता ।

सर्वासां समुदाये च मुहूर्त्ता द्वादशान्तरम् ॥१२०॥

यहां नारकी सदा उत्पन्न होते हैं और च्यवन हुआ करते हैं । कभी अंतर हो तो कम से कम एक समय का होता है और अधिक से अधिक चौबीस मुहूर्त्त का अंतर रहता है जबकि सर्व नरक में पृथ्वी के समुदाय की अपेक्षा से तो बारह मुहूर्त्त का अंतर रहता है । (११६-१२०)

एकेन समयनैकादयोऽसंख्याव सानकाः ।

उत्पद्यन्ते च्यवन्तेऽस्यामेवं सर्वक्षितिष्वपि ॥१२१॥

इति रत्नप्रभा पृथिवी ॥१॥

इस नरक पृथ्वी में एक-समय में एक से असंख्यात तक नरक में उत्पन्न होते हैं और च्यवन होता है । सर्व नरक पृथ्वी में इसी तरह ही होता है । (१२१) इस तरह रत्नप्रभा पृथ्वी का स्वरूप कहा (१)

अथ वंशामिधा पृथ्वी द्वितीया परिकीर्त्यते ।

या शर्कराणां बाहुल्यात् गोत्रेण शर्करा प्रभा ॥१२२॥

अब दूसरी वंशा नाम की नरक पृथ्वी का वर्णन करता हूँ, वहां शर्करा बहुत होने के कारण इसका गोत्र नाम शर्करा प्रभा कहलाता है । (१२२)

घनोदध्यादिकं सर्वं ज्ञेयमत्रापि पूर्ववत् ।

घनोदध्यादिवलयविष्कम्भस्तु विशिष्यते ॥१२३॥

यहां घनोदधि आदि सब बाते पूर्व के समान समझना, केवल घनोदधि आदि के वलयो का विष्कम्भ में अन्तर है (१२३)

स चैवम- योजनैकतृतीयांशयुतानि योजनानि षट् ।

वंशायामाद्यवलये विष्कम्भः परिकीर्तितः ॥१२४॥

पादौनानि योजनानि पंच मानं द्वितीयके ।

योजनं योजनस्य द्वादशांशाः सप्त चान्तिमे ॥१२५॥

त्रयोदशाभिरित्येवं तृतीय भागवर्जितैः ।

आलोकः शर्करापृथ्वी पर्यन्तात् किल योजनै ॥१२६॥

वह फर्क इस प्रकार है - वंशा के पहले वलय का विष्कंभ छः पूर्णांक एक तृतीयांश योजन है, दूसरे वलय का पौने पांच योजन है जबकि अन्तिम तीसरे वलय का एक पूर्णांक सातवां अंश योजन है । इस तरह गणित करने पर यह शर्करा प्रभा-वंशा के अन्तिम से बारहवें पूर्णांक दो तृतीयांश योजन का आखरी अलोक है ।

(१२४-१२६)

एकं लक्षं योजनानां सद्द्वित्रिंशत् सहस्रकम् ।

अस्या बाहृत्यमादिष्टं विशिष्टज्ञानशालिभिः ॥१२७॥

विशिष्ट ज्ञानी पुरुषों ने इस नरक पृथ्वी की मोटाई एक लाख बत्तीस हजार योजन कही है । (१२७)

मुक्तवैकैकं सहस्रं च प्राप्स्यदस्यामुपर्यधः ।

एक लक्षे योजनानां सहस्रैस्त्रिंशतान्विते ॥१२८॥

एकादश प्रस्तटाः स्युः तेषां प्रत्येकमन्तरम् ।

योजनानां सहस्राणि नव सप्त शतानि च ॥१२९॥ युग्मं ।

यहां पर भी नीचे, ऊपर हजार, हजार योजन छोड़कर शेष एक लाख तीस हजार योजन में ग्यारह प्रतर आये हैं और इसमें दो-दो प्रतर के बीच का अन्तर है वह नौ हजार सात सौ योजन का होता है । (१२८-१२९)

प्रतिप्रतरमेकैको भवेच्च नरकेन्द्रकः ।

मध्य भागेऽथ नामानि तेषां ज्ञेयान्यनुक्रमात् ॥१३०॥

प्रत्येक प्रतर के मध्य में एक नरकेन्द्र होते हैं इनके नीचे अनुसार नाम आदि क्रमशः जानना । (१३०)

वह इस प्रकार :-

धनिको धनकश्चैव मनको वनकस्तथा ।

घट्ट संघट्ट जिह्वाख्याः अपजिह्वास्तथापरः ॥१३१॥

लोलश्च लोलावर्तश्च घनलोलस्तथैव च ।

प्रतिप्रतरमेभ्योऽष्टावष्टौ स्युर्नरकालयाः ॥१३२॥

१- धनिक, २- धनक, ३- भनक, ४- वनक, ५- घट्ट, ६- संघट्ट,

७- जिह्व, ८- अपजिह्व, ९- लोल, १०- लोलावर्त्त तथा ११- घन लोल है । इन नरकेन्द्रों से प्रत्येक प्रतर में आठ-आठ नरकवास की श्रेणियां निकलती हैं ।
(१३१-१३२)

तत्राद्यप्रतर मध्यनरकादावलीं प्रति ।
षट् त्रिंशत् दिक्षु नरकाः पंच त्रिंशत् विदिक्षु च ॥१३३॥
प्रथमे पंक्तिगाः पंचाशीतियुक्तं शतद्वयम् ।
द्वितीयादिषु चैकेकहीनाः स्युः सर्वपंक्त्यः ॥१३४॥
द्वितीय प्रतरे तस्मात् द्विशती सप्तसप्ततिः ।
तृतीये पंक्ति नरका द्विशत्येकोन सप्ततिः ॥१३५॥
चतुर्थे पंक्ति नरका द्वे शते सैकषष्टि के ।
पंचमे द्विशती तेषां त्रिपंचाशत्समन्विता ॥१३६॥
पंचचत्वारिंशदाढये द्वे शते षष्ट ईरिताः ।
सप्तम प्रस्तटे सप्तत्रिंशताढया शतद्वयी ॥१३७॥
एकोनत्रिंशदधिके द्वे शते प्रस्तटेऽष्टमे ।
एकविंशत्यधिके च द्वे शते नवमे मताः ॥१३८॥
शतद्वयं च दशमे त्रयोदशाधिकं भवेत् ।
एकादशे प्रस्तटे च पंचोत्तरं शतद्वयम् ॥१३९॥

प्रथम प्रतर के मध्य के नरकवास से चारों दिशाओं में छत्तीस-छत्तीस और चार विदिशाओं में पैंतीस-पैंतीस नरकवासी होते हैं । अतः इस तरह वहाँ प्रथम प्रतर में दो सौ पचासी नरकावास होते हैं । उसके बाद के प्रतर में प्रत्येक पंक्ति में उत्तरोत्तर एक-एक कम होता है । अतः दूसरे प्रतर में दो सौ सतहत्तर, होते हैं, तीसरे प्रतर में दो सौ उनहत्तर होते हैं । चौथे में दो सौ इकसठ, पांचवें में दो सौ तिरपन, छठे में दो सौ पैंतालीस, सातवें में दो सौ सैंतीस, आठवें में दो सौ उन्तीस, नौवें में दो सौ इक्कीस, दसवें में दो सौ तेरह, और ग्यारहवें प्रतर में दो सौ पांच नरकावास होते हैं । (१३३-१३९)

षड्विंशतिः शतानि स्युः नवतिः पंचभिर्युता ।
वंशाया नरकावासाः सर्वे पंक्तिगताः किल ॥१४०॥

इस गिनती से इस नरक पृथ्वी में सब मिलाकर पंक्तिगत नरकावास दो हजार छह सौ पचासी होते हैं । (१४०)

सहस्राः सप्तनवतिश्चतुर्विंशतिलक्षकाः ।

त्रिंशती पंच भिर्युक्ता प्राग्वत् पुष्यावकीर्ण काः ॥१४१॥

और वहां चौबीस लाख सतासी हजार तीन सौ पांच पूर्वोक्त पुष्या वकीर्ण आवास होते हैं । (१४१)

सर्वे च नरकावासा लक्षाः स्युः पंचविंशतिः ।

वंशाया ज्ञानिर्भिदृष्टा ज्ञानेन सर्वगामिना ॥१४२॥

अतः सब मिलाकर नरक पृथ्वी में पच्चीस लाख सम्पूर्ण नरकावास होते हैं । इस तरह केवल ज्ञानियों ने अपने सर्व व्यापक ज्ञान द्वारा देखकर कहा है । (१४२)

एषां संस्थानमुच्चत्वं स्वरूपं वेदनादिकम् ।

रत्नप्रभावद्विज्ञेयं त्र्यस्त्राद्यनुक्रमोऽपि च ॥१४३॥

इन नरकावास के संस्थान, उंचाई, वेदना स्वरूप तथा त्रिकोणादि का अनुक्रम यह रत्नप्रभा के अनुसार जानना । (१४३)

षडंगुलाधिकाः एकत्रिंशत्कराः षपुर्भवेत् ।

प्रथम प्रस्तटे वंशापृथिव्यां नारकांगिनाम् ॥१४४॥

द्वितीये च चतुस्त्रिंशत् कराः नवांगुलाधिकाः ।

द्वादशांगुलयुक् सप्तत्रिंशत्करास्तृतीयके ॥१४५॥

चत्वारिंशत्करास्तुर्येऽधिकपंचदशांगुलाः ।

पंचमे ते त्रिचत्वारिंशत् सहाष्टादशांगुलाः ॥१४६॥

कराणां सप्तचत्वारिंशद्विहीनांगुलैस्त्रिभिः ।

षष्टेऽथ सप्तमे पूर्णाः कराः पंचाशदाहिताः ॥१४७॥

अष्टमे च त्रिपंचाशत् कराः त्र्यंगुलशालिनः ।

नवमेऽङ्गुलषट्काढयाः षट्पंचाशत् कराः मताः ॥१४८॥

एकोनषष्टिः हस्तानां दशमे सनवाङ्गुलाः ।

एकादशे च द्वाषष्टिः कराः सद्वादशाङ्गुलाः ॥१४९॥

इन नरकावासो के पहले प्रतर में नारको का शरीर मान एक इकतीस हाथ और छः अंगुल का है, दूसरे में चौबीस हाथ नौ अंगुल का है । तीसरे में साठे तीस हाथ बारह अंगुल का है, चौथे में चालीस हाथ पंद्रह अंगुल का है । पांचवे में तैतीस

हाथ अठारह अंगुल का है छठे में छेयालीस हाथ इक्कीस अंगुल का है, सातवें में पंचास हाथ सम्पूर्ण है, आठवें में तिरपन हाथ तीन अंगुल का है, नौवें में छप्पन हाथ छह अंगुल का है, दसवें में उनसठ हाथ नौ अंगुल का है और ग्यारहवें प्रतर में बासठ हाथ और बारह अंगुल का होता है । (१४४-१४६)

स्थितिः जघन्यास्यामाद्येऽम्बुधिमानाऽपरा तु सा ।

कृतैकादशभागस्याम्बुधेः भागद्वयान्विता ॥१५०॥

इस नरक के प्रथम प्रतर में नारक का स्थिति काल जघन्य एक सागरोपम है और उत्कृष्ट एक पूर्णांक दो ग्यारहांश सागरोपम का है । (१५०)

द्वितीय प्रस्तटे लघ्वी द्विभाग सहितोऽम्बुधिः ।

उत्कृष्टा चौकादशां शैश्चतुर्भिर धिकोऽम्बुधिः ॥१५१॥

और इसके दूसरे प्रतर में नारक का स्थिति काल जघन्यतः एक पूर्णांक दो ग्यारहांश है और उत्कर्षतः एक पूर्णांक चार ग्यारहांश सागरोपम है । (१५१)

तृतीय प्रस्तरे वार्धिः चतुर्भागयुतो लघुः ।

षड्भिर्भागैः युतश्चाब्धिरुत्कृष्टा स्थिति राहिता ॥१५२॥

तीसरे प्रतर के नारक का स्थितिकाल जघन्यत एक पूर्णांक चार ग्यारहांश सागरोपम है तथा उत्कर्षतः एक पूर्णांक सागरोपम है । (१५२)

जघन्या प्रस्तटे तुर्ये षड्भागयुतवारिधिः ।

उत्कृष्टा चाष्टभिर्भागैर्युक्त एकः पयोनिधिः ॥१५३॥

चौथे प्रतर के नारकों का स्थिति काल जघन्यतः एक पूर्णांक छः ग्यारहांश और उत्कर्षतः एक पूर्णांक आठ ग्यारहांश सागरोपम का है । (१५३)

पंचमेऽल्पीयसी भागैरष्टभिः सह वारिधिः ।

गरीयसी चात्र भागैर्दशभिः सह तोयधिः ॥१५४॥

पांचवे प्रस्तर के नारकों का स्थिति काल जघन्यत एक पूर्णांक आठ ग्यारहांश और उत्कर्षतः एक पूर्णांक दस ग्यारहांश सागरोपम का है । (१५४)

दशभागान्वितश्चाब्धि षष्टे तु स्यान्जघन्यतः ।

उत्कर्षतश्चैक भागसंयुक्त सागरद्वयम ॥१५५॥

छठे प्रतर में नारको का स्थिति काल जघन्यतः एक पूर्णांक दस ग्यारहांश है और उत्कर्षतः दो पूर्णांक एक ग्यारहांश सागरोपम का है । (१५५)

सागर द्वयमेकांशसंयुक्तं सप्तमे लघुः ।

त्रिभिरेका दशांशैश्च युक्तमब्धि द्वयं गुरुः ॥१५६॥

सातवें प्रतर में नारकों का स्थिति काल जघन्य से दो पूर्णांक एक ग्यारहांश और उत्कृष्ट दो पूर्णांक तीन ग्यारहांश सागरोपम का है । (१५६)

अष्टमे तु त्रिभिर्भागीः सहाब्धि द्वितयं लघुः ।

अंचितं पंचभिर्भागीर्वारिधिद्वितयं गुरुः ॥१५७॥

आठवें प्रतर में नारकों का स्थितिकाल जघन्यतः दो पूर्णांक तीन ग्यारहांश सागरोपम का है और उत्कर्षत दो पूर्णांक पांच ग्यारहांश सागरोपम जानना । (१५७)

नवमेऽल्पीयसी पंचभागाढयमम्बुधिद्वयम् ।

पयोधिद्वितयं सप्तभागोपेतं गरीयसी ॥१५८॥

नौवें प्रतर में नारकों का स्थिति काल जघन्यतः दो पूर्णांक पांच ग्यारहांश है और उत्कृष्ट दो पूर्णांक सात ग्यारहांश सागरोपम का है । (१५८)

जघन्या दशमे सप्तभागाढयं सागरद्वयम् ।

उत्कृष्टा सागर द्वं द्वं भागैर्नवभिरन्वितम् ॥१५९॥

दसवें प्रतर में नारको की स्थिति काल जघन्यतः दो पूर्णांक सात ग्यारहांश है और उत्कर्षतः दो पूर्णांक नौ ग्यारहांश सागरोपम का है । (१५९)

नवभागान्वितवारिधिद्वयमेकादशलघुः ।

उत्कृष्टा च वारिधीनां सम्पूर्ण त्रितयं भवेत् ॥१६०॥

अन्तिम ग्यारहवें प्रतर में नारको का स्थिति काल जघन्यतः दो पूर्णांक नौ ग्यारहांश सागरोपम है और उत्कर्षतः सम्पूर्ण तीन सागरोपम है । (१६०)

प्राग्वत् लेश्या च कापोती हावधेर्गोचरो गुरुः ।

गव्यूतानां त्रयं सार्द्धं गव्यूत त्रितयं लघुः ॥१६१॥

इस नरक पृथ्वी में भी पूर्व के समान कापोत लेश्या होती है तथा अवधिज्ञान का विषय उत्कर्षतः साढ़े तीन कोश व जघन्यतः तीन कोश का होता है । (१६१)

नारक च्यवनोत्पत्तिविरहोऽत्र जघन्यतः ।

समयं यावदुष्कर्षात् दिनानि सप्त कीर्तितः ॥१६२॥

इति शर्करा प्रभा पृथिवी ॥२॥

इस नरक के नारक जीव की उत्पत्ति और च्यवन का अन्तर जघन्य से एक समय और उत्कर्षतः सात दिन का है । (१६२)

इस प्रकार दूसरी शर्करा प्रभा नामक नरक पृथ्वी का वर्णन हुआ । (२)

अथ शैलाभिद्या पृथ्वी तृतीया परिकीर्त्यते ।

या वालुकानां बाहुल्यात् गोत्रेण वालुकाप्रभा ॥१६३॥

अब तीसरी शैला नामक नरक पृथ्वी का वर्णन करते हैं । इस शैला में वालुका अर्थात् रेती की बहुलता होने से यह वालुका प्रभा नाम से जानी जाती है । (१६३)

अस्यां प्रथमवलये विष्कम्भो योजनानि षट् ।

द्वौ त्रिभागो योजनस्य द्वितीये वलये पुनः ॥१६४॥

पंचैव योजनानि स्युः वलयेऽथ तृतीय के ।

योजनस्य द्वादशांशैरष्टभिः सह योजनम् ॥१६५॥ युगम् ।

इसमें प्रथम वलय का विष्कम्भ छः योजन है, दूसरे वलय का पांच पूर्णांक दो तृतीयांश है और तीसरे वलय का पांच पूर्णांक दो तृतीयांश योजन है । इसके साथ द्वादशांश का आठवां भाग योजन का मान होता है । (१६४-१६५)

त्रयोदशभिरित्येवं सतृतीयांशयोजनैः ।

अलोको वालुका पृथ्वीपर्यन्ततः प्ररूपितः ॥१६६॥

शेष धनोदध्यादि स्वरूपं धर्मावत् ।

इस तरह से कुल तरह पूर्णांक एक तृतीयांश योजन में वालुका प्रभा की सीमा पूरी होती है, उसके आगे चारों तरफ अलोक है । (१६६)

इसका धनोदधि आदि शेष स्वरूप धर्मा अनुसार है ।

अष्टाविंशत्या सह स्त्रैः योजनानां समन्वितम् ।

लक्षं बाहुल्यमादिश्टं अस्यां दृष्टजगत्रयैः ॥१६७॥

इस शैला की मोटाई एक लाख अट्टाईस हजार योजन, तीन जगत् के नाथ ने देखा है । (१६७)

मुक्तवा चैकैकं सहस्रं प्राग्वदस्यामुपर्यधः ।

मध्ये षड्विंशतिसहस्राढ्यैकलक्षयोजनम् ॥१६८॥

नव स्युः प्रस्तटास्तेषां प्रत्येकमिदमन्तरम् ।

सहस्राणि द्वादशैव त्रिंशती पंचसप्ततिः ॥१६६॥ युग्मं ।

इसमें भी ऊपर और नीचे के हजार-हजार योजन छोड़कर शेष के एक लाख छब्बीस हजार योजन प्रमाण मध्यभाग में नौ प्रतर हैं और वे एक दूसरे से बारह हजार तीन सौ पचहत्तर योजन के अन्तर से होते हैं । (१६८-१६९)

प्रति प्रतरमेकैको मध्ये स्यान्नरकेन्द्रकः ।

ते च तप्तः तपितश्च तपनः तापनस्तथा ॥१७०॥

निदाधश्च प्रज्वलितः परः उज्ज्वलिताभिधः ।

तथा संज्वलिताभिधः संप्रज्वलित संज्ञकः ॥१७१॥ युग्मं ।

प्रत्येक प्रतर में एक-एक नरकेन्द्र है और उनके नाम :- १- तप्त, २- तपित, ३- तपन, ४- तापित, ५- निदाध, ६- प्रज्वलित, ७- उज्ज्वलित, ८- संज्वलित और ९- संप्रज्वलित हैं । (१७०-१७१)

एभ्यश्च पंक्तयो दिक्षु विदिशासु च निर्गताः ।

पंचविंशतिरावासास्तत्र दिग्वर्तिपंक्तिषु ॥१७२॥

विदिशा पंक्तिषु चतुर्विंशतिः नरकालयाः ।

प्रथम प्रतरे सप्तनवत्याढ्यं शतं समे ॥१७३॥

इन नरकेन्द्रों से चार दिशाओं में चार और चार विदिशाओं में चार मिलकर आठ पंक्ति अथवा आवली निकलती हैं । इसमें दिग्वर्ति पंक्तियों में पच्चीस पच्चीस और विदिग्वर्ति पंक्तियों में चौबीस चौबीस नरकवास हैं । इस तरह प्रथम प्रतर में समग्र एक सौ सत्तानवें नरकवास है । (१७२-१७३)

द्वितीयादि प्रस्तटे स्युः श्रेण्य एकैकवर्जिताः ।

ततो द्वितीय एकोननवत्याढ्यं शतं समे ॥१७४॥

और अन्य इसके बाद के प्रतरों में प्रत्येक श्रेणि में एक-एक कम करके नरकवास हैं इस कारण से हिसाब करते अन्य प्रतर में सारे मिलाकर कुल एक सौ नवासी नरकवास होते हैं । (१७४)

सैकाशीति तृतीये तच्चतुर्थे सत्रिसप्तति ।

पंचमे प्रतरे प्रोक्तं पंच षष्टि युतं शतम् ॥१७५॥

षष्टे च प्रस्तटे सप्तपंचाशं सम्पतं शतम् ।
शतमेकोनपंचाशद्युक्तं मुक्तं च सप्तमे ॥१७६॥
अष्टमे त्वेकं चत्वारिंशतोपेतं शतं मतम् ।
त्रयस्तिंशं शतं चैकं नवमे प्रस्तटे भवेत् ॥१७७॥

इसी तरह से तीसरे प्रतर में सारे मिलकर एक सौ इक्कासी होते हैं चौथे में एक सौ तिहत्तर, पांचवे में एक सौ पैंसठ, छठे प्रतर में एक सौ सत्तावन, सातवें में एक सौ उनचास, आठवें में एक सौ एकतालीस और अन्तिम नौवें में एक सौ तैंतीस होते हैं । (१७५-१७७)

एवं चतुर्दशशती पंचाशीति समन्वित ।
वालुकायां पंक्तिगताः सर्वेऽपि नरकालयाः ॥१७८॥

इस तरह नौ प्रतर के कुल मिलाकर चौदह सौ पचास पंक्तिगत नरकवास होते हैं । (१७८)

सहस्राण्यष्टनवतिस्तथा लक्षाश्चतुर्दश ।
शताः पंच पंचदशाधिकाः पुष्पावकीर्णकाः ॥१७९॥

तथा 'पुष्पावकीर्ण' नरकवासों की संख्या चौदह लाख अठानवें हजार पांच सौ पंद्रह कहीं है । (१७९)

एवं च वालुका पृथ्व्यां नरकाः सर्वे संख्यया ।
लक्षाः पंच दश प्रोक्ताः तत्त्वज्ञानमहार्णवैः ॥१८०॥

शेष सर्वं स्वरूपं धर्मावत् ।

इस तत्त्वज्ञान महापुरुषों ने इस वालुका प्रभा में सर्व मिलाकर कुल पंद्रह लाख नरकवास कहे हैं । (१८०)

शेष सब बातें धर्मा अनुसार समझना ।

द्वाषष्टिः पाणयः सार्द्धाः प्रथम प्रस्तटे तनुः ।
सार्द्धं सप्तांगुलाढयाश्च द्वितीये सप्ततिः कराः ॥१८१॥

पहले प्रतर में नारक का शरीर मान साढ़े बासठ हाथ है, दूसरें में सत्तर हाथ साढ़े सात अंगुल है । (१८१)

तृतीयेऽष्टसप्ततिस्ते संयुक्ता अंगुलैस्त्रिभिः ।
तुर्ये सार्द्धांगुलन्यूनां षड्शीति कराः किल ॥१८२॥

तीसरे प्रतर में अट्टहत्तर हाथ तीन अंगुल शरीर मान है जब कि चौथे में पचासी हाथ साढ़े बाईस अंगुल का है ।

पंचमे च त्रिनवतिः कराः साष्टादशांगुलाः ।

एकोत्तरशतं षष्टेऽध्यर्द्धत्रयोदशांगुलाः ॥१८३॥

पांचवे प्रतर में नारको का तिरानवे हाथ अठारह अंगुल शरीरमान है और छठे में एक सो एक हाथ और साढ़े तेरह अंगुल है । (१८३)

नवोत्तरं शतं हस्ताः सप्तमे सनवांगुलाः ।

सान्द्वांगुलचतुष्काढ्यं शतं सप्तदशोत्तरम् ॥१८४॥

सातवें प्रतर में उनका शरीरमान एक सौ नौ हाथ और नौ अंगुल है और आठवें में एक सौ सत्तर हाथ साढ़े चार अंगुल है । (१८४)

कराणामष्टमेज्ञेयं नवम प्रस्तटे तथा ।

शतं सपादं संपूर्णं द्विघ्नतूत्तर वैक्रियम् ॥१८५॥

नौवें प्रतर में सम्पूर्ण एक सौ पच्चीस हाथ का शरीर है, और उत्तर वैक्रिय शरीर सर्व का अपने-अपने शरीरमान से दुगुणा होता है । (१८५)

प्रथमेऽब्धित्रयं लघ्वी स्थितिरूत्कर्षतोऽम्बुधेः ।

नवभागी कृतस्यांशचतुष्काढयाः त्रयोऽर्णवाः ॥१८६॥

अब इस नरक की आयुष्य स्थिति के विषय में कहते हैं । पहले प्रतर में जघन्य स्थिति तीन सागरोपम की है और उत्कर्षतः तीन पूर्णांक चार नवमांश सागरोपम की है । (१८६)

एषैव च द्वितीये स्याज्जघन्या परमा पुनः ।

वान्द्भित्रयं प्रोक्तरूपैर्भागैरष्टधिरंचितम् ॥१८७॥

दूसरे प्रतर में जघन्य स्थिति तीन पूर्णांक चार नवमांश सागरोपम की है जबकि उत्कृष्ट स्थिति तीन पूर्णांक आठ नवमांश सागरोपम की है । (१८७)

तृतीये तु जघन्याब्धित्रयं भागैः सहाष्टभिः ।

उत्कर्षतस्त्रिभिर्भागैर्युक्तमब्धि चतुष्टयम् ॥१८८॥

तीसरे प्रतर में जघन्यतः तीन पूर्णांक आठ नवमांश सागरोपम की और उत्कृष्ट चार पूर्णांक एक तृतीयांश सागरोपम की स्थिति है । (१८८)

भाग त्रयान्वितं तुर्ये जघन्याब्धि चतुष्टयम् ।

उत्कर्षतः सप्त भाग युक्तमब्धि चतुष्टयम् ॥१८६॥

चौथे प्रतर में जघन्यतः चार पूर्णांक एक तृतीयांश सागरोपम की स्थिति है और उत्कृष्ट चार पूर्णांक सात नवमांश सागरोपम की है । (१८६)

एषैव प्रतरे लघ्वी पंचमे परिकीर्तिता ।

उत्कर्षतो द्विभागाद्द्या प्रज्ञप्ता पंचसागरी ॥१९०॥

पांचवे प्रतर में जघन्य से चार पूर्णांक सात नवमांश सागरोपम की है और उत्कृष्ट से पांच पूर्णांक दो नवमांश सागरोपम की है । (१९०)

षष्ठे जघन्यतः पंच पारावारी द्विभागयुक् ।

उत्कर्षतः पंच पारावारी षड् भाग संयुता ॥१९१॥

छठे प्रतर में जघन्य से पांच पूर्णांक दो नवमांश सागरोपम की स्थिति है और उत्कृष्ट रूप में पांच पूर्णांक छह नवमांश सागरोपम की है । (१९१)

इयमेव जघन्या च सप्तम प्रतरे भवेत् ।

युक्तान्येकेन भागेन प्रमा सागराणि षट् ॥१९२॥

सातवें प्रतर में नारक की जघन्य स्थिति पांच पूर्णांक छह नवमांश सागरोपम की है और उत्कृष्ट स्थिति छः पूर्णांक एक नवमांश सागरोपम की है । (१९२)

सागराणि षडेकांश संयुक्तान्यष्टमे लघुः ।

उत्कृष्टा षट् सागराणि पंच भाग युतानि च ॥१९३॥

आठवें प्रतर में जघन्य स्थिति छह पूर्णांक एक नवमांश सागरोपम की है, जबकि उत्कृष्ट स्थिति छः पूर्णांक सागरोपम की है । (१९३)

नवमे पंच भागाद्द्या जघन्या षट्पयोधयः ।

उत्कर्षतः स्थितिश्चात्र संपूर्णाः सप्त सागराः ॥१९४॥

नौवें प्रतर में इनकी जघन्य स्थिति छह पूर्णांक पांच नवमांश सागरोपम की है और उनकी उत्कृष्ट स्थिति सम्पूर्ण सागरोपम की है । (१९४)

प्रथम प्रतरे चात्र केषांचिन्नारकांगिनाम् ।

कापोत लेश्या सर्वेषु नीललेश्यापरेषु च ॥१९५॥

अब नरकजीवों की लेश्या के विषय में कहते हैं - प्रथम प्रतर में नारकी जीवों की कापोत लेश्या होती है और अन्य सब प्रतरो में नील लेश्या होती है । (१९५)

स्थितिः कापोतलेश्याया भवेदुत्कर्षतोऽपि यत् ।

पत्न्योपमासंख्यभागाध्यधिकं सागरत्रयम् ॥१६६॥

द्वितीयादिप्रस्तटे तु जघन्यापि न सा स्थितिः ।

तदाद्य एव प्रतरे कापोत्यस्यामिति स्थितम् ॥१६७॥

कापोत लेश्या की भी उत्कर्षतः स्थिति तीन सागरोपम और पत्न्योपम का असंख्यात्वा भाग है और दूसरे तथा उसके बाद के प्रतर में तो जघन्य से भी उतनी स्थिति नहीं है, इसलिए इस नरक में प्रथम प्रतर में ही कापोत लेश्या है । इस प्रकार निश्चय हुआ । (१६६-१६७)

तत्रापि पत्न्यासंख्यांशाधिकाभ्योधिप्रयावधिः ।

विभ्रतामायुरेषा स्यान्नीलैवातोऽधिकायुषाम् ॥१६८॥

और इसमें भी जिसका आयुष्य तीन सागरोपम के ऊपर पत्न्योपम के असंख्यात्वा भाग है उसकी ही कापोत लेश्या है । इससे अधिक आयुष्य की स्थिति वाले को नील लेश्या ही होती है । (१६८)

सजातीयापि लेश्या स्यादधोऽनुक्रमादिह ।

क्लिष्टा क्लिष्टतरा क्लिष्टतमा सर्वासु भूमिषु ॥१६९॥

यह सजातीय लेश्या भी नीचे से नीचे सर्व पृथ्वी में अनुक्रम से क्लिष्ट, अधिक क्लिष्ट और अतिशय क्लिष्ट - भारी होता है । (१६९)

उत्कर्षतोऽवधिक्षेत्रं गव्यूतत्रयमत्र च ।

जघन्यततश्च गव्यूतद्वयं साद्धं तदाहितम् ॥२००॥

इस बालुका पृथ्वी में अवधि ज्ञान का क्षेत्र उत्कृष्ट रूप में तीन कोश का है और जघन्य रूप में अढ़ाई कोश का है । (२००)

अत्रोत्पत्तिच्यवनयोरन्तरं परमं भवेत् ।

दिनानि पंचदश तज्जघन्यं समयात्मकम् ॥२०१॥

तथा उत्पत्ति और च्यवन के बीच में अन्तर उत्कर्षतः पंद्रह दिन का है और जघन्य से एक समय मात्र का कहा है । (२०१)

इति बालुका प्रभा पृथिवी ॥३॥

इस तरह से बालुका प्रभा नाम की नरक पृथ्वी का स्वरूप कहा है । (३)

अथांजनाभिधा पृथ्वी चतुर्थीयं निरूप्यते ।

या प्रोक्ता पंकबाहुल्यात् पंकप्रभेति गोत्रतः ॥२०२॥

अब चौथी अंजना नाम की जो नरक पृथ्वी है, वहां पंक (कीचड़) की अधिकता होने से पंक प्रभा के नाम से जाना जाता है । उसका कथन करते हैं (२०२)

सप्तयोजन विस्तीर्णमस्यां वलयमादिमम् ।

सपादपंच पादोनद्वयमाने क्रमात् परे ॥२०३॥

इसके तीन वलय में से प्रथम का विष्कंभ सात योजन का है दूसरा सवा पांच योजन का और तीसरा पौने दो योजन का है । (२०३)

चतुर्दशभिरित्येवं संपूर्णैः ननु योजनेः ।

पंक प्रभायाः पर्यन्तादलोकः परिकीर्तितः ॥२०४॥

इस प्रकार चौदह योजन में अंजना की अन्तिम सीमा आती है, और उसके बाद अलोक आता है । ऐसा ज्ञानियों ने कहा है । (२०४)

लक्षं सहस्रैर्विशत्याधिकं बाहल्यमत्र च ।

मुक्त्वा सहस्रमेकैकं प्राग्वदत्राप्युपर्यधः ॥२०५॥

मध्ये चाष्टादश सहस्राढय योजनलक्षके ।

भवन्ति प्रस्तटाः सप्त तेषां प्रत्येकमन्तरम् ॥२०६॥ युग्मं ।

योजनानां सहस्राणि षोडशैकं तथा शतम् ।

सषट् षष्टि द्वौ त्रि भागौ योजनस्येति कीर्तितम् ॥२०७॥

इस अंजना की एक लाख बीस हजार योजन प्रमाण मोटाई है यहां भी पूर्व के समान नीचे तथा ऊपर हजार-हजार योजन छोड़कर शेष एक लाख अठारह हजार योजन के मध्य में सात प्रतर हैं उनका परस्पर अन्तर सोलह हजार एक सौ छियासठ पूर्णांक दो तृतीयांश योजन होता है । (२०५-२०७)

प्रतिप्रतरमेकैको भवेच्च नरकेन्द्रकः ।

ते चामी गदिता आरनारौ मारस्तथापरः ॥२०८॥

वर्चः तमः खाडखडः तथा खडखडाभिधः ।

प्रति प्रतरमेध्यश्च प्राग्वदष्टाष्ट पंक्तयः ॥२०९॥ युग्मं ।

यहां भी प्रत्येक प्रतर में एक नरकेन्द्र है अर्थात् सात प्रतर के सात नरकेन्द्र होते हैं । उनके १- आर, २- नार, ३- मार, ४- वर्चस, ५- तमस, ६- खाडखड,

और ७- खडखड इस तरह नाम है । इन सातों से पूर्व के समान प्रत्येक प्रतर में आठ-आठ पंक्तियां निकलती है । (२०८-२०९)

स्युः षोडश पंच दशावासा दिक्षु विदिक्षु च ।

शतं सपादं प्रथम प्रतरे सर्वं संख्यया ॥२१०॥

प्रत्येक दिशा में सोलह-सोलह और प्रत्येक विदिशा में पंद्रह-पंद्रह नरकावास पहले प्रतर में हैं । इस तरह इसमें सब मिलाकर एक सौ पच्चीस हैं । (२१०)

द्वितीयादिषु चैकैक हीनां अष्टापि पंक्तयः ।

ततो द्वितीय प्रतरे सर्वे सप्तदशं शतम् ॥२११॥

और अन्य इसके बाद के प्रतरों में आठ पंक्तियों में एक-एक कम होता है इस गिनती से गिनते, दूसरे प्रतर में एक सौ सत्तर नरकावास होते हैं । (२११)

नवोत्तरं तृतीये तत् तुर्ये एकोत्तरं शतम् ।

पंचमे च त्रिनवतिः पंचाशीतिश्च षष्टके ॥२१२॥

सर्वे च पंक्तिनरकाः सप्तमे सप्तसप्ततिः ।

सप्ताधिकां सप्तशती सर्वेऽस्यां पंक्तिसंश्रयाः ॥२१३॥

इसी गिनती से तीसरे प्रतर में एक सौ नौ, चौथे प्रतर में एक सौ एक, पांचवे में तिरानवे, छठे में पचासी और सातवें में सतहत्तर नरकावास होते हैं । इस तरह सातों प्रतर के मिलाकर सात सौ सात पंक्ति गत नरकावास होते हैं । (२१२-२१३)

सहस्रा नव नवतिः नव लक्षास्तथा परे ।

द्विशती सत्रिनवतिः अस्यां पुष्पावकीर्णकाः ॥२१४॥

और वहां अन्य पुष्पावकीर्णक नरकावास हैं उनकी कुल संख्या नौ लाख निन्यानवें हजार दो सौ तिरानवे है । (२१४)

एवं च सर्वे नरकावासाः पंकप्रभाक्षितौ ।

निर्दिष्टा दश लक्षाणि साक्षात्कृतचराचरैः ॥२१५॥

अतः कुल मिलाकर पंक प्रभा पृथ्वी में दस लाख नरकावास श्री जिनेश्वर भगवान के वचनानुसार कहे हैं । (२१५)

इत आरभ्य नो पीडा परमाधार्मिकोद्भवाः ।

ततोऽस्यां द्विविधा एव क्षेत्रजाश्च मिथः कृताः ॥२१६॥

यह और इसके बाद की सर्व नरक पृथ्वी में परमाधामी कृत वेदना नहीं है केवल क्षेत्र वेदना और परस्पर कृत वेदना, इस तरह दो ही प्रकार की वेदना होती है । (२१६)

परमेताः प्राक्तनाभ्योऽनन्तानन्तगुणाधिकाः ।

तीव्राः तीव्रतराः तीव्रतमाः चानुक्रमादधः ॥२१७॥

परन्तु यह वेदना पूर्व की वेदना से अनन्त गुना होती है और वह भी नीचे से नीचे जाय तो वैसे-वैसे अनुक्रम से तीव्र अधिक तीव्र और अत्यन्त तीव्र होती जाती है । (२१७)

तत्राप्यत्रोपरितनप्रतरेषु बहुष्वपि ।

उष्णास्तोकेष्वधःस्थेषु शीता च क्षेत्रवेदना ॥२१८॥

और इसमें ऊपर के बहुत प्रतर में क्षेत्र वेदना उष्ण है जबकि नीचे के थोड़े प्रतरो में शीत है । (२१८)

उष्णेषु च नरकेषु नारकाः शीतयोनयः ।

नरकेषु च शीतेषु नारकाः उष्णायोनयः ॥२१९॥

वहां नरक में शीत योनि वाले आवास है घे उष्ण है और उष्ण योनि वाले आवास है वें शीत होते हैं । (२१९)

सर्वेष्वपिनरकेषु ज्ञेय एवं विपर्ययः ।

नारकोत्पत्तिदेशान्यक्षेत्रयोः सोऽति दुःखदः ॥२२०॥

सभी नरकों में जीवों का उत्पत्ति स्थान और आवास के क्षेत्र में विपरीत है और वह अत्यन्त मुश्किल सहन होता है । (२२०)

हैम त्रिषष्टि चरिते सप्तमपर्वणि त्व त्रापि परमाधार्मिक कृता वेदना उक्ता ॥ तथाहि -

सिंहादिरूपैः विकृतैः तत्र शम्बूकरावणौ ।

लक्ष्मणेन समं क्रुद्धौ युद्धयमानौ ददर्श सः ॥१॥

नैवं वो युद्धयमानानां दुःखं भावीति वादिनः ।

परमाधार्मिकाः क्रुद्धा अग्नि कुंडेषु तान्यधुः ॥२॥

श्री हेमचन्द्राचार्य विरचित त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र में तो इस पंक्त प्रभा नाम पृथ्वी के नरक जीव को भी परमाधामी कृत वेदना होती है । इस तरह

कहा है - जैसे कि - वहां उसने सिंह आदि का रूप धारण कर लक्ष्मण के साथ में युद्ध करते शम्बुक तथा रावण को देखा इस तरह उस परमाधार्मी ने 'तुम इस तरह लड़ाई कर रहे हो तो तुमको कुछ दुःख नहीं होगा ।' इस प्रकार कह कर उनको अग्नि कुंड में डाल दिया । (१-२)

शतं सपादं हस्तानां प्रथमेऽङ्गुलं द्वितीयके ।

स्यात् षट्चत्वारिंशशतमूनं चतुर्भिरंगुलैः ॥२२१॥

करास्तृतीये षट्षष्टिशतं सषोऽशांगुलम् ।

सप्ताशीतिशतं तुर्येऽङ्गुलैः द्वादशभिः युतम् ॥२२२॥

अष्टाधिके द्वे शते च पंचमेऽष्टांगुलाधिके ।

षष्टे च प्रस्तटे देहमानं हस्तशतद्वयम् ॥२२३॥

एकोनत्रिंशतो हस्तैः चतुर्भिः चांगुलैः युतम् ।

सप्तम प्रस्तटे देहो हस्ताः सार्द्धं शतद्वयम् ॥२२४॥ युग्मं ।

इस पंक प्रभा नरक के प्रथम प्रतर में देहमान सवा सौ हाथ का है, दूसरे में एक सौ पैंतालीस, हाथ बीस अंगुल है, तीसरे में एक सौ छियासठ हाथ और सोलह अंगूल देहमान है, चौथे में एक सौ सत्तासी, हाथ और बारह अंगूल है पांचवे में दो सौ आठ हाथ आठ अंगूल देहमान है और छठे में दो सौ उन्तीस हाथ और चार अंगूल है और अन्तिम सातवें में देहमान दो सौ पंचास हाथ है । (२२१-२२४)

प्रथम प्रस्तटेऽथायुः जघन्यां सप्तसागरी ।

उत्कृष्टा सात्रिभिः वार्द्धिभागैर्युक्ता च सामिकैः ॥२२५॥

अब इन नरकों की आयु स्थिति सम्बन्ध में कहते हैं - पंक प्रभा के पहले प्रतर में नारको का आयुष्य जघन्य रूप में सात सागरोपम है और उत्कृष्ट रूप में सात पूर्णांक तीन सप्तमांश सागरोपम है । (२२५)

द्वितीय प्रस्तटे त्वेषा जघन्या कीर्तिता स्थितिः ।

उत्कृष्टा षट्सप्तिकांशसमेताः सप्तवार्द्धयः ॥२२६॥

दूसरे प्रतर में नारको का आयुष्य जघन्य रूप में सात पूर्णांक तीन सप्तमांश सागरोपम है, और उत्कृष्ट रूप में सात पूर्णांक छह सप्तमांश सागरोपम होता है । (२२६)

तृतीये तु जघन्यैषा गदिता परमा पुनः ।

द्वाभ्यां साप्तिक भागाभ्यां संयुक्ता अष्ट सागरा ॥२२७॥

तीसरे प्रतर में नारको की आयुष्य स्थिति जघन्यतः सात पूर्णांक छः सप्तमांश सागरोपम की है और उत्कर्षतः आठ पूर्णांक दो सप्तमांश सागरोपम की है ।

अष्टाब्धयो द्विभागादद्याः तुर्ये जघन्यतः स्थितिः ।

पंचभिः साप्तिकैर्भागैः सहाष्टाब्धोघयः परा ॥२२८॥

चौथे प्रतर में जघन्य स्थिति आठ पूर्णांक दो सप्तमांश सागरोपम की है, और उत्कर्षतः स्थिति आठ पूर्णांक पांच सप्तमांश सागरोपम की है । (२२८)

पंचमे पंचभिर्भागैः सहाष्टसिन्धवोलघुः ।

एकेन साप्तिकांशेन सहोत्कृष्टानवार्षावाः ॥२२९॥

पांचवे प्रतर में यह नारक स्थिति जघन्यः आठ पूर्णांक पांच सप्तमांश सागरोपम की है और उत्कृष्ट नौ पूर्णांक एक सप्तमांश सागरोपम की है । (२२९)

षष्टे जघन्या त्वेकांशसंयुक्ता सागरा नव ।

चतुर्भिः साप्तिकैर्भागैः सहोत्कृष्टानवार्षावाः ॥२३०॥

छट्टा प्रतर में इनका जघन्य आयुष्य नौ पूर्णांक एक सप्तमांश सागरोपम है और उत्कृष्ट आयुष्य नौ पूर्णांक चार सप्तमांश सागरोपम का है । (२३०)

इयमेवय जघन्येन सप्तमे स्थितिरास्थिता ।

उत्कर्षतः स्थितिश्चात्र जिनैरुक्ता दशाब्धयः ॥२३१॥

सातवें प्रतर में उसकी स्थिति जघन्यतः नव पूर्णांक चार सप्तमांश सागरोपम है और उत्कर्षतः दस सागरोपम पूर्ण है श्री जिनेश्वर देव ने कही है । (२३१)

नीला भवेदत्र लेश्या परमोऽवधिगोचरः ।

गव्यूतद्वयमध्यर्द्धं गव्यूतद्वितयं लघुः ॥२३२॥

इस नरक पृथ्वी के नारकी को नील लेश्या होती है इनको अवधिज्ञान क्षेत्र उत्कर्षतः अर्द्धाई कोश है और जघन्य से दो कोश का होता है । (२३२)

उत्पत्तेश्च्यवनस्यापि नारकाणामिहान्तरम् ।

मासमेकं भवेन्जयेष्टं जघन्यं समयावधि ॥२३३॥

इति पंक प्रभा पृथिवी ॥४॥

इस नारक का उत्पत्ति समय और च्यवन काल बीच का अन्तर उत्कर्षत एक महीने का है और जघन्यतः एक समय मात्र का है । (२३३)

इस तरह पंक प्रभा नाम की नरक पृथ्वी का स्वरूप कहा है । (४)

अथरिष्ठाभिधा पृथ्वी पंचमी परिकीर्त्यते ।

या धूमरूपबाहुल्याध्यूमप्रभेति गोत्रतः ॥२३४॥

अब रिष्ठा नाम की पांचवी नरक है उसमें वहा धुएं की बहुलता होने के कारण धूम प्रभा नाम से जाना जाता है उसका निरूपण करने में आता है । (२३४)

वलयस्येह विष्कंभः प्रथमस्य प्ररूपितः ।

योजनस्य तृतीयांश संयुक्ता सप्तयोजनी ॥२३५॥

द्वितीय वलये सार्द्धपंचयोजनविस्तृतिः ।

तृतीये च द्वादशांशैर्दशभिः सह योजनम् ॥२३६॥

इत्येवं पंच दशभिर्योजनैश्च समन्ततः ।

स्यादलोकःतृतीयांशान्यूनैः धूमप्रभान्ततः ॥२३७॥

इस रिष्ठा में भी तीन वलय है, उसमें प्रथम वलय का विष्कंभ सात पूर्णांक एक तृतीयांश योजन का है, दूसरे साढ़े पांच योजन प्रमाण है, और तीसरे का एक पूर्णांक पांच योजन षष्ट्यांश योजन का प्रमाण है । इस प्रकार चौदह पूर्णांक दो तृतीयांश योजन से इस धूम प्रभा की सीमा पूर्ण होती है, और उसके बाद का अलोक होता है । (२३५-२३७)

अष्टादशसहस्राढ्यलक्षयोजनसंमितम् ।

बाह्यल्यमस्यामुदितमुदितामितवाङ्मयैः ॥२३८॥

अनंत ज्ञान के स्वामी श्री केवली भगवन्त कह गये हैं कि इस नरक पृथ्वी की मोटाई एक लाख अठारह हजार योजन है । (२३८)

मुक्त्वासहस्रमेकैकं प्राग्वदत्राप्युपर्यधः ।

मध्येऽत्र षोडश सहस्राढ्ययोजनलक्षके ॥२३९॥

भवन्ति प्रस्तटाः पंच तेषां प्रत्येकमन्तरम् ।

योजनद्विशती सार्धा सहस्राः पंच विंशतिः ॥२४०॥ युग्मं ।

सर्व नरक पृथ्वी के समान यहां भी ऊपर और नीचे के हजार-हजार योजन छोड़कर मध्य के एक लाख सोलह हजार योजन प्रदेश में पांच प्रतर है, और ये

प्रत्येक पच्चीस हजार दो सौ पचास योजन के अन्तर में आते हैं । (२३६-२४०)

तेषु प्रत्येकमेकैकः कथितो नरकेन्द्रकः ।

खातः तमः भ्रमः चान्धः तथाथतमसोऽपि च ॥२४१॥

प्रत्येक प्रतर में एक-एक नरकेन्द्र है । अर्थात् पांच प्रतर के नाम १- खात, २- तमस, ३- भ्रम, ४- अन्ध और ५- अन्ध तमस है । (२४१)

प्रति प्रतरमेभ्यश्च निर्गता अष्टपंक्तयः ।

चतस्रो दिग्गताःतद्वत् चतस्रस्युविदिग्गता ॥२४२॥

इस पांच प्रतरों में प्रत्येक की आठ-आठ पंक्तियां निकलती हैं उसमें चार दिशा गत है और विदिशा गत चार है । (२४२)

दिक्पंक्तिषु नव नव भवन्ति नरकाश्रयाः ।

परा स्वष्टाष्टसर्वाग्रमाद्ये एकोनसप्ततिः ॥२४३॥

दिग्गत पंक्तियों में नौ-नौ नरकावास है और विदिशागत पंक्तियों में आठ आठ नरकावास है । अतः कुल मिलाकर इस धूमप्रभा के प्रथम प्रतर में उनहत्तर नरकावास होते हैं । (२४३)

प्रतिप्रतरमेकैकहीना अष्टापि पंक्तयः ।

ततो द्वितीये पांक्तयेया एकषष्टिः प्ररूपिताः ॥२४४॥

तृतीये च त्रिपंचाशत् तुरीये प्रस्तटे पुनः ।

पंचचत्वारिंशदेव सप्तत्रिंशच्च पंचमे ॥२४५॥

दूसरे और उसके बाद के प्रतर में प्रत्येक पंक्ति में एक-एक नरकावास कम होते जाते हैं । इस कारण से दूसरे प्रतर में पंक्तिगत नरकावास इकसठ हैं । तीसरे प्रतर में तिरपन है, चौथे प्रतर में पैंतालीस और पांचवे प्रतर में सैंतीस ही होते हैं । (२४४-२४५)

एवं पंक्तिगताः सर्वे द्विशती पंचषष्टियुक् ।

शेषाः पुष्पावकीर्णास्तु लक्षयोर्द्वितयं तथा ॥२४६॥

सहस्रा नवनवतिः शतानि सप्त चोपरि ।

पंच त्रिंशदिति त्रीणि लक्षाणि सर्व संख्यया ॥२४७॥ युगं ।

इस तरह सर्व प्रतर में मिलाकर दो सौ पैसठ पंक्तिगत नरकावास होते हैं । और दूसरा पुष्पावकीर्ण नरकावास भी है, और उनकी संख्या दो लाख निम्नानवे

हजार सात सौ पैंतीस होती हैं, अतः इस धूम प्रभा में सर्व मिलाकर कुल तीन लाख नरकावास होते हैं । (२४६-२४७)

पंकप्रभाद्विज्ञेया द्विधा पीडात्र किन्त्वह ।

स्तोकेषु नरकेषूष्णा शेषेषु शीतवेदना ॥२४८॥

यहां वेदना तो पंक प्रभा नरक समान दो प्रकार की है परन्तु यह वेदना थोड़े नरकावास में उष्ण होती है और अधिक में शीत होती है । (२४८)

कराणां द्विशती सान्द्रां प्रथमे प्रस्तटे तनुः ।

द्वितीये त्रिशती द्वादशेत्तराः द्वादशांगुलाः ॥२४९॥

हस्ताः तृतीये त्रिशती पंचसप्तति संघृता ।

सार्धं सप्तत्रिंशदाढ्या तुर्ये चतुःशती कराः ॥२५०॥

शतानि पंच हस्तानां पंचमे प्रस्तटे जिनैः ।

पंचमज्ञानपटुभिः तनुमानं निरूपितम् ॥२५१॥

अब नरक जीवों के देहमान के विषय में कहते हैं - प्रथम प्रतर में उनका देहमान दो सौ पचास हाथ है, दूसरे प्रतर में तीन सौ बारह हाथ बारह अंगुल है, तीसरे में तीन सौ पचहत्तर हाथ, चौथे में चार सौ साढे सैंतीस हाथ और पांचवे प्रतर में पांच सौ हाथ होता है । इस तरह पंचम ज्ञान में कुशल-केवल ज्ञानी श्री जिनेश्वर भगवान के वचन है । (२४९-२५१)

दशाब्धयो जघन्येन प्रथम प्रस्तटे स्थितिः ।

उत्कृष्टा च पंचभागीकृतस्य जलधेः किल ॥२५२॥

युक्ता द्वाभ्यां विभागाभ्यामेकादश पयोधयः ।

एषैव च जघन्येन द्वितीय प्रस्तटे भवेत् ॥२५३॥ युगं ।

अब इन जीवों का आयुष्य विषय कहते हैं - प्रथम प्रतर में जघन्य दस सागरोपम आयु स्थिति है और उत्कृष्ट ग्यारह पूर्णांक दो पंचमांश सागरोपम की है । इतनी ही दूसरे प्रतर में जघन्य स्थिति है, और उत्कृष्ट बारह पूर्णांक चार पंचमांश सागरोपम की है ।

ज्येष्ठा चात्र युता भागैश्चतुर्भिर्द्वादशाब्धयः ।

इयमेव जघन्येन तृतीयप्रतरे स्थितिः ॥२५४॥

उत्कर्षतस्तृतीये च स्युः चतुर्दश वान्द्रयः ।

पंचभागी कृतस्याब्धेः भागेनेकेत्र संयुक्ताः ॥२५५॥

एषा लघुश्चतुर्थे स्यादुत्कृष्टात्र स्थितिः पुनः ।

त्रिभिः पूर्वोदितैर्भागैर्युताः पंचदशाब्धयः ॥२५६॥

पंचमेशत्रयोप्रेता लघुः पंचदशाब्धयः ।

उत्कृष्टा च सप्तदश संपूर्णा जलराशयः ॥२५७॥

तीसरे प्रतर में उतनी ही अर्थात् चार पूर्णांक चार पंचमाश सागरोपम की जघन्य स्थिति है । उत्कृष्ट स्थिति चौदह पूर्णांक एक पंचमाश सागरोपम की है । चौथे प्रस्तर में उतनी ही जघन्य स्थिति है और पंद्रह पूर्णांक तीन पंचमांश सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है । पांचवे प्रस्तर में पंद्रह पूर्णांक तीन पंचमांश सागरोपम की जघन्य है और सम्पूर्ण सत्रह सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है । (२५४-२५७)

केषांचिदाद्यप्रतरे नाराकाणां भवेदिह ।

नील लेश्या तदुत्कर्षादप्यस्याः स्थितिराहिता ॥२५८॥

पल्योपमासंख्यभागाधिका दशपयोधयः ।

ततोऽधिकास्थितीनां तु तेषां कृष्णैव केवलम् ॥२५९॥ युग्मं ।

अब लेश्या विषय में कहते हैं - प्रथम प्रतर में कईयों की नील लेश्या होती है । क्योंकि नील लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति भी दस सागरोपम और एक पल्योपम के असंख्यवे भाग रूप कही है । अतः इससे अधिक जिसकी स्थिति हो उसकी तो केवल कृष्ण लेश्या होती है । (२५८-२५९)

गव्यूतद्वयमुत्कृष्टो भवेदवधिगौचरः ।

जघन्यतस्तु गव्यूतं सार्द्धमुक्तोऽत्र पारगैः ॥२६०॥

इस नरक में अवधि ज्ञान का क्षेत्र उत्कृष्टतः दो कोश का होता है और कम से कम डेढ़ कोश का होता है । (२६०)

च्यवनोत्पत्ति विरहो नारकाणां भवेदिह ।

मासयोर्द्वैमुत्कर्षाञ्जघन्या त्समयावधिः ॥२६१॥

इति धूम प्रभा पृथ्वी ॥५॥

इस नरक के जीवों का च्यवन और उत्पत्ति बीच का अंतर अधिक से अधिक दो महिने का है और कम से कम एक समय का है । (२६१)

इस तरह धूम प्रभा पृथ्वी का स्वरूप कहा । (५)

मघाभिधाऽथ पृथिवी षष्ठी स्पर्शं निरूप्यते ।

तमसामतिबाहुल्याद्या गोत्रेण तमः प्रभा ॥२६२॥

अब मघा नाम की छठी नरक है, वहां तमस् अर्थात् अन्धकार अधिकतर होने के कारण तमः प्रभा के नाम से पहचानी जाती है, इसका निरूपण करते हैं । (२६२)

तृतीयांशोनितान्यष्टौ योजनानि घनोदधेः ।

बलये विस्तृतिः षट् च पादोनानि द्वितीय के ॥२६३॥

योजनं योजनस्य द्वादशभागीकृतस्य च ।

भागा एकादशेत्युक्ता तृतीये बलये मितिः ॥२६४॥

इस तमः प्रभा के भी तीन बलय हैं उसमें से प्रथम का घनोदधि बलय का विष्कंभ सात पूर्णांक दो तृतीयांश योजना है । दूसरे का पौने छः योजन है, और तीसरे का एक पूर्णांक दस ग्यारह अंश योजन है । (२६३-२६४)

योजनै पंच दशभिस्तृतीयभागसंयुतैः ।

भवत्येवम लोकश्च मघापर्यन्तभागतः ॥२६५॥

इस हिसाब से पंद्रह पूर्णांक एक तृतीयांश योजन से मघा की सीमा पूर्ण होती है । वहां से आगे चारो तरफ से अलोक है । (२६५)

लक्षमेकं योजनानां सषोडशसहस्रकम ।

बाहल्यमस्यां निर्दिष्टं प्राग्दत्राप्युपर्यधः ॥२६६॥

मुक्त्वा सहस्रमेकैकं मध्ये स्युः प्रस्तरास्त्रयं ।

सहस्राणि द्विपंचाशत् सार्द्धान्येतेषुचान्तरम् ॥२६७॥ युगं ।

इसकी मोटाई एक लाख सोलह हजार योजन प्रमाण की है । इस में भी पूर्व के समान ऊपर नीचे हजार-हजार योजन छोड़कर मध्य में एक लाख चौदह हजार योजन प्रमाण भाग में तीन प्रतर है । उनका अन्तर एक दूसरे के बीच में साढे बावन हजार योजन का है । (२६६-२६७)

हिमवाद्दल्लकाः त्रयोऽमी नरकेन्द्रकाः ।

क्रमात् त्रिषु प्रस्तेषु प्राग्बदेभ्योऽष्ट पंक्तयः ॥२६८॥

इन तीन में १- हिम २- वाईल और ३- लल्लक नाम के तीन नरकेन्द्र हैं और इन प्रत्येक में पूर्व समान आठ पंक्तियां निकलती हैं । (२६८)

दिश्यंपक्तिषु चत्वारः चत्वारः नरकालयाः ।

त्रयः त्रयः विदिक्ष्वेवमेकोनत्रिंशदादिमे ॥२६६॥

चार दिशाओं के चार-चार होने से सोलह और चार विदिशाओं के तीन-तीन होने से बारह है । दोनों को मिलाकर अट्ठाईस तथा एक नरकेन्द्र को मिलाकर कुल उन्तीस आवास प्रथम प्रतर में होते हैं । (२६६)

द्वितीयादिषु चैकैकहीना अष्टापि पंक्तयः ।

एवं द्वितीय प्रतरे पांक्तेया एक विंशतिः ॥२७०॥

त्रयोदश तृतीये स्युः त्रिषष्टिः सर्व संख्यया ।

मघायां पंक्तिनरकाः शेषाः पुष्पावकीर्णकाः ॥२७१॥

सहस्रा नवनवतिः शतानि नव चोपरि ।

द्वात्रिंशदिति सर्वाग्रं लक्षं पंचोन्माहिताः ॥२७२॥ विशेषकं ।

दूसरे और उसके बाद तीसरे प्रतर में आठ पंक्तियां हैं । उसमें एक-एक कम आवास वाली है । इस कारण से दूसरे प्रतर में इक्कीस और तीसरे में तेरह पंक्तिगत नरकावास है । इस तरह तीनों प्रतर वाली इस नरक में कुल तिरसठ पंक्तिगत नरकावास होते हैं और दूसरे पुष्पावकीर्ण आवास हैं । उसकी संख्या निम्नानवें हजार नौ सौ बत्तीस है । अतः इस नरक में कुल नरकावास निम्नानवें हजार नौ सौ पंचानवें होते हैं - एक लाख में पांच कम होते हैं । (२७०-२७२)

द्वेधात्र वेदना किन्तु शीतैव क्षेत्रवेदना ।

मिथः कृता वेदनाश्च विना प्रहरणैरिह ॥२७३॥

मघामाघवती जाताः शस्त्राणि न हि नारकाः ।

विकुर्वितुं शक्नुवन्ति तथा भवस्वभावतः ॥२७४॥

ततः प्रहरणाभावात् मिथोऽङ्गेषु प्रवेशितैः ।

वज्रतुंडकुंथुरूपैः पीडयन्ति विकुर्वितैः ॥२७५॥

यहां दो प्रकार की वेदना होती है १- क्षेत्र वेदना और २- परस्परकृत वेदना । इसमें क्षेत्र वेदना यहां शीतल ही है और दूसरी परस्पर कृत है वह प्रहरण अर्थात् शस्त्र बिना भी है क्योंकि मघा और मघावती नारक जीव में शस्त्र बनाने की शक्ति नहीं है क्योंकि उनका भव स्वभाव है इसलिए उनके पास शस्त्र नहीं है । ये वज्र के मुख वाले कुंथु रूप करके एक दूसरे के शरीर में प्रवेश करके पीड़ा करते हैं । (२७३-२७५)

तथोक्तमं जीवाभिगमे - "छद्मसत्तमासु षं पुढवीसु नेरइयां महंताइ लोहिय कुंथु रूवाई वयर मय तुंडाइ गोमय कीडसमाणाइं विउव्वित्ता अन्न मन्न स्स कायं समतुरंगे माणां २ खाए माणा २ समयपोरा किमिया इव दालेमाणा २ अन्तो अणुपवि समाणा वे यणं उइरेंति ॥ अत्र समतुरंगे माणा २ इति समतुरंगायमाणा अश्वा इव अन्थोन्यमारोहन्त इत्यर्थः समपोरा किमियत्ति शतपर्वकृमयः इक्षुकृमयः ॥"

इस सम्बन्ध में जीवाभिगम सूत्र में इस तरह उल्लेख मिलता है - छठी और सातवीं नरक पृथ्वी में नारक बड़े रक्त वर्ण वाले और वज्र समान मुखवाले, गोबर के कीड़े समान कुंथु जैसा रूप लेकर एक दूसरे के शरीर पर घोड़े के समान चढ़, चढ़ कर खाते हैं तथा गन्ना के कीड़े के समान खाते-खाते अन्दर गहरे प्रवेश करके वेदना उत्पन्न करते हैं । यहां 'समतुरंगमाणा' का अर्थ एक दूसरे को घोड़ा करके अर्थ लेना और 'सयपोहा किमिया' का शत पर्व गन्ना का कृमि-कीड़ा इस तरह अर्थ लेना चाहिए ।

प्रथमप्रस्तटे हस्ताः शतानि पंच भूघनम् ।

शतानि सप्त सार्द्धानि द्वितीय प्रस्तटे तनुः ॥२७६॥

इस नरक के प्रथम में देहमान पांच सौ हाथ का है दूसरे प्रतर में सात सौ पचास हाथ है । (२७६)

सहस्रं पाणयः पूर्णाः तृतीय प्रस्तटे वपुः ।

स्थितिः जघन्या प्रथमे स्यात् सप्तदश वार्द्धयः ॥२७७॥

त्रिभागीकृतपाथोधेः भागद्वयसमन्विताः ।

उत्कर्षतः स्थितिश्चाद्यप्रस्तटेऽष्टादशाब्धयः ॥२७८॥

तीसरे प्रतर में सम्पूर्ण एक हजार हाथ हैं और आयुष्य की स्थिति पहले प्रतर में जघन्य, सत्रह पूर्णांक दो तृतीयांश सागरोपम सदृश है, और उत्कर्ष के अठारह सागरोपम की है । (२७७-२७८)

द्वितीये लघुरेषैव ज्येष्ठा विंशतिरब्धयः ।

वार्द्धैस्त्रिधा खंडितस्य भागेनैकेनसंयुताः ॥२७९॥

इयमेव जघन्येनं तृतीयप्रस्तटेस्थितिः ।

उत्कर्षतश्च सम्पूर्णा द्वाविंशतिपयोधयः ॥२८०॥

दूसरे प्रतर में आयुष्य स्थिति जघन्य उतनी ही अर्थात् अठारह सागरोपम की है परन्तु उत्कृष्ट में अधिक से अधिक बीस पूर्णांक एक तृतीयांश सागरोपम की है । तथा तीसरे प्रतर में जघन्य स्थिति उतनी ही है । परन्तु उत्कृष्ट रूप में सम्पूर्ण बाईस सागरोपम की है । (२७६-२८०)

अवधेर्विषयो ज्येष्ठः सार्धगव्यूतसम्मितः ।

लघीयांश्चैकगव्यूतमानः प्रोक्तोऽत्रतात्विकैः ॥२८१॥

इन नारकी जीवों को अवधि ज्ञान का विषय जघन्य एक कोश है, और उत्कर्षतः डेढ़ कोश का है, इस तरह तत्त्व ज्ञानियों के वचन हैं । (२८१)

अन्तरं मरणोत्पत्योर्जघन्यं समयावधि ।

चतुष्टयं च मासानामुत्कृष्टं तन्निरूपितम् ॥२८२॥

इति तमः प्रभा पृथ्वी ॥६॥

इनके च्यवन और उत्पत्ति के बीच का अन्तर कम से कम एक समय का है और उत्कृष्ट- अधिक चार महीने का है । (२८२)

इस तरह तमः प्रभा नरक का वर्णन कहा है (६)

अथ माघवती नाम्ना सप्तमी कथ्यते मही ।

यां घोरध्वान्तररूपत्वात् गोत्रात् तमस्तमः प्रभा ॥२८३॥

अब माघवती नामक सातवीं नरकपृथ्वी का वर्णन करते हैं । वहां बहुत-अतिशय अंधकार होने से उसका नाम तमस्तमः प्रभा कहलाता है । (२८३)

प्रथमे योजनान्यष्टौ द्वितीये योजनानि षट् ।

तृतीये द्वे योजने च वलयाततयः क्रमात् ॥२८४॥

इसके भी तीन वलय है उसमें से प्रथम आठ योजन का है दूसरा छः योजन और तीसरा दो योजन का है । (२८४)

एवं षोडशभिः पूर्णैर्योजनैर्जिनभानुभिः ।

तमस्तमायाः पर्यन्ताद् लोकः परिकीर्तितः ॥२८५॥

इस हिसाब से इस नरक की पूरे सोलह योजन में सीमा पूरी होती है । उसके बाद चारो तरफ अलोक होता है । (२८५)

लक्षमेकं योजनानां सहस्रैरष्टभिः सह ।

बाहल्य मस्यामादिष्टमत्र चौपर्यधः पृथक् ॥२८६॥

द्विपंचाशत् सहस्राणि सार्द्धान्युमुच्य मध्यतः ।

एक एव प्रस्तटः स्यात् सहस्रात्रितयोन्नतः ॥२८७॥ युगं ।

इस नरक की मोटाई एक लाख आठ हजार योजन की है । उसमें नीचे और ऊपर, समान रूप से साढ़े बावन हजार योजन दोनों तरफ छोड़कर, मध्य में एक ही, तीन हजार योजन ऊँचा प्रतर है । (२८६-२८७)

लक्षयोजन विस्तारः तनमध्ये नरकेन्द्रकः ।

अप्रतिष्ठानको नाम्ना तस्मात्प्राग्बच्चतुर्दिशम् ॥२८८॥

एकैको नरकावासः त्र्यस्रो भूरि भयंकरः ।

असंख्य योजनायाम विष्कम्भ परिधिः स्मृतः ॥२८९॥ युगं ।

उसमें लाख योजन विस्तृत 'अप्रतिष्ठान' नामक एक नरकेन्द्र है । इस नरकेन्द्र में पूर्व समान चारों दिशा में एक-एक नरकावास कहा है वह बहुत भयंकर है और इसकी लम्बाई, चौड़ाई तथा घेराव असंख्य योजन है । (२८८-२८९)

तथाहि -

प्राच्यां कालः प्रतीच्यां च महाकाल इति स्मृतः ।

महारोरुरूत्तरस्यां रोरूः दक्षिणतो भवेत् ॥२९०॥

तथा इसके चारों दिशा के चार नरकावास हैं । इसके नाम इस तरह हैं- १- पूर्व दिशा में 'काल' नाम है, २- पश्चिम दिशा में 'महाकाल' नाम है, ३- उत्तर दिशा में 'महारोरू' नाम है और ४- दक्षिण दिशा में रोरू नाम है । (२९०)

विदिक्षु चात्र नैकोऽपि तत्पंक्तीनां परिक्षयात् ।

प्रतरोऽयं यदेकोनपंचाशत्तम आहितः ॥२९१॥

यहां विदिशा में एक भी नरकवास नहीं है क्योंकि विदिशा में पंक्ति बंद हो गयी है, क्योंकि ये उनचासवां प्रतर है । (२९१)

तमः प्रभाषद्विज्ञेया द्विविधात्रापि वेदना ।

सर्वोत्कृष्टा तीव्रतमाऽनन्तघ्ना सर्वतोऽपि हि ॥२९२॥

यहां भी तमः प्रभा नरक के समान दो प्रकार की वेदना होती है और यह सब से उत्कृष्ट, अत्यन्त तीव्र तथा अनन्त गुणा होती है । (२९२)

देहमानं भवेदत्र सहस्रद्वितयं कराः ।

स्वाभाविकं कृत्रिमं तु सर्वत्र द्विगुणं भवेत् ॥२९३॥

इनका देहमान स्वाभाविक रूप में दो हजार हाथ का होता है, और कृत्रिम इससे दोगुना हो सकता है । (२६३)

द्वाविंशतिः जलधयः स्थितिरत्र जघन्यतः ।

उत्कर्षतस्तु सम्पूर्णाः त्रयस्त्रिंशत्पयोधयः ॥२६४॥

यहां आयुष्य स्थिति जघन्य, अर्थात् कम से कम बाईस सागरोपम की है, और उत्कृष्ट, अधिक से अधिक सम्पूर्ण तैंतीस सागरोपम की है । (२६४)

नारकोद्वर्तनोत्पत्ति विरहोऽत्र जघन्यतः ।

समयं यावदुत्कर्षात् षण्मासावधिराहिताः ॥२६५॥

यहां नारकों के च्यवन और उत्पत्ति के बीच का अन्तर जघन्य से एक समय और उत्कर्षतः छह महीने का है । (२६५)

गव्यूतं च तदर्थं चोत्कर्षाज्जघन्यतः क्रमात् ।

अवधेर्विषयः प्रोक्तो जिनैः दृष्टजगत्रयैः ॥२६६॥

तीन जगत को हस्तामलक समान देखने वाले श्री जिनेश्वर भगवान् ने इस नारक को अवधि ज्ञान के विषय से जघन्यतः आधे कोश का और उत्कर्षतः एक कोश का कहा है । (२६६)

अथ्मासु येषां जीवानां यैश्च संहननैर्गतिः ।

लब्धिश्चाभ्यो निर्गतानां या स्यात्सर्वमुच्यते ॥२६७॥

अब कौन से जीव किस-किस संघयण के हैं ? इन नरक पृथ्वियों में आकर उत्पन्न होते हैं तथा यहां से निकल कर फिर वे कौन सी लब्धि प्राप्त करते हैं । इत्थ्यादि सर्व विषय में कुछ कहते हैं । (२६७)

संमूर्छिमा हि तिर्यंच उत्कर्षात् प्रथमां क्षितिम् ।

यावदुत्पद्यन्त एत न द्वितीयादिषु ध्रुवम् ॥२६८॥

संमूर्छिम तिर्यंच, उत्कर्षतः प्रथम नरक तक उत्पन्न होता है दूसरी किसी में भी उत्पन्न नहीं है । (२६८)

तत्राप्येषां दशाब्दानां सहस्राणि स्थितिः लघुः ।

ज्येष्ठा पल्यासंख्यभागोभवेन्नातः परा पुनः ॥२६९॥

यहां उनका स्थिति काल, जघन्यतः दस हजार वर्ष का होता है और उत्कर्षतः पत्योपम के असंख्यवे भाग के जितना होता है इससे अधिक नहीं होता । (२६९)

उत्पद्यमानाश्चैतेऽत्र प्राग्जन्म बोधिमांद्यतः ।

अपर्याप्तत्वे लभन्ते ह्यव्यक्तमपि नावधिम् ॥३००॥

वे वहां उत्पन्न होते हैं तब वे पूर्वजन्म में ज्ञान की मंदता के कारण अपर्याप्तपने में अव्यक्त अवधिज्ञान भी नहीं प्राप्त करते हैं । (३००)

तथाह जीवाभिगमे - "नेरइया अच्छे गइया दु अन्नाणि अच्छे गइयाति अन्नाणि ॥"

इस विषय में जीवाभिगम सूत्र में इस तरह उल्लेख मिलता है - 'कई नारकों को दो अज्ञान और कई को अज्ञान होता है ।'

द्वितीयामेव यावच्च गर्भजाताः सरीसृपाः ।

तृतीयावधि गच्छन्ति गृधाद्या पापपक्षिणः ॥३०१॥

क्ष्मा चतुर्थीमेव यावत्सिंहादयश्चतुष्पदाः ।

तथोरः परिसर्पाः तां पंचमीं यावदेव च ॥३०२॥

स्त्रियः षष्ठीमेव यावद्धानित यावत्तमस्तमाम् ।

नरा महारम्भ मग्ना मत्स्याद्यश्च जलाग्निः ॥३०३॥

गर्भज, भुजंग परि सर्प दूसरे नरक तक जाता है गिद्ध आदि पापी पक्षी तीसरी नरक तक जाता है । सिंह आदि चार पैर वाले प्राणी चौथी नरक तक जाते हैं और उरःपरि सर्प अर्थात् पेट द्वारा चलने वाले पांचवी नरक तक जाते हैं । स्त्रियां छठी नरक तक जाती हैं । महा आरंभ, संभारंभ करने में निमग्न रहने वाला मनुष्य तथा मछली आदि जलचर जीव सातवीं नरक तक जाते हैं । (३०१-३०३)

ससेवार्त्तं संहनना आद्यपृथ्वी द्वायावधि ।

यान्ति यावत्तृतीयां च कीलिकांचितभूधनाः ॥३०४॥

सार्धं नाराचाश्चतुर्थीं सनारा चाश्च पंचमीम् ।

षष्ठीं यावत्सऋषभनाराचा अथ सप्तमीम् ॥३०५॥

सवज्जर्षभनाराचा एव गच्छन्ति नापरे ।

नरके गच्छतामेषामेषोत्कर्षाद्भवेद् गति ॥३०६॥

सेवार्त्तं संहनन (संघयण) वाले प्रथम दो नरक तक जाते हैं और कीलिका संहनन वाले तीसरी नरक तक जाते हैं, अर्द्ध नाराच संघयण वाले चौथी नरक तक, नाराच संघयण वाले पांचवी नरक तक जाते हैं । ऋषभ नाराच संघयण छठी

नरक तक जाता है और वज्र ऋषभ नाराच संघयण वाले सातवी नरक में ही जाते हैं अन्य नरक में नहीं जाते । यहां जो कहा है, जो नरक में जानेवाला है, उनकी उत्कृष्ट गति है । (३०३-३०६)

आधक्ष्माद्यंप्रतरे सर्वेषां सा जघन्यतः ।

जघन्योत्कृष्टयोर्मध्ये मध्यागतिरनेकधा ॥३०७॥

प्रथम नरक के प्रथम प्रतर के सर्व नारको की जघन्य गति है । परन्तु जघन्य और उत्कृष्ट के बीच मध्यम गति है, वह अनेक प्रकार की है । (३०७)

आद्याया एव चोद्धृता भवन्ति चक्रवर्तिनः ।

पृथिवीभ्यो न शेषाभ्यस्तथा भवस्वभावतः ॥३०८॥

पहली नरक में से उत्पन्न हुआ जीव चक्रवर्ती हो सकता है । अन्य किसी नरक में से नहीं होता, क्योंकि ऐसा भव स्वभाव है । (३०८)

एवमाद्यद्वयादेव बलदेवाद्धं चक्रिणौ ।

आद्यत्रयादेव तीर्थकरा नान्त्यचतुष्टयात् ॥३०९॥

बलदेव अथवा वासुदेव प्रथम दो नरक में से उत्पन्न हो सकता है और प्रथम तीन नरक में से ही तीर्थकर—उत्पन्न हो सकते हैं । अन्य चार नरक में से उत्पन्न नहीं हो सकते हैं । (३०९)

उद्वृत्ताः स्युः केवलिनः आद्यपृथ्वी चतुष्टयात् ।

अन्त्यत्रयागतानां तु कैवल्यं नैव संभवेत् ॥३१०॥

प्रथम से चार नरक में से उत्पन्न होकर केवल ज्ञानी हो सकता है । आखिर तीन में से आये हुए जीव को केवल ज्ञान होना संभव नहीं है । (३१०)

चारित्रिणौ भवन्त्वाद्यपंचकादाद्यषट्पतः ।

उद्वृत्ताः देश विरताः स्युः सप्तभ्योऽपि सदृशः ॥३११॥

प्रथम पांच नरक में से उत्पन्न हुआ चारित्र के योग्य हो सकता है, पहले से छः तक से उत्पन्न हुआ विरति स्वीकार कर सकता है, और समकित तो सातों नरकों में से उत्पन्न हुआ प्राप्त कर सकता है । (३११)

एताश्च लब्धीः प्राक्कल्प पुण्यैषा नरकेषु तु ।

प्राग्वद्धायुर्वशोत्पन्ना लभन्ते नान्य नारकाः ॥३१२॥

पूर्व में नरक आयुष्य बन्धन किया हो, नरक में से आया हो, फिर भी पूर्व

के पुण्य का संचय हो तो वह उपरोक्त लब्धि प्राप्त कर सकता है । अन्य नारक को ऐसी लब्धि नहीं मिल सकती है । (३१२)

ये स्युः तीर्थकरास्तेऽपि प्राग्बद्ध नरकायुषः ।

पश्चात्तद्वेतुभिः बद्धतीर्थकृन्नामकर्मकाः ॥३१३॥

ततो बद्धायुष्कतयाऽनुभूय नारका स्थितिम् ।

उद्वृत्य नारकेभ्यः स्युरहन्तः श्रेणिकादिवत् ॥३१४॥

जो तीर्थकर होते हैं, उन्होंने भी प्रथम नरक का आयुष्य बंधन किया होता है परन्तु पीछे से कोई ऐसे अवर्ण्य हेतु को लेकर उन्होंने तीर्थकर नाम कर्म उपार्जन किया होता है । इससे पूर्वबद्ध आयुष्यत्व के कारण नरकत्व अनुभव करके वहां से उत्पन्न होकर श्रेणिक आदि के समान तीर्थकर होते हैं । (३१३-३१४)

गर्भजेषु नृतिर्यक्षुत्पद्यन्ते संख्य जीविषु ।

षड्भ्यः तादृशतिर्यक्षुं सप्तम्या निर्गताः पसम ॥३१५॥

छः नरक से उत्पन्न हुआ जीव, संख्यात आयुष्य वाले गर्भज मनुष्य में, व तिर्यच में उत्पन्न होता है । परन्तु सातवीं नरक में आया हुआ वह तिर्यच में ही उत्पन्न होता है । (३१५)

किंच -

सर्वास्वपि क्षितिष्वासु नारकाः केचनानाथाः ।

नवीनमपि सम्यक्त्वं लभन्ते कर्मलाघवात् ॥३१६॥

तथा सर्व नारकों में यदि कोई अनघ-अल्प पाप वाला होता है, उसके कर्म लघु होते हैं तो वह नया सम्यक्त्व भी प्राप्त करता है । (३१६)

पंचेन्द्रियबंधैः मांसाहारैः महापरिग्रहैः ।

महारंभैश्च बध्नन्ति नरकायुः शरीरिणः ॥३१७॥

प्राणी नारक का आयुष्य बंधन करता है । वह पंचेन्द्रिय के बंधन से अथवा मांसाहार, महापरिग्रह या महा आरंभ को लेकर बंधन करता है । (३१७)

तथोक्तम् - बंधई नरयाउ महारंभ परिग्गहरओ रूहो ॥ स्थानांगेऽपि चउर्हि ॥ ठाणेहिं जीवा नेरइयाउयत्ताए कम्मं पकरेति । तंमहारंभयाए महा परिग्गहाए कुणिमाहारेणं पंचेदियवहेणं ॥

अन्यत्र भी कहा है कि महा आरंभ और महापरिग्रह में रक्त और रौद्र ध्यानी जीव नरक का आयुष्य बंधन करता है । स्थानांग सूत्र भी कहा है कि जीव चार स्थानक के कारण नरक का आयुष्य बंधन करता है । वह इस प्रकार - महाआरंभ के कारण, महा परिग्रह के कारण, मांसाहार के कारण और पंचेन्द्रिय जीवों के घात के कारण होता है ।

अहर्निशं नारकाणां दुःखमायुःक्षयावधि ।

पीडाभिः पच्यमानानां प्राग्भूरीकृतपाप्मनाम् ॥३१८॥

पूर्व में जिसने बहुत पाप किये है दुःख में और रौद्रध्यान करते हुए नारक के जीवन तक दिनरात वेदना सहन करते है (३१८)

तथोक्तं जीवभिगमे -

अच्छि निभीलण मित्तं नत्थि सुहं दुख्ख मेव अणुबद्धम् ।

नरए नेरइयाणं अहोनिं पच्चमाणाणाम् ॥३१९॥

इस विषय में जीवभिगम सूत्र में उल्लेख है कि दिन रात दुःख में डूबे रहते नारकी के जीव में निमेष मात्र भी सुख नहीं है, वहां दुःख की परंपरा ही है । (३१९)

कदाचिदेव यत्सौख्यमल्प कालं तदल्पकम् ।

उपपातादिभिः वक्ष्यमाणैः भवति हेतुभिः ॥३२०॥

कभी किसी उपपात आदि हेतुओं के कारण नारक को सुख होता है, तो वह स्वल्प ही होता है और स्वल्प काल ही टिकता है । (३२०)

तथोक्तम् -

उववाएण वसायं नेरइया देवकम्मुणा वावि ।

अण्णवसाण निमित्तं अहवा कम्माणु भावेण ॥३२१॥

ऐसा उल्लेख है कि १- उत्पत्ति समय या २- किसी देव प्रयोग से अथवा ३- किसी अध्यवसाय के कारण या ४- कर्म के अनुभाव से नारक किसी समय शान्ति का अनुभव करता है । (३२१)

तथाहि - विनांगदाह छेदादि मृतो यः पूर्वजन्मनि ।

नारको नातिपीडार्त्तं उत्पद्येतास्य तत्क्षणे ॥३२२॥

न प्राग्भवानुसम्बन्धं नापि क्षेत्रादिसम्भवम् ।

असातं सातमित्यस्योपपातसमये भवेत् ॥३२३॥

वह इस प्रकार से - पूर्व जन्म में शरीर का दाह, या शरीर आदि कुछ भी न हुआ हो, और मृत्यु हो गयी हो, इसका जीव नरक में उत्पन्न हुआ हों तो उत्पत्ति समय में वह अतिशय पीड़ित नहीं होता, क्योंकि उसे उस समय पूर्व जन्म सम्बन्ध या क्षेत्रादिजन्य दुःख नहीं होता इससे उसे शांति ही होती है । (३२२-३२३)

पूर्वमित्रं सुरः कश्चिद्यथा कृष्णस्य सात्वतः ।

करोति पीडोपशमं तदामी देवकर्मणा ॥३२४॥

कियत्कालं सुखं किञ्चिल्लभन्तेऽथततः परम् ।

क्षेत्राद्यन्यतरा पीडा तेषां प्रादुर्भवेदधुवम् ॥३२५॥

कृष्ण महाराज की जिस तरह बलराम ने पीड़ा उपशम की थी, वैसे ही कोई मित्र देवता आकर नारक की पीड़ा उपशम करके शान्ति देते हैं, वह देव कर्म कहलाता है । उस समय तो कुछ काल उस नारक जीव को थोड़ा सुख होता है । परन्तु बाद में उसे अन्य क्षेत्रादि जन्य-पीड़ा प्रादुर्भूत होती ही है । (३२४-३२५)

सम्यक्त्वलाभे प्रथम चक्षुर्लाभे इवान्ध्रताः ।

ततः परं चाहंदादि गुणानामनुमोदनात् ॥३२६॥

एवमध्यवसायेन सुखमासादयन्त्यमी ।

अपेक्ष्य जिन जन्मादि साप्तकर्मोदयेन वा ॥३२७॥ युगं ॥

समकित प्राप्त हो तब, और फिर जिनेश्वर आदि के गुणो की अनुमोदना से, इसी तरह अध्यवसाय के कारण, अथवा जिनेश्वर प्रभु के जन्मादि पंच कल्याणक समय, या साताकर्म के उदय से इस नारकजीव, अंध को आंखें मिलें वैसे सुख का अनुभव करता है । (३२६-३२७)

कतिचिदिति चिदुच्चा नारकाः तारकाणा

मुचितमनु सरन्तः तीर्थ कृन्नाम कर्म ।

सुकुलजनिमवाप्य प्राप्तचारित्रचर्याः

जिनप्रतिपदभाजः प्राप्नुयुः मोक्षलक्ष्मीम् ॥३२८॥

इस तरह कोई-कोई उच्च ज्ञान वाले नारक जीव तारक अर्थात् संसार से तारने वाले श्री जिनेश्वर प्रभु के योग्य रूप में अनुकरण करते तीर्थकर नामकर्म उपर्जन करता है, और वहां से उत्तम कुल में जन्म लेकर चारित्र ग्रहण कर तीर्थकर पद प्राप्त कर मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त करता है । (३२८)

विश्वाश्चर्यद कीर्ति कीर्तिविजय श्री वाचकेन्द्रातिष
द्रोब्ज श्री तनयोऽतनिष्ठ विनयः तेजपालात्मजः ।
काव्यं यत्किल तत्र निश्चित् जगत्तत्त्व प्रदीपोपमं,
सर्गश्चारूतमश्चतुर्दशतमोऽपूर्वः समाप्तः सुखम् ॥३२६॥

- इति चतुर्दशः सर्गः -

सम्पूर्ण विश्व को आश्चर्य चकित कर देने वाली कीर्ति वाले श्री कीर्तिविजय वाचक वर्य के अन्तेवासी शिष्य तथा पिता तेजपाल और माता राजश्री के सुपुत्र विनय विजय उपाध्याय ने जगत के निश्चित तत्त्वों को दीपक के समान प्रकाश में लाने के लिए रचित ग्रन्थ का यह अपूर्व मनोहर चौदहवां सर्ग विघ्नरहित सम्पूर्ण हुआ (३२६)

- चौदहवां सर्ग समाप्त -

पंद्रहवां सर्गः

उज्जिजीव जरासंधजराजर्जरितं जवात् ।

यतो यदुबलं सोऽस्तु पीयूष प्रतिमः श्रिये ॥१॥

जरासंध द्वारा छोड़ी गई जरा नाम की विद्या से जर्जरित हुए यादवों की सैना को जिन्होंने शीघ्रमेव सजीवन किया था । ऐसे अमृत सम्पन्न श्री पार्श्वनाथ भगवान सबका कल्याण करते हैं । (१)

तिर्यग्लोकस्य स्वरूपमथ किंचिद्वितन्यते ।

मया श्री कीर्ति विजयार्णव प्राप्त श्रुतश्रिया ॥२॥

श्री गुरुवर्य कीर्ति विजय के पास से ज्ञान रूपी लक्ष्मी प्राप्त की है, वह मैं अब तिरछे लोक का थोड़ा सा स्वरूप कहता हूँ । (२)

तत्र च— तिर्यग्लोकवर्तिनोऽपियोजनानां शतानव ।

धर्मापिंड स्थिता आद्यास्तद्वर्णन प्रसंगतः ॥३॥

उक्ता अधोलोक एव तत्रस्था व्यन्तरा अपि ।

रत्नप्रभोपरितलं वर्णयाम्यथ तत्र च ॥४॥

सन्ति तिर्यगसंख्येयमाना द्वीपपयोधयः ।

साधोद्धाराम्भोधि युग्म समयैः प्रमिताश्चते ॥५॥ विशेषकं ।

धर्मा नरक की मोटाई के पहले नौ सौ योजन तिरछा लोक में आते हैं, फिर भी उसके वर्णन के प्रसंग पर और वहां रहे व्यन्तरों का भी अधोलोक में ही वर्णन किया है । अब इस रत्नप्रभा नरक के ऊपर के तल का वर्णन करता हूँ । वहां तिरछा लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र आये हैं उनकी संख्यानुसार अढाई उद्धार सागरोपम जितना समय होता है । (३-५)

तत्र जम्बूद्वीप नामा प्रथमोमह्यतः स्थितः ।

लवणाब्धिस्तमावेष्टयावस्थितो वलयाकृतिः ॥६॥

वहा मध्यभाग में प्रथम जम्बू द्वीप नामक द्वीप रहा है, इसके आस-पास वलयाकार लवणसमुद्र आया है । (६)

तमावेष्टय पुनर्द्वीपो धातकीखंड संज्ञकः ।

तमप्यावेष्टय परितः स्थितः कालोदवारिधिः ॥७॥

कुक्षी कृत्य च कालोदं पुष्कर द्वीप आस्थितः ।

पुष्कर द्वीपमावेष्टय स्थितः पुष्करवारिधिः ॥८॥

इस लवण समुद्र-के आस-पास घातकी खंड नाम का द्वीप आता है, उस द्वीप के आस-पास कालोदधि समुद्र आया है, इस समुद्र की चारों तरफ वलयाकार पुष्कर द्वीप है और इसके आस पास ऐसा ही पुष्कर समुद्र आया है । (८)

एवमग्रेऽपि सकलाः स्थिता द्वीपपयोधयः ।

परः पूर्वं समावेष्टयाब्धयो द्वीपसमाभिधाः ॥९॥

ते चैवम् -

वारुणीवरनामा च द्वीपोऽब्धिः वारुणीवरः ।

वारुणावरेत्वेषापि श्रूयतेऽस्य श्रुतेऽभिधाः ॥१०॥

ततः क्षीखरो द्वीपः क्षीरोदश्चास्य वारिधिः ।

ततो धृतवरो द्वीपो धृतोदः पुनरम्बुधिः ॥११॥

तत इक्षुवरो द्वीप इक्षुदश्च तदम्बुधिः ।

नन्दीश्वरामिधो द्वीपो नन्दीश्वरोदवारिधिः ॥१२॥

इसी तरह आगे भी द्वीप समुद्र एक दूसरे से लिपट कर रहे हैं । वह इस तरह से - वारुणीवर नाम का द्वीप, फिर वारुणी वर नाम समुद्र है, फिर क्षीरवर द्वीप और उसके आस-पास क्षीरोद समुद्र है, उसके बाद धृतवर द्वीप है और उसके आस-पास धृतोद समुद्र है, उसके बाद इक्षुवरद्वीप और उसके आस-पास इक्षुद समुद्र हैं उसके बाद नन्दीश्वर द्वीप है और फिर नन्दीश्वरोद समुद्र आया है ।

(९-१२)

स्युः त्रिप्रत्यवताराणि नामधेयान्यतः परम ।

अरूण प्रभृति द्वीपाब्धीनां तस्मात्तथा ब्रुवे ॥१३॥

अरूणाश्चारूणवरोऽरुवराव भासकः ।

कुंडलः कुंडलवरः तथा तदवभासकः ॥१४॥

शंखः शंखवरः शंखवरावभास इत्यपि ।

रूचको रूचकवरः तदवभासकः ॥१५॥

भुजगो भुजगवरस्तदवभासकोऽपि च ।

कुशः कुशवरश्चैव कुशवरावभासकः ॥१६॥

क्रौंच क्रौंच वरः क्रौंचवरावभासकोऽपि च ।

एकविंशतिरित्येते समनामाब्धि वेष्टिताः ॥१७॥

उसके बाद तीन बार अरूण आदि द्वीप और अरूणा आदि समुद्र आए हैं उसके नाम इस प्रकार हैं - अरूण, अरूणवर, अरूणावराव भासक, कुंडल कुंडलवर, कुंडलवराव भासक, शंख, शंखवर शंखवराव भासक, रूचक, रूचकवर, रूचकवराव भासक, भुजग भुजगवर, भासक, कृश कृशवर कुशवरावभासक, क्रौंच क्रौंचवर, क्रौंचवरावभासक । इस प्रकार इक्कीस नाम के जो द्वीप हैं उसी नाम के उसके आस पास वलयाकार समुद्र आए हैं । इस प्रकार समझना । (१३-१७ तक)

एवं चामी असंख्यत्वान्निघतैर्नामभिः कथम् ।

शक्यन्ते वक्तुमित्यत्राम्नायो नाम्नां निरूप्यते ॥१८॥

विभूषणानि वस्त्राणि गन्धाः पद्मोत्पलानि च ।

तिलकानि निधानानि रत्नानि सरितोऽद्रवः ॥१९॥

पद्मादयो हृदाः कच्छाप्रमुखा विजया अपि ।

वक्षस्करादयो वर्ष धराश्च कुस्मन्दराः ॥२०॥

सौधर्म प्रमुखाः स्वर्गाः शक्रादयः सुरेश्वराः ।

चन्द्रसूर्यग्रहरूक्षताराः कूटानि भूभृताम् ॥२१॥

इत्यादि शस्तवस्तुनां यानि नामानि विष्टये ।

द्वीपाब्धयः स्युस्तैः सर्वैः त्रिशः प्रत्यवतारितैः ॥२२॥ कलापकं ॥

इस तरह असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्र हैं । इनके नाम कितने हैं ? परन्तु उन नामों की आम्नाय इस प्रकार है - आ भूषण, वस्त्रो, सुगन्धी, कमल, तिलक, निधान, रत्न, नदी, पर्वत, पद्मद्रह, आरि द्रह, कच्छ आदि विजय, वक्ष स्कार पर्वत, वर्षधर पर्वत, कुरु, मंदर, सौधर्म आदि स्वर्ग, शक्र आदि इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, ग्रहं नक्षत्र, तारा पर्वत के शिखर इस तरह उत्तम वस्तुओं का जगत में जो-जो नाम है उन प्रत्येक नाम के अनुसार तीन-तीन द्वीप समुद्र हैं । (१८-२२)

एकैकेनाभिधाने नाभिधेयास्तेऽप्यसंख्यशः ।

यथा जम्बू द्वीप नाम्ना द्वीपा परेऽप्यसंख्यशः ॥२३॥

इतना ही नहीं परन्तु एक ही नाम के भी असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्र हैं उदाहरण रूप में 'जम्बू' नाम के असंख्य द्वीप हैं (२३)

यावदेवं कर्मात् द्वीपं सूर्यवरावभासकम् ।

परिवेष्ट्यं स्थितः सूर्यवरावभासवारिधिः ॥२४॥

इसी तरह अन्तिम सूर्यवरावभास द्वीप आया है, और इसके आस-पास बलयाकार इसी नाम का समुद्र है । (२४)

ततश्चैकैकेन नाम्ना न त्रिप्रत्यवतारणम् ।

देव द्वीपो देववार्द्धिः नागद्वीपस्तदम्बुधिः ॥२५॥

यक्ष द्वीपो यक्षवार्धिः भूतद्वीपस्तदम्बुधिः ।

स्वयंभूरमणद्वीपः स्वयंभूरणाम्बुधिः ॥२६॥

इसके बाद जो-जो द्वीप और जो-जो समुद्र है वह पूर्व अनुसार से तीन-तीन नाम के नहीं आते परन्तु एक नाम का द्वीप और समुद्र एक ही बार होता है जैसे कि देव द्वीप और उसके आस-पास देव समुद्र इसके आस-पास नागद्वीप और नाग समुद्र है । उसके बाद यक्षद्वीप और यक्ष समुद्र, भूत द्वीप और भूत समुद्र, स्वयं भू रमण द्वीप और स्वयं भू रमण समुद्र है । (२५-२६)

जम्बू द्वीपादयश्चैतै स्थानद्विगुणविस्तृताः ।

सर्वे स्वयंभूरमणप्रणवान्ता द्वीपवार्द्धर्यः ॥२७॥

जम्बू द्वीपाद्यथा सिन्धुः लवणो द्विगुणः ततः ।

घातकीखंड इत्येवमन्यात् द्वीपात् तदम्बुधिः ॥२८॥

जम्बू द्वीप से लेकर स्वयं भू रमण समुद्र तक के सब द्वीप, समुद्र उत्तरोत्तर दो गुणा, दो गुणा विस्तार वाला है । जैसे कि जम्बू द्वीप से लवण समुद्र दो गुणा है लवण समुद्र से घातकीखंड द्वीप दूना है । इत्यादि इसी तरह अन्तिम द्वीप से अन्तिम समुद्र दुगुना होता है । (२७-२८)

तत्रायं सर्वतः क्षुल्लः सर्वाभ्यन्तरतः स्थितः ।

विष्वक् प्रतरं वृत्तश्च पूर्णेन्दु मंडलाकृतिः ॥२९॥

इस तरह जम्बू द्वीप सर्व के बीच में है और सबसे छोटा है इसका आकार पूर्णिमा के चन्द्रमा समान गोल और सपाट है । (२९)

अस्या द्वीपस्याधिपतेः एक पत्न्योपमायुषः ।

महर्द्धिकानादुताख्यदेवस्याश्रयभूतया ॥३०॥

जम्बूवा नानारत्नमय्या वक्ष्यमाणास्वरूपया ।

सदोपलक्षितो द्वीपो जम्बूद्वीप इति स्मृतः ॥३१॥ विशेषकं ।

नित्यं कुसुमितैस्तत्र तत्र देशे विराजते ।

वनैरनैकैर्जम्बूनां जम्बूद्वीपः ततोऽपि च ॥३२॥

एक पत्त्योपम की आयुष्य वाला तथा महान समृद्धि वाला 'अनादृत' नामक अधिष्ठायक देव के आश्रयरूप और विविध रत्नमय-जम्बू नामक वृक्ष अधिक होने से इसका नाम 'जम्बूद्वीप' पड़ा है अथवा वहाँ हमेशा प्रफुल्लित जम्बू के विशाल वन होने के कारण जम्बू द्वीप नाम पड़ा है । (३०-३२)

विष्कम्भायामतश्चैषलक्षयोजनसम्मितः ।

परितः परिधिस्तवस्य श्रूयतां यः श्रुते श्रुतः ॥३३॥

लक्षत्रय योजनानां सहस्राणि च षोडश ।

क्रोशास्त्रयः तदधिकमष्टाविंशं धनुः शतम् ॥३४॥

त्रयोदशांगुलास्सार्धा यवाः पंचैकयूकिका ।

जम्बू द्वीपस्य गणितपदं वक्ष्येऽथ तत्त्वदः ॥३५॥ युग्मं ।

यह जम्बू द्वीप एक लाख योजन लम्बा चौड़ा है । इसका चारों तरफ का घेराव तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष्य, साढ़े तेरह अंगुल, पांच जौ और एक जू प्रमाण की परिधि है । ऐसा शास्त्रकारों ने कहा है । (३३-३५)

शतानि सप्त कोटीनां नवतिः कोटयः पराः ।

लक्षाणि सप्तपंचाशत् षट्सहस्रोनितानि च ॥३६॥

सार्धं शतंयोजनानां पादोनक्रोशयामलम् ।

धनूषि पंचदश च सार्धं करद्वयं तथा ॥३७॥ युग्मं ।

अयं भावः - इयन्ति जम्बू द्वीपस्य योजन प्रमिता नि वै ।

चतुरस्राणि खंडानि स्युः क्रोशाद्यतिरिच्यते ॥३८॥

इसका गणितपद अर्थात् क्षेत्रफल सात सौ नब्बे करोड़ छप्पन लाख चौरानवे हजार एक सौ पचास योजन, पौने दो कोस, पंद्रह धनुष्य एक सौ अट्ठाईस और अढ़ाई हाथ है । अर्थात् जम्बूद्वीप के इतनी संख्या में योजन प्रमाण चौरस खंड होते हैं । क्रोश, धनुष्य आदि कहा है वे उसके उपरांत समझना । (३६-३८)

असौ सहस्राणि नवनवतिः स्यात्समुच्छ्रुतः ।

साधिकानि योजनानामुद्विद्दशच सहस्रकम् ॥३९॥

उद्वेधोच्छ्रय योगे तु स्यादूर्ध्वाधः प्रमाणतः ।

जम्बू द्वीपो योजनानां लक्षमेकं किलाधिकम् ॥४०॥

यह जम्बू द्वीप निन्यानवे हजार से कुछ अधिक ऊँचा है और एक हजार योजन नीचा है । इसका जोड़ करते, इसका ऊर्ध्वाधः प्रमाण एक लाख योजन से कुछ अधिक होता है । ऐसा तत्त्वज्ञानियों ने कहा है । (३६-४०)

आहः - जलशयादौ शैलादौ व्यवहारो हि सम्मतः ।

उद्वेधोच्चत्वयोः जम्बूद्वीपे स तु कथं भवेत् ॥४१॥

यहां प्रश्न करते हैं कि - जलाशय, पर्वत, आदि की तो गहराई और ऊँचाई होना योग्य है, परन्तु जम्बू द्वीप की गहराई और ऊँचाई किस तरह होती है । (४१)

अत्र ब्रुमः - हीयमाना प्रतीच्या भूर्धर्मायां समभूतलात् ।

सहस्र योजनोडांते स्यात् क्रमाद्विजयद्वये ॥४२॥

तत्राथो लौकिक ग्रामाः सन्ति सर्वेषु तेषु च ।

द्वीपस्यास्य व्यवहारात्तावानुद्वेध उच्यते ॥४३॥

जम्बूद्वीपार्हतामेतन्सुमेरोः पांडुके वने ।

अभिषेक शिलोत्संगेऽभिषेकः क्रियते यतः ॥४४॥

जम्बू द्वीप व्यवहारं मेरौ संभाव्य सुष्टु तत् ।

प्रज्ञप्तं तावदुच्यत्वं जम्बूद्वीपस्य तात्त्विकै ॥४५॥

इस शंका का समाधान करते हैं कि - पृथ्वी पश्चिम दिशा में धर्मा नारकी और घटती जाती है वह अनुक्रम से दो विजय में सम भूतल से एक हजार योजन नीचे उतरती है । वहां अधोलोक के गांव आते हैं और इन सब में इस द्वीप का व्यवहार होने से इसकी इतनी गहराई कहलाती है । और इस जम्बूद्वीप में जो-जो तीर्थकर होते हैं, इनका मेरु पर्वत के पांडकवन की शिला पर अभिषेक करने में आता है, इसलिए जम्बूद्वीप का बुद्धस्थल तक व्यवहार गिनकर तत्त्वज्ञानियों ने इसकी इतनी ऊँचाई कही है । (४२-४५)

तथाह जम्बू द्वीप प्रज्ञप्त्याम् - "एगं जो अण सहस्सं उव्वेहेणं ॥
णवणउति जोअण सहस्साइं साइ रेगाइं उढंढ उच्चत्तेणं साइरेगं जो अण सय
सहस्सं सत्त्वगेणं षणणत्ते ॥"

इस विषय में जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में भी कहा है कि - 'जम्बू द्वीप

समभूतल से एक हजार योजन नीचा है और निन्यानवे हजार योजन से कुछ विशेष- इतना ऊँचा है अर्थात् इसकी कुल एक लाख योजन से कुछ विशेष ऊँचाई कहलाती है।'

पृथ्व्यपृजीव पुद्गलात्मा जम्बूद्वीपोऽस्ति वस्तुतः ।

पृथ्व्यपृजीव पुद्गलानां परिणामो यदीदृशः ॥४६॥

यह जम्बू द्वीप वस्तुतः पृथ्वी, जल, जीव और पुद्गल का बना है क्योंकि पृथ्वी, जल, जीव और पुद्गलों के ही ऐसे परिणाम होते हैं । (४६)

शाश्वतोऽशाश्वतश्चायं द्रव्यतस्तत्र शाश्वतः ।

वर्णगन्धरसस्पर्शपर्यायैः स्यादशाश्वतः ॥४७॥

तथा ये शाश्वत हैं, वैसे अशाश्वत भी हैं । १- द्रव्य से शाश्वत हैं और २- वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्श रूप पर्यायो से अशाश्वत हैं । (४७)

अथास्य जम्बूद्वीपस्य भाति वज्रमणीमयः ।

प्राकारः आगमे ख्यातो जगतीत्यपराख्यया ॥४८॥

इस जम्बूद्वीप के चारों तरफ वलयाकार वज्रमणि कोट-किला आया है । जो आगम में 'जगती' के नाम से प्रसिद्ध है । (४८)

धेनुपुच्छशक्तिः सोऽष्टौ योजनानि समुच्छ्रितः ।

योजनानि द्वादशास्य मूले विस्तार आहितः ॥४९॥

इसका आकार गाय की पूँछ के समान है । इसकी ऊँचाई आठ योजन और मूल विस्तार बारह योजन का है । (४९)

मूलादुत्पत्यते यावद्धनुः क्रोशादिकं किल ।

मूलव्यासस्ताव्वतो नस्तत्रतत्रास्य जायते ॥५०॥

मूल से जितना धनुष्य अथवा कोस आदि चढ़ते हैं । उतने धनुष्य या कोस आदि मूल के विस्तार में से बाद की जो संख्या आती है वह उसका, उस स्थल के आगे का व्यास या विस्तार होता है । (५०)

मूलादूर्ध्वं कोशयुगे व्यतीते तत्र विस्तृतिः ।

सार्धरूद्धयोजनानि सर्वत्रैवं विभाव्यताम् ॥५१॥

जैसे कि मूल से ऊपर आधा योजन से इसका विस्तार $१२ - \frac{१}{२} = ११\frac{१}{२}$ योजन

होता है । इसी तरह सर्वत्र समझ लेना ॥ (५१)

एवं च मूलादुत्क्रान्ते योजनानां चतुष्टये ।

मूल व्यासे चतुरूने स्याद्विस्तारोऽष्ट योजनः ॥५२॥

और मूल से ऊपर चार योजन जाने के बाद इसका विस्तार $१२-४=८$ योजन होता है । (५२)

तथास्य मूर्ध्नि पूर्णेषु योजनेषु किलाष्टसु ।

मूल व्यासेऽष्टभिर्न्यूने व्यासोऽब्धिमित योजनः ॥५३॥

और इसका शिखर जो मूल से आठ योजन का है उसका वहां विस्तार $१२-८ = ४$ योजन होता है । (५३)

उक्तं जम्बूद्वीपमानं जगत्या मूलविस्तृतिः ।

भाव्यै वमखिलद्वीपपाथेधिजगतीष्वपि ॥५४॥

इसी तरह जम्बू द्वीप का प्रमाण तथा जगती के मूल का विस्तार कहा है । इसी ही तरह सर्वद्वीप समुद्र तथा जगती में समझ लेना । (५४)

इत्यर्थतो वीरंजयसेहर क्षेत्रविचारवृत्तौ ॥

इस प्रकार 'वीरंजय क्षेत्र विचार की टीका का भावार्थ है ।

अथास्योपरि भागस्य चतुर्योजनविस्तृतेः ।

मध्यदेशे सर्वरत्नमयी राजति वेदिका ॥५५॥

अब इसके चार योजन के विस्तार वाले, शिखर के भाग के मध्य में ही सर्व रत्नमय वेदिका शोभ रही हैं । (५५)

सोपरिष्टाद्विष्टरत्नमयी वज्रमयी त्वधः ।

वज्रस्तंभस्वर्णरूप्यफलकै रूपशोभिता ॥५६॥

यह वेदिका वज्र के स्तंभ तथा सोने चांदी के तख्तों से शोभ रही है । इसके ऊपर के भाग रिष्ट रत्नमय और नीचे के भाग वज्रमय है (५६)

नरकिन्नरगन्धर्ववृषोरगाश्वहस्तिनाम् ।

रम्या नाना विधै रूपैर्भाति सातिमनोरमैः ॥५७॥

और वह वेदिका पुरुष, किन्नर, गंधर्व, वृषभ, सर्प, घोड़ा और हाथी आदि विविध प्रकार के मनोहर चित्रों से शोभ रही है । (५७)

तथा तस्यां रत्नमय्यो राजन्ते बहुवस्त्रयः ।

बासन्तीचम्पकाशोककुन्दातिमुक्ताकादयः ॥५८॥

उसमें बासन्ती, चंपक अशोक, कुंद और अति मुक्ताक आदि अनेक रत्नमय लतायें शोभ रही हैं । (५८)

लताश्च ताः स्तम्बकिताः पुष्पिताः पल्लवान्विताः ।

प्रणताः क्रीडदमरपिथुनप्रश्रयादिव ॥५९॥

इन लताओं के ऊपर गुच्छ, पुष्प और पल्लव नये कोमल पत्ते भी हैं वहां क्रीड़ा करते देव-देवियां प्रति विनय से मानो नीचे झुक रहा है । (५९)

परिक्षेपेण जगती समाना विस्तृता च सा ।

शतानि पंच धनुषामुत्तुंगा त्वर्धयोजनम् ॥६०॥

उस वेदिका का घेराव जगती के समान है । चौड़ा पांच सौ धनुष्य है और ऊंचाई दो कोश है । (६०)

स्थाने स्थाने सर्वं रत्नमय पद्मोपशोभिता ।

पद्मप्राधान्यतो नाम्ना सा पद्मवर वेदिका ॥६१॥

यह वेदिका सर्वरत्न, पद्म कमल से स्थान-स्थान पर शोभायमान होती है और इस तरह पद्म विशेष होने से पद्मवर वेदिका कहलाती है । (६१)

विभाति वन खंडाभ्यां सा पद्मवर वेदिका ।

उभयोः पार्श्वयोः स्थूलकुलाभ्यामिव निम्नगा ॥६२॥

जैसे दोनों किनारों से नदी शोभायमान होती है वैसे दोनों तरफ बगीचों से यह पद्मवर वेदिका शोभायमान है । (६२)

परिक्षेपेण जगतीतुल्यौ तो वनखंडकौ ।

सार्धचापशतद्वंद्वन्युनद्वियोजनातौ ॥६३॥

प्रत्येक बगीचों के घेराव जगती समान है । और इसके विस्तार दो योजन में दो सौ पचास धनुष्य कम है । (६३)

तत्र च -

वेदिका व्यास संयुक्तो विस्तारो वनयोर्द्वयोः।

स्यात्पूर्णा जगती व्यासो योजनानां चतुष्टयम् ॥६४॥

इस प्रकार से वेदिका का विस्तार और दोनों बगीचों का विस्तार मिलाने से चार योजन होता है । यह जगती का पूर्ण व्यास होता है । (६४)

पुष्पि तैः फलितैः शमखा प्रशाखा शत शालितैः ।

अनेकोत्तम जातीय वृक्षै रम्य च ते वने ॥६५॥

संकड़ों शाखा, प्रशाखा वाले और फल-फूल वाले अनेक उत्तम वृक्षों से वे दोनों बगीचे शोभायमान हैं । (६५)

विराजते च भूभाग एतयोः वनखंडयोः ।

मरूत्कीर्ण पंचवर्ण पुष्पप्रकरपूजितः ॥६६॥

इस बगीचे की भूमि वायु से गिर पड़े पुष्कल पंचवर्ण पुष्पों के कारण से मानो किसी ने भूमि पूजा की हो इस तरह दिखती है । (६६)

कस्तुरिकै लाकपूरचन्दनाधिकसौरभैः ।

अनिलान्दोलनोद्भूतवीणादिजित्वराग्वैः ॥६७॥

अत्यन्त कोमलैः नानावर्णैः वण्यस्तृणांकुरैः ।

रोमोद्गमैरिव भुवः सुरकीडा सुख स्पृशः ॥६८॥ युग्मं ।

कस्तुरी, इलायची, कपूर, तथा चन्दन आदि से भी अधिक सुगन्ध वाली तथा वायु के आन्दोलन से वीणा आदि के नाद से भी अधिक मनोहर नाद का विस्तार करती, अति कोमल, पंचरंगी तृण अंकुरों से ढकी हुई भूमि मानो देव क्रीड़ा के सुख स्पर्श से रोमांचित हुई हो इस तरह दिखती है । (६७-६८)

मरूत्कृतास्फालनेनोद्गिरद्भिः मधुरध्वनीन् ।

पंचवर्णैः मणिभिरप्यसौकीर्णः सुगन्धिभिः ॥६९॥

वहाँ का भू प्रदेश वायु के फुफकार से मधुर ध्वनि करती पंचवर्ण के सुगन्धिमणियों से भी व्याप्त है (६९)

न वरं विपिनेऽन्तःस्थे न स्यात्तृणमणिध्वनिः ।

वेदिकोन्नतिरूद्धस्य तादृग वायोरसंगतेः ॥७०॥

विशेष इतना है कि वेदिका ऊँची होने के कारण वायु रुक जाय, वहाँ संचार न होने के कारण से अन्दर के बगीचे में तृण या मणि की ध्वनि नहीं होती । (७०)

वनयोरेतयोश्चित्रकरयोः स्युः पदे पदे ।

पुष्करिण्योदीर्घिकाश्च महासरोवराणि च ॥७१॥

इन दोनों आश्चर्य कारी बगीचों के अन्दर स्थान-स्थान पर पुष्करिणी, वाव छोटे सरोवर बड़े सरोवर भी देखने को मिलते हैं । (७१)

सुखोत्ताराः तपनीयतलाः सद्गुभित्तयः ।

नानारत्नबद्धतीर्थाः सुवर्णरूप्य वालुकाः ॥७२॥

काश्चिज्जात्यासवरसा काश्चिच्च वारूणी रसाः ।

सुधीप मजलाः काश्चित् काश्चिदि क्षु रसोदकाः ॥७३॥

एवं नानास्याद् जलाः शतपत्रादिपंकजैः ।

मनोज्ञास्ताः पुष्करिण्यः क्रीडाभिर्भाति नाकिनाम् ॥७४॥ विशेषकं ।

अन्दर सुखपूर्वक उतर सके इस तरह उस पुष्करिणी को सुवर्ण मय तली है, वज्रमय दिवार है, विविध प्रकार के रत्नों से बनाये गये घाट है; और इसमें सुवर्णमय और चान्दीमय रेती है, कईयों में उत्तम मदिरा जैसा कईयों में वारूणी रस समान, कईयों में अमृत समान और इक्षुरस समान जल भरा है । इस प्रकार विविध स्वादिष्ट जल वाली ये वावडियां शतपत्र आदि कमलों से और सुर (देव) वृन्दों की लगातार क्रीड़ा के कारण अत्यन्त शोभायमान है । (७२-७४)

स्पष्टाष्ट मंगलैः छत्र चामर ध्वज राजिभिः ।

त्रिसोपानान्यासु चतुर्दिशं राजन्ति तोरणैः ॥७५॥

इन वावडियों के प्रत्येक दिशा में तीन-तीन सोपान है । उसके ऊपर अष्ट मंगल, छत्र चामर, ध्वज और तोरण शोभायमान है । (७५)

भान्ति क्रीडा सरांस्येवं यथाह दीर्घिका अपि ।

चतुर्दिशं त्रिसोपानादिभिः रत्नमणीमयैः ॥७६॥

इसी तरह इन छोटे जलाशय और क्रीड़ा सरोवर की चारों दिशा में रत्नमय और मणिमय तीन-तीन सोपान शोभते हैं । (७६)

रम्याः क्रीडा पर्वताश्च भान्ति तत्र पदे पदे ।

तेषां प्रत्येक मेकैकः प्रासादो भाति मूर्धनि ॥७७॥

वहां स्थान-स्थान पर मनोहर क्रीडा पर्वत शोभते हैं उनके शिखर पर एक-एक प्रसाद शोभ रहा है । (७७)

प्रतिप्रासादमेकैकः मध्ये सज्जितमासनम् ।

अस्ति क्रौंचासनं क्वपि हंसासनमपि क्वचित् ॥७८॥

पद्मासनं च गरूडासनं सिंहासनं क्वचित् ।

भद्रासनं च मकरासनं चाति मनोहरम् ॥७६॥

प्रत्येक प्रासाद पर एक-एक आसन है, उसमें कहीं कौंचासन कहीं पर हंसासन, कहीं पर पद्मासन, कहीं गरूडासन, कहीं सिंहासन, कहीं भद्रासन, कहीं मकरासन इस तरह अलग-अलग प्रकार के सुन्दर आसन हैं (७६-७६)

तथा - नाना क्रीडागृहाः सन्ति तयोश्च वन खंडयोः ।

क्वचित् प्रेक्षणक गृहं क्वचिच्च केतकीगृहम् ॥८०॥

लतागृहं गर्भगृहं क्वचिच्च कदली गृहम् ।

कुत्रचित् मञ्जनगृहं प्रसाधनगृहं क्वचित् ॥८१॥

इन दोनों बगीचों में विविध प्रकार के क्रीडागृह हैं कहीं पर वनखंड, कहीं पर नाटक गृह है, कहीं पर केतकी गृह है, कहीं लता गृह, कहीं गर्भ गृह, कहीं कदली गृह, कहीं स्नान गृह है तो कहीं पर वस्त्रालंकार गृह शोभायमान है ।
(८०-८१)

प्रत्येकं च गृहेष्वेषु विभात्येकैकमासन् ।

क्रीडातां तत्र देवानां योग्यं रत्नमणीमयम् ॥८२॥

और वहां प्रत्येक गृह में देवों को क्रीडा करने योग्य रत्नमणिमय आसन भी है । (८२)

तथा - मृद्विकामल्लिका जातीमालत्यादिलताततेः ।

रत्नातमनस्तत्र तत्र भूयांसो भान्ति मण्डपः ॥८३॥

वहां पर द्राक्ष, मल्लिका, जाइ और मालिती आदि लताओं के अनेक रत्नमय मंडप भी हैं । (८३)

मंडपेषु तथैतेषु जात्य कांचन निर्मिताः ।

शिलानां पट्टकाः सन्ति कौंचाद्यासन संस्थिताः ॥८४॥

इन मंडपों में कौंचादिक आसनों पर उत्तम सुवर्णमय शिला पटों पर शोभायमान हो रहे हैं । (८४)

एतेषु पर्वतेष्वेषु गृहेषु मंडपेषु च ।

दीर्घिकादिषु च स्वैरं क्रीडान्ति व्यन्तरामराः ॥८५॥

इन सब पर्वतों, गृह जलाशय तथा मंडपों में व्यन्तर देव अपनी इच्छानुसार क्रीड़ा करते हैं । (८५)

परितो जगती भाति गवाक्षवलयेन सा ।

गवाक्षवलयं तच्च गव्यूतद्वितयोच्छ्रुतम् ॥८६॥

शतानि पंच धनुषां विस्तीर्णं चारु चित्रितम् ।

कृतनेत्रमनोमोदं सुराणां रमणो चित्तम् ॥८७॥ युग्मं ।

इस जगती के किले पर चारों तरफ एक गवाक्ष वलय है, वह गवाक्ष वलय दो कोश ऊँचे, पांच सौ धनुष्य चौड़े और सुन्दर चित्रयुक्त होने से, दृष्टि और मन को आनंद देते हैं, तथा देवों के क्रीड़ा करने योग्य है । (८६-८७)

लवणोद दसमासन्न जगतीभित्तिमध्यगम् ।

दृश्यमानाब्धिकुतुकं ज्ञातव्यं सर्वतः स्थितम् ॥८८॥

लवण समुद्र के नजदीकरहे जगती के किलों के मध्य भाग में ये गवाक्ष वलय आये है, वहां से समुद्र के सर्व कौतुक दिखते हैं । (८८)

अत्र इदं गवाक्ष कटकं जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति वृत्तौ जगतोभित्तिमध्य गत मुक्तम् ॥ जम्बूद्वीप संग्रहणी वृत्तौ जगत्या उपर्युक्तम् । तथा च तद् ग्रन्थः । तस्या पार्श्वद्वयेऽपि द्वौ वनखंडौ वेदिकामानदैर्ध्र्यां विद्येते । नवरं विस्तारेणाभ्यन्तरः सार्धधनुः शतद्वयोनयोजन युग्म प्रमाणः । बाह्यस्तु वनखंडः अर्धाष्टमधनुः शतहीन योजन युग्म मानः । यतः तत्र अभ्यन्त रात् वन खंडात् अधिकानि पंचधनुः शतानि जालकट केनावरूद्धानि ॥ परं श्री मलय गिरि पादैः न तद्विवक्षितम् । द्वयोःगरपि वनखण्डयोः एकमेव मान मुक्तम् । तत्त्वं तु बहुश्रुता विदन्तीति ॥

यह गवाक्ष कटक जगती के किल्ले के मध्य भाग में आया है । इस तरह जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति की टीका में कहा है परन्तु जम्बूद्वीप संग्रहणी की टीका में तो जगती के किले के ऊपर आया है । इस तरह बताया है । यह पाठ इस तरह है - जगती के दोनों ओर दो बगीचे हैं इन दोनों की लम्बाई वेदिका के समान है, परन्तु चौड़ाई में अन्तर है । अन्दर के बगीचे की चौड़ाई दो योजन में अढाई सौ धनुष्य कम है और बाहर के बगीचे की चौड़ाई दो योजन साढ़े सात सौ धनुष्य कम है । क्योंकि बाहर के बगीचे में पांच सौ धनुष्य के विस्तार का गवाक्ष कटक आया है । आचार्य श्री मलयगिरि इस विषय में संमत नहीं होते । उन्होंने तो दोनों

बागीचों की चौड़ाई एक समान कही है । इस में सत्य क्या है ? वह ज्ञानी भगवन्त ही जाने।”

सर्वे द्वीपाः समुद्राश्च जगत्यैवं विराजिताः ।

सर्वासां जगतीनां च स्वरूपमनयादिशा ॥८६॥

सर्व द्वीप और सर्व समुद्र को इस तरह से जगती अर्थात् कोट-किला होता है और इन सर्व किलों का स्वरूप इस किले के अनुसार ही समझना । (८६)

अथैतस्यां जगत्यां च द्वाराणि स्युश्चतुर्दिशम् ।

विजयं वैजयन्तं च जयन्तं चापग जितम् ॥८७॥

इस जगती किले की प्रत्येक दिशा में एक-एक द्वार है उनके नाम विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित है । (८७)

सहस्रान पंचचत्वारिंशत्मुल्लंघ्य मेरुतः ।

योजनानां दिशि प्राच्यां शीताकूलंकषोपरि ॥८९॥

विजयंद्वारमाख्यातमेवं, वित्थं पराण्यपि ।

दक्षिणस्यां पश्चिमायामुदीच्यां च यथाक्रमम् ॥९२॥ युग्मम् ॥

मेरु पर्वत से पूर्व दिशा में पैंतालीस हजार योजन जाने के बाद शीता नदी के किनारे पर विजय नाम का द्वार आया है, अन्य तीन द्वार इस तरह से मेरु के अनुक्रम से दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में आये हैं । (८९-९२)

प्रत्येकमेघा द्वाराणामुच्छ्रयो योजनाष्टकम् ।

व प्रभीतिसमाना हि युक्ता द्वारेषुतुंगता ॥९३॥

प्रत्येकं तेषु विस्तारो योजनानां चतुष्टयी ।

कोश पृथुर्द्वारशाखा प्रत्येकं पार्श्वयोर्द्वयोः ॥९४॥

एवं सामस्त्यतो द्वारविस्तारो यदि भाव्यते ।

तदा साधानि चत्वारि योजनानि भवेदसौ ॥९५॥

किले की दीवार अनुसार प्रत्येक द्वार की ऊँचाई आठ योजना की है । क्योंकि किले की दीवार आठ योजन ऊँची है, प्रत्येक द्वार की चौड़ाई चार योजना की है । दोनों तरफ के दोनों दरवाजों की चौखट एक-एक कोशा की है, इसके साथ में गिने इन विजय द्वारों की चौड़ाई साढ़े चार योजन की होती है । (९३-९५)

तत्रेदं विजयं भूमिप्रदेशे वज्रनिर्मितम् ।

भूमेरूध्वं रिष्टरत्नमयमुक्तं जिनेश्वरैः ॥६६॥

यह विजय द्वार पृथ्वी प्रदेश के अन्दर वज्रमय है, और ऊपर के भाग में रिष्ट रत्नमय है ऐसा जिनेश्वर प्रभु ने कहा है । (६६)

स्तंभा सर्वत्र वैडूर्यवर्यरत्नविनिर्मिताः ।

पंच वर्णैः मणीरत्नैः निर्मितं तत्र कुट्टिमम् ॥६७॥

इसके स्तंभ श्रेष्ठ वैडूर्य रत्न से बने हैं और फर्श आदि पंच वर्ण मणि और रत्नों से बना हुआ है (६७)

हंसगर्भरत्नमयी देहल्यशेन्द्रकीलकः ।

गोमेय रत्नघटितो द्वारशाखे तथात्र च ॥६८॥

लोहिताख्यरत्नमय्यौ परिधो वज्रनिर्मितः ।

कपाटे अपि वैडूर्यमये प्रोक्ते जिनेश्वरैः ॥६९॥

उसकी देहली हंस गर्भ रत्नो की है, तथा इसका इन्द्र कीलक गोमेय रत्न का बना है, इसके दरवाजे की चौखट लोहित रत्न की है और परिध वज्रमय है और इसके दरवाजे वैडूर्यरत्न के बने हैं । (६८-६९)

नानामणिमये तत्र कपाटचूलिकागृहे ।

ज्योतीरसरत्नमग्नमुत्तरंग निरूपित् ॥७०॥

दरवाजों की दोनों चूलिका विविध प्रकार के मणियों की अंतरंग ज्योतिरस रत्नमय कही है ।

विजयस्यो परितनो भागो भ्राति विभूषितः ।

रत्नभेदैः षोडशभिः ते जामी कथिताः श्रुते ॥७१॥

रत्नं वज्रं वैडूर्यं लोहिताक्षे मसारगल्लं च ।

अपि हंसगर्भपुलके सौगन्धकमंजनं रजतम् ॥७२॥

ज्योतीरसमंकांजनपुलकं रिष्टं च जातरूपं च ।

स्फटिकं चैताः षोडश रत्नभिदस्तत्राजन्ते ॥७३॥ युग्मं ॥

इस विजय द्वार के ऊपर के भाग में सोलह जाति के रत्न लगे हैं । उन सोलह रत्न के नाम इस प्रकार :- रत्न, वज्र, वैडूर्य, लोहिताक्ष, मसार गल्ल, हंसगर्भ,

पुलक, सौगन्धि, अंजन, रजत ज्योतिरस, अंक, अंजन, पुलक, रिष्ट, जातरूप और स्फटिक होते हैं । (१०१-१०३)

श्री वत्स मत्स्य दर्पण भद्रासन वर्द्धमान वर कलशाः ।

स्वस्तिक नन्दावर्तौ द्वारोपरि मंगलान्यष्टौ ॥१०४॥

इन द्वारों पर श्री वत्स, मत्स्य, दर्पण, भद्रासन, वर्द्धमान, कलश, स्वस्तिक और नन्दावर्त ये अष्ट मंगल शोभायमान हो रहे हैं । (१०४)

द्वारस्यास्य वज्रमयो माढ भागः प्रकीर्तितः ।

माढस्य शिखरं रौप्यमुल्लोचरस्तपनीयजः ॥१०५॥

इस द्वार का माढ वज्रमय है, माढ का शिखर रजतमय है और धुम्मट-गुम्मट सुवर्णमय कहा है । (१०५)

मणिवंश लोहिताक्ष प्रतिवंशैः रजत बद्ध भूभागैः ।

द्वारं गवाक्ष कटकैः विराजते तत्समुद्रदिशि ॥१०६॥

समुद्र की दिशा की ओर रजत से बना हुआ, भू भाग वाला, मणि वंश लोहिताक्ष, परतिवंश आदि रत्नों से जड़ित गवाक्षों की श्रेणि से यह द्वार शोभता है । (१०६)

भित्तावुभयतो भित्तिगुलिकाः पीठ सन्निभाः ।

अष्टषष्ट्याधिकं शतं शय्यास्तावत्य एव च ॥१०७॥

उस द्वार के दोनों ओर एक सौ अड़सठ चौतरे हैं और इन चौतरों पर उतने ही संख्या में शय्या होती हैं ।

रत्नानि ब्याल रूपाणि मणि मय्यश्च पुत्रिकाः ।

अलंकुर्वन्ति तद्द्वारं मणिदामादिभूषितम् ॥१०८॥

ये द्वार, मणि आदि की मालाओं तथा रत्नमय सिंहों की पुतलों तथा मणियों की पुतलियों से शोभायमान हो रहे हैं । (१०८)

तथा निषदनस्थानमेकैकं पार्श्वयोर्द्वयोः ।

तत्र द्वौ द्वौ च प्रत्येकं मांगल्य कलशौ मतो ॥१०९॥

इसके दोनों ओर में एक-एक, दो बैठक होती हैं और प्रत्येक बैठक पर दो-दो मंगल कलश होते हैं । (१०९)

तथा द्वौ द्वौ नागदन्तौ मुक्तादामाद्यलंकृतौ ।

तयोरूर्ध्वं पुनः द्वौ द्वौ धूप घटयन्वितौ च तौ ॥११०॥

वहां पर धूपदानी और मुक्ताफल की माला आदि से विभूषित दो-दो नागदन्ती (खूंटियां) है ।

सांक्षादिव स्वर्गिकन्ये द्वे द्वे च शालभंजिके ।

द्वौ द्वौ च जाल कटकौ द्वे द्वे च घण्टे शुभस्वरे ॥१११॥

वहां पर साक्षात् देवकन्या समान दो दो पुतलियां हैं । दो-दो जाल कटक (तार सूत आदि की बनी चटाई) है और सुन्दर नाद करने वाले दो-दो घंट है । (१११)

नाना हुकिसलाकीर्णो द्वे द्वे च वन मालिके ।

भम्रद् भमरङ्गं कारगीतारवमनोरमे ॥११२॥

आत्मदर्शाकृती द्वौ द्वौ पीठीं प्रकंठकाभिधौ ।

तौ च द्वि योजनस्थूलौ चतुर्योजन विस्तृतौ ॥११३॥

इसके उपरांत विविध प्रकार के कुपंल से युक्त तथा आस-पास भ्रमण करते भौर के भूं-भूं झंकार रूपी गीत के शब्द से मनोहर, दो-दो बनमालाएं हैं । दर्पण के आकार के प्रकंठ नामक दो-दो पीठ है, जो दो योजन मोटी और चार योजन चौड़े हैं । (११२-११३)

चत्वारि योजनान्युच्चो योजनद्वयविस्तृतः ।

तेषु प्रत्येकमेकैकः प्रासादोऽस्ति मनोरमः ॥११४॥

उस प्रत्येक पीठ पर चार योजन ऊँचा और दो योजन चौड़ा एक-एक मनोहर प्रासाद है । (११४)

प्रासादस्ते तुङ्गशृङ्गाः ध्वजच्छत्रमनोहराः ।

सिंहासनैः सविजयदृष्यैः विराजितान्ताराः ॥११५॥

इन प्रासादों के ऊँचे शिखर हैं, उसके ऊपर मनोहर ध्वजाएं और छत्र शोभायमान हो रहे हैं और इसके अन्दर विजयदेव के इष्य युक्त सिंहासन सुशोभित हो रहे हैं । (११५)

आस्थान स्थानयोः किंच द्वे द्वे स्तः तोरणे तयोः ।

तोरणानां पुरः शालभंजिकानां द्वयं द्वयम् ॥११६॥

उसके सभा मंडप में दो-दो तोरण लगे हैं और उसके आगे के भाग में दो दो पुतलियां लगी है । (११६)

तथा च - द्वौ नागदन्तावश्वेभनरकिंपुरुषांगिनाम् ।

कीनरोरगगन्धर्व वृषभाणांयुगानि च ॥११७॥

और वहा गजदंत घोडा, हाथी, पुरुष, किन्नर, सर्प, गन्धर्व और वृषभ (बैल) आदि के जोड़े शोभ रहे हैं । (११७)

वीथयः पंक्तयश्चैषां नित्यं कुसुमिता लताः ।

पद्मनागाशोकलताः चम्पकाग्रादयोऽपि च ॥११८॥

वहां हमेशा फूल युक्त, नागलता, अशोक लता, चम्पक लता आदि लताएं तथा आम्रवृक्ष भी होते हैं । (११८)

मांगल्य कलशाभृंगारकाः तथात्मदर्शकाः ।

स्थालानि साक्षतानीव पात्र्यः फलभृता इव ॥११९॥

मंगल कलश झारी (सुराही) दर्पण, अक्षत का थाल और फल भरा पात्र भी वहां उपस्थित रहते हैं । (११९)

सवैषधि प्रसाधन भाण्डभृताः सुप्रतिष्ठकाश्चैव ।

पीठात्ममनोगुलिका युताः फलकनागदन्ताद्यैः ॥१२०॥

सर्व प्रकार की औषधियां और श्रंगार के साधनों के डिब्बों से भरे हुए तथा तखता और नागदन्त आदि से युक्त पीठ वाले चौतरे भी वहां पर शोभते हैं । (१२०)

रालाः करण्डकाः राला हयकण्ठादयोऽष्ट च ।

चंगेर्यः तेष्वष्टविधाः पटलान्यपि चाष्टथा ॥१२१॥

तथ्यहि - पुष्पैः माल्यैः चूर्णगन्धैः वस्त्रसिद्धार्थ भूषणैः ।

लोमहस्तैश्च सम्पूर्णाः चंगेर्यः पटलानि च ॥१२२॥

वहां आठ प्रकार के रत्नकरंडक (रत्न टोकरी) हयकंठा दिक (घोड़े के कंठ आकृति समान रत्न विशेष) भी हैं, उसमें पुष्प, माला, चूर्ण, सुगन्धी पदार्थ, वस्त्र, सरसों, आभूषण और पिच्छियों से सम्पूर्ण आठ चंगेरी और आठ पटल भी है । (१२१-१२२)

सिंहासनात्पत्रे चमराणि समुद्गकाश्च दशभेदाः ।

प्रतितोरणमेतेषा द्वयं द्वयं भवति सर्वेषाम् ॥१२३॥

प्रत्येक तोरण पर सिंहासन, छत्र, चमर और दस प्रकार के डिब्बे, इन सर्व के दो-दो जोड़ा होता है । (१२३)

समुदगक संग्रह गाथा चेषम् ।

तेल्ले कोट्टु समुग्गे पत्ते चोए य तगर एला य ।

हरिआले हिंगुलए मणोसिला अंजण समुग्गे ॥१२४॥

उन दस डिब्बों में तेल कपूर काचली, पत्ते, चोल, तगर, इलायची, हलताल हिंगलोक, मनशील और अंजनये दस वस्तुएं हैं । (१२४)

तथात्र विजय द्वारे शतमष्टाधिकं ध्वजाः ।

प्रत्येकं चक्रादि चिह्ना दशधा ते त्वमी मताः ॥१२५॥

चक्रमृगगरूडसिंहाः पिच्छ वृकच्छत्रवर्धहर्यक्षाः ।

वृषभचतुर्दन्तगजाः सर्वऽशीत्यन्वित सहस्रम् ॥१२६॥

इस विजय द्वार पर एक सौ आठ ध्वजाएं लहरा रही हैं, प्रत्येक पर चक्र, हरिण, गरूड, सिंह, पिच्छ, वरूण, छत्र अश्व वृषभ और चार दांत वाला हाथी इस तरह दस-दस चिन्ह होते हैं । (१२५-१२६)

विशिष्टस्थानरूपाणि भौमानि नव संख्यया ।

विजयद्वारस्य पुरः स्युः भोग्यानि तदीशितुः ॥१२७॥

इस विजय द्वार के आगे, इसके स्वामी के उपयोग के लिए विशिष्ट स्थान रूप, नौ भौरा-तहखाना है । (१२७)

तथाहुः जीवभिगमे । विजयस्स णं दारस्स पुरओ नव भोमा पण्णत्ता इत्यादि ॥ समवायांगे तु विजय स्स णं दारस्स एगमेगाए वाहाए नव नव भोमा पण्णत्ता इति दृश्यते ॥ तदत्र तत्त्वं सर्वं विद्वेद्यम् ॥

यह अभिप्राय जीवभिगम सूत्र में कहा है । समवायांग सूत्र में तो उसके एक एक बाहा में नौ-नौ भौर हैं इस तरह कहा है । इसमें सत्य क्या है ? वह केवली भगवंत जानें ।

मध्ये च तेषां भौमानां पंचमे सपरिच्छदम् ।

सिंहासनमधीशस्यानेषु भद्रासनानि च ॥१२८॥

इन नौ में से पांचवे भौर में इसके अधिपति के परिवार वाला सिंहासन है और शेष आठ में भद्रासन है । (१२८)

इत्येवं विजयद्वारं लेशतो वर्णितं मया ।

तृतीयोपांगमालोक्यंविशेष विस्तरार्थिभिः ॥१२६॥

इस तरह से मैंने विजय द्वार का कुछ वर्णन किया है विस्तार जानने की इच्छा वाले को तीसरे उपांग को देखना चाहिए । (१२६)

यो योऽस्यातिथपतिर्देवः तं तं सामानिकादयः ।

आह्वयन्ति विजयेति पुस्तकेषु तथोक्तितः ॥१३०॥

तदिदं विजय स्वामि योगाद्विजयनामकम् ।

अथवामुष्य नामेदं त्रैकालिकं च शाश्वतम् ॥१३१॥

इस द्वार का अधिपति देव सामानिक देवता 'विजय' नाम से बोला जाता है इस कारण से यह द्वार विजय नाम से पहिचाना जाता है अथवा इसका नाम त्रिकालिक अर्थात् शाश्वत है, इस तरह समझना । (१३०-१३१)

एवंक्षेत्रद्वीपवार्धिनामानि स्युः यथायथम् ।

नित्यानि स्वामियोगस्तु यथास्थानं प्रवक्ष्यते ॥१३२॥

इसी तरह क्षेत्र द्वीप और समुद्रों के नाम भी शाश्वत है । उनके स्वामी का सम्बन्ध योग्य स्थान पर कहने में आयेगा । (१३२)

यथेदं विजयद्वारं तथा त्रीण्यपराण्यपि ।

समरूपाणि किन्वीशा द्वारतुल्याभिधाः सुराः ॥१३३॥

वैजयन्तो जयन्तश्चापराजित इति क्रमात् ।

चत्वार्यैषां सहस्राणि सामानिकसुधाभुजाम् ॥१३४॥

वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नाम के जो शेष तीन द्वार हैं उन का सारा स्वरूप विजय द्वार के समान ही समझना । उनके स्वामी देव का नाम भी इन द्वारों के नाम अनुसार वैजयन्त जयन्त और अपराजित हैं । इन प्रत्येक के चार-चार हजार सामानिक देव हैं । (१३३-१३४)

सहस्राणि च देवानामष्टाभ्यन्तरपर्षदि ।

देवानामयुतं मध्यपर्षदि स्फातिशालिनाम् ॥१३५॥

स्युः द्वादश सहस्राणि देवानां बाह्य पर्षदि ।

चतस्रोऽग्रमहिष्यश्च स्युः साहस्रपरिच्छदाः ॥१३६॥

सेनाः सेनान्यश्च सप्त पूर्वोक्त व्यन्तरेन्द्रवत् ।

आत्मरक्षकदेवानां सहस्राणि च षोडश ॥१३७॥

इन प्रत्येक देवों की तीन-तीन पर्वदा है । उसमें अभ्यन्तर पर्वदा में आठ हजार, मध्य पर्वदा में दस हजार तथा बाह्य पर्वदा में बारह हजार देव होते हैं । इन प्रत्येक को एक-एक हजार के परिवार वाली चार-चार पटरानियां हैं और पूर्वोक्त व्यन्तरेन्द्र के समान सात प्रकार की सेना, सात सेनापति और सोलह हजार आत्म रक्षक देव होते हैं । (१३५-१३७)

प्रत्येकमेवं विजयप्रमुखाणां परिच्छदः ।

सर्वेऽपि विजयाद्यास्ते तुल्याः पल्यायुषः स्मृताः ॥१३८॥

जिस तरह विजय आदि चारों देवों का सारा परिवार है, उसी तरह सारा समान परिवार है । तथा उनका आयुष्य भी एक समान एक पल्योपम का है । (१३८)

पूर्वोक्तानां निज निज नगरी वासिनां च ते ।

व्यन्तराणां व्यन्तरीणामैश्वर्यमुपभुञ्जते ॥१३९॥

वे अपनी-अपनी राजधानियों में रहने वाले व्यन्तर देव-देवियों के ऊपर अधिकार रखते हैं - उनके द्वारा ऐश्वर्य भोगते हैं । (१३९)

एवं द्वाराणि चत्वारि सर्वासु जगतीष्वपि ।

तत्र जम्बूद्वीपसत्कविजयद्वारनाकिन्नः ॥१४०॥

जम्बू द्वीप के समान सर्व द्वीप की 'जगती' किले में विजयादि चार-चार द्वार आए हैं । (१४०)

विजयाद्वारतः प्राच्यां दिशि तिर्यगसंख्यकान् ।

द्वीपाब्धीन् समतिक्रम्य जम्बूद्वीपेऽस्त्यथा परे ॥१४१॥

योजनानां सहस्राणि द्वादशायतविस्तृता ।

राजधानी परिक्षेपस्तस्याश्चैवमुदीरितः ॥१४२॥

सप्तत्रिंशत्सहस्राणि योजनानां शतानि च ।

नवैव सप्तचत्वारिंशत् किञ्चिदधिकान्यपि ॥१४३॥ युगं ।

इस जम्बूद्वीप के विजय द्वार के देव की भी राजधानी अन्य जम्बूद्वीप में है, उस विजय द्वार से पूर्व दिशा में असंख्यात द्वीप समुद्र के बाद हाता है । उसकी

राजधानी बारह हजार योजन लम्बी, चौड़ी, विस्तार वाली है, और उसका घेराव सैंतीस हजार से कुछ अधिक है । (१४१-१४३)

वप्रो रत्नमयस्तस्या राजधान्या विराजते ।

सप्तत्रिंशद्योजनानि साद्धानि स समुच्छ्रितः ॥१४४॥

और इस राजधानी का साढे सैंतीस हजार योजन एक कोट-किला है, वह रत्नमय है । (१४४)

तथोक्तं जीवाभिगमे । से पागारे सत्तत्तीसं जो अणाई अद्ध जो अणं च उद्धं उच्च त्तेणं ॥ समवायांगे तु सव्वासु णं विजय वेजयंतजयंत अपराजिआसु रायहाणी सु पागारा सत्त त्तीसं जो अणाई उद्धं उच्चत्तेणं पण्णत्ता इति उक्तम् ॥

जीवाभिगम सूत्र में इसी तरह साढे सैंतीस योजन ऊँचा कहा है । जबकि श्री समवायांग सूत्र में तो विजय, वैजयंत, जयंत अपराजित इन देवों की राजधानी का किला साढे सैंतीस योजन ऊँचा कहा है ।

मूले च विस्तृतः सोद्धां द्वादशायोजनीम् ।

मध्ये च विस्तृतः क्रोशाधिकानि योजनानि षट् १४५॥

अर्धं क्रोशाधिकं मौलौ विस्तृतो योजनत्रयम् ।

असौ नानारत्नमयैः कलितः कपिशीर्षकैः ॥१४६॥

यह किला मूल में साढे बारह योजन चौड़ा, मध्य भाग में छः योजन और एक कोश चौड़ा है और ऊपर साढे तीन योजन चौड़ा है इस को विविध प्रकार के रत्नों का कंगारे (किल्ला कलाप) है ।

अर्धं क्रोशमितायामं क्रोशतुर्याशविस्तृतम् ।

देशो नार्धकोशतुगमेकैकं कपिशीर्षकम् ॥१४७॥

वे प्रत्येक कंगारे आधा कोश लम्बा, एक चतुर्थाश कोश चौड़ा और लगभग आधा कोस ऊँचा है । (१४७)

वप्रस्यतस्यैकैकस्यां बाहायां जिनपुंगवैः ।

पंचविंश पंचविंश द्वाराणां शतमीक्षितम् ॥१४८॥

उस किले की एक-एक बाहा में जिनेश्वर भगवन्त ने सवा सौ सवा सौ द्वार कहे हैं । (१४८)

शतानि पंच द्वाराणामेवं स्युः सर्वं संख्यया ।

विजयद्वारवत् सर्वमेषां वर्णनमीरितम् ॥१४६॥

ये सब मिलाकर पांच सौ द्वार की संख्या होती है । इसका सर्व स्वरूप विजयद्वार के अनुसार समझना । (१४६)

किन्त्वियान् विशेषः-

द्वाषष्टिं योजनान्युच्चं सार्धानि द्वारमेककम् ।

योजनानि सपादान्येकत्रिशतं च विस्तृतम् ॥१५०॥

ये च प्रकंठकाख्ये पीठे तत्रोदिते तयोरिह तु ।

पंचदशयोजनानि च सार्धां क्रोशौ च तुंगत्वम् ॥१५१॥

एक त्रिंशद्योजनानि क्रौशश्चायतिविस्तृती ।

प्रत्येकमेषामुपरि स्युः प्रासादावतंसकाः ॥१५२॥

फर्क इतना है कि - ये एक एक द्वार साढ़े बासठ योजन ऊँचे है, और सवा इक्तीस योजन चौड़े है, वहां प्रकंडक नामक जो दो पीठ कहे है, उनकी यहां ऊँचाई पंद्रह योजन और अढाई कोश की है और लम्बाई-चौड़ाई सवा इक्तीस योजन की है । (१५०-१५२)

एकत्रिंशद्योजनानि सक्रोशानि समुच्छ्रिता ।

उच्छ्रयार्धेन ते सर्वे प्रासादा विस्तृतायताः ॥१५३॥

उन सब के ऊपर बड़े प्रासाद है वे इक्तीस योजन तथा एक कोश ऊँचे और इससे आधे लम्बे, चौड़े हैं । (१५३)

द्वारस्यैकैकस्य नातिदूरासन्ने भुवस्तले ।

सप्तदश सप्तदश भौमाः प्रासाद शेखराः ॥१५४॥

तेषां मध्ये नवमे नवमे सिंहासनं विजय मरूतः ।

सामानिकादिसुरगणभद्रासनपरिवृतं भाति ॥१५५॥

प्रत्येक द्वार के नजदीक की भूमि में लगभग सत्रह-सत्रह भूगर्भ प्रासाद है, उसके अन्दर नौवे-नौवें प्रासाद में विजय देव का सिंहासन है उस सिंहासन के आस-पास सामानिक आदि देवों के भद्रासन उपस्थित है । (१५४-१५५)

अष्ट स्वष्टसु भौमेषु स्थितेषु भय तस्ततः ।

अस्ति प्रत्येक मे कैकं रत्न भद्रासनं महत् ॥१५६॥

प्रत्येक नौवे के दोनों ओर से जो आठ आठ भूगर्भ प्रसाद हैं उन प्रत्येक एक-एक बड़ा रत्नमय भद्रासन है । (१५६)

तथा तस्या राजधान्या बहिर्दिक्षु चतसृषु ।

योजनानां पंचशत्याः पुरतो वनमेककम् ॥१५७॥

प्राच्यामशोकविपिनमपाच्यां साप्तपर्णिकम् ।

प्रतीच्यां चम्पकवनमुदक् चूतवनं क्रमात् ॥१५८॥

उस राजधानी के बाहर चारों दिशाओं में पांच सौ - पांच सौ योजन जाने के बाद एक-एक वन आता है । वहां पूर्व दिशा में अशोक वन है, दक्षिण में साप्त पर्ण वन, पश्चिम में चंपक वन है, और उत्तर दिशा में आप्रवन है । (१५७-१५८)

सहस्राणि योजनानां द्वादशायामतोऽथ ते ।

स्युः पंचशतविष्कम्भा वन खण्डा पृथक् पृथक् ॥१५९॥

वहां प्रत्येक वन अलग-अलग रूप में बारह हजार योजन लम्बा तथा पांच सौ योजन चौड़ा है ।

प्रत्येकं वप्रवलयपरिक्षिप्ताः समन्ततः ।

मध्ये तेषा तथैकैकः स्यात् प्रासादावतंसकः ॥१६०॥

प्रत्येक वन की चारो ओर किला भी है और प्रत्येक में एक-एक सुन्दर प्रासाद भी है । (१६०)

द्वाषष्टिं योजनान्यद्द्विधिकानि ते समुन्ताः ।

योजनान्येकत्रिंशत् सकोशानि च विस्तृता ॥१६१॥

वे सभी प्रासाद साढ़े बासठ योजन ऊँचे और सवा इक्तीस योजन विस्तार वाले हैं । (१६१)

प्रत्येकं रत्नघटित सिंहासनविभूषिताः ।

पल्योपमरायुरैकैक निर्जराधिष्ठिता अपि ॥१६२॥

प्रत्येक रत्नघटित सिंहासन से विभूषित है और पल्योपम के आयुष्य देव द्वारा अधिष्ठित है । (१६२)

मध्येऽथास्या राजधान्या भूमि भागे मनोहरे ।

शुद्धजाम्बूनदममः पीठबन्धो विराजते ॥१६३॥

उस राजधानी के मध्य भाग में सुन्दर स्थान है वहां पर एक उत्तम सुवर्णमय पीठ बंध है । (१६३)

योजनानां शतान्येष द्वादशायत विस्तृतः ।

क्रोशाद्धमेदुरः पद्मवेदिका वनवेष्टितः ॥१६४॥

वह पीठ बंध बारह सौ योजन लम्बा, चौड़ा और आधा कोश मोटा है और इसके आस-पास पद्मवेदिका और बाग शोभ रहा है । (१६४)

त्रि सोपान कमेमैकं द्वारं चारु विराजते ।

मणीमयं तोरणेन तत्र दिक्षु चतसृषु ॥१६५॥

चारो दिशाओं के चार द्वारों में तोरण सहित तीन-तीन सुन्दर मणीमय सौपान शोभ रहे हैं । (१६५)

मध्येऽस्य पीठबन्धस्य भूमिभागेऽस्ति बन्धुरे ।

महानेकः तपनीयमयः प्रासादशेखरः ॥१६६॥

द्वाषष्टिं योजनान्यद्धार्धिकानि स समुन्नतः ।

उच्चत्वस्याद्धमानेन भवत्यायत विस्तृतः ॥१६७॥

इस पीठ बंध के मनोहर भूमिभाग के अन्दर एक महान सुन्दर सुवर्णमय प्रासाद आया है । उस प्रासाद का साढ़े बासठ योजन ऊँचा और सवा इक्तीस योजन लम्बा-चौड़ा विस्तार है । (१६६-१६७)

तस्य प्रासादस्य मध्ये महती मणिपीठिका ।

सा द्विगभ्युतवाहल्या योजनं विस्तृतायता ॥१६८॥

इसके मध्य विभाग में दो कोस मोटी, और चार कोस लम्बी-चौड़ी एक बड़ी मणिमय पीठिका है । (१६८)

तस्या मणिपीठिकाया मध्ये सिंहासनं महत् ।

वृत्तं विजयदेवाहं सामानिकादिकासनैः ॥१६९॥

उस मणि पीठिका के मध्य भाग में विजय देव के योग्य एक बड़ा सिंहासन है उसके चारों तरफ इसके सामानिक देव आदि के सिंहासन आये हुए हैं । (१६९)

तच्चैवम् -मूल सिंहासनाद्वायुत्तरे शानदिशा त्रये ।

सामानिकानां चत्वारि सहस्राण्यासनानि वै ॥१७०॥

प्राच्यामग्रमहिषीणामासनानि चतसृणाम् ।
 चत्वार्येवातिचतुरपरीवारसुरीजुषाम् ॥१७१॥
 मूल सिंहासनादग्निकोणेऽभ्यन्तरपर्षदः ।
 भद्रासन सहस्राणि भवन्त्यष्टौ सुधाभुजाम् ॥१७२॥
 दक्षिणस्यां दिशि तथा भान्ति मध्यम पर्षदः ।
 दशासनसहस्राणि ताव ताममृताशिनाम् ॥१७३॥
 भद्रासन नैऋत्यां बाह्य पर्षत्सुधाभुजाम् ।
 स्युः द्वादशसहस्राणि पश्चिमायामथो दिशि ॥१७४॥
 सेना पंक्तीनां सप्तानां सप्त भद्रासनानि च ।
 ततः परं परिक्षेपे द्वितीयस्मिंश्चतुर्दिशम् ॥१७५॥

वह इस तरह है - मूल सिंहासन वायव्य, उत्तर, और ईशान में तीन तरफ सामानिक देवों के चार हजार आसन हैं, पूर्व दिशा में अति चतुर परिवार वाली अग्र महिष के चार आसन हैं, अग्नि कोण में अभ्यन्तर पर्षदा देवों के आठ हजार आसन है, दक्षिण दिशा में मध्यम पर्षदा के देवों के दश हजार भद्रा आसन है नैऋत्य में बाह्य पर्षदा के देवों के लिए बारह हजार भद्रासन है तथा पश्चिम में सात सेनापतियों के सात भद्रासन होते हैं ।

चत्वारि चत्वारि सहस्राणि भान्ति चतुर्दिशम् ।
 आत्मरक्षकदेवानां सहस्राणीति षोडश ॥१७६॥

उसके बाद दूसरे वलय में आत्म रक्षक देवों के चार दिशाओं में चार-चार हजार मिलाकर कुल सोलह हजार आसन है । (१७६)

स चैष मूलप्रासादः चतुः प्रासाद वेष्टितः ।
 उच्च त्वायाम विष्कम्भैः ते ऽर्धमानाश्च मौलतः ॥१७७॥

पूर्व में जो एक मूल प्रासाद कहा है - उसके आस-पास चार प्रासाद हैं । वह इस मूल प्रासाद से ऊँचाई और लम्बाई-चौड़ाई में आधी है । (१७७)

प्रासादस्तेऽपि चत्वारः चतुर्भिरपरैरपि ।
 स्व प्रमाणाद्धमानैः प्रत्येकं परितो वृताः ॥१७८॥
 परिवारपरीवारभूता एते च मौलतः ।
 चतुर्थ भागमानेन प्रोत्तुंगायत विस्तृताः ॥१७९॥

इन चार के चारों तरफ भी उससे प्रमाण में आधे चार चार प्रासाद हैं ये आखिर के हैं । जो परिवार के भी परिवार कहलाते हैं उनकी मूल प्रासाद से चौथाई भाग की ऊँचाई तथा लम्बाई-चौड़ाई जानना । (१७८-१७९)

एतेऽपि च स्वार्द्धमानैश्चतुर्भिरपरैर्वृत्ताः ।

चतुर्दिशं स्थिरित्येवं प्रत्येकमेकविंशतिः ॥१८०॥

इनके चारों तरफ में भी प्रत्येक दिशा में चार-चार प्रासाद हैं अतः प्रत्येक दिशा में इक्कीस प्रासाद होते हैं । (१८०)

परिवारपरिवारपरिवारास्तु मौलतः ।

विष्कम्भायामतुंगत्वैः अष्टमांशमिता मताः ॥१८१॥

परिवार के परिवार और इनका भी परिवार इस तरह ये प्रासाद मूल प्रासाद से प्रमाण में एक अष्टमांश जितने हैं । (१८१)

पंचा शीतिरमी सर्वे जीवाभिगम पुस्तके ।

वृत्तौ तु तुर्या प्रासाद प्ररिपाटी निरीक्ष्यते ॥१८२॥

इस तरह से चार दिशा के चौरासी और एक मूल प्रासाद मिलाकर कुल पचासी प्रासाद जीवभिगम सूत्र में कहे हैं । परन्तु इसकी वृत्ति में तो प्रासाद की एक चौथी श्रेणि भी कही है । (१८२)

तथाहि- परिवार परिवार परीवारा अपि स्फुटम् ।

चतुर्भिरपरैर्मौलात् षोडशांशमितैर्वृत्ताः ॥१८३॥

तदैकैकस्या दिशायां पंचाशीतिर्भवन्त्यतः ।

शतानि त्रीण्येकचत्वारिंशानि सर्वं संख्यया ॥१८४॥

और वह इस प्रकार से कहा है - परिवार के परिवार और उसका भी परिवार रूप जो प्रासाद कहे हैं उसके प्रत्येक के आस-पास भी चार-चार प्रासाद आए हैं, जो मूल प्रासाद से प्रमाण में एक सोलहवांश सदृश हैं । इस तरह प्रत्येक दिशा में ऐसे पचासी होते हैं । अतः चार दिशा में मिलाकर तीन सौ चालीस होते हैं और इसमें एक मूल प्रासाद मिलाकर तो कुल तीन सौ इक्कालीस होते हैं, यह चौथी श्रेणि की गिनती होती है । (१८३-१८४)

बिना च मूल प्रासादं सर्वेऽप्येते विभूषिताः ।

एकैकेनैव विजययोग्यसिंहासनेन च ॥१८५॥

एक मूल प्रासाद के बिना ये सब तीन सौ चालीस प्रसाद विजय देव के योग्य एक-एक सिंहासन से विभूषित है । (१८५)

अथास्त्युत्तर पूर्व स्यां मूल प्रासादतः सभा ।

सुधर्मा नाम सतत दिव्य नाटयाप्सरोभृता ॥१८६॥

मूल प्रासाद से ईशान कोण में हमेशा दिव्य नाटक करने वाली अप्सराओं से युक्त सुधर्मा नाम की सभा आयी है । (१८६)

योजनानि द्वादशैषा साद्धान्यायामतोमता ।

सक्रो शानि योजनानि षड् विष्कम्भत ईरिता ॥१८७॥

योजनानि नवोत्तुंगा द्वारस्त्रिभिरलंकृता ।

प्राच्यामुदीच्यां चापाच्यामेकैकमथ तान्या पि ॥१८८॥

यह सभा साढ़े बारह योजन लम्बी, छः योजन और एक कोस चौड़ी तथा नौ योजन ऊँची है एवं इसके पूर्व उत्तर और दक्षिण दिशा में एक-एक द्वार आया है । (१८७-१८८)

द्वे योजने उच्चितानि योजनं विस्तृतानि च ।

तेषां पुस्तादेकैकः प्रत्येकं मुख मंडपः ॥१८९॥ युग्मं ॥

वह द्वार दो योजन ऊँचा और एक योजन चौड़ा है और उसको आगे एक मुख मंडप है । (१८९)

तेऽप्युत्तपतपनीयचन्द्रोदयविराजिताः ।

सातिरेके योजन द्वे समुत्तुंगा मनोरमाः ॥१९०॥

ते सुधर्माससभातुल्या विष्कम्भायामतः पुनः ।

तेषां पुरस्तादेकैकः स्यात्प्रेक्षागृहमंडपः ॥१९१॥

यहां नपे हुए सुवर्ण समान मनोहर, चन्द्रमा से भी अत्यन्त शोभायमान होता है । यह मंडप ऊँचाई में दो योजन और लम्बाई-चौड़ाई में सुधर्मा सभा के समान है । (१९०-१९१)

मुख मंडप तुल्यास्ते प्रमाणैः सर्वतो मताः ।

प्रत्येकं तेष्वक्षपाटश्चतुरस्त्राकृतिः स्मृतः ॥१९२॥

इन मुख मंडपों के आगे इतने ही प्रेक्षा (देखने के) मंडप हैं, जिनमें चौरस अक्ष पाट प्रत्यक्ष रहे हैं । (१९२)

मध्ये चाक्षपाटकानामेकैका मणि पीठिका ।

अर्धं योजनं बाहल्या योजनं विस्तृतायता ॥१६३॥

तासां प्रत्येकमुपरि सिंहासनमुरु स्फुरत् ।

तेषां प्रेक्षा मंडपानां पुरतोऽथ प्रकीर्तिता ॥१६४॥

एकं योजनं बाहल्या द्वे च ते विस्तृतायता ।

रचिता विविधैः रत्नैः एकैका मणि पीठिका ॥१६५॥ युग्मं ।

इस अक्षपाट के अन्दर एक योजन लम्बी-चौड़ी और आधा योजन मोटी मणि पीठिका है और उस मणि पीठिका के ऊपर सुन्दर सिंहासन है । इन प्रेक्षा मंडपों के आगे एक योजन मोटी और दो योजन लम्बी-चौड़ी विविध रत्नमय एक-एक मणि पीठिका है । (१६५)

क्षेत्र समास वृहद् वृत्तौ तु इयं द्वि योजनायाम विष्कम्भ बाहल्या उक्ता ॥

क्षेत्र समास की बृहत् वृत्ति के अभिप्राय में तो इस पीठिका की लम्बाई चौड़ाई और मोटाई दो योजन की है ।

साधिके योजने तुंगं स्तूपः तदुपरि स्मृतः ।

देशोने च योजने द्वे प्रत्येकं विस्तृतायताः ॥१६६॥

इस मणि पीठ पर स्तूप है उसकी ऊँचाई दो योजन से अधिक है और लम्बाई चौड़ाई में दो योजन से कुछ कम है । (१६६)

क्षेत्र समास वृहद् वृत्तौ तु अर्धं देशोन द्वि योजनायाम विष्कम्भः परिपूर्ण द्वियोजनोच्च उक्तः ।

क्षेत्र समास की वृहद् वृत्ति में तो इस स्तूप की लम्बाई-चौड़ाई दो योजन से कुछ कम है और ऊँचाई सम्पूर्ण योजन की है ।

तेषां च चैत्यस्तूपानामुपयतिन्वते श्रियम् ।

रालानि मंगलान्यष्टौ चैत्यं स्तूपं पुरः पुनः ॥१६७॥

योजनायाम् विष्कम्भा भवेद्दिक्षु चतसृषु ।

अर्धं योजनं बाहल्या प्रत्येकं मणि पीठिका ॥१६८॥ युग्मं ॥

इस स्तूप के ऊपर रत्न, अष्ट मंगल शोभायमान है और इसके आगे चारों दिशा में एक योजन लम्बी-चौड़ी तथा आधा योजन मोटी प्रत्येक मणि पीठिका है । (१६७-१६८)

तासु प्रत्येकमेकैका जिनमूर्तिः विराजते ।

पंचचापशतोतुंगा शाश्वती स्तूप संमुखी ॥१६६॥

उस पीठिका के ऊपर स्तूप के सन्मुख श्री जिनेश्वर भगवान की पांच सौ धनुष्य ऊँची एक-एक शाश्वती प्रतिमा विराजमान है । (१६६)

तथोक्ते जीवाभिगम वृत्तौ - जिनोत्सेधं उत्कर्षतः पंच धनुः शतानि जघन्यतः सप्तहस्तः । इह तु पंच धनुः शतानि संभाव्यन्ते ॥

इस सम्बन्ध में जीवाभिगम सूत्र की टीका में कहा है कि - श्री जिनेश्वर भगवान की उत्कृष्ट ऊँचाई पांच सौ धनुष्य और जघन्य से सात हाथ की होती है । इसमें यहां पांच सौ धनुष्य संभव होता है ।

ऋषभो वर्द्धमानश्च चन्द्रानन जिनेश्वरः ।

वारिषेणश्चेति नित्यानामानो नाकिभिर्नुताः ॥२००॥

शाश्वत जिनेश्वर के नाम चार कहे हैं । वह इस प्रकार हैं- १- ऋषभदेव २- वर्द्धमान स्वामी ३- चन्द्रानन ४- वारिषेण । (२००)

पुरस्तासां पीठिका नामेकैका मणि पीठिका ।

स्थूलैक योजनं द्वे च योजने विस्तृतायता ॥२०१॥

इन पीठिकाओं के आगे एक योजन मोटी और दो योजन लम्बी-चौड़ी एक-एक मणि पीठिका है । (२०१)

तासां प्रत्येकमुपरि स्यादष्ट योजनोच्छ्रयः ।

चैत्य वृक्षः ते च सर्वे नानातरूभिः आवृताः ॥२०२॥

इन प्रत्येक पीठ पर आठ-आठ योजन ऊँचा चैत्य वृक्ष है और इसके आस-पास भी अन्य विविध प्रकार के वृक्ष मौजूद हैं । (२०२)

वज्रमूलारिष्ट कंदा वैदूर्य स्कन्ध बन्धुराः ।

सद्गुण्य विडिमाः स्वर्णशाला रत्नप्रशाखकाः ॥२०३॥

सुवर्णवृन्तवैदूर्यमयपत्रमनोहराः ।

जाम्बूनदपल्लवाश्च रत्नैः पुष्पफलैः भृताः ॥२०४॥ युग्मं ।

इन वृक्षों का मूल वज्र रत्नमय है कंद अरिष्ट रत्न के है थड-स्कंध वैदूर्य रत्न का है, विडम, चान्दी की है, शाखा सुवर्ण की है, प्रशाखा रत्न की, कलियां,

सुवर्ण की, पत्ते वैदूर्य रत्न के, पल्लव सुवर्ण के हैं और पुष्प और फल रत्नो के कहे हैं । (२०३)

अत्र स्कंधविडिमादिमानं तु वक्ष्यमाण जम्बूवृक्ष वत् ज्ञेयम् ॥

यहां स्कंध विडिम आदि का मान आगे वर्णन करने में आने वाले जम्बू वृक्ष के स्कंध आदि अनुसार समझना ।

तेषां च चैत्य वृक्षाणां पुरतो मणि पीठिका ।

योजनायाम विष्कम्भा योजनाद्धं च मेदुरा ॥२०५॥

इन चैत्य वृक्षों के आगे एक योजन लम्बी-चौड़ी और आधा योजन मोटी मणि पीठिका है । (२०५)

महेन्द्रध्वजमेकैकः तास्वर्द्धकोशविस्तृतः ।

सार्द्धसप्तयोजनोच्चः पताकाछत्रमंडितः ॥२०६॥

इस पीठिका के ऊपर साढ़े सात योजन ऊँचा और एक कोस चौड़ा तथा पताका और छत्र से सुशोभित एक-एक इन्द्र ध्वज आया है । (२०६)

इदं जीवभिगम सूत्र वृत्तौ ॥ क्षेत्र समास वृहद् वृत्तौ तु ते महेन्द्र ध्वजाः प्रत्येक अष्ट योजनोच्छ्रयाः रत्युक्तम् ॥

यह अभिप्राय जीवाभिगम सूत्र का है । क्षेत्र समास की बड़ी टीका में तो महेन्द्र ध्वज की ऊँचाई आठ योजन की कही है ।

तेषां महेन्द्रध्वजानां पुरः प्रत्येकमेकिका ।

नन्दा पुष्करिणी पद्मवेदिकावनवेष्टिता ॥२०७॥

प्रत्येक महेन्द्र ध्वज के आगे पद्मवेदिका और बाग से युक्त एक-एक पुष्करिणी होती है । (२०७)

योजनानि दशोण्डाः ताः सार्द्धां द्वादश योजनीम् ।

आयता षड् योजनानि क्रोशाधिकानि विस्तृताः ॥२०८॥

प्रत्येक पुष्करिणी दस योजन गहरी, साढ़े बारह योजन लम्बी तथा छः योजन और एक कोस चौड़ी है । (२०८)

एवं सुधर्म सभाया वहिर्भागो निरूपितः ।

अधैतस्या मध्य भागो यथाम्यनायं निरूप्यते ॥२०९॥

इस प्रकार से सुधर्मा सभा के बाहरी विभाग का वर्णन किया अब आम्नाय अनुसार इसके मध्यभाग का वर्णन करते हैं । (२०६)

तस्यां सुधर्मा सभायां षट् सहस्राणि पीठिकाः ।

द्वे सहस्रे दिशि प्राच्यां पश्चिमायां तथैव च ॥२१०॥

दक्षिणास्यामुत्तरस्यां तासां सहस्रमेककम् ।

ताः सर्वा अपिररूप्यफलकैः खचिता ध्रुवम् ॥२११॥ युग्मं ।

नागदन्ता वज्रमायाः फलकेष्वथ तेष्वपि ।

सुगन्धिपुष्पदामानि लम्बमानान्यनेकशः ॥२१२॥

इसके अन्दर दो हजार पूर्व दिशा में, दो हजार पश्चिम दिशा में, एक हजार दक्षिण दिशा में, और एक हजार उत्तर दिशा में, इस तरह कुल मिलाकर छः हजार, रूपा (चान्दी) के बैठने वालों के आसन है उन आसनों के ऊपर वज्रमय की खूंटिया है, जिनमें सुगन्धि पुष्पों की अनेक मालाएं लटकी रहती हैं । (२१०-२१२)

सुधर्मायां सभायां च स्युः धूपवास पीठिकाः ।

षट् सहस्राणि ताः प्राग्वत् भावनीया यथा क्रमम् ॥२१३॥

एता अपि स्वर्णरूप्यफलकैरुपशोभिताः ।

फलकेषु लसद्द्वजनागदन्ता अमीषु च ॥२१४॥

वाञ्छिकानि सिक्किकाणि सिक्किकेषु च वज्रजाः ।

उद्गिरन्त्यो धूपघट्टो धूपधूममहर्निशम् ॥२१५॥

इस सुधर्मा सभा में पूर्व कहे अनुक्रम से ही छः हजार धूप वास की पीठिकायें हैं, ये पीठिका ये सोने के रूप के तख्तों से शोभायमान हो रही हैं, उनमें मनोहर वज्रमय खूंटियां हैं, प्रत्येक खूंटि में वज्र के छिक्का लगे हैं और उन छिक्को में वज्रमय धूपदानी है जिसमें दिनरात धूप का धुंआ निकलता ही रहता है । (२१३-२१५)

तथैतस्याः सुधर्माया मध्येऽस्ति मणिपीठिका ।

योजनद्वय विष्कम्भायामा योजनमेदुरा ॥२१६॥

चैत्यस्तंभ उपर्यस्या महान् माणवकाभिधः ।

सार्द्धसप्तयोजनोच्चः क्रोशार्द्धस्थूलविस्तृतः ॥२१७॥

इस सुधर्मा सभा के मध्य भाग में दो योजन लम्बी-चौड़ी तथा एक योजन मोटी मणि पीठिका है । इसके ऊपर साढ़े सात योजन ऊँचा तथा आधा कोस मोटा और चौड़ा माणवक नाम का महान चैत्य स्तंभ है । (२१६-२१७)

उपर्यधस्त्वसौ स्तंभः षट् षट् क्रोशान् विहाय च ।

मध्यांशेऽष्टादशक्रोशे रैरूप्यफलकांचित्तः ॥२१८॥

इस चैत्य स्तंभ नीचे ऊपर के डेढ़-डेढ़ योजन छोड़कर शेष साढ़े चार योजन से सोने-चान्दी के तख्तों से शोभायमान हो रहा है । (२१८)

प्राग्वत्तेषु नागदन्ताः निरूद्धाः वज्र सिक्वकैः ।

तेषु वज्र सिक्वकेषु वृत्ताः वज्र समुद्गकाः ॥२१९॥

तेषु वज्रै समुद्गेषु जिन सक्थी नि सन्ति च ।

विजय स्वर्गिणान्यै श्चार्चितानि व्यन्तरा मरैः ॥२२०॥

उसमें रही वज्रमय खूंटियों पर भी पूर्व के समान वज्र के छिक्के लगे हैं और उन छिक्कों में वज्र मय डिब्बे हैं । इन डिब्बों में विजय देव तथा अन्य व्यन्तर देवों द्वारा पूजा के लिए रक्खी श्री जिनेश्वर भगवान की अस्थियां होती हैं । (२१९-२२०)

पूज्यत्वमेषां सक्थना तु तादृग्महिम योगतः ।

यदेतत्क्षालनजलं सुराणामपि दोषहृत् ॥२२१॥

अस्थि (भगवान के शरीर की हड्डी) की महिमा महान है । इसके कारण पूज्य है, क्योंकि इसके प्रक्षालन जल से देव भी दोषों का निवारण करते हैं । (२२१)

नत्वोत्पन्नतया तर्हि सौधमैशानशक्रयोः ।

विवादोऽभूद्विमानार्थं हर्म्यार्थमिव हर्मिणोः ॥२२२॥

तयोरिवोर्वीश्वरयोः विमान विप्रलुब्धयोः ।

नियुद्धादिमहायुद्धान्यप्यभूवन्ननेकशः ॥२२३॥

निवार्यते हि कलहः तिरश्चां तरसा नरैः ।

नराणां च नराधीशैः नराधीशां सुरैः क्वचित् ॥२२४॥

सुराणां च सुराधीशैः सुराधीशां पुनः कथम् ।

केन वा स निवार्येत वज्राग्निरिव दुःशमः ॥२२५॥

माणवकाख्यस्तंभस्थार्हदंष्ट्रा शान्तिवारिणा ।

साधि व्याधि महा दोष महावैर निवारिणा ॥२२६॥

कियत्कालव्यतिक्रान्तौ सिक्तौ महत्तरैः सुरैः ।

बभूवतुः प्र शान्तौ तौ किंवा सिद्धयेन्न तज्जलात् ॥२२७॥ युग्मं ।

इस विषय में श्राद्ध विधि प्रकरण ग्रन्थ की टीका में कहा है कि - एक मकान के मालिकी के अधिकार के लिए जैसे दो मनुष्यों के बीच कई बार लड़ाई झगड़ा होता है । वैसे एक समय में नये उत्पन्न हुए सौ धर्मेन्द्र और ईशानेन्द्र के बीच अमुक विमान के लिए विवाद हो गया । विमान को लेने के लिए दोनों के बीच बड़े-बड़े युद्ध हुए । तिर्यच की लड़ाई को मनुष्य रोक सकता है, मनुष्य की लड़ाई राजा रोकवा सकता है, राजाओं के युद्ध कभी देव रोक सकता है और देवों का इन्द्र निवारण कर सकता है, परन्तु इन्द्र, इन्द्र के मध्य युद्ध, जो वज्र की अग्नि समान दुःनिवार्य है उसे कौन रोक सकता है ? परन्तु उस समय में कुछ समय के व्यतीत होने के बाद महत्तर देवों ने माणवक नामक स्तंभ में रही श्री जिनेश्वर भगवन्त की दाढ़ का प्रत्येक को असह्य व्याधि शान्त करके उन दोनों इन्द्रो को शान्त किया था । क्योंकि इस जल से कैसा भी कार्य हो सिद्ध होता है । (२२२-२२७)

स्तंभस्य तस्य पूर्वस्यामस्त्येका मणिपीठिका ।

अर्द्धं योजन बाहल्या योजनायत विस्तृता ॥२२८॥

उपर्यस्या महदेकं सिंहासनमनुत्तरम् ।

स्तंभस्यास्य पश्चिमायां तथान्या मणि पीठिका ॥२२९॥

सापि योजन विष्कम्भायामा द्विक्रोश मेदुरा ।

उपरि स्वर्णं माणिक्य शयनीय मनोहरा ॥२३०॥

इस माणवक स्तंभ की पूर्व दिशा में आधा योजन मोटा और एक योजन लम्बा चौड़ा एक मणि पीठिका है इसके ऊपर एक अनुपम सिंहासन है । इस स्तंभ की पश्चिम दिशा में एक और मणि पीठिका है वह भी आधा योजन मोटा और एक योजन लम्बा चौड़ा है । उसके ऊपर सुवर्ण और माणिक्य रत्न की मनोहर शय्या है । (२२९-२३०)

तल्पादुदीच्यां क्षुल्लेन्द्र ध्वजः पूर्वोक्त केतुवत् ।

मानतोऽस्मात् पश्चिमायां कोशः प्रहरणौः भृतः ॥२३१॥

तस्मिन् परिधरत्नादि नाना प्रहरणानि च ।

किंचिदेवं सुधर्मायाः स्वरूपमुपवर्णितम् ॥२३२॥

इस शय्या की उत्तर दिशा में पूर्वोक्त इन्द्र ध्वज के समान एक छोटा इन्द्र ध्वज है और पश्चिम दिशा में एक शस्त्र भंडार है उस शस्त्र भंडार में दंड रत्न आदि अनेक प्रकार के शस्त्र हैं । इस प्रकार से सुधर्मा सभा का थोड़ा वर्णन हुआ है । (२३१-२३१)

अस्याश्चोत्तर पूर्वस्यां सिद्धायतनमुत्तमम् ।

आयामादिप्रमाणेन तत् सुधर्मासमासमम् ॥२३३॥

इस सुधर्मा सभा के ईशान कोण में एक श्रेष्ठ सिद्धायतन है । उसकी लम्बाई चौड़ाई आदि मान इस सभा के अनुसार होते ही है । (१३३)

तस्य मध्यदेशे भागे एक योजन मेदुरा ।

भाति द्वियोजनायाम विष्कम्भा मणि पीठिका ॥२३४॥

इस सिद्धायतन के मध्य भाग में एक योजन मोटी और दो योजन लम्बी चौड़ी एक मणि पीठिका है । (२३४)

उपर्यस्या रत्नमयोऽधिकाद्वियोजनोन्तः ।

द्वियोजनायतततो देवच्छन्दक आहितः ॥२३५॥

इस मणि पीठिका के ऊपर ऊँचाई में दो योजन से अधिक और लम्बाई चौड़ाई में दो योजन एक रत्नमय देवच्छन्दक है । (२३५)

इदं श्री जीवाभिगम वृत्तौ ॥ क्षेत्र समास वृहद् वृत्तौ तु असौ द्वि योजन प्रमाण विष्कम्भोच्चत्व उक्तः ॥

यह अभिप्राय जीवाभिगम सूत्र का है, क्षेत्र समास की बड़ी टीका में तो इसकी ऊँचाई चौड़ाई दो योजन की कही है ।

तस्मिन् देवच्छन्दके च सुरासुर नमस्कृतम् ।

जयत्यर्हत्प्रतिमानां शतमष्टोत्तरं किल ॥२३६॥

इस देवच्छन्द में सुर और असुरों के वंदनीय ऐसे श्री अरिहंत प्रभु की एक सौ आठ प्रतिमाएं हैं । (२३६)

तस्य सिद्धायतनस्य विभात्युत्तरपूर्ववत् ।

उपपात सभा सापि सुधर्मैव प्रमाणत ॥२३७॥

इस सिद्धायतन से ईशान कोण में, सुधर्मा सभा समान ही उपपात सभा भी शोभ रही है । (२३७)

अर्धं योजनं बाहल्या योजनायतं विस्तृता ।
 तस्यां मणी पीठिकाच्छादिव्य शय्यास्ति तत्र च ॥२३८॥ युग्मं ॥
 तस्यां विजयदेवस्योपपातो बोभवीत्यथ ।
 अस्यां उत्तरपूर्वस्यां दिशि चैको महाहृद् ॥२३९॥

उसमें आधा योजन मोटी और एक योजन लम्बी-चौड़ी एक स्वच्छ मणि पीठिका है, और उसके ऊपर एक दिव्य शय्या है । इस शय्या में विजय देव उत्पन्न होता है । वहां से उत्तर पूर्व के बीच ईशान कोने में एक मोटा हृद् (सरोवर) है । (२३८-२३९)

नन्दापुष्करिणी तुल्यो विष्कम्भोद्वेधदैर्घ्यतः ।
 वेष्टितो वनखंडेन पद्मवेदिकयाणि च ॥२४०॥

उसकी लम्बाई चौड़ाई और ऊँचाई नन्दा पुष्करिणी के अनुसार है, और उसके चारों तरफ एक पद्म वेदिका और एक बाग भी आया है । (२४०)

हृदस्योत्तरपूर्वस्यामभिषेकसभामत्र च ।
 सिंहासनपीठिकायां विजयोऽत्राभिषिच्यते ॥२४१॥

इस हृद्-सरोवर की ईशान दिशा में अभिषेकसभा आति है, उसमें सिंहासन की पीठिका ऊपर विजयदेव का अभिषेक करते हैं । (२४१)

इतोऽप्युत्तरपूर्वस्यां स सिंहासनपीठिका ।
 अलंकारसभा तत्र भूष्यते विजयामरः ॥२४२॥

वहां से भी ईशान कोण में सिंहासन और पीठिका से युक्त अलंकारसभा है वहां विजय देव अलंकार धारण करता है । (२४२)

अस्या उत्तरपूर्वस्यां व्यवसायसभात्र च ।
 सिंहासनपीठिकायां विजयस्य च पुस्तकः ॥२४३॥

स्वर्णरूप्यमणिमयः समस्तस्थितिसूचकः ।
 सपीठिके सभे चैते उपपातसभासमे ॥२४४॥ युग्मं ।

इसके भी ईशान कोने में व्यवसायसभा है, वहां भी सिंहासन और पीठिका है और इसके ऊपर विजयदेव की पुस्तक रही है, जो सोने-रूपे और मणि की है वह सर्व स्थिति की सूचक है । इस पीठिका और दोनों सभा का सर्व स्वरूप 'उपपातसभा' के समान समझ लेना । (२४३-२४४)

व्यवसाय सभायाश्च वर्वत्युत्तर पूर्ववतः ।

द्वियोजनमितायामन्या संयोजन मेदुरम् ॥२४५॥

बलि पीठं रत्नमयं तस्याप्युत्तर पूर्वतः ।

नन्दा पुष्करिणी प्रोक्त हृदमानां विराजते ॥२४६॥ युग्मं ।

व्यवसाय सभा से ईशान कोण में दो योजन लम्बा-चौड़ा और एक योजन मोटा एक रत्नमय बलि पीठ है और इससे भी ईशान कोण में पूर्वोक्त हृद (सरोवर) सदृश नन्दापुष्करिणी आयी है । (२४५-२४६)

यथा चैवं विजयस्य नगरी विजयाभिधा ।

तथा स्याद्वैजयन्तस्य वैजयन्त्यभिधापुरी ॥२४७॥

वैजयन्ताभिधद्वारा दक्षिणस्यामसंख्यकान् ।

द्वीपाब्धीन् समतिक्रम्य जम्बू द्वीपे इहैव हि ॥२४८॥

जैसे विजय देव की यह विजय नाम की नगरी कही है वैसे ही वैजयन्त देव की वैजयन्त नगरी है और वैजयन्त नामक द्वार से दक्षिण दिशा में असंख्य द्वीप और समुद्रों के बाद विजयदेव की राजधानी बाला अन्य जम्बू द्वीप में आई है । (२४७-२४८)

जयन्तस्यापि सात्रैव द्वीपे तदद्वारतो दिशि ।

पश्चिमायामसंख्येय द्वीपाब्धिनामतिक्रमे ॥२४९॥

जयन्तदेव की नगरी भी जयन्त द्वार से पश्चिम दिशा में पूर्व के समान असंख्य द्वीप समुद्र के बाद दूसरे जम्बूद्वीप में आता है ।

अपराजितदेवस्योत्तरस्यामपराजितात् ।

द्वारादसंख्यद्वीपाब्धीन् मुक्त्वा द्वीप इहैव सा ॥२५०॥

अपराजित द्वार से उत्तर दिशा में असंख्य द्वीप समुद्र छोड़ने के बाद जम्बू द्वीप में ही अपराजित देव की नगरी है । (२५०)

एताः सर्व राजधान्योऽवगाह्य द्वीपमेतकम् ।

सहस्राणि योजनानां द्वादशाभ्यन्तरे स्थिताः ॥२५१॥

एवं सर्वद्वीप वार्द्धिजगती द्वार नाकिनां ।

पुर्थः स्व स्व द्वीप वार्द्धि तुल्याख्य द्वीपवार्द्धिषु ॥२५२॥

इसी तरह सर्व द्वीप समुद्र तथा जगती के द्वार के देवों की नगरी अपने-
अपने द्वीप समुद्र के नाम वाले अन्य द्वीप समुद्रों में है । (२५२)

अथास्य जम्बूद्वीपस्य द्वाराणामन्तरं मिथः ।

द्वार विस्तार रहित परिधेः पादसंमितम् ॥२५३॥

अब इस जम्बू द्वीप के चार द्वारों का परस्पर अन्तर इसकी परिधि में से चार
द्वार की चौड़ाई कम करने से जो आता है उसका चतुर्थांश सदृश है । (२५३)

अर्धं पंचम विस्तारं द्वारमेकैकमग्रतः ।

अष्टादश योजनानि तैरूनं परिधिं कुरु ॥२५४॥

३१६२०६ योजन ३ क्रोश १२८ धनुष्य १२ अंगुल ॥

तस्या तुर्यांश एकोनाशीतिः खलु सहस्रकाः ।

योजनानि द्विपंचाशत् क्रोशश्चैकस्तथाधिकः ॥२५५॥

साद्धे सहस्रं धनुषां द्वात्रिंशच्चाप संयुतम् ।

त्रीष्यंगुलानि त्रियवीयूके द्वे साधिके इति ॥२५६॥

जैसे कि प्रत्येक द्वार साढ़े चार योजन चौड़ा होने से चार द्वार का जोड़ अठारह
योजन होता है । इस अठारह योजन को इसकी परिधि में से कम करते ३, १६,
२०६, योजन, ३ क्रोश, १२८ धनुष्य व १३ अंगुल रहता है इसका चतुर्थांश अर्थात्
७६०५२ योजन १ कोस १५३२ धनुष्य ३ अंगुल ३जौ और जू होता है । (२५४-२५६)

इत्यस्य जम्बूद्वीपस्य वहिर्भागो निरूपितः ।

अथैतस्य मध्य भागो यथा यथाग्नायं निरूप्यते ॥२५७॥

क्षेत्राणि सप्त सन्त्यस्य जम्बू द्वीपस्य मध्यतः ।

एकैकै न पर्वतेनान्तरितानि परस्परम् ॥२५८॥

यहाँ तक जम्बू द्वीप के बाहरी विभाग का वर्णन किया है । अब इसके अन्दर
के विभाग का परम्परा अनुसार वर्णन करते हैं । इस जम्बूद्वीप के अन्दर सात क्षेत्र
है । और वे एक दूसरे के बीच आए पर्वतों से अलग होते हैं । (२५७-२५८)

प्रथमं भरतक्षेत्रं परं हैमवताभिधम ।

तृतीयं हरिवर्षाख्यं तुर्यं महाविदेहकम् ॥२५९॥

पंचमं रम्यकं षष्ठं हैरण्यवतमीरितम् ।

ऐरावतं सप्तमं चान्तरामूनि नगा इमे ॥२६०॥

ये सात क्षेत्र इस प्रकार - प्रथम भरत, दूसरा हैमवत तीसरा हरिवर्ष चौथा महाविदेह पांचवा रम्यक छठा हैरण्यवत और सातवां ऐरावत है । (२५६-२६०)

आद्य द्वितीययोर्मध्ये हिमवान्नामपर्वतः ।

महाहिमवदद्रिश्च द्वेतीयकतृतीय योः ॥२६१॥

तृतीय तुर्ययोरन्तर निषधो नाम सानुमान् ।

तुर्य पंचमयोनीलवान्गः सीमकारकः ॥२६२॥

रूप्यी शैलः क्षेत्रयोः स्यात् मध्ये पंचमषष्ठयोः ।

षष्ठ सप्तमयोश्चैव शिखरी भूधरोऽन्तरे ॥२६३॥

इन दो-दो क्षेत्र के बीच में एक-एक पर्वत आया है । वे छः पर्वत हैं, वह इस प्रकार - प्रथम और दूसरे क्षेत्र के बीच १- हिमवान पर्वत २- दूसरे और तीसरे के बीच ३- महाहिमवान पर्वत तीसरे और चौथे के बीच ३- निषध पर्वत । चौथे और पांचवे के बीच नीलवान पर्वत । पांचवा और छठे के बीच ५- रूप्यमी पर्वत और छठे सातवें के बीच ६ शिखरी पर्वत है । (२६१-२६३)

वर्ष वर्ष धरनाम्नात्रतो, द्वीप एष कथितो यदोधतः ।

तद्विशेषविधिवर्णनेच्छयोद्देश एष विहितोऽवसीयताम् ॥२६४॥

यहां जम्बू द्वीप के क्षेत्र और पर्वतों का नाम मात्र ही से वर्णन किया है इससे समझना कि अभी विशेष वर्णन करने की इच्छा मेरी है उसका उद्देश किया गया है । (२६४)

विश्वाश्चर्यद कीर्ति कीर्ति विजय श्री वाचकेन्द्रान्तिष -

द्राज श्री तनयोऽतनिष्ठ विजयः श्री तेजपालात्मजः ।

काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जगत्तत्त्व प्रदीपोपमे ।

सर्गः पंचदशः समाप्तिमगमत्सिद्धान्तसारोज्ज्वलः ॥२६५॥

इति पंच दशः सर्गः

जगत के आश्चर्य रूप में गीत गाने वाले सुकीर्ति वाले, श्री कीर्ति विजय वाचकेन्द्र के शिष्य और पिता तेजपाल तथा माता राज श्री के सुपुत्र श्री विजय विजय जी उपाध्याय ने जगत के निश्चित तत्वों को दीपक के समान प्रकाशित करने वाले जो इस काव्य ग्रन्थ की रचना की है, उस सिद्धान्त के सार रूप सुभग यह पंद्रहवां सर्ग समाप्त होता है । (२६५)

- सर्ग पन्द्रहवां समाप्त -

सोलहवां सर्गः

द्वीपस्यास्याथ पर्यन्ते स्थितं दक्षिणगामिनी ।

नानावस्थं कालचक्रैः भरतं क्षेत्रमीरितम् ॥१॥

इस जम्बू द्वीप के दक्षिण दिशा के अन्तिम विभाग में भरत क्षेत्र आया है । जो काल चक्र के कारण अलग-अलग अवस्था को प्राप्त करता है । (१)

अधिन्यधनुराकारं स्पृष्टं तच्च पयोधिना ।

पूर्वं पश्चिमयोः कोटयोः पृष्ठ भागे च सर्वतः ॥२॥

प्रत्यंचा (धनुष्य की डोरी) चढ़ाकर तैयार किये धनुष्य की जैसी आकृति होती है, वैसी भरत क्षेत्र की आकृति है । इसके पूर्व और पश्चिम के किनारे पर और सम्पूर्ण पीछे के विभाग में समुद्र आया है । (२)

यो योऽत्रोपहृतेक्षेत्रेऽधिष्ठाता पल्यजीवितः ।

तमाह्वयन्ति भरतं तस्य सामानिकादयः ॥३॥

कल्पस्थितिपुस्तकेषु तथा लिखितदर्शनात् ।

तत्स्वामिकत्वात् भरतं किंचेदं नाम शाश्वतम् ॥४॥

एक पल्योपम की आयुष्य वाला इसका अधिष्ठाता देव है, और इसके सामानिक आदि देव 'भरत' नाम से बुलाते हैं । यह बात कल्प आचार ग्रन्थों में कही है । इस कारण से इस क्षेत्र का नाम भरत क्षेत्र में आता है अथवा तो यह भरत क्षेत्र शाश्वत नाम ही है । (३-४)

अत्र क्षेत्रादि प्रमाणं षोढा विष्कम्भतस्तथा ।

इषुजीवाधनुःपृष्ठबाहाक्षेत्रफलैः बुवे ॥५॥

यहां मैं इस भरत क्षेत्र का प्रमाण छः प्रकार से कहता हूँ । वह इस प्रकार-
१- विष्कम्भ २- शर, ३- जीवा, ४- धनुः पृष्ठ ५- बाहा और ६- क्षेत्रफल । (५)

तत्र विष्कम्भः प्रतीतः । शेषाणां तु इमानि लक्षणानि ॥

विवक्षितस्य क्षेत्रस्य जीवाया मध्य भागतः ।

विष्कम्भो योऽर्णवं यावत् स इषु परिभाषितः ॥६॥

विष्कम्भ, यह चौड़ाई से तो प्रसिद्ध है शेष पांच लक्षण आगे कहते हैं :-
प्रत्येक क्षेत्र में भी जीवा के मध्य भाग से समुद्र तक का जो विष्कम्भ है वह इषु अथवा शर कहलाता है । (६)

विवक्षितस्य क्षेत्रस्य पूर्वापरान्त गोचरः ।

आयामः परमो योऽत्र सा जीवेत्यभिधीयते ॥७॥

प्रत्येक क्षेत्र की पूर्व से लेकर पश्चिम तक की ऊँचाई है वह जीवा कहलाती है । (७)

विवक्षित क्षेत्रजीवा पूर्वापरान्तसीमया ।

योऽब्धिस्पर्शी परिक्षेपो धनुः पृष्ठं तदचिरे ॥८॥

प्रत्येक क्षेत्र के जीवा के पूर्व और पश्चिम के किनारे से जो समुद्र तक पहुँचती परिधि है उनका नाम धनुः पृष्ठ है । (८)

पूर्वक्षेत्रधनुःपृष्ठाद्धनुःपृष्णेऽग्रिसेऽधिकम् ।

खण्डं वक्र बाहुवद्यत्सा बाहेत्यभिधीयते ॥९॥

प्रत्येक क्षेत्र के पूर्व के धनुःपृष्ठ से आगे धनुःपृष्ठ में ढेड़ हाथ से समान अधिक खंड हो वह बाहा कहलाता है । (९)

विवक्षितस्य क्षेत्रस्य दानि योजनमात्रया ।

खण्डानि सर्वक्षेत्रस्य तत् क्षेत्रफलमुच्यते ॥१०॥

प्रत्येक क्षेत्र के एक योजन लम्बा-चौड़ा जितने खंड होते हैं, उस क्षेत्र का क्षेत्रफल कहलाता है । (१०)

उच्चत्वस्यापि यन्मानं सर्वतो योजनादिभिः ।

एतत् घनक्षेत्रफलं पर्वतेष्वेव संभवेत् ॥११॥

प्रत्येक वस्तु का सर्व की ओर का अर्थात् लम्बाई-चौड़ाई और ऊँचाई का जो प्रमाण है वह घन क्षेत्र कहलाता है, ऐसा क्षेत्रफल पर्वतों का ही होता है । (११)

छिन्न स्यैकोनविंशत्या विभागो योजनस्य यः ।

सा कला ताभिरेकोनविंशत्या पूर्णं योजनम् ॥१२॥

एक योजन का उन्नीसवां विभाग कला कहलाता है । अर्थात् ऐसी उन्नीस कला का एक योजन कहलाता है । (१२)

एकोनविंशतितमः कलाया अपि यो लघुः ।

विकला ताभिरेकोनविंशत्येका कला भवेत् ॥१३॥

इति परिभाषा ॥

कला का जो उन्नीसवां विभाग है वह विकला है, और ऐसे उन्नीस विकला का एक कला होता है । (१३)

इस तरह की परिभाषा है ।

व्यासो भरतहिमवतादिक्षेत्रमहीभृताम् ।

स्थानद्विगुणितो ज्ञेय आविदेहमतः पुनः ॥१४॥

यथारोहावरोहेण विष्कम्भोऽर्द्धार्द्धहानितः ।

भवेदेवं ऐरवते विष्कम्भो भरतोपमः ॥१५॥

विदेह तक जो भरत और हिमवान आदि क्षेत्र और पर्वत है उनका व्यास एक दूसरे से दोगुना जानना, और उसके बाद के क्षेत्र और पर्वत आधे-आधे हो जाते हैं । अतः ऐरावत क्षेत्र का व्यास भरत क्षेत्र के व्यास समान होता है । (१४-१५)

तच्चैवम् - चेज्जम्बूद्वीपविष्कम्भे भागा नवति युक्त शतम् ।

कल्प्यन्ते तत्र भरतमेकभागमितं भवेत् ॥१६॥

इतः स्थानद्विगुणत्वात् द्वौ भागौ हिमवद्गिरिः ।

हेमवंतं च चत्वारोऽष्टौ महाहिमवद्गिरिः ॥१७॥

षोडशांशा हरिवर्षं द्वात्रिंशान्निषधाचलः ।

विदेहाश्च चतुःषष्टिः द्वात्रिंशन्नीलवान्नागः ॥१८॥

वह इस तरह से :- यदि जम्बू द्वीप के व्यास के एक सौ नब्बेवें भाग की कल्पना करें, तो भरत क्षेत्र का व्यास एक भाग समान है, उसके बाद दो गुना होने से हिमवंत पर्वत, दो विभाग जितना (समान) समझना । उसके बाद का हेमवंत क्षेत्र चार विभाग समान जानना । उसके बाद महाहिमवंत पर्वत आठ विभाग वाला है । हरिवर्ष क्षेत्र सोलह विभाग समान है । निषेध पर्वत बत्तीस विभाग (गुना) है । और विदेह क्षेत्र चौंसठ विभाग के समान है । इसके बाद वापिस मान उतरते, आधा-आधा होते जाता है, उसके बाद का नीलवान पर्वत बत्तीस विभाग समान समझना । (१६-१८)

षोडशांशा रम्यकाख्यं भागा रूक्मीनगोऽष्ट च ।

चत्वारो हैरण्यवंतद्वौ भागौ शिखरी गिरिः ॥१९॥

एक ऐरावत क्षेत्रम् नवत्या च शतेन च ।

भागैरेवं योजनानां लक्षमेकं समाप्यते ॥२०॥

यद्वेदं भरते क्षेत्रप्रमाणं योजनादिकम् ।

नवत्याढ्यशतगुणं योजनानां हि लक्षकम् ॥२१॥

उसके बाद का रम्यक क्षेत्र सोलह विभाग समान है । रूक्मि पर्वत आठ विभाग समान है। हैरण्यवंत क्षेत्र चार विभाग के सदृश है। शिखरी पर्वत दो विभाग जितना है । और ऐरावत क्षेत्र एक विभाग जितना है । अतः यह सम्पूर्ण भरतक्षेत्र के समान है । इस तरह कुल एक सौ नब्बे विभाग होकर एक लाख योजन प्रमाण का होता है । इस प्रकार एक लाख योजन को १६० का भाग करते जितने योजन आते हैं, उतने योजन का भरत क्षेत्र का प्रमाण समझना । अर्थात् यह ५२६ योजन और छः कला का भरत क्षेत्र होता है । (१६-२१)

जम्बू द्वीपस्य विष्कम्भो यथैवं लक्षयोजनः ।

एवमायामोऽपि लक्षं योजनानां भवेद्यथा ॥२२॥

जम्बू द्वीप की चौड़ाई के समान लम्बाई भी एक लाख योजन की है वह इस तरह :- (२२)

सहस्राः पंच वनयोः व्यासः पूर्वापरस्थयोः ।

योजनानां चतुश्चत्वारिंशान्यष्टौ शतानि च ॥२३॥

पण्णमन्तर्नदीनां च पंचाशाः सप्तशत्यसो ।

चतुःसहस्री विष्कम्भो वक्षस्काराष्टकस्य च ॥२५॥

मेरुः दश सहस्रोरुः भद्रसालस्य चायतिः ।

सहस्राणि चतुःचत्वारिंशत् पूर्वापरस्थितेः ॥२६॥

एषां संकलने लक्षं योजनानां भवेदिति ।

वक्ष्यमाणाविदेहानामायामोऽप्येवमूह्यताम् ॥२७॥

पूर्व और पश्चिम के दोनों बन मिलाकर पांच हजार आठ सौ चवालीस योजन होता है। सोलह विजय पैंतीस हजार चार सौ छः योजन है । छः अन्तर्नदियों सात सौ पंचास योजन है । और वृक्षस्कार पर्वत चार हजार योजन के होते हैं । मेरु पर्वत दस हजार योजन का है, एवं पूर्व और पश्चिम दिशा में रहा भद्रशाल वन चवालीस हजार योजन का है । इस तरह सर्व मिलाकर कुल जोड़ एक लाख योजन होता है । यह जम्बू द्वीप की लम्बाई हुई । इसके बाद जो बाते आने वाली है वह महाविदेह की लम्बाई भी इस तरह समझना । (२३-२७)

दक्षिणोत्तर वर्तिन्योः जगत्योः मूल विस्तृतिः ।

भरतैरवन्तक्षेत्रव्यासेऽन्तर्भाव्यतां क्रमात् ॥२८॥

दक्षिण और उत्तर में जो, दो जगती की दिवार रही है उसके मूल का विस्तार अनुक्रम से भरत और ऐरवत क्षेत्र के विस्तार के अन्दर समझ लेना । (२८)

जगत्योः मूल विष्कम्भः पूर्व पश्चिमयोस्तु यः ।

स्व स्वदिक्स्थवन मुख व्यासेऽन्तर्भाव्यतामसौ ॥२९॥

इसी तरह पूर्व और पश्चिम में रही दोनों जगती के मूल का विस्तार अपने अपने दिशा में रहे वन के विस्तार के अन्दर समझ लेना । (२९)

विष्कम्भो भरतस्याथ शरश्च कथितो जिनैः ।

षड् विशानि योजनानि शतानि पंचषट् कलाः ॥३०॥

भरत क्षेत्र का विष्कम्भ तथा शर, पांच सौ छब्बीस योजन और छः कला है । (३०)

चतुर्दश सहस्राणि चतुःशत्येकसप्ततिः ।

योजनान्यस्य जीवा स्यात्किञ्चिद्नाशच षट्कलाः ॥३१॥

इसका जीवा चौदह हजार चार सौ इकहत्तर योजन और कुछ कम छः कला का है । (३१)

धनुःपृष्ठं सहस्राणि चतुर्दश तथोपरि ।

अष्टाविंशा पंचशती कला एकादशाधिकाः ॥३२॥

इसका धनुः पृष्ठ चौदह हजार पांच सौ अट्ठाईस योजन और ग्यारह कला है । (३२)

योजनानां त्रिपंचाशत् लक्षा अशीतिरेव च ।

सहस्राणि षट् शतानि तथैकाशीतिरित्यथ ॥३३॥

कलाः सप्तदश तथा तावत्यो विकला अपि ।

एतावत् भरतक्षेत्रे प्रोक्तं क्षेत्रफलं जिनैः ॥३४॥

वाहा तु अत्र न संभवति ॥

इसका क्षेत्रफल तिरपन लाख अस्सी हजार छः सौ और इक्यासी योजन, सत्रह कला व सत्रह विकला है । इस तरह भरत क्षेत्र में श्री जिनेश्वर भगवन्त ने कहा है । (३३-३४)

यहां वाहा तो नहीं होता है ।

तच्चेदं भरत द्वेधा वैताढ्य गिरिणा कृतम् ।
दाक्षिणात्यं भरतार्द्धमुत्तरार्द्धं तथापरम् ॥३५॥

इस तरह जो भरत क्षेत्र है वह वैताढ्य पर्वत से दो भागों में विभाजित होता है, इससे दक्षिणार्द्ध भरत और उत्तरार्द्ध भरत कहलाता है । (३५)

षोढा हिमवदुत्थाभ्यां भित्वा वैताढ्य भूधरम् ।
गंगा सिन्धुभ्यां कृतं तत् गत्वा पूर्वापराम्बुधी ॥३६॥

तथा हिमवंत पर्वत में से निकलती और वैताढ्य पर्वत को भेदन करती पूर्व तथा पश्चिम समुद्र में मिलने वाली गंगा और सिन्धु नदियों से इस भरत क्षेत्र का छः विभागों में विभाजन होता है । (३६)

अर्धस्य दाक्षिणात्यस्य स्याद्विष्कंभः शरोऽपि च ।
अष्टात्रिंशद्योजनानां द्वे शते च कला त्रयम् ॥३७॥

दक्षिणार्द्ध भरत का विष्कंभ तथा शर दो सौ अड़तालीस साढ़े तीस योजन और तीन कला का होता है । (३७)

योजनानां सहस्राणि नवसप्तशतानि च ।
जीवाष्टचत्वारिंशानि द्वादशात्र कलास्तथा ॥३८॥

इसका जीवा नौ हजार सात सौ अड़तालीस योजन और बारह कला है ।

(३८)

धनुःपृष्ठं योजनानां सहस्राणि नवोपरि ।
शतानि सप्त षट् षष्टिः कलैका दक्षिणार्द्धके ॥३९॥

इसका धनुः पृष्ठ नौ हजार सात सौ छियासठ योजन और एक कला है ।

(३९)

लक्षाण्यष्टादश पंचत्रिंशदेव सहस्रकाः ।
चतुःशती योजनानां पंचाशीतिस्तथोपरि ॥४०॥

कला द्वादश विकलाः पडित्येवं जिनेश्वरैः ।
दाक्षिणात्ये भरतार्द्धे सर्वं क्षेत्रफलं मतम् ॥४१॥ युग्मं ॥

बाहा तु अत्र न संभवति ॥

अठारह लाख, पैंतीस हजार, चार सौ पचासी योजन बारह कला और छः विकला, सारे दक्षिणार्द्ध भरत, का क्षेत्रफल श्री जिनेश्वर भगवन्त ने कहा है ।
(४०-४१)

बाहा तो यहा नहीं होता है ।

वैताढयादक्षिणस्यां चोत्तरस्यां लवणार्णवात् ।

चतुर्दशाधिकं शतं योजनानि कलास्तथा ॥४२॥

एकादशातीत्य मध्य खण्डेऽयोध्यापुरी भवेत् ।

नवयोजन विस्तीर्णा द्वादश योजनायता ॥४३॥ युग्मं ॥

वैताढय पर्वत से दक्षिण में और लवण समुद्र से उत्तर में एक सौ चौदह योजन और ग्यारह कला छोड़कर, मध्य खंड में नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी अयोध्या नाम से नगरी है । (४२-४३)

खण्डेऽत्रैवार्य देशानां स्यात् सान्द्रा पंचविंशतिः ।

खण्डोऽनार्य स्तान् विनासौ खण्डाः पंचापरे तथा ॥४४॥

इसी मध्य खंड में साढ़े पच्चीस आर्य देश है । इसके सिवाय अन्य शेष खण्ड अनार्य है तथा अन्य पांच खंड भी अनार्य है । (४४)

मध्य खण्ड गतेष्वार्य देशेष्वेव भवेज्जनिः ।

अर्हतां चक्रिणामर्द्धं चक्रिणां शीरिणां तथा ॥४५॥

मध्य खण्ड में रहे आर्य देशों में ही तीर्थंकर भगवन्त, चक्रवन्ती, वासुदेव और बलदेव उत्पन्न होते हैं । (४५)

अष्टात्रिंशे योजनानां द्वे शते त्रिकलाधिके ।

अतिक्रम्य हिमवतो दक्षिणस्यां तथाम्बुधेः ॥४६॥

एतावदेवातिक्रम्योत्तरस्यामत्र राजतः ।

वैताढयो मध्यस्थ इव व्यभजत् भरतं स च ॥४७॥ युग्मं ॥

हिमवंत पर्वत से दक्षिण दिशा में दो सौ अड़तीस योजन और तीन कला छोड़कर तथा समुद्र से उत्तर दिशा में इतना ही भाग छोड़कर बीच में मध्यस्थ पुरुष समान रूप्यमय वैताढय पर्वत आया है । इससे भरत क्षेत्र के दो विभाग होते हैं । (४६-४७)

पंचाशतं योजनानि विस्तीर्णः पंचविंशतिम् ।

योजनान्युन्नतः क्रोशाधिकानि षड् भुवोऽन्तरे ॥४८॥

विहाय मन्दरं सर्वं पर्वतानां भवेद्यतः ।

स्वस्वोच्छ्रयस्य तुर्यांशो व्यवगाढो भुवोऽन्तरे ॥४९॥

इस वैताढ्य पर्वत का विस्तार पचास योजन है और इसकी ऊँचाई पच्चीस योजन की है। यह छः योजन और एक कोस पृथ्वी के अन्दर रहा है, क्योंकि मेरू सिवाय सर्व पर्वत अपनी-अपनी ऊँचाई के चौथे भाग पृथ्वी में अवगाढ है।

(४८-४९)

द्वे योजन शते साष्टाशीतिके त्रिकलाधिके ।

इषुः वैताढ्यशैलस्य प्रत्यंचाऽस्य प्रपंच्यते ॥५०॥

योजनानां सहस्राणि दस सप्त शतानि च ।

विंशतिश्च कलाः किञ्चिद्ना द्वादश कीर्तिताः ॥५१॥

इस वैताढ्य पर्वत का 'शर' दो सौ अठासी योजन और तीन कला है, और इसका जीवा इस हजार सात सौ बीस योजन और लगभग बारह कला कहा है। (५०-५१)

धनुःपृष्ठं सहस्राणि दश सप्तशतानि च ।

त्रिचत्वारिंशताढयानि कलाः पंचदशाधिकाः ॥५२॥

इसका धनुःपृष्ठ दस हजार सात सौ तैतालीस योजन और पंद्रह कला है।

(५२)

साष्टाशीतियोजनानां चतुः शती तथा कलाः ।

साद्दार्हाः षोडश बाहास्य प्रत्येकं पार्श्वयोर्द्धयोः ॥५३॥

और इसकी दोनों तरफ की बाहा प्रत्येक, चार सौ अठासी योजन और साढ़े सोलह कला है। (५३)

ऊर्ध्वं च पर्वतस्यास्य दक्षिणोत्तर पार्श्वयोः ।

अतिक्रमे योजनानां दशानां समभूमितः ॥५४॥

अत्रास्ति मेखलैकेका दस योजनस्नुता ।

आयामेन च वैताढ्यसमाने ते उभे अपि ॥५५॥

इस वैताढ्य की दक्षिण और उत्तर की ओर समभूमि से ऊँचा दस योजन

छोडकर चौड़ाई में दस योजन और लम्बाई में वैताढय समान ही एक-एक मेखला है । (५४-५५)

पृथुस्त्रिशद्भोजनानि वैताढयः स्यादतः परम् ।

प्रति मेखलयेकैका मानतोमेखला समा ॥५६॥

शोभता वन खण्डेन पद्मवेदिकयापि च ।

वर्तते खेचर श्रेणी रत्नबद्धमहीतला ॥५७॥

यहां आगे वैताढय की चौड़ाई जो मूल में पचास योजन थी वह घटकर तीस योजन रहती है । दोनों मेखला पर मेखला के ही माप की खेचरो श्रेणियां आयी हैं। दोनों श्रेणि में बाग और पद्मवेदिका शोभती है । इसके भूमितल रत्न जड़ित होते हैं । (५६-५७)

स्युस्तत्र दक्षिण श्रेणौ वृतानि विषयैः निजैः ।

महापुराणि पंचाशत् परस्यां षष्टिरेव च ॥५८॥

इसमें से दक्षिण श्रेणि में बड़े पचास नगर हैं और उत्तर श्रेणि में ऐसे साठ नगर हैं । इन सब नगरों के आस-पास इनके अपने देश आए हैं । (५८)

दक्षिणस्यां पुरं मुख्यं भवेत् गगनवल्लभम् ।

उदीच्यांरथनूपुर चक्रवालाह्वयं भवेत् ॥५९॥

दक्षिण श्रेणी का मुख्य नगर 'गगनवल्लभ' नाम का है, और उत्तर श्रेणिका रथनूपुर चक्रवाल नामक नगर है । (५९)

अयं जम्बू द्वीप प्रज्ञप्यभि प्रायः ॥ ऋषभ चरित्रादो तु दक्षिण श्रेण्यां रथनू चक्रवालमुत्तर श्रेण्यां गगन वल्लभमुक्तम् ॥ इति ॥

यह बात जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र के अभिप्राय से कही है । श्री ऋषभ चरित्र आदि में तो इससे उलटा कहा है अर्थात् दक्षिण श्रेणि में रथनूपुर चक्रवाल और उत्तर रेणि में गगनवल्लभ नगर है ।'

मुख्यत्वं त्वनयोर्ज्ञेयं स्वस्व श्रेण्यधिराजयोः ।

राजधानीरूपतया महासमृद्धिशालिनोः ॥६०॥

ये दोनों मुख नगर इसलिए कहलाते हैं, कि ये अपनी-अपनी श्रेणि के महासमृद्धशाली राजाओं की राजधानी हैं । (६०)

वसन्तः तेषु चोत्तंगरत्नप्रासादशालिषु ।
तृणायापि न मन्यन्ते स्वर्गं विद्याधरेश्वराः ॥६१॥

सब नगरियों में ऊँचे रत्न महलों में रहने वाले विद्याधरों की मान्यता में स्वर्ग तो तृण समान भी नहीं है । (६१)

दस योजन तुंगस्य पंचाशाद्विस्तृतेरपि ।
खंडस्याद्यस्य सकलं प्रतर स्यात् भुवस्तले ॥६२॥
पंच लक्षाः सहस्राणि द्वादशाथ शतत्रयम् ।
सप्ताढ्यं द्वादश कलाः खण्डेऽथ प्रथमे धनम् ॥६३॥
लक्षाणामेकपंचाशत् त्रयोविंशति रेव च ।
सहस्रा योजनानां षट् सप्ततिः षट् कलास्तथा ॥६४॥ त्रिभिः विशेषकं ॥

दस योजन उन्नत तथा पचास योजन चौड़े इस प्रथम खंड के भूमितल का सारा प्रतर पांच लाख बारह हजार तीन सौ सात योजन और बारह कला का है, और इसका घन इकावन लाख, तेईस हजार छहत्तर योजन और छह कला होता है । (६२-६४)

श्रेणीभ्यामथ चैताभ्यां योजनानामतिक्रमे ।
दशानां मेखलैकैका वलति पार्श्वयोः द्वयोः ॥६५॥

इन दोनों श्रेणियों से दस-दस योजन ऊपर दोनों तरफ एक-एक मेखला है । (६५)

तत्र याम्योत्तराभिख्ये श्रेण्यो गिरिसमायते ।
वसन्त्यत्र शक्रसत्कलोकपालाभियोगिनः ॥६६॥

उत्तर श्रेणि और दक्षिण श्रेणि की लम्बाई पर्वत के समान है । और वहां इन्द्र के लोकपाल देवों के सेवक रहते हैं । (६६)

तथाहुः क्षमाश्रमण पादा :-

विद्याहर सेढी ओ उड्डं गं तूण जो अणे दसओ ।
दसजो अण पिहुलाए सेढी ओ सक्करायस्स ॥६७॥
सोमजम काइ याणं देवाणं वरूणकाइयाणं च ।
वेसमण काइयाणं देवाणं अभियोगाणं ॥६८॥

इस विषय में पूज्य क्षमा श्रमण कहते हैं कि - विद्याधरों की श्रेणियों से

दस योजन ऊपर जाने के बाद दो श्रेणियां आती हैं, वह शक्रेन्द्र को सोम, यम, वरुण और वैश्रमण-कुबेर नामक लोकपाल के अभियोगी देवताओं की है ।
(६७-६८)

बहूनि भवनान्यत्र तेषां पल्योपमायुषाम् ।

बहिर्वृत्तानि रत्नानि चतुरस्राणिचान्तरे ॥६९॥

उन देवों का पल्योपम का आयुष्य होता है, और वहां उनके रत्नमय बहुत भवन होते हैं और वह बाहर से गोल और अन्दर से चतुष्कोण होता है । (६९)

वेदिकावनराजिन्योः श्रेण्योः व्यासोऽनयोः भवेत् ।

योजनानि दशैतावान् वैताढ्यस्यापि तत्र सः ॥७०॥

इन दोनों श्रेणियों में भी पद्मवेदिका और सुन्दर बाग बगीचे आए हुए हैं, इसका व्यास दस योजन का है और उस स्थान से वैताढ्य पर्वत का भी उतना ही व्यास है । (७०)

दश योजन तुंगस्थ त्रिंशद्योजन विस्तृतेः ।

खण्ड स्यास्य द्वितीयस्य गणितं प्रतरात्मकम् ॥७१॥

तिस्त्रो लक्षाः सहस्राणि सप्त त्रीणि शतानि च ।

तथा चतुरशीतिश्च कलाः एकादशाधिकाः ॥७२॥

वैताढ्य पर्वत का दूसरा खंड दस योजन ऊंचा और तीस योजन चौड़ा है । इसका 'प्रतर' रूप गणित तीन लाख सात हजार, तीन सौ चौरासी योजन और ग्यारह कला है । (७१-७२)

अत्र च सर्वत्र यथोपयोगं योजनपदमनुक्तमपि अध्याहार्यम् ।

और यहाँ सर्व स्थान पर यथायोग्य योजन पद न कहा हो फिर भी अध्याहार अर्थात् तर्क-वितर्क कथन करना चाहिए ।

तथा खण्डे द्वितीयस्मिन् निश्चितं सर्वतो घनम् ।

त्रिंशल्लक्षा योजनानां सहस्राणि त्रिसप्ततिः ॥७३॥

शतान्यष्टौ पञ्चचत्वारिंशदाढयानिचाधिकाः ।

कलाः पञ्च दशत्युक्तं व्यक्तं युक्ति विशारदैः ॥७४॥

और दूसरे खण्ड का घन गणित तीस लाख तिहत्तर हजार आठ सौ पैंतालीस योजन और पंद्रह कला युक्ति विशारदों ने कहा है । (७३-७४)

अभियोगिश्रेणितश्च योजनानामतिक्रमे ।

पंचानामूर्ध्वमत्रास्योपरिभागी विराजते ॥७५॥

यह पूर्वोक्त अभियोगी - सेवक देवों की श्रेणि से ऊँचे पांच योजन के बाद इसका ऊपर का भाग आता है । (७५)

नाना रत्नालंकृतस्य दश योजनविस्तृतेः ।

मध्ये पद्मवेदिकास्य तस्याश्चोभयतो वने ॥७६॥

यह भाग विविध प्रकार के रत्नों से मनोहर है, और दस योजन विस्तार वाला है । इसके मध्य में पद्मवेदिका है और इसके दोनो तरफ बगीचे आए हैं । (७६)

तयोः क्रीडा पर्वतेषु कदल्यादि गृहेषु च ।

दीर्घकादिषु च स्वैरं क्रीडान्ति व्यनतरामराः ॥७७॥

इन दोनों बगीचे में क्रीडापर्वत है उसके ऊपर कदली गृह में तथा वाग आदि में व्यन्तरदेव अपनी इच्छानुसार क्रीडा करते हैं । (७७)

पंच योजनतुंगस्य दश योजन विस्तृतेः ।

खण्डस्यास्य तृतीयस्य प्रतरं परिकीर्तितम् ॥७८॥

एकं लक्षं द्वे सहस्रं चतुःशत्येकषष्टि युक् ।

कला दशाथ गणितं ब्रवीम्यस्मिन् धनात्यकम् ॥७९॥

पंचलक्षा योजनानां सहस्रा द्वादशापरं ।

सप्तातिरेका त्रिशती कलाश्च द्वादशाधिकाः ॥८०॥

वैताढ्य का तीसरा खण्ड, जो पांच योजन ऊँचा और दस योजन चौड़ा है । इसका प्रतर गणित एक लाख दो हजार, चार सौ इकसठ योजन और दस कला का कहा है । इसका घन गणित पांच लाख बारह हजार, तीन सौ सात योजन और बारह कला का कहा है । (७८-८०)

त्रयाणमपि खण्डानां घनेष्वेकीकृतेषु च ।

वैताढ्यस्याखिलस्यापि जायते गणितं धनम् ॥८१॥

तच्चैदम् - सप्तशीतिश्च लक्षाणि द्विनवतिः शतान्यपि ।

एकोनत्रिंशदाढयानि कलाश्चतुर्दशाधिकाः ॥८२॥

इस तीन खंडों का गणित घनमाप एकत्रित करते सम्पूर्ण वैताढ्य का घन

माप होता है । वह इस प्रकार सत्तासी लाख नौ हजार दो सौ उन्तीस योजन और चौदह कला कहा है । (८१-८२)

सिद्धायतनं कूटं दक्षिणभरतार्द्धं नामधेयं च ।

खण्डप्रपातकूटं तूर्यं तनमाणि भद्राख्यम् ॥८३॥

वैताढ्याख्यं पंचममथ षष्ठं पूर्णभद्रं संज्ञं च ।

भवति तमिस्रगुहं चोत्तरभरतार्द्धं च वैश्रमणम् ॥८४॥

वैताढ्ये नव कूटान्येवं ज्ञेयानि तत्र पूर्वाब्धेः ।

स विधे सिद्धायतनं ततः क्रमात् प्रत्यगखिलानि ॥८५॥ विशेषांक ।

वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट आए हैं वह इस प्रकार १- सिद्धायतन, २- दक्षिणभरतार्द्ध, ३- खंड प्रपात, ४- मणि भद्र, ५- वैताढ्य, ६- पूर्णभद्र, ७- तमिस्रगुह, ८- उत्तरभरतार्द्ध और ९- वैश्रमण । उसमें जो पहला सिद्धायतन कूट है, वह पूर्व समुद्र के पास आया है ।

कूटान्येतानि सक्रोशान्यूच्चत्वे योजनानि षट् ।

तावन्येव मूलभूमौ विष्कम्भयामतोऽपि च ॥८६॥

मध्ये देशोनानि पंच योजनानि शिरस्यथ ।

साधिकानि त्रीण्युदस्तगोपुच्छसंस्थितान्यतः ॥८७॥ युगं ।

नौ शिखरो की ऊँचाई छः योजन और एक कोस है । उसकी लम्बाई-चौड़ाई मूल में, आगे जो ऊँचाई है उतनी ही है । मध्य में पांच योजन से कुछ कम ओर ऊपर तीन योजन से कुछ विशेष है । इस तरह होने से उनका आकार गाय ने पूँछ ऊँचा किया हो इस प्रकार का है (८६-८७)

परिक्षेपाः मूलमध्यशिरस्सूनानि विंशतिः ।

तथोनानि पंचदश साग्राणि नव च क्रमात् ॥८८॥

इनका परिक्षेप अर्थात् घेराव, मूल आगे बीस योजन से कुछ कम है, मध्य में पंद्रह योजन से कुछ कम है, और ऊपर नौ योजन से कुछ अधिक है । (८८)

अथस्ताच्छिखराद्यावदागतं तत्कलाद्धितम् ।

कूटोत्सेधाद्धैयुक्कूटे व्यासो यथेप्सितास्पदे ॥८९॥

नीचे से चढ़ते अथवा ऊपर से उतरते यदि किसी स्थान का व्यास निकालना

हो तो, जितने चढ़े या उतरे हो, उसका आधा करके इसमें शिखर की आधी उंचाई मिलाकर उसका जोड़ जो आता है वह उस स्थान का व्यास होता है । (८६)

तथाहि - सक्रोशाद्धं योजनानां त्रयेऽतीते शिरोऽग्रतः ।

यदा जिज्ञास्यतेऽभीषु व्यासस्तदा तदद्धयेत् ॥६०॥

स्युः षट्कोशाः सपादांस्ते कूटोत्सेधाद्धं संयुताः ।

सपादक्रोशहीनैवं संजाता पंच योजनो ॥६१॥

मध्य प्रदेशे विष्कम्भ एतावानेषु जायते ।

एवं हिमवता दीनां सर्वकूटेषु भावना ॥६२॥

जैसे कि ऊपर से तीन योजन में का आधा कोस नीचे उतरते उस स्थान का व्यास निकालना हो तो वह ३ यो० ०॥ कोस / २ + शिखर की उच्चवाई/२ होती है, अर्थात् १॥ योजन, ०१ कोश + ३ योजन ०॥ कोश होता है = ४॥ मा योजन और ०॥ (पोना) कोस होता है अर्थात् १। (सवा) कोस कम होता है । यह शिखर के मध्य भाग के आगे का व्यास निकला है । हिमवान आदि पर्वतों के शिखर के सम्बन्ध में भी इसी तरह ही करना चाहिए । (६०-६२)

सिद्धायतन कूटस्योपरि रम्यं विराजते ।

सत्सिद्धायतनं मौलौ किरीटमिव भूषतेः ॥६३॥

सिद्धायतन नामक कूट के ऊपर एक सिद्ध मन्दिर आया है, वह मानो किसी राजा के मस्तक पर स्थित मुकुट के समान शोभता है । (६३)

तदत्र कनक मणिमयमेकक्रोशायतं तदद्धत तम ।

चापशल्लानि चतुर्दश चत्वारिशानि चोत्तुंगम् ॥६४॥

वह कनक मय और मणिमय है, एक कोस लम्बा आधा कोश चौड़ा और चौदह सौ चालीस धनुष्य ऊँचा है । (६४)

पूर्वोत्तरादक्षिणासु द्वारमेकैकमत्र तत् ।

धनुः पंचशतोत्तुंगु तदद्धं किल विस्तृतम् ॥६५॥

पूर्व, उत्तर और दक्षिण इन तीनों दिशा में उसे एक-एक द्वार होता है वह पांच सौ धनुष्य ऊँचा और दो सौ पचास धनुष्य चौड़ा है । (६५)

पंच धनुः शतविष्कम्भायामा स्यात्तद्धंवाहत्या ।

मणि पीठिका तदन्तर्देवच्छन्दक उपरि चास्याः ॥६६॥

उस मंदिर में पांच सौ धनुष्य विस्तृत और अढाई सौ धनुष्य चौड़ी एक मणि पीठिका है और उसके ऊपर एक देवच्छंदक है । (६६)

पंचचापशतान्येष विष्कम्भायामतो मतः ।

तान्येव सातिरेकाणि तुंगत्वेन प्ररूपितः ॥६७॥

उस देवच्छंदक की लंबाई चौड़ाई पांच सौ धनुष्य है, एवं ऊँचाई में इससे कुछ अधिक कहा है । (६७)

अष्टोत्तरं शतं नित्य प्रतिमास्तत्रचार्यताम् ।

उत्सेधांगुलनिष्पन्नधनुः पंचशतोच्छिताः ॥६८॥

उसमें श्री अरिहंत परमात्मा की एक सौ आठ शाश्वत प्रतिमाएं हैं । वे उत्सेध अंगुल अनुसार पांच सौ धनुष्य ऊँची है । (६८)

एकैकस्यां दिशि सप्तविंशतिः सप्तविंशतिः ।

एवं चतुर्दिशं ताः स्युः नाम्ना च ऋषभादयः ॥६९॥

ये प्रतिमाएं प्रत्येक दिशा में सत्ताईस-सत्ताईस हैं और इनके ऋषभ आदि चार शाश्वत नाम हैं । (६९)

तासां च जिनमूर्तीनामकरत्नमया नखाः ।

अन्तर्लोहिताक्षरत्नप्रतिसेकमनोहराः ॥१००॥

श्री जिनेश्वर भगवन्त की उन मूर्तियों के नखून अंक रत्नमय हैं, और उसमें लाल-रत्नो की अक्ष छटा होने से वह बहुत मनोहर लगती है । (१००)

पाणिपादतलानि च जिह्वा श्री वत्सचूचुकम् ।

तालूनि च तपनीयमयानि रिष्टरत्नजाः ॥१०१॥

श्मश्रुमोम राजवश्च ओष्ठः विद्रुम निर्मिताः ।

नासा अन्तर्लोहिताक्षनिषेकास्तपनीयताः ॥१०२॥ युग्मं ॥

उनके हाथ पैर के तलिया, जीभ, श्रीवत्स स्तनाग्र और तालवां सुवर्णमय हैं दाढ़ी और मूछ के बाल रिष्टरत्नो के हैं, ओष्ठ विद्रुममय है और नासिका लाल रत्नमय की निशानी काले सुवर्ण की है । (१०१-१०२)

लोहिताक्ष प्रति सेकान्यक्षीणं कमयानि च ।

तारका अक्षि पक्ष्माणि भुवश्च रिष्टरत्नजा ॥१०३॥

इनके चक्षु लाल रत्न की चिन्ह वाले हैं और कीकी आंख के बरोनी और भौंहें रिष्ट रत्नमय की है । (१०३)

ललाटपट्टश्रवणकपोलं कनकोद्भवम् ।

केश भूमिस्तपनीयमथी केशाश्च रिष्ट जाः ॥१०४॥

इनका ललाट पट्ट, श्रवण और कपोल सुवर्णमय है । मस्तक भी सुवर्णमय है और केश रिष्ट रत्नमय है । (१०४)

वज्रजाः शीर्षं घटिकास्तथा कनक निर्मिताः ।

ग्रीवाबाहुपादजंघा गुल्फोरूतनुमयष्ट यः ॥१०५॥

इनका शीर्ष घटिका वज्रमय है । ग्रीवा, हस्त, चरण, जंघा, टखना तथा शरीर का पूरा हिस्सा सारा सुवर्णमय है । (१०५)

नन्वेतानि भावजिनप्रतिरूपाणि तेषु च ।

उचितं श्मश्रुकूर्चादि श्रामण्यानुचितं कथम् ॥१०६॥

यहां प्रश्न करते हैं कि ये भावजिन की प्रतिमा है । इनको श्रमणावस्था में अनुचित दाढ़ी, मूँछ उचित किस तरह कह सकते हैं ? (१०६)

तदुक्तं श्री तपगच्छ नायक श्री देवेन्द्र सूरि शिष्य श्री धर्म घोष सूरिभिः
भाष्यवृत्तौ । भगवतोऽपगत केश शीर्षं मुख निरीक्षणेन श्रामण्यावस्था सुज्ञाता
एवं इति ॥

क्योंकि तपगच्छाधिराज आचार्य श्री. देवेन्द्र सूरिश्वर जी के शिष्य श्री धर्मघोष सूरि जी ने भाष्य की वृत्ति में कहा है कि भगवान का मुख केश रहित मस्तक देखने से उनकी श्रमणावस्था स्पष्ट दिखाई देती है ।

अत्रोच्यते - भावाहंतामपि श्मश्रुकूर्चादीनाम संभवः ।

न सर्वथा किन्तु तादृग्दिव्यातिशयसंभवात् ॥१०७॥

स्यादवस्थितता तेषां श्रमण्यग्रहणादनु ।

पुरुषत्वप्रतिपत्तिः सौन्दर्यं चेत्थमेव हि ॥१०८॥

इसका उत्तर देते हैं - भाव जिनेश्वर की दाढ़ी मूँछ आदि का सर्वथा असंभव नहीं है, परन्तु उनके इस प्रकार की अवस्थिति के अंगीकार के बाद किसी ऐसे दिव्य अतिशय के कारण होता है, और इसके कारण से ही पुरुष की प्रतिपत्ति होती है, और इसमें सौन्दर्य भी लगता है । (१०७-१०८)

यदुक्तं श्री समवायांगे । अवठियके समंसुरोमण हे इति ॥ औप पाति के ऽप्युक्तम् अवद्विय सुविभक्त चित्त मंसू ॥

इस सम्बन्ध श्री समवाय सूत्र में भी कहा है कि - 'जिसके केश दाढ़ी, मूछ, रोम और नाखून से युक्त प्रतिमा है ।' उववाई सूत्र में भी इसी तरह कहा है कि 'श्री जिन प्रतिमा की दाढ़ी शोभायमान दिखती है ।'

एवं च - तासां भाव जिनाधीश प्रतिरूपतया ततः ।

शाश्वताहर्तप्रतिमानां श्मश्रुकूर्चादि युक्तिमत् ॥१०६॥

इस कारण से श्री जिनेश्वर भगवन्त की उन शाश्वत प्रतिमाओं के जिन रूपता के कारण दाढ़ी मूछ मस्तक के केश आदि उचित है । (१०६)

भाष्ये त्वकेश शीर्षास्थ्या या श्रामण्य दशोदिता ।

साऽवर्द्धिष्णुतयाल्पवात्तदभावाविवक्षया ॥११०॥

भाष्य में केश रहित मस्तक युक्त मुखवाली श्रमणावस्था कही है, वह दाढ़ी मूछ आदि बढ़ने का कारण न होने से अत्यन्त अल्प होने से उसका अभाव मान कर ऐसा कहा है । (११०) दीक्षा के समय में पंच मुष्टि लोच करने के बाद केश न हो, परन्तु बाद में उचित मात्रा में बढ़कर अवस्थित रहते हैं इस अपेक्षा से दोनो वस्तु घट सकती है ।

एकैकस्याः प्रतिमायाः पृष्ठतश्छत्रधारिणी ।

द्वे द्वे चामर धारिण्यौ पार्श्वतः पुरतः पुनः ॥१११॥

यक्षभूत कुंड धार प्रतिमानां द्वय द्वयम् ।

विनयावनतं पादपतितं घटितांजलि ॥११२॥ युग्मं ॥

इन प्रत्येक प्रतिमाओं के पीछे एक छत्र धारिणी और आस-पास दो-दो चमर धारण करने वाली प्रतिमा रही है, और सन्मुख विनयपूर्वक नमन कर हाथ जोड़कर चरण स्पर्श करते दो-दो यक्ष भूत तथा कुन्ड धारियों की प्रतिमा रही है । (१११-११२)

यथा देवच्छन्दकेऽस्मिन् घंटा धूप कडुच्छकाः ।

तथा चन्दन कुम्भाद्याः प्रत्येकं शतमष्टयुक् ॥११३॥

वहा प्रत्येक जिन प्रतिमा के आगे एक घंटा और एक धुपदान तथा चंदन का कुंभ आदि भी रहा है । (११३)

तथाहि -

चंदण कलसाभिंंगारगा आयसंगा य धाला य ।

पाई ओ सुपइद्दा मण गुलीया वाय करगा य ॥११४॥

चिता रयण करंड गह यगयनर कंठगा य चंगेरी ।

पडलग सीहा सण छत्त चामरा समुग्गय झया य ॥११५॥

तथा में नीचे की वस्तुएं समझना - चंदन के कलश, उपरांत टोटीदार लुटिया (कलश), दर्पण, थाल, रकेबी सुप्रतिष्ठ (डब्बा) मनोगुली, बीजणा रत्नजडित टोकरी, अश्व हस्ती तथा मनुष्य की मुखाकृति, चंगेरी पट्टे, सिंहासन छत्र, चामर, डब्बे तथा ध्वजा । (११४-११५)

तथा - खंडप्रपात कूटे स्यान्तमालः सुरो विभुः ।

सममे कृतमालाश्च स्यात्तमिखगुहाभिधे ॥११६॥

वैताढ्य पर्वत के नौ शिखर में से प्रथम सिद्धायतन शिखर सम्बन्धी सर्व बातों का वर्णन किया । अब इसके शेष शिखरों के विषय में कहते हैं - तीसरे खंड प्रपात नाम के शिखर का नृतमाल नामक देव अधिपति है और सातवा तमिख गुहा नामक शिखर का कृतमाल नामक देव अधिपति है । (११६)

षण्णां च शेष कूटानां कूट नाम समाभिधाः ।

सुराः कुर्वन्त्याधिपत्यं सर्वे पल्योपमायुषः ॥११७॥

शेष छह शिखरों का उस-उस शिखर के समान नाम वाले देव अधिपति है । ये सब देव एक पल्योपम के आयुष्य वाले होते हैं । (११७)

एतेषां च परीवारो देवी सामानिका दिकः ।

तत्तदासनरीतिश्च सर्वं विजयदेववत् ॥११८॥

इन देवों की देवियां सामानिक देव आदि परिवार तथा इनके आसन की अवस्थिति आदि सब विजयदेव के समान समझ लेना । (११८)

पूर्णभद्रं माणिभद्रं कूटं वैताढ्यनामकम् ।

त्रीण्येतानि स्वर्णजानि रत्नि कान्यपराणि षट् ॥११९॥

पूर्णभद्र मणिभद्र और वैताढ्य नामक तीन शिखर सुवर्णमय हैं और शेष छः रत्नमय हैं । (११९)

उपर्येषामथैकैकः स्यात्प्रासादावतंसकः ।

रत्निकः क्रोशतुंगोऽर्द्धकोशं च विस्तृतायतः ॥१२०॥

प्रत्येक शिखर पर एक महान रत्नमय प्रासाद आया है । उसकी ऊँचाई एक कोस और लम्बाई-चौड़ाई आधे कोश है । (१२०)

इदं जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति बृहत् क्षेत्र समासभि प्रापेण ।

“श्री उमास्वाति कृते जम्बूद्वीप समासे तु अमी प्रासादावतंस काः क्रोश दैर्घ्यविस्ताराः किं चिन्मूनतदुच्छ्रया उक्तासन्ति ॥”

“यह अभिप्राय जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका तथा बृहत् क्षेत्र समास के आधार पर कहा है । परन्तु श्री उमा स्वाति वाचक कृत जम्बूद्वीप समास में इस तरह कहा है कि इन प्रासाद की लम्बाई-चौड़ाई एक कोश की है और ऊँचाई एक कोस से कुछ कम है ।”

तस्य प्रासादस्य मध्ये महती मणि पीठिका ।

धनुःपञ्चाशतायाम व्यासा तदर्द्धमेदुरा ॥१२१॥

प्रत्येक प्रासाद के मध्य भाग में एक मोटी मणि पीठिका है, उसकी लम्बाई-चौड़ाई पांच सौ धनुष्य और मोटाई अर्द्धाई सौ धनुष्य की है । (१२१)

उपर्यस्या रत्नमयं सिंहासनमनुत्तरम् ।

तत्तत्कूटस्वामियोग्यं परिवारासनैर्वृतम् ॥१२२॥

प्रत्येक मणि पीठिका पर उस शिखर के स्वामी के योग्य और उत्तम परिवार के आसनो से घेरा हुआ सिंहासन आया है । (१२२)

यदा स्व स्व राजधान्याः कूटानां स्वामिनः सुराः ।

अत्रायान्ति तदैतस्मिन् प्रासादे सुखमासते ॥१२३॥

जब जब उस शिखर के स्वामी देव अपनी राजधानी में से यहां आते हैं तब वे इस प्रासाद में आनंदमय रहते हैं । (१२३)

मेरोर्दक्षिणतोऽसंख्य द्वीपाब्धीनामतिक्रमे ।

जम्बू द्वीपेऽपरत्रैषां राजधान्यो यथायथम् ॥१२४॥

इन देवों की राजधानियां मेरुपर्वत से दक्षिण में असंख्य द्वीप समुद्रों को छोड़कर अन्य जम्बूद्वीप में आयी हैं । (१२४)

वैताढ्यस्य पर्वतस्य द्वे गुहे भवतः क्रमात् ।

खण्डप्रपाता प्राच्येशे तमिस्रा परतः पुनः ॥१२५॥

वैताढ्य पर्वत के पूर्व दिशा के अन्तिम विभाग में खंड प्रपाता नामक और पश्चिम के आखिर विभाग में तमिस्रा नामक दो गुफा है । (१२५)

उन्नते योजनान्यष्टौ तानि द्वादश विस्तृते ।

नित्यान्धकार गहने पंचाशद्योजनायते ॥१२६॥

दोनों गुफा में सदाकाल अन्धकार होता है और वे आठ योजन ऊँची बारह योजन चौड़ी और पचास योजन लम्बी है । (१२६)

दक्षिणस्यामुदीच्यां च द्वारमेकैकमेतयोः ।

उच्छ्रितं योजनान्यष्टौ तानि चत्वारि विस्तृतम् ॥१२७॥

प्रत्येक गुफा के दक्षिण और उत्तर दिशाओं में दो द्वार हैं, प्रत्येक द्वार चार योजन ऊँचा और चार योजन चौड़ा है । (१२७)

नृतमालकृतमालावेकपल्यायुषी सुरी ।

महर्द्धिकौ विजयवदेतयोः स्वामिनौ क्रमात् ॥१२८॥

इस गुफा के नृतमाल और कृतमाल नामक देव अधिपति हैं, उनकी आयु स्थिति एक पल्लोपम की है और समृद्धि विजयदेव के समान है । (१२८)

प्रतिद्वारं द्वौ कपाटौ वायिकौ घटितौ सदा ।

अष्टावष्टौ योजनानि तुंगौ द्वे द्वे च विस्तृतौ ॥१२९॥

प्रत्येक द्वार में दो वज्र से बने हुए दरवाजे (किवाड़) हैं, जो आठ योजन उंचे और दो योजन चौड़े हैं । (१२९)

यदेह चक्री भरतोत्तर भागंजिगीषति ।

सेनान्या रत्नदंडेनाहतौ तदासपर्वतः ॥१३०॥

जब यहां कोई चक्रवर्ती भरतक्षेत्र के उत्तर विभाग को जीतने निकलता है तब इसके सेनापति के दंड रत्न के प्रहार से किवाड़ उखड़ जाते हैं । (१३०)

उद्धाटितस्थैकैस्य पश्चाद् भागोऽस्ति तोडुकः ।

चतुर्योजन विष्कम्भायामोऽवष्टम्भ एतयोः ॥१३१॥

ऐसे एक किवाड़ के पीछे एक-चार योजन लम्बा चौड़ा तोडक होता है जो किवाड़ को सहायक रूप होता है । (१३१)

हस्ति रत्नं समारूढ्य कुम्भस्थलस्फुरन्मणिः ।
चक्री तन्दुद्यौतिताध्वा तमिस्रां प्रविशेत् गुहाम् ॥१३२॥

हस्ति रत्न पर आरूढ होकर चक्रवर्ती उस गुफा में प्रवेश करता है । तब उस हस्ति के कुम्भस्थल पर एक अथ्यन्त तेजस्वी मणि रखकर उस अन्धकारी गुफा को प्रकाशित करते हैं । (१३२)

तत्र प्रविश्य पाश्चान्य सैन्य प्रकाश हेतवे ।
रत्नेन काकिणी नाम्ना खटीपिंडावलेखना ॥१३३॥

उर्ध्वाधो योजनान्यष्टौ तिर्यक् द्वादश योजनीम् ।

प्रकाशयत् योजनं चैकैकं दक्षिण वामयोः ॥१३४॥ युग्मं ।

इस तरह प्रवेश करके पीछे आते सैन्य को प्रकाश हो, इसके लिए मानो खड़ी के टुकड़े के समान काकिणी रत्न से गुफा में दोनो और दीवार पर मंडलाकार आलेख - मानचित्र करता जाता है । उसका उंचे से नीचे तक आठ योजन में, तिरछा बारह योजन में, और दाहिने और बायी एक-एक योजन में प्रकाश पड़ता है । (१३३-१३४)

आदिमं आदिमं योजनां मुक्त्वा प्रथमं मण्डलं लिखेत् ।

पञ्चाप शतायामविष्कम्भं भानु सन्निभम् ॥१३५॥

पहला मंडल प्रथम एक योजन से पूरा होता है । वहां आलेख होता है जो मंडल पांच सौ धनुष्य लम्बा चौड़ा है, और वह मानो सूर्य के समान प्रकाशित होता है । (१३५)

ततोऽपि योजनं मुक्त्वा द्वितीयं मण्डलं लिखेत् ।

इत्येवमुत्तर द्वारेऽशेषन्त्ये योजनेऽन्तिमम् ॥१३६॥

इसी ही तरह, वहां से दूसरा योजन पूरा हो । वहां दूसरे मंडल का आलेख होता है । इस तरह उत्तर की ओर के द्वार में शेष अन्तिम योजन में आखिर मंडलकार का आलेख-मानचित्र होता है । (१३६)

एवं च - स्यादेकं दक्षिणत्या प्राक्कपाटो परि मण्डलम् ।

द्वे तोडुके त्रिचत्वारिंशत्प्राग् भित्तावनुक्रमात् ॥१३७॥

इस तरह आलेख करते दक्षिण की ओर प्रथम किवाड़ पर एक मंडल, तोडुक पर दो मंडल और फिर अनुक्रम से पूर्व की दीवार पर तैतालीस मंडल होते हैं । (१३७)

ततो द्वे औत्तराह प्राक् तोडुकेऽन्यं च मण्डलम् ।

उदीच्यप्राक्कपाटेयं पश्चिमायामपि क्रमः ॥१३८॥

फिर उत्तर की ओर के प्रथम तोडुक पर दो और उत्तर तरफ के प्रथम किवाड़ पर अन्तिम मंडल होता है । फिर पश्चिम दिशा में भी इसी क्रम अनुसार सारा होता है । (१३८)

एवमेकोन पंचाशत् पूर्वभित्ती भवन्ति वै ।

तावन्य परभित्ती तत्तुल्यानि संमुखानि च ॥१३९॥

इसी तरह पूर्व की ओर दीवार पर उनचास मंडल होते हैं, और इसके सम्मुख पश्चिम की ओर से दीवार पर भी उतने ही होते हैं । (१३९)

अथं च मलय गिरिकृत क्षेत्र विचार बृहद् वृत्याद्यभिप्रायः ॥

“आवश्यक बृहद् वृत्ति टीप्पनक प्रवचन सारों द्वार बृहद् वृत्याद्य भि प्रायस्तु अयम् । गुहायां प्रविशन् भरतः पाश्चात्यपान्थजन प्रकाश करणाय दक्षिण द्वारे पूर्व दिक्क पाटे प्रथमं योजनं मुक्त्वा प्रथमं मण्डलमा लिखति । ततो गोमूत्रि का न्यायेन उत्तरतः पश्चिम दिक्कपाट तोडुके तृतीय योजना दौ द्वितीय मण्डलमा लिखति । ततः तेनैव न्यायेन पूर्व दिक्कपाट तोडुके चतुर्थ योजनादौ तृतीयम् । ततः पश्चिम दिग्भित्तौ पंचम योजनादौ चतुर्थकम् । ततः पूर्वदिग्भित्तौ षष्ठयो जनादौ पंचमम् । यावदष्ट चत्वारिंशत्तम मुत्तर द्वार सत्कपश्चिम दिक्क पाटे प्रथम योजना दौ एकोनपंचाशत्तमं चोत्तर दिग्द्वार सत्क पूर्व दिक्क पाटे द्वितीययो जना दौ आलिखति ॥ एवं एकस्या भित्तौ पंचा विंशतिरपरस्यां च चतुर्विंशतिः इति समग्रेण एकोन पंचाशत् मण्डलानि भवन्ति इति ॥”

यह अभिप्राय मलय गिरि रचित 'क्षेत्र विचार की बृहद् टीक के आधार पर कहा गया है । आवश्यक बृहद् वृत्ति की टीप्पणी व प्रवचन सारोद्वार वृत्ति का अभिप्राय यह है, कि - गुफा में प्रवेश करते चक्रवर्ती के पीछे आने वाले को प्रकाश हो, इसके लिए प्रथम योजन पूरा हो । वहां दक्षिण दिशा के द्वार में पूर्व दिशा के किवाड़ में प्रथम मंडलकार मानचित्र करता है, फिर गोमूत्रिका न्याय से उत्तर दिशा के पश्चिम दिशा वाले किवाड़ के टोडाल पर तीसरे योजन में दूसरा मंडल आलेख-मानचित्र करते हैं, फिर उसी न्याय से पूर्व दिशा के तोडुक पर चौथा योजन में तीसरा मंडल का आलेखन है, फिर पश्चिम दिशा की दीवार में पांचवे योजन में

चौथे मंडल का आलेखन-चित्रन होता है । उसके बाद पूर्व दिशा की दीवार में छठे योजन में पांचवे मंडल का आलेखन है, इसी तरह उत्तर दिशा के द्वार के पश्चिम दिशा के किवाड़ पर पहले योजन में अड़तालीसवां मंडल, और उत्तर की ओर द्वार के पूर्व दिशा के किवाड़ पर दूसरे योजन में उनचासवां मंडल आलेखन है एक दीवार पर पच्चीस और उसके सन्मुख की दूसरी दीवार पर चौबीस ये समग्र उनचास मंडल होते हैं ।'

दक्षिणात्तोडुकात् सप्तदशभिः योजनैः पग ।

अस्त्युन्मग्नजला नाम नदी त्रि योजनातत ॥१४०॥

द्वादश योजनायामा पूर्वीभित्ति विनिर्गता ।

विभिद्य पश्चिमां भित्ति प्रविष्टा सिन्धु निम्नगाम् ॥१४१॥ युग्मं ॥

दक्षिण दिशा के तोडक से सत्तर योजन छोड़कर 'उन्मग्नजला' नाम की नदी आती है, वह तीन योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी है और वह पूर्व की तरफ की दीवार में निकल कर पश्चिम की दीवार को भेदन कर सिन्धु नदी में मिलती है । (१४०-१४१)

अस्यां पतति यत्किंचित् दूषत्काष्टनरादिक् ।

तत् सर्वम्भिराहत्य वहिः प्रक्षिप्यते स्थले ॥१४२॥

इस नदी का स्वभाव ऐसा है कि - इसमें पाषाण, लकड़ी या मनुष्य आदि जो भी कुछ गिरता है, उन सबको उस नदी का जल, बाहर जमीन पर फेंक देता है । (१४२)

ततः परं योजनयोर्द्वयोरतिक्रमे परा ।

स्यान्निमग्नजला नाम नदी त्रियोजनातता ॥१४३॥

द्वादश योजनायामा पूर्व भित्ति विनिर्गता ।

प्रत्यग् भित्तिं प्रविभिद्य सिन्धुं विशत्यसावधि ॥१४४॥

इसके दो योजन के बाद दूसरी 'निमग्न जला' नाम की नदी आती है, वह भी तीन योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी है, और पूर्व की ओर दीवार में से निकल कर पश्चिम तरफ की दीवार को भेदन कर सिन्धु नदी में मिलती है । (१४३-१४४)

अस्यां पतति यत्किं चतृण काष्ट नरादिकम् ।

अथो मज्जति तत्सर्वमीदृक् स्वभावमेनयोः ॥१४५॥

इस नदी का स्वभाव ऐसा है कि - तृण, काष्ठ अथवा मनुष्य आदि जो कोई भी इसमें गिरता है उन सब को अन्दर डुबा देता है । (१४५)

ततश्चोत्तरतः सप्तदशभिः योजनैः परः ।

चतुर्योजन विष्कम्भायाम उत्तरतोडुकः ॥१४६॥

वहां से उत्तर की ओर सत्रह योजन दूर पर चार योजन विस्तार वाला उत्तर तोडक आता है । (१४६)

ततश्च - उभाभ्यां द्वार भागाभ्यामित्येवं सर्व संख्यया ।

योजनैरेकविंशत्या नद्यौ स्यातां यथोदिते ॥१४७॥

अतः इस तरह दोनों द्वार से सर्व संख्या इक्कीस योजन के बाद पूर्वोक्त दोनो नदियां आयी है । (१४७)

अथ वार्द्धकिरत्नेन सद्यः सञ्जित पद्यया ।

नद्याबुभे समुन्नीर्य यावत् गच्छति चक्रभृत् ॥१४८॥

तावद्विना प्रयासेन कपाटावुत्तराश्रितौ ।

उद्घटेते स्वयमेव कृत कौंचाखौ स्यात् ॥१४९॥ युग्मं॥

यहां वार्द्ध की नामक रत्न द्वारा शीघ्र ही पुल खड़ा कर चक्रवर्ती इन नदियों को पार करता है उसी समय बिना प्रयास से उत्तर दिशा के दोनों किवाड़ कौंच पक्षी सदृश शब्द होते ही अपने आप खुल जाते हैं । (१४८-१४९)

निर्गत्य तेन द्वारेण विजित्योत्तर भारतम् ।

दर्याः खण्ड प्रपातायाः चक्री समीपमापतेत् ॥१५०॥

उस द्वार से निकलने के बाद उत्तर भारत को जीत कर चक्रवर्ती खण्ड प्रपाता गुफा के पास आता है । (१५०)

उत्तरद्वारमुद् घाटय सेनानी कृत यत्नतः ।

मण्डलान्यालिखन् प्राग्वत् चक्री विशति तां गुहाम् ॥१५१॥

वहां सेनापति के द्वारा प्रयत्न करने से उत्तर की ओर का द्वार खुल जाता है इससे उस गुफामें चक्रवर्ती पूर्व के समान प्रवेश करके मंडल आलेखन-चित्रण करते आगे बढ़ता है । (१५१)

पूर्वं निग्न सलिलां समुत्तरेत्ततः पराम् ।

तूर्णं वार्द्धकिरत्नेन कृतया हृद्यपद्यया ॥१५२॥

यहा भी बार्ध नामक रत्न से बने सुन्दर पुल की सहायता से प्रथम निमग्न जलानदी पार करते हैं, और फिर शीघ्र ऊन्मग्न नदी पार करते हैं । (१५२)

इमे मानादिभिः प्राग्बत् प्रत्यग्भिति विनिर्गते ।

प्राच्यभित्तिं किन्तु भित्त्वा प्राप्ते गंगामहा नदीम् ॥१५३॥

ये दोनों नदियों प्रमाण में पूर्वोक्त नदियों के समान है, परन्तु वे पश्चिम की दीवार में निकल कर पूर्व की दीवार को भेदन कर गंगा महा नदी में जाकर मिलती है । (१५३)

द्वारेण दाक्षिणात्येन स्वय मुद्घटितेन च ।

निर्गत्य कृत कृत्यः सन् चक्री निज पुरं विशेत् ॥१५४॥

उसके बाद अपने आप खुले हुए दक्षिण दिशा के द्वार से निकल कर कृतकृत्य बना चक्रवर्ती अपनी राजधानी में वापस आता है । (१५४)

स्याद्यावच्चक्रिणो राज्यं तावत्तिष्ठन्ति सन्ततम् ।

मंडलानि च पद्ये च गुहा मार्गे गतागते ॥१५५॥

जब तक चक्रवर्ती का राज्य होता है वहां तक गुफा के मार्ग में जाने आने के लिए वे प्रकाश मंडल और सेतु-पुल कायम रहते हैं । (१५५)

अयं प्रवचन सारोद्धार वृत्त्यभि प्रायः ।

त्रिषष्टी याजित चरित्रे तु ॥

यह बात हमने प्रवचन सारोद्धार के अभिप्राय अनुसार कही है । त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र के अजितनाथ के चरित्र में तो इस तरह लिखा है कि -

उद्घाटितं गुहा द्वारं गुहान्तर्मण्डलानि च ।

तावत्तान्यपि तिष्ठन्ति यावज्जीवति चक्रभृत् ॥१५६॥

जहां तक चक्रवर्ती जीवित है वहां तक गुफा के द्वार खुले रहते हैं और गुफा के अन्दर आलेखन किए मण्डल भी कायम रहते हैं । (१५६)

इतिउक्तम् -

द्वारात् खण्ड प्रपाताया याम्याद्याम्यदिशि ध्रुवम् ।

गंगा याः पश्चिमे कुले वसन्ति निधयो नव ॥१५७॥

इति दक्षिणार्धं भरतम् ॥

खण्ड प्रपाता गुफा के दक्षिण की ओर के द्वार से दक्षिण दिशा में गंगानदी के पश्चिम किनारे पर नौ निघान आए हैं । (१५७)

इस तरह दक्षिणार्ध धारण का वर्णन पूर्ण हुआ ।

उदीच्यामथ वैताढयात् हिमवद् गिरि सीमया ।

स्यादुत्तरभरताद्ध पर्यकासनसंस्थितम् ॥१५८॥

वैताढय पर्वत से उत्तर दिशा में उत्तर भरताद्ध आया है, इसकी सीमा हिमवंत पर्वत तक है और यह पर्यकासन में रहा है । (१५८)

अष्टात्रिंशो योजनाना द्वे शते त्रिकलाधिके ।

विष्कम्भतोऽथ बाहास्प्रत्येकं पार्श्वयोः द्वयोः ॥१५९॥

योजनानां शतान्यष्टादश द्विनवतिस्तथा ।

साद्धाः सप्त कलाः क्षेत्रफलमस्याथ कीर्त्यते ॥१६०॥

लक्षास्त्रिंशत् सहस्राणि द्वात्रिंशदथ चोपरि ।

शतान्यष्टौ योजनानामष्टा शीतिरथाधिका ॥१६१॥

कला द्वादश विकला एकादश प्रकीर्तिताः ।

उक्ता सामान्य भरतवत् शेषं तु शरादिकम् ॥१६२॥ कलापकम् ।

इसकी चौड़ाई दो सौ साढ़े तीस योजन और तीन कला है । इसके दोनों तरफ से आई प्रत्येक 'बाहा' अठारह सौ बयानवे योजन और साढ़े सात कला है, और इसका क्षेत्रफल तीस लाख बत्तीस हजार आठ सौ अट्ठाईस योजन बारह कला और ग्यारह विकला है । इसके शर आदि दक्षिणाद्ध भरत क्षेत्र में कह गये हैं, उस तरह सामान्य रूप से जानना । (१५९-१६२)

नितम्बस्य हिमवतो दाक्षिणात्यस्य सन्धिौ ।

क्षेत्रेऽस्मिन्नन्तरे गंगा सिन्धु प्रपात कुण्डयोः ॥१६३॥

गिरिः वृषभ कूटाख्यः उच्चत्वे नाष्ट योजनः ।

द्वे योजने भू नि मग्नः चारू गोपुच्छ संस्थितः ॥१६४॥ युग्मं ॥

इस क्षेत्र में हिमवंत पर्वत की दक्षिण दिशा की ओर की मेखला के पास गंगा में सिन्धु प्रपात कुंड के बीच वृषभ कूट नामक पर्वत है । वह आठ योजन उंचा है तथा दो योजन पृथ्वी के अन्दर निमग्न है, और यह सुन्दर गो पुच्छ के आकार वाला है । (१६३-१६४)

मूलेऽसौ योजनान्यष्टौ मध्य षट् योजनानि ।
चतुष्टयं योजनानां उपर्याय तद्विस्तृत ॥१६५॥

इसकी लम्बाई-चौड़ाई मूल में आठ योजन, मध्य में छः योजन और ऊपर चार योजन की है । (१६५)

पंच विंशतिरेवाष्टादशैव द्वादशापि च ।
साधिकानि परिक्षेपो मूले मध्ये च मूर्ध्नि च ॥१६६॥

इसका घेराव मूल में पच्चीस योजन, मध्य में अठारह हजार और ऊपर बारह योजन से कुछ विशेष है । (१६६)

द्वादशाष्ट च चत्वारि मूले मध्ये शिरस्यपि ।
योजनानि क्रमादस्य व्यासायामो मतान्तरे ॥१६७॥
सप्तत्रिंशत् क्रमात् पंच विंशतिः द्वादशापि च ।
साधिकानि परिक्षेपो मूले मध्ये तथोपरि ॥१६८॥

एक ऐसा भी मत है कि इसकी लम्बाई-चौड़ाई मूल में, मध्य में और ऊपर अनुक्रम से बारह, आठ और चार योजन का है इसका घेराव अनुक्रम से साढ़े तीस योजन, पच्चीस योजन और बारह योजन से कुछ अधिक है । (१६७-१६८)

इदं च - मतद्वयमपि जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे ॥
मतान्तरं ननु कथं श्रुतं सर्वज्ञमूलके ।
तुल्य कैवल्यभाजां यदेकमेवार्हतां मतम् ॥१६९॥

ये दोनों मत जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र के हैं । यहां प्रश्न करते हैं कि श्रुत तो सर्वज्ञ भाषित है, तो फिर इसमें मतान्तर क्यों है ? सर्व अर्हत् परमात्मा का केवलज्ञान एक समान होता है, अतः इनका मत भी एक ही होना चाहिए । (१६९)

अत्रोच्यते - दुर्भिक्षे स्कन्दिलाचार्यदेवर्द्धिगणिवारके ।
गणनाभावतः साधुसाध्वीनां विस्मृतं श्रुतम् ॥१७०॥

इसका उत्तर देते हैं कि - श्री स्कंदिल आचार्य और देवर्द्धिगण क्षमाश्रमण के समय में दुकाल के कारण साधु साध्वी के द्वारा स्वाध्याय-पठन पाठन न होने से श्रुतज्ञान विस्मृत हो गया था । (१७०)

ततः सुभिक्षे संजाते संघस्य मेलकोऽभवत् ।
वलभ्यां मथुरायां च सूत्रार्थं घटनाकृते ॥१७१॥

बलभ्यां संगते संघे देवर्द्धिगणिरग्रणीः ।

मथुरायां संगते च स्कन्दिलार्योऽग्रणीरभूत् ॥१७२॥

उसके बाद जब सुकाल हुआ, तब सूत्र और इसका अर्थ कम होने लग्ग उस समय उसे अखण्ड रखने के लिये वल्लभीपुर और मथुरा नगरी में संघ एकत्रित हुआ था । वल्लभी पुर में एकत्रित हुए संघ में मुख्य अग्रसर देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण थे और मथुरा में एकत्रित हुए संघ में मुख्य अग्रसर श्री स्कंदिल आचार्य थे । (१७१-१७२)

ततश्चवाचनाभेदस्तत्र जातः क्वचित् क्वचित् ।

विस्मृत स्मरणे भेदो जातु स्यादुभयोरपि ॥१७३॥

इस कारण से सूत्र पाठ में किसी-किसी जगह फेर फार हो गया होगा । क्योंकि विस्मृत हुआ, पुनः पुनः याद करने, दोनों में तफ़ावत- फर्क होने का संभव हो सकता है । (१७३)

तत्तैस्ततोऽर्वाचीनैश्च गीतार्थैः पाप भीरुभिः ।

मतद्वयं तुल्यतया कक्षीकृतमनिर्णयात् ॥१७४॥

इसलिए उन्होंने तथा उसके बाद पाप भीरु, अर्वाचीन गीतार्थ महापुरुषों ने, कुछ भी निर्णय न होने से दोनों मत सामान्य रूप में स्वीकार किये हैं । (१७४)

सत्यप्येवं साम्प्रतीना विसंवाद श्रुतस्थितम् ।

निर्णेतुमुत्सहन्ते ये ते ज्ञेया मातृशासिताः ॥१७५॥

इस तरह होने पर भी, अभी के जो लोग शास्त्र का वाद-विवाद आदि दूर करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं । वे अपनी माता को सीख-उपदेश देने के समान समझना चाहिए । (१७५)

“एवमेवोक्तं श्री मलयगिरिभिः ज्योतिष्करंड वृत्तौ ।”

अर्थात् पूज्यपाद आचार्य श्री मलय गिरि ने भी अपने ‘ज्योतिष्करंड’ ग्रन्थ की टीका में दोनों बातें स्वीकार की हैं ।

देशोनक्रोशतुंगोऽर्द्धक्रोशविस्तृत एव च ।

क्रोशायाम् उपर्वस्य प्रासादोऽतिमनोरमः ॥१७६॥

इस पर्वत पर एक सुन्दर प्रासाद है वह लगभग एक कोस उंचा, आधा कोस चौड़ा और एक कोस लम्बा है (१७६)

देवोऽत्र वृषभाभिख्य एक पत्न्योपम स्थितिः ।

महर्द्धिको विजयवत्तथास्य राजधान्यपि ॥१७७॥

इसके ऊपर वृषभ नामक देवता का निवास है । इस देव का एक पत्न्योपम का आयुष्य है । इसको विजयदेव समान महान समृद्धि है और इस की राजधानी भी उसके समान ही है । (१७७)

शैलोऽयं चित्रित इव चक्रिभिः जितभारतैः ।

काकिणीरत्नलिखितैः समन्तान्निजनामभिः ॥१७८॥

भरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त करने वाले चक्रवर्ती ने सर्वत्रः काकिणी रत्न से अपना नाम लिख कर मानो सम्पूर्ण पर्वत चित्रण किया हो इस तरह लगता है । (१७८)

नद्योऽष्टविंशतिरिह सहस्रा द्वयुत्तरा मताः ।

अमुष्य भरतक्षेत्रस्थोर्वीशस्यांगनाइव ॥१७९॥

इस क्षेत्र में भरत क्षेत्र रूपी राजा की रानियां समान, अट्टाईस हजार और दो नदियां आई है । (१७९)

अरकाश्च षडप्यत्र सुषमासुषमादयः ।

सदा विपरिवर्तन्ते नियोगिनं इवेशितुः ॥१८०॥

इति भरत क्षेत्रम् ॥

यहां राजा के अधिकारी समान सुषमा सुषमा आदि छः आरे सदा परिवर्तनशील होते हैं । (१८०)

इस तरह से भरत क्षेत्र का वर्णन सम्पूर्ण हुआ ।

अथोत्तरार्द्धं भरतपर्यन्त उत्तराश्रिते ।

जात्यस्वर्णमयो भाति हिमवान्नाम पर्वतः ॥१८१॥

इसके बाद उत्तरार्ध भरत - उत्तर के अंत में जातिवंत सुवर्णमय हिमवान् नामक पर्वत शोभायमान हो रहा है । (१८१)

स्पृशन् द्वाभ्यां निजान्तभ्यां पूर्वापरयोनिधि ।

योजनानां शत तुंगो भूमग्नः पंचविंशतिम् ॥१८२॥

इसके किनारे पूर्व समुद्र तक और दूसरे विभाग पश्चिम समुद्र तक लम्बे हैं। यह सौ योजन उंचा है, और पच्चीस योजन पृथ्वी में स्थिर रहा है । (१८२)

योजनानां दसशती द्विपंचाशत्समन्विता ।

कला द्वादश विष्कम्भः पर्वतस्यास्य कीर्तितः ॥१८३॥

इसकी चौड़ाई एक हजार बावन (१०५२) योजन तथा बारह कला, विष्कम्भ पर्वत की कही है । (१८३)

योजनानां पंचदश शतान्यथाष्टसप्ततिः ।

अष्टादश कलाश्चात्र शरः प्रोक्तो जितस्मैः ॥१८४॥

इस पर्वत का शर पंद्रह सौ अठहत्तर (१५७८) योजन और अठारह कला कहां है । (१८४)

योजनानां सहस्राणि चतुर्विंशतिरेव च ।

सद्वात्रिंशन्नवशती प्रत्यंवास्य कलान्द्युक्त ॥१८५॥

इस पर्वत की जीवा चौबीस हजार नौ सौ बत्तीस (२४६३२) योजन और आधा कला है । (१८५)

धनुःपृष्ठं योजनानां सहस्राः पंच विंशतिः ।

द्वे शतैत्रिंशद्द्रधिके चतस्रश्चाधिकाः कलाः ॥१८६॥

इसका धनुः पृष्ठ पचीस हजार दो सौ तीस (२५२३०) योजन एवं चार कला कहां है । (१८६)

योजनानां सहस्राणि पंच त्रीणि शतानि च ।

सान्द्रानिवाहैकैकस्याध्यर्द्धाः पंचदशांशकाः ॥१८७॥

इसकी प्रत्येक 'बाहा' पांच हजार तीन सौ पचास (५३५०) योजन और साढ़े पंद्रह कला है । (१८७)

कोटीद्वयं च लक्षाणि योजनानां चतुर्दश ।

षट् पंचाशत्सहस्राणि शतानि नव चोपरि ॥१८८॥

एकं सप्ततिरेवाष्टौ कलाश्च विकलादश ।

भूमौप्रतरगणितं निर्दिष्टं हिमवद्गिरेः ॥१८९॥ युग्मं ।

इस पर्वत की भूमि का प्रतर दो करोड़ चौदह लाख छप्पन हजार नौ सौ इकहत्तर (२,१४,५६,६७१) योजन, आठ कला और दस विकला, हिमगिरि पर्वत का है । (१८८-१८९)

कोटीनाद्देशते कोटयश्चतुर्दशाथ लक्षकाः ।

षट् पंचाशत् तथा सप्तनवतिश्च सहस्रकाः ॥१६०॥

एकं शतं चतुश्चत्वारिंश कलाश्च षोडश ।

विकला द्वादशेत्युक्तं शैलेऽस्मिन् सर्वताघनम् ॥१६१॥

इस पर्वत का समग्र घन क्षेत्र दो सौ चौदह करोड़ छप्पन लाख सस्तानवें हजार एक सौ चवालीस (२१४,५६,६७१४४) योजन १६ सोलह कला और बारह विकला का है । (१६०-१६१)

वेदिका वन खण्डाभ्यां रम्योऽयं पार्श्वयोः द्वयोः ।

वेदिका वन खण्डानां सर्व मानादि पूर्ववत् ॥१६२॥

इसके दोनों ओर सुन्दर पञ्चवेदिका और बगीचा आया है, इन सब का प्रमाण आदि पूर्ववत् समझना । (१६२)

अत्रैकादश कूटानि विश्रुति प्रकट प्रभाम् ।

सिद्धायतनमुख्यानि प्राच्या आरभ्य पूर्ववत् ॥१६३॥

इस पर्वत पर पूर्व के समान ही पूर्व दिशा से आरंभ होकर सिद्धायतन आदि देदिप्यमान ग्यारह शिखर है । (१६३)

स्यात् सिद्धायतनं क्षुल्लहिमवन्मकं परम् ।

तृतीयं भरताभिख्यमिलाकूटं ततः परम् ॥१६४॥

गंगा वर्तन कूटं च श्री देवी कूट मित्यपि ।

रोहितांशासूरीकूटं सिन्ध्वावर्तन संज्ञकम् ॥१६५॥

सूरादेवीकूट मिति परं हैमवताभिधम् ।

एकादशं वैश्रमणंकूटानि हिमवद्गिरेः ॥१६६॥

वह इस प्रकार से है : पहला सिद्धायतन, दूसरा क्षुल्ल हिमवंत, तीसरा भरत, चौथा इला कूट, पांचवा गंगा वर्तन, छठा श्री देवी कूट, सातवां रोहितांशासूरी कूट, आठवां सिन्ध्वावर्तन, नौवा सूरादेवी कूट, दसवा हैमवत और ग्यारहवां वैश्रमण (१६४-१६६)

सर्वाण्यमूनिरत्नानि मूले च व्यासदैर्घ्यतः ।

योजनानां पंचशती तावदेवोच्छ्रितानि च ॥१६७॥

मध्ये च त्रिशतीं पंचसप्तत्याढ्यां शिरस्यथ ।

ततानि द्वे शते सार्द्धं गोपुच्छसंस्थितान्यतः ॥१६८॥ युग्मं ।

ये सारे शिखर रत्नमय हैं, वे गोपुच्छ के समान आकार वाले पांच सौ योजन उंचे, मूल में लम्बाई-चौड़ाई में पांच सौ योजन, मध्य में तीन सौ पचहत्तर योजन और ऊपर दो सौ पचास योजन है (१६७-१६८)

शताः पंचदशैकाशीत्यधिकाः किंचनाधिकाः ।

एकादश किंचिदूनषडशीतियुताः शंताः ॥१६९॥

शताः सप्तैकनवतिसंयुताः किंचिदूनकाः ।

परिक्षेपाः क्रमादेषु मूले मध्ये च मूर्धनि ॥२००॥ युग्मं ।

प्रत्येक शिखर का घेराव मूल के पास में पंद्रह सौ इकासी योजन से कुछ अधिक है, मध्य भाग में ग्यारह सौ सतासी योजन से कुछ कम है और ऊपर सात सौ इकानवे योजन से कुछ कम है । (१६९-२००)

सिद्धायतन कूटस्योपरि सिद्धालयो महान् ।

पंचाशद्योजनान्यायामतः स परिकीर्तितः ॥२०१॥

विष्कम्भतो योजनानि प्रज्ञप्तः पंचविंशतिः ।

षड्त्रिंशद्योजनान्यूच्चः त्रिद्वारो भास्वर प्रभः ॥२०२॥ युग्मं ।

सिद्धायतन नाम के प्रथम शिखर पर देदीप्यमान एक सिद्ध मंदिर है । वह पचास योजन लम्बा पच्चीस योजन चौड़ा और छत्तीस योजन उंचा है, और इसके तीन द्वार प्रकाशमान है । (२०१-२०२)

बिना प्रतीचीं त्रिदिशं द्वारमेकैकमुत्तिष्ठतम् ।

योजनान्यष्ट चत्वारि स्याद्विस्तारप्रवेशयोः ॥२०३॥

इन तीनों द्वारों की तीनों दिशाओं में एक-एक आये हैं । इन प्रत्येक द्वार की उंचाई आठ योजन और चौड़ाई चार योजन की है (२०३)

सिद्धायतन मध्येऽथ विभाति मणिपीठि का ।

योजनान्यष्ट विस्तीर्णायता चत्वारि मेदुरा ॥२०४॥

इस सिद्ध मंदिर में एक मणि पीठिका है । वह आठ योजन लम्बी चौड़ी है, और चार योजन मोटी है । (२०४)

उपर्येतस्या अथैको देवच्छन्दक आहितः ।

उच्चैस्त्वेन साधिकानि योजनान्यष्ट स श्रुतः ॥२०५॥

विष्कम्भायामतोऽप्येष योजनान्यष्ट तत्र च ।

अष्टोत्तर शतं सिद्धप्रतिमास्तासु पूर्ववत् ॥२०६॥

उस मणि पीठिका के ऊपर एक देवच्छन्दक है, जो आठ योजन से कुछ विशेष ऊंचा है और आठ योजन लम्बा-चौड़ा है । उसमें पूर्व के समान एक सौ आठ सिद्ध प्रतिमाएं हैं । (२०५-२०६)

दशानां शेषकूटानामुपर्यैकैक आलयः ।

द्वाषष्टि योजनान्यद्धाधिकान्यायत विस्तृतः ॥२०७॥

एकत्रिंशद्योजनानि सक्रोशानि समुन्नतः ।

तत्तत्कूट सभाह्वानस्वामिना समधिष्ठितः ॥२०८॥ युग्मं ।

शेष दस शिखर पर भी एक-एक मंदिर है, वह प्रत्येक साढे बासठ योजन लम्बा चौड़ा तथा सवा इकतीस योजन उंचा है, प्रत्येक शिखर के नाम, अनुसार नाम वाले स्वामी देव से अधिष्ठित है । (२०७-२०८)

कूटे द्वितीय तृतीये दसमे रूद्रसंमिते ।

चतुर्वेषु सुरा ईशाः देव्यः शेषेषु षट्सु च ॥२०९॥

दूसरे, तीसरे, दसवें और ग्यारहवें, इन चार शिखरों पर देवों का और शेष छः शिखरों पर देवियों का अधिपत्य होता है । (२०९)

तथाहि-इलादेवी सुरादेवी द्वे इमे दिक्कुमारिके ।

तिस्त्रश्च नद्यधिष्ठात्र्यः श्रीश्चेति प्रथिता इमाः ॥२१०॥

ये छः देवियां इस तरह हैं- प्रथम दो इला देवी और सुरा देवी नामक दिक्कुमारियां हैं । दूसरी तीन नदियों की अधिष्ठात्री देवियां हैं और छठी लक्ष्मी देवी नाम की है । (२१०)

देवा देव्यश्च सर्वेऽमी एक पत्न्योपमायुषः ।

महर्द्धिका विजयवत्तथैषां राजधान्यपि ॥२११॥

इन सब देव देवियों का आयुष्य एक पत्न्योपम का है, वे सब विजयदेव के समान समृद्धिशाली हैं, और इनकी राजधानियां भी विजय देव सदृश समझ लेना । (२११)

एता देव्यश्च भवनपतिजातिगता मताः ।

व्यन्तरीणामर्द्धं पल्यमायुरूत्कर्षतोऽपि यत् ॥२१२॥

जो देविया हैं वे सब भवनपति जाति की होती हैं, क्योंकि व्यन्तर देवियों का तो आयुष्य उत्कृष्ट रूप में आधा पल्योपम का है । (२१२)

एवं वक्ष्यमाणा अपि देव्या ज्ञेयाः ॥

अब जो देवियों की बात आयेगी, वे देवियां भी भवनपति जाति की समझना ।

वक्ष्यमाणापर्वतेषु यानि चैत्यानि येऽपि च ।

प्रासादा देवतानां ते सर्वेऽग्रत्यैः समाः स्मृताः ॥२१३॥

जिन पर्वतों का अब वर्णन करने में आयेगा, उन पर्वतों पर जो चैत्य और देवों के प्रासाद हैं वे सब इन पर्वत के चैत्य और प्रासाद समान समझ लेना चाहिए । (२१३)

गिरे रस्यो परितलेहृदः पद्महृदाभिधः ।

योजनानि दशोद्विद्धः सहस्रयोजनायतः ॥२१४॥

इस पर्वत पर एक पद्महृद नाम का सरोवर आया है वह दस योजन गहरा, हजार योजन लम्बा और पांच सौ योजन चौड़ा है । (२१४)

शतानि पंच विस्तीर्णो वेदिका वन मण्डितः ।

चतुर्दिशे तोरणाढ्य त्रिसोपान मनोरमः ॥२१५॥

और वह पद्म वेदिका और सुन्दर वन से शोभायमान है, और चारों दिशा में तोरण वाले तीन-तीन मनोहर सोपान हैं । (२१५)

अयं च वक्ष्य माणाश्च महापद्महृदादयः ।

सर्वे पूर्वापरायामा दक्षिणोत्तर विस्तृताः ॥२१६॥

यह पद्म सरोवर, और इसके बाद वर्णन करने में आयेगा, वह महापद्म हृद आदि सब पूर्व पश्चिम लम्बे और उत्तर दक्षिण में चौड़े हैं । (२१६)

तथाहुः - हिमवंत सेल सिहरे वगर विदंहहो सलिल पुष्णो ।

दस जोअणावगाढो विच्छिन्नो दाहिणुत्तरओ ॥२१७॥

अन्य स्थान पर भी कहा है कि - हिमवंत पर्वत के शिखर पर एक जल से भरा हुआ सुन्दर पद्म सरोवर है, वह दस योजन गहरा और उत्तर दक्षिण में चौड़ा है । (२१७)

तस्य मध्ये पद्ममेकं योजनायत विस्तृतम् ।

अर्द्धं योजनं बाहल्यं तावदेवोच्छ्रितं जलात् ॥२१८॥

उस पद्म सरोवर में एक कमल है । वह एक योजन लम्बा-चौड़ा आधा योजन मोटा और उतना ही जल से ऊपर है । (२१८)

जले मग्नं योजनानि दशैतज्जगतीवृत्तम् ।

जम्बू द्वीपं जगत्याभा सा गवाक्षालिराजिता ॥२१९॥

यह कमल दस योजन जल के अन्दर डूबा हुआ है, और इसके आस-पास एक जगती किला है, वह जम्बू द्वीप की जगती - किले के समान झरोकों से युक्त होने से अत्यंत रमणीय लगता है । (२१९)

किन्त्वसौ योजनान्यष्टादशोच्चा सर्वं संख्यया ।

जलेऽवगाढा दश यद्योजनान्यष्ट चोपरि ॥२२०॥

यह जगती - किल्ला दस योजन जल में डूबा है और आठ योजन जल के ऊपर होने से कुल अठारह योजन उंचा है । (२२०)

यतु जम्बू द्वीपं प्रज्ञप्ति मूल सूत्रे, जम्बूद्वीपं जगदृष्य माणा इत्युक्तं तज्जलाव गाह प्रमाणमविवक्षित्वा इति तद्वृत्तौ ॥

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के मूल सूत्र में 'जम्बू द्वीप के किले समान' इस तरह जो कहा है, वह जल के अन्दर रहे विभाग से अलग बाहर रहे विभाग का माप समझना चाहिए । ऐसा इसका वृत्ति में स्पष्टीकरण किया है ।

किं च वज्रमूलं रिष्टकंदं वैदूर्यनालबन्धुरम् ।

वैदूर्यबाह्यपत्रं तज्जाम्बूनदान्तरच्छदम् ॥२२१॥

इस कमल का मूल वज्रमय है, इसका कंद रिष्टरत्नमय है इसकी, नालिका वैदूर्य रत्न की, इसके बाहर के पत्र वैदूर्यरत्नमय और अभ्यन्तर सुवर्णमय है । (२२१)

अत्रायं विशेषोऽस्ति । बहत्क्षेत्र विचार वृत्यादौ बाह्यानि चत्वारि पत्राणि वैदूर्य मयानि शेषाणि तु रक्त सुवर्ण मयान्युक्तानि । किंच जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे जाम्बून दपीषद्रक्तस्वर्ण तन्मयान्यभ्यन्तर पत्राणि इत्युक्तम् । सिरिनिलयमिति क्षेत्रविचार वृत्तौ तु पीत स्वर्णमयान्युक्तानि इति ।

इस सम्बन्ध में बृहत् क्षेत्र विचार की टीका में इस प्रकार कहा है, कि केवल चार बाह्य पत्र वैदूर्य रत्न के हैं, शेष पत्र लाल सुवर्ण के हैं । तथा 'जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति' सूत्र में अभ्यन्तर पत्रों को जाम्बून मय अर्थात् सहज रूप लाल वर्ण के सुवर्णमय कहे हैं । 'सिरिनिलय' क्षेत्र विचार की वृत्ति में तो पीला सुनहरा कहा है।

तपनीयकेसरवृता सौवर्णी कर्णिका भवेत्तस्य ।

द्वि क्रोशायत वितता क्रौशोच्चा श्रीभवनमस्याम् ॥२२२॥

इसके केसर के वृत्त लाल सुवर्णमय हैं, और कर्णिका पीले सुनहरे कहा है । ये कर्णिका दो कोश लम्बी-चौड़ी और एक कोस उंची है और इसके अन्दर श्री देवी (लक्ष्मी) का भवन आया है । (२२२)

एक क्रोशायतमेतत्तथार्द्ध क्रोश विस्तृतम् ।

ऊनक्रोशोन्नतं तत्र दक्षिणोत्तरपूर्वतः ॥२२३॥

पंचचापशतोत्तुंग तदर्द्धव्यासमेककम् ।

द्वारं तत्राथ भवन मध्येऽस्ति मणि पीठिका ॥२२४॥ युग्मं ।

वह भवन एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा और लगभग एक कोस ऊंचा है । इसमें दक्षिण उत्तर और पूर्व-इस तरह तीनों दिशा में पांच सौ धनुष्य ऊंचा और इसमें आधा चौड़ा एक-एक द्वार-दरवाजा है । और इन भवनों के मध्य भाग में मणि पीठिका है । (२२३-२२४)

सापि पंच शत धनुर्व्यासायामार्द्ध मेदुरा ।

उपर्यस्या शयनीयं श्रीदेवी योग्यमुत्तमम् ॥२२५॥

यह मणि पीठ पांच सौ धनुष्य के विस्तार वाला है, और इससे आधा अर्थात् अर्धधनुष्य का मोटा है, उसके ऊपर श्री देवी के योग्य उत्तम शय्या है । (२२५)

षड्जातीयैः परिक्षेपैः वेष्टितं मूलपंकजम् ।

क्रमादर्द्धार्द्धमानाब्जाः परिक्षेपाः समेऽप्यमी ॥२२६॥

ऊपर जो कमल कहा है, उस मूल कमल के आस-पास इससे आधे-आधे माप के छः तरह के कमलों के छः समान वलय है । (२२६)

अष्टोत्तरं शतं पद्याः प्रथमे परिधौ स्थिताः ।

मूल पद्यादर्द्धमानाः श्रीदेवीभूषणैर्भृताः ॥२२७॥

प्रथम वलय (मंडल) में एक सौ आठ कमल हैं, वे मूल कमल से आधे मान-माप के हैं । उसमें श्री देवी के आभूषण भरे हैं । (२२७)

वायूत्तरेशानदिक्षु सामानिक सुधाभुजाम् ।

चतुः सहस्री पद्मानां तावतां परिकीर्तिता ॥२२८॥

दूसरे वलय में वायव्य, उत्तर और ईशान दिशाओं में चार हजार सामानिक देवों के चार हजार कमल हैं । (२२८)

महत्तराणां देवीनां प्राक् चत्वार्यम्बुजानि च ।

सहस्राण्यष्ट चाग्नेय्यामभ्यन्तरसभाजुषाम् ॥२२९॥

पूर्व दिशा में महत्तरां देवियों के चार कमल हैं, अग्नि कोने में अभ्यन्तर सभा में बैठने वाले देवों के आठ हजार कमल हैं । (२२९)

सहस्राणिदशाब्जानामपाच्यां मध्यपर्षदाम् ।

द्वादशब्जसहस्राणि नैऋत्यां बाह्यपर्षदाम् ॥२३०॥

सेनापतीनां सप्तानां प्रत्यक् सप्ताम्बुजानि च ।

द्वितीयोऽयं परिक्षेपो मूलपद्मस्य वर्णितः ॥२३१॥

दक्षिण दिशा के अन्दर मध्य सभा में बैठने वाले देवों के दस हजार कमल हैं, और नैऋत्य कोने में बाह्य पर्षदा के देवों के बारह हजार कमल हैं, और पश्चिम दिशा में सात सेनापतियों के सात कमल हैं । इस तरह से मूल कमल के दूसरे वलय का स्वरूप का वर्णन हुआ । (२३०-२३१)

आत्मरक्षि सहस्राणां षोडशानां चतुर्दिशाम् ।

चतुःसहस्री प्रत्येकं परिवेषे तृतीयके ॥२३२॥

तीसरे वलय में प्रत्येक दिशा में चार-चार हजार, इस चार दिशा के अन्दर कुल सोलह हजार कमल हैं और वे सोलह हजार आत्म रक्षक देवों के हैं । (२३२)

त्रयं परे परिक्षेपा अभियोगिपयोरूहाम् ।

द्वात्रिंशत् प्रथमे लक्षां अभ्यन्तराभियोगिनाम् ॥२३३॥

चत्वारिंशत् पद्मालक्षा मध्ये मध्याभियोगिनाम् ।

लक्षाणामष्टचत्वारिंशत् बाह्ये बाह्यसेविनाम् ॥२३४॥ युग्मं ।

चौथे, पांचवे और छठे इन तीन वलयों में अभियोगिक देवों के कमल हैं । वह इस तरह चौथे वलय में अभ्यन्तर पर्षदा के अभियोगी देवों के बत्तीस लाख

कमल है, पांचवे वलय में मध्यम पर्षदा के अभियोगी देवों के चालीस लाख कमल है और छठे वलय में बाह्य पर्षदा के अभियोगी देवों के अड़तालीस लाख कमल हैं ।

कोटयेका विंशतिर्लक्षाः पद्मानां सर्व संख्यया ।

सहस्राणि च पंचाशत् शतं विंशति संयुतम् ॥२३५॥

इस तरह सर्व मिलाकर कुल एक करोड़, बीस लाख, पचास हजार, एक सौ और बीस कमल होते हैं । (२३५)

अत्र षट् परिक्षेपा इति षट् जातीयाः परिक्षेपा इति वाच्यम् ॥ तथाहि - आद्या मूल पद्माद्धमाना जातिः । द्वितीया तच्चतुर्थं भाग माना जातिः । यावत् षष्ठी चतुः षष्टितमभागमानाजातिरिति ॥ अन्यथा तु योजनात्मना सहस्रत्रयात्मके धनुरात्माना चत्वारिंशल्लक्षाधिक द्विकोटिप्रमिते हृदपरमपरिधौ षष्ठ परिक्षेप पद्मानां षष्टि कोटि धनुः क्षेत्र मातध्यानाम् एक पंक्त्या अवकाशो न संभवति ॥

ततश्च तत्तत् परिधि क्षेत्र परिक्षेप पद्म संख्या विस्तारान् परिभाव्य यत्र यावत्यः पंक्तयः संभवन्ति तत्र तावतीभिः पंक्तिभिः एक एव परिक्षेपो ज्ञेयः । पद्मानामनेक जाती यत्वात् । एवं च पंच लक्ष योजनात्मके हृद क्षेत्रफल तानि सर्वाण्यपि पद्मानि सुखेन भान्त्येव । पद्मरूद्ध क्षेत्रस्य सर्व संकलनया विंशतिः सहस्राणि पंचाधिकानि योजनानां षोडश भागी कृतस्यैक योजनस्य त्रयोदश भाग इति, एतावत् एव संभवात् इति ॥ अधिकं तु उपाध्याय श्री शान्ति चन्द्र गणि कृत जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति वृत्तितः अव से यम् ॥

यहां छः वलय अर्थात् छः तरह के वलय समझना । वह इस प्रकार :- प्रथम जाति मूल पद्म से आधे प्रमाण के है, दूसरे जाति मूल पद्म से चौथे भाग प्रमाण के है, तीसरी जाति मूल पद्म से १/८ भाग प्रमाण के है, चौथे जाति के सोलहवें भाग १/१६ प्रमाण के है, पांचवे बत्तीसवे भाग १/३२ भाग प्रमाण के है और छठी जाति मूल पद्म से १/६४ भाग प्रमाण के है । यदि इस तरह न हो तो तीन हजार योजन अथवा दो करोड़ चालीस हजार धनुष्य के समान उस सरोवर के उत्कृष्ट घेराव में साठ करोड़ धनुष्य सदृश क्षेत्र में समा सकते हैं । ऐसे छठे वलय के वलय पंक्ति में समा नहीं सकते है ।

इसलिए उस परिधि क्षेत्र के घेराव के कमलों की संख्या तथा विस्तार दोनों

विषयों का विचार कर, जहां जितनी पंक्तियों का संभव है वहां उतनी पंक्तियां का एक वलय या मेंडल समझना, क्योंकि कमलों की अनेक जाति है और इसी पर पांच लाख योजन जितने उस हृद (सरोवर) के क्षेत्रफल में वे सर्वकमल सहज रूप में समा सकते हैं। क्योंकि इन पद्यों में रोके के क्षेत्र के योजन का कुल जोड़ बीस हजार पांच योजन और तेरह षोडाशांश आने का संभव है।

इस सम्बन्ध में विशेष जिज्ञासु ने उपाध्याय श्रीमद् शान्तिचन्द्रगणि कृत जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की वृत्ति देखना चाहिए।

ततः पद्म हृदात् गंगा प्राच्य तोरण निर्गता ।

योजनानां पंच शतीं गिरौ पूर्वेण गच्छति ॥२३६॥

पद्म सरोवर के पूर्व तोरण में से गंगा नदी निकलती है, वह पांच सौ योजन तक पूर्व दिशा में पर्वत ऊपर जाती है। (२३६)

गंगावर्तनकूटस्याधस्तादावृत्य सा ततः ।

दक्षिणाभिमुखी भूत्वाप्रवृत्ता पर्वतोपरि ॥२३७॥

त्रयोविंशां पंचशतीं योजनानां कलात्रयम् ।

साद्धं गत्वादक्षिणस्यां पतेत् जिह्विकया नगात् ॥२३८॥ युग्मं ।

वहां से गंगा वर्तन कूट के बाजु में होकर दक्षिण सन्मुख घूमकर पर्वत पर चलती है, वहां से पांच सौ तेईस योजन और साढ़े तीन कला दक्षिण दिशा में जाकर वहां बड़े विशाल मात्र में पृथ्वी पर गिरती है। (२३७-२३८)

सा च प्रणालिका रूपा भात्यर्धक्रोशमेदुरा ।

द्विकोश दीर्घा सक्रोश षट् योजनसुविस्तृता ॥२३९॥

उसकी धारा प्रणालिका रूप में आधा कोस मोटी, दो कोस लम्बी और एक कोस छः योजन चौड़ी है। (२३९)

वाज्रिकी व्यालमकरवक्त्राकारा तथाथ सा ।

सातिरेकं योजनानां शतमेकं पतत्यधः ॥२४०॥

योजनानि दशोद्विद्वे षष्टिं च विस्तृतायते ।

कुंडे गंगा प्रपाताख्ये चारुमुक्तावलीसमा ॥२४१॥ युग्मं ।

इससे मुंह फाड़कर बैठे मगरमच्छ के आकार वाले वज्र समान मजबूत, और मोती की माला समान सुन्दर धारा एक सौ योजन से विशेष उंचाई से नीचे दस

योजन गहरे तथा साठ योजन के विस्तर वाले गंगा प्रपात नामक कुंड में गिरता है।
(२४०-२४१)

तथाहु : क्षमा श्रमण पादाः-

आयामो विखड्भो सट्टि कुंडस्य जोअणा हुंति ।

नउ असयं किंचूर्णं परि हि दसजोअणोगाहो ॥२४२॥

इस सम्बन्ध में पूज्य श्री क्षमा श्रमण ने कहा है कि -- यह कुंड लम्बाई चौड़ाई में साठ योजन है, गहराई में दस योजन और घेराव में लगभग एक सौ और नव्वे योजन है। (२४२)

'इति बृहत् क्षेत्र समासे' अर्थात् इस तरह से बृहत् क्षेत्र समास में भी कहा है।

श्री उमास्वाति कृत जम्बू द्वीप समासे करणविभावनायां च मूले पण्णासं जोअणवित्थारो उवरि सट्टो इति विशेषोऽस्ति ॥

'श्री उमा स्वाति रचित जम्बू द्वीप समास में तथा करण विभावना में तो इस तरह कहा है कि - मूल में विस्तार पचास योजन है, और ऊपर के भाग में साठ योजन है।'

'इत्थं च कुण्डस्य यथार्थनामोपपत्तिरपि भवति । एवमन्येष्वपि यथा योग्य ज्ञेयम् ॥'

इस तरह कुंड का अर्थ घट सकता है। इसी प्रकार से अन्य कुंड के सम्बन्ध में भी यथायोग्य समझ लेना चाहिए।

तच्च कुण्डं वेदिकया वनखण्डेन वेष्टितम् ।

पूर्वापराददक्षिणासु सोपान श्रेणि शोभितम् ॥२४३॥

उस कुण्ड के आस-पास एक सुन्दर पद्म वेदिका और मनोहर बगीचा है, और इसके पूर्व पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में सुशोभित सीढियों की श्रेणियां हैं।
(२४३)

सोपान श्रेणयः सर्वावज्र स्तम्भाः सतोरणाः ।

रत्नालम्बनबाहाढया रैरूप्यफलकांचिताः ॥२४४॥

उन प्रत्येक सोपान की श्रेणियों में, तोरण, वज्र के स्तंभ रत्न जड़ित खंड (विभाग) हैं और सोने रूपे के फर्श हैं।

गंगा द्वीपश्च भात्यस्मिन् द्वौ कोशावुच्छितो जलात् ।

अष्टौ च योजनान्येष विष्कम्भायामतोमतः ॥२४५॥

इस कुंड के अन्दर गंगा द्वीप नाम का एक सुन्दर द्वीप है, उसकी जल से उंचाई दो कोस और लम्बाई-चौड़ाई आठ योजन है । (२४५)

गंगाद्वीपोपरि गंगाभवनं पीठिकादि युक्त ।

स्वरूप तो मानतश्च श्री देवी भवनोपमम् ॥२४६॥

इस द्वीप में पीठिका आदि से गंगा देवी का भवन शोभायमान है । उसके स्वरूप इत्यादि श्री देवी के भवन के समान है । (२४६)

दाक्षिणात्यतोरणेन गंगाप्रपात कुण्डतः ।

निर्गत्य वैताढयोपान्ते नदीसप्तसहस्रयुक्त ॥२४७॥

खण्ड प्रपात प्राग्भागे भित्त्वा वैताढय भूधरम् ।

दाक्षिणात्य सप्तनदी सहस्रा पूरिवारिता ॥२४८॥

एवं चतुर्दश नदी. सहस्रापूरिताभितः ।

पूर्व तो जगतीं भित्त्वा गंगा विंशति वारिषिम् ॥२४९॥

त्रिभिः विशेषकम् ॥

गंगा प्रपात कुंड के दक्षिण के तोरण से गंगा नदी निकलती है, और वैताढय पर्वत के पास में आने तक में सात हजार नदियां मिलती है । वहा संखंड प्रपाता गुफा के पूर्व विभाग में वैताढय पर्वत को भेदन कर आगे बहती है, वहां उसे दक्षिणार्ध भरत की अन्य सात हजार नदियां मिलती हैं । इस तरह चौदह हजार नदियों के परिवार सहित पूर्व की और जगती - किले को भेदन कर वह समुद्र में मिलती है । (२४७-२४९)

सक्रोशानि योजनानि षडस्या हृदिनिर्गमे ।

व्यासः क्रोशार्धमुद्देशः कुण्डपातावधिः स च ॥२५०॥

सरोवर में से निकल कर कुंड में आए वहां तक, इसकी चौड़ाई छः योजन और एक कोस है और गहराई आधा कोस होती है । (२५०)

तथोक्तं जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे । गंगाणं महानई पवाहे छ सक्को साइं जो अणाइं विरक्खं भेणं पणत्ता अद्ध कोसं उव्वेहेणं ॥

समवायांगे तु । गंगा सिन्धुओ नईओ णं पवहे सातिरेगाइं चउ विसं
कोसाइं वित्थरेणं पणते । इत्युक्तम् ॥

इस सम्बन्ध में जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में यही अधिप्राय है, कि महानदी गंगा का प्रवाह छः योजन और एक कोस चौड़ा है, तथा गहराई आधा कोस है । परन्तु सम वायांग सूत्र में इस तरह कहा है कि - गंगा और सिन्धु नदी का प्रवाह चौबीस कोस से कुछ विशेष है ।

कुंडोदगमादनु व्यासो योजनं योजनं प्रति ।

पार्श्वं द्वये समुदितो धनूषिं दस वर्द्धते ॥२५१॥

एवं च - वारिधेः संगमे सार्द्धां द्वाषष्टिः योजनान्यसौ ।

मौलाद्दशध्नो यद्द यपासो नदीनामब्धि संगमे ॥२५२॥

कुण्ड में से निकलने के बाद इसकी चौड़ाई दोनों तरफ प्रत्येक योजन में दस-दस धनुष्य बढ़ती जाती है, और इस तरह समुद्र में प्रवेश के समय साढ़े बासठ योजन हो जाती है । अर्थात् नदी की चौड़ाई समुद्र के संगम समय मूल से दस गुना हो जाती है । (२५१-२५२) ।

व्यासात् पंचाशत्तमोऽशः सर्वत्रोद्वेधईरितः ।

क्रोशस्यार्द्धं ततो मूले प्रान्त सक्रोशयोजनम् ॥२५३॥

सर्वत्र गहराई चौड़ाई से पचासवें भाग की होती है, इससे इसकी गहराई मूल में आधे कोस की और अन्त में एक योजन व एक कोस है । (२५३)

वेदिका वन खण्डौ च प्रत्येक पार्श्वयोः द्वयोः ।

महानदीनां सर्वासां दृष्ट जगत्त्रयैः ॥२५४॥

प्रत्येक महानदी के दोनों तरफ पद्म वेदिका और बाग होता है इस प्रकार श्री जिनेश्वर भगवन्तों ने कहा है । (२५४)

“तथोक्तं जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे गंगा वर्णने । उभयो पासिं दो हिं षडमवर वेइयाहिं दोहिं वण खंडेहि संपरि खिखत्ता वेइयावण खंड वणओ मणि यक्वो इति ।”

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में गंगा नदी का वर्णन किया है, वहां भी कहा है कि इसके दोनों तरफ में पद्म वेदिका और वनखंड- बगीचा आया है । उसी तरह यहां भी वर्णन जानना ।

अथ गंगा महानद्या यत्राम्भे निधिसंगमः ।

तत्र तीर्थमागधाख्यं तस्येशो भागधः सुरः ॥२५५॥

इस गंगा महा नदी का समुद्र के साथ में संगम होता है, वहां 'भागध' नाम का तीर्थ है और उसका स्वामी भागध नामक देव है । (२५५)

एवं सिन्धु नदी वाद्धिं योगे प्रभासनामकम् ।

एतयोरन्तराले च वरदामं पयोनिधौ ॥२५६॥

इसी ही प्रकार सिन्धु नदी के समुद्र संगम के पास में प्रभास तीर्थ है और दोनो तीर्थों के बीच समुद्र के अन्दर वरदाम तीर्थ आया हुआ है । (२५६)

“तथोक्तं जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति वृत्तौ । गंगा भागध तीर्थ स्थाने समुद्र प्रविशति तथा प्रभासनाम तीर्थ स्थाने सिन्धु नदी समुद्रं प्रविशति ॥”

‘इस विषय में जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की वृत्ति में कहा है, कि गंगा नदी भागधतीर्थ के पास समुद्र में मिलती है । और सिन्धु नदी प्रभास तीर्थ के पास समुद्र में मिलती है ।’

तीर्थ नामावतरण मार्गेऽम्भौधौतटाकवत् ।

तीर्थस्थार्थो भाव्य एवं शीता शीतोदयोरपि ॥२५७॥

“तालाब के समान समुद्र में उतरने का मार्ग ही वह तीर्थ कहलाता है, तीर्थ शब्द का अर्थ शीत और शीतोदा नदियों के सम्बन्ध में भी समझना । (२५७)

तदुक्तं स्थानांग वृत्तौ । तीर्थानि चक्रवर्तिनः समुद्र शीतादि महानद्यवतार लक्षणानि तन्नामक देव निवास भूतानि । तत्र भरतैरवतयोः तानि पूर्व दक्षिणा पर समुद्रेषु । विजयेषु तु शीता शीतोदा महानद्योः पूर्वादि क्रमेणैव । इति तृतीये स्थानके ॥”

“स्थानांग सूत्र के तीसरे स्थानक में कहा है कि - समुद्र और आदि नदियों में चक्रवर्ती के उतरने का मार्ग रूप जो तीर्थ है, उसी ही नामके देव को रहने का स्थान स्वरूप है । भरत और ऐरावत क्षेत्रों के तीर्थ पूर्व, दक्षिण और पश्चिम समुद्र में आये हैं । और विजयादि के तीर्थ पूर्व आदि दिशा के अनुक्रम से ही शीता और शीतोदा नदियों में आये हैं ।”

एषां तीर्थसहकनाम्नां देवानां स्वस्वतीर्थतः ।

योजनेषु द्वादश सु राजधान्यः पयोनिधो ॥२५८॥

जो तीर्थ का नाम है, वही उस-उस तीर्थ के अधिपतियों का नाम है, प्रत्येक की राजधानी उस तीर्थ से बारह योजन दूर समुद्र में होती है । (२५८)

कृताष्टमतपाश्चक्री रथनाभिस्पृगम्भसि ।

स्थित्वा बाधो स्वनामाकशरं मुक्त्वा जयत्यमून् ॥२५९॥

दिग् विजय के लिए निकले चक्रवर्ती अट्टम (तीन उपवास) का तप करके रथ को नाभि तक पानी में ले आता है और उस समुद्र जल में रहकर अपने नाम से आंकित बाण को फेंककर उस तीर्थाधिपति देव को जीतता है । (२५९)

प्रतीच्यतोरणेनाथ हृदात्तस्माद्विनिर्गता ।

गत्वा प्रतीच्यामावृत्ता सिन्ध्वावर्तनकूटतः ॥२६०॥

दक्षिणाभिमुखी शैलात् कुण्डे निपत्य निर्गता ।

प्रत्यभागे तमिस्राया भित्वा वैताडय भूधरम् ॥२६१॥

ततः पश्चिम दिग्भागे विभिद्य जगती मधः ।

विशत्यम्भेनिधिं सिन्धुर्गगास्वसेव युग्मजा ॥२६२॥ त्रिभि वि० ।

गंगा नदी के साथ जन्म हुई बहन के समान सिन्धु नदी है, वह सरोवर के पश्चिम की ओर से तोरण में से निकलती है । निकल कर ५०० योजन दक्षिण दिशा के सिन्धु प्रपात कुंड में गिरती है, वहां से बहती तमिस्रा गुफा के पूर्व ओर के भाग में वैताडय पर्वत को भेदन कर वहां से पश्चिम में बहती जगती के नीचे से भेदन कर समुद्र को मिलती है । (२६०-२६२)

गंगावत् सर्वमस्याः स्यादारम्यहृदनिर्गमात् ।

स्वरूपमब्धि संगान्तं सिन्धुनाम विशेषितम् ॥२६३॥

सरोवर से निकल कर समुद्र में मिलने तक सिन्धु नदी का सारा स्वरूप गंगा नदी के समान जानना केवल नाम सिन्धु इतना ही फेर है । (२६३)

वैताडय तो दक्षिणस्यां सरितोः सिन्धुगंगयोः ।

बिलानि स्युः नव नव पूर्व पश्चिम कूलयोः ॥२६४॥

वैताडय पर्वत से दक्षिण दिशा में सिन्धु और गंगा नदी के पूर्व और पश्चिम तट पर नौ-नौ (९+९+९+९=३६) छत्तीस बिल (गुफाए) हैं । (२६४) इसी तरह वैताडय की उत्तर दिशा में भी इन नदियों के दोनों तटों पर छत्तीस बिल हैं ।

उदीच्यामपि षट्त्रिंशत् तथैव तटयोस्तयोः ।

कल्पान्तेऽत्रादिबीजानां स्थानानीति द्वि सप्ततिः ॥२६५॥

इस तरह सब मिलाकर बहत्तर बिल होते हैं, ये बहत्तर बिल कल्पांत समय में (पांचवे आरे के समय में) अन्न आदि बीजों का बहेत्तर का स्थान है । (२६५)

पंच स्वेवं भरतेषु पंचस्वैरवतेषु च ।

विलानि भाव नीयानि द्वि सप्ततिः द्वि सप्ततिः ॥२६६॥

इसी तरह से पांच भरत और पांच ऐरवत क्षेत्रों में भी बहत्तर-बहत्तर बिल समझ लेना चाहिए । (२६६)

औत्तराहतोरणेन तस्मात् पद्महृदादथ ।

निर्गता रोहितांशाख्योत्तराशाभिमुखी नदी ॥२६७॥

द्वे योजन शते युक्ते षट् सप्तत्या कलाश्च षट् ।

पर्वतोपर्यतिक्रम्य वज्र जिह्विकया नगात् ॥२६८॥

रोहितांश प्रपाताख्ये कुण्डे निपत्य हारवत् ।

उदीच्यतोरणेनास्मान्निर्गतोत्तरसंमुखी ॥२६९॥

मार्ग चतुर्दशनदी सहस्र परिवारिता ।

तत्रत्य वृत्त वैताडयं मुक्त्वा क्रोश द्वयान्तरे ॥२७०॥

स्थानात्ततः परावृत्य प्रस्थिता पश्चिमा मुखी ।

पुनश्चतुर्दशनदीसहस्रसेविताभितः ॥२७१॥

अष्टाविंशत्या सहस्रैः नदीभिरेवमन्विता ।

द्वेषा विदधती हैमवतस्थाद्धं च पश्चिमम् ॥२७२॥

अधो विभिद्य जगती याति पश्चिम वारिधिम् ।

गंगा सिन्ध्वोः सपत्नीव द्विगुणार्थिः पति प्रियाः ॥२७३॥

(सप्तमिः कुलकम्)

पद्म सरोवार के उत्तर ओर के तोरण में से रोहितांशा नामक नदी निकलती है, जो उत्तर दिशा की ओर बहती है । वह नदी पर्वत पर दौ सौ छिहत्तर योजन और छः कला परिभ्रमण करती हुई वहां से वज्र जिह्वा के आकार में विशाल धारा रूपा रोहितांशा प्रपात नामक कुंड में गिरते हुए मुक्ताफल के हार समान दिखती है । वहां से पूर्वोक्त उत्तर दिशा के तोरण में होकर उत्तर की ओर बहती है, रास्ते

में चौदह हजार नदियां मिलती हैं । उसके परिवार को लेकर उस क्षेत्र के मध्य वैताढ्य से दो कोस के अन्तर में आती है । वहां से आगे बढ़ कर पश्चिम की ओर बहती हुई पुनः अन्य चौदह हजार नदियों से संगम होता है । अतः कुल अट्ठाईस हजार नदियों का परिवार लेकर हैमवंत क्षेत्र के पश्चिम तरफ के अर्द्धभाग को भेदन कर उसके मध्य मार्ग में होकर तथा जगती - किल्ले को भी नीचे से भेदन कर गंगा सिन्धु नदियों की सपत्नी समान दुगुणा समृद्धिशाली और समुद्र रूपी पति को प्रिय समान वह पश्चिम समुद्र में मिलती है । (२६७-२७३)

कुण्डाद्विनिर्गमं यावदारभ्य हृदनिर्गयात् ।

साद्धानि योजनान्यस्या विष्कम्भोद्वादशोदितः ॥२७४॥

सरोवर में से निकल कर कुंड तक पहुंचती, उसकी चौड़ाई साढ़े बारह योजन कही है और गहराई एक कोस की कही है । (२७४)

गव्यूतमेकमुद्वेधस्ततः कुण्डोद्गमादनु ।

प्रतियोजनमेकैकपाश्र्वे व्यासो विवर्द्धते ॥२७५॥

कोदण्डानि दस दशोभयतस्तानि विंशतिः ।

लवः पंचाशत्तमश्च व्यासस्योद्वेध आहितः ॥२७६॥ युग्यं ।

योजनानां शतं चैवं सपादमब्धि संगमे ।

व्यासोऽस्याः क्रोश दशकमुद्वेधश्च प्रजायते ॥२७७॥

कुंड में से निकलने के बाद इसकी चौड़ाई दोनों तरफ प्रत्येक योजन में दस-दस धनुष्य कुल मिलाकर बीस धनुष्य बढ़ते जाते हैं । इसकी सर्वत्र गहराई चौड़ाई के पचासवें भाग सदृश कही है । अतः जब समुद्र संगम होता है, तब चौड़ाई सवा सौ योजन की होती है । उस समय उसकी गहराई उसके पचासवें भाग दस कोस की होती है । (२७५-२७७)

व्यासायामौ जिह्वि कायाः साद्धानि द्वादश योजनी ।

बाहल्यमस्या निर्दिष्टमेक क्रोशमितं जिने : ॥२७८॥

इसकी विशाल धारा की लम्बाई-चौड़ाई साढ़े बारह योजन और मोटाई एक कोस प्रमाण है । (२७८)

सविशं योजनशतं कुण्डस्यायति विस्तृती ।

द्वीपस्यायाम विष्कम्भौ योजनानीह षोडश ॥२७९॥

कुंड की लम्बाई-चौड़ाई एक सौ बीस योजन की है, उसमें एक द्वीप है, उसकी लम्बाई-चौड़ाई सोलह योजन की है । (२७६)

अस्याः प्रपात कुण्डस्योद्वेधो द्वीपस्य चोच्छ्रयः ।

भवनस्य स्वरूपं च ज्ञेयं गंगासमं बुधैः ॥२८०॥

कुंड की गहराई, उसमें रहे द्वीप की उंचाई तथा उस द्वीप में रहे भवन का स्वरूप आदि सब गंगा प्रपात कुंड वर्णन में है, उसी तरह जानना । (२८०)

गिरेहिमवतोऽथास्य प्राचीन पश्चिमान्तयोः ।

लवणोदजलस्पर्शादारभ्य किल निर्गता ॥२८१॥

दाढैकैका विदिशासु गजदन्तसमाकृतिः ।

ऐशान्यामथ चाग्नेय्यां नैऋत्यां वायु कोणके ॥२०२॥ युग्मं ।

इस हिमवंत पर्वत को गजदंत आकार की चार दाढें आई हैं, जो इसके पूर्व पश्चिम अन्तिम किनारे के लवण समुद्र के जल का स्पर्श होता है, वहां से निकल कर ईशान, अग्नि, नैऋत्य तथा वायत्व इस तरह चार दिशाओं में गयी है ।

(२८१-२८२)

ऐशान्यां तत्र जगतीपर्यन्ताल्लवणोदधौ ।

दाढायां योजनशतत्रयस्य समतिक्रमे ॥२८३॥

द्वीप एकोरूकाख्योऽस्ति योजनानां शतत्रयम् ।

विष्कम्भायामतः पद्मवेदिका वन मण्डितः ॥२८४॥ युग्मं ।

किञ्चिदूनैकोनपंचाशता समधिका किल ।

योजनानां नवशती परिक्षेपोस्य कीर्तितः ॥२८५॥

अस्य जम्बूद्वीप दिशि जलोपरि समुच्छ्रयः ।

सार्द्धं द्वयं योजनानां भागाश्चोपरि विंशतिः ॥२८६॥

पंचनवतिभक्तस्य योजनस्य तथोच्छ्रयः ।

लवणाभ्योधिदिश्यन्ते क्रोश द्वयमुदीरितः ॥२८७॥ युग्मं ।

इन चारों में से ईशान और दाढा में, जगती के आखिर विभाग से तीन सौ योजन लवण समुद्र में जाने के बाद एकोरूक नाम का एक दीप आता है, उसकी लम्बाई-चौड़ाई तीन सौ योजन है, उसका घेराव नवसौ उनचास योजन से कुछ कम है, इसके आस-पास पद्मवेदिका और सुन्दर बगीचे आए हैं, यह द्वीप जम्बू

द्वीप की ओर अढाई योजन, बीस पंचानवे अंश है, अर्थात् दो पूर्णांक सत्ताईस, अड़तीसांश २-२७/३८ इतना जल ऊपर है और लवण समुद्र और दो कोस जल ऊपर है । (२८३-२८७)

तत्रैव दाढ्यायां तस्मात् द्वीपाच्चतुःशतोत्तरः ।

हयकर्णमिधो द्वीपश्चतुः शतायताततः ॥२८८॥

शतानि द्वादश न्यूनपंचषष्टियुतानि च ।

परिक्षेपोऽस्याब्धिदिशि द्वौ क्रोशाबुच्छूयो जलात् ॥२८९॥

योजनानां द्वयं सार्द्धं नवत्यांशैः समन्वितम् ॥

अस्य जम्बू द्वीप दिशि ख्यातः खलु समुच्छूयः ॥२९०॥

इसी दाढा में इसी द्वीप से चार सौ योजन के अंतर (फासिले) में दूसरा हयकर्ण नामक द्वीप है, इसकी लम्बाई-चौड़ाई चार सौ योजन है और घेराव बारह सौ पैसठ योजन से कुछ कम है । यह समुद्र की दिशा में दो कोस जल ऊपर है और जम्बू द्वीप की ओर अढाई योजन ऊपर नब्बे-पचानवे अंश सदृश जल ऊपर है । (२८८-२९०)

अत्रायमाप्नायः -

पूर्व द्वीप परिक्षेपे योजनानां त्रिभिः शतैः ।

षोडशाढ्यैः संकलिते परिक्षेपोऽग्निमो भवेत् ॥२९१॥

तथा :- जम्बू द्वीप दिशि जलात्प्राग्द्वीपे यः समुच्छूयः ।

स पांचनवतेयांशसप्तत्या संयुतोऽग्निमे ॥२९२॥

यहां परम्परा इस तरह है - पूर्व से पूर्व के द्वीप का घेराव (के योजन) में तीन सौ सोलह योजन मिलाने से आगे-आगे के द्वीप का घेराव आता है, और जम्बू द्वीप की ओर पूर्व-पूर्व के द्वीप भी जल से ऊपर जितनी उंचाई हो उसमें सत्रह, पचानवे अंश मिलाने से आगे से आगे के द्वीप की उंचाई आती है । (२९१-२९२)

जम्बू द्वीपजगत्याश्च द्वीपस्यास्य मिथोऽन्तरम् ।

कर्णभूमिरूपमुक्तं योजनानां चतुः शती ॥२९३॥

जम्बू द्वीप की जगती, और इस द्वीप के बीच में कर्ण भूमि रूप परस्पर चार सौ योजन का अन्तर है । (२९३)

तत्रैव दाढायां तस्मात् द्वीपात् पंचशतान्तरः ।
 आदर्शमुखसंज्ञोऽस्ति द्वीपः पंचशतायतः ॥२६४॥
 तावदेव च विस्तीर्णो जगत्यास्तावदन्तरः ।
 सैकाशीतिः पंचदशशती परिरयोऽस्य च ॥२६५॥
 जम्बूद्वीप दिशि भवेत् जलादस्य समुच्छ्रयः ।
 साद्धा त्रियोजनी भागाः पंचवष्टिः पुरोदिताः ॥२६६॥
 द्वौ क्रोशौ लवण दिशि जलादस्य समुच्छ्रयः ॥
 दाढायां पुनस्तत्रैवातीत्य योजनषट्शतीम् ॥२६७॥

इसी ही दाढा में इसी ही द्वीप से पांच सौ योजन से अन्तर में तीसरा आदर्श मुख नाम का द्वीप है, वह पांच सौ योजन लम्बा-चौड़ा है, जगती से पांच सौ योजन के अन्तर में है और पंद्रह सौ एकासी योजन में है । जम्बूद्वीप की ओर इसकी जल के ऊपर की उंचाई साढ़े तीन योजन पैसठ, पचानवे अंश सदृश है और लवण समुद्र की ओर दो कोश सदृश है । (२६४-२६७)

षट् योजन शतायामविष्कम्भोऽश्वमुखाभिधः ।
 द्वीपो भाति शतैः षड्भिः जगत्या दूरतः स्थितः ॥२६८॥
 योजन त्रितयोनानि शतन्येकोनविंशतिः ।
 द्वीपस्यास्य परिक्षेपः प्रोक्तः शास्त्र परीक्षकैः ॥२६९॥
 साद्धा चतुर्योजनी सच्चत्वारिशल्लवाधिकाम् ।
 द्वीष दिश्युन्नतोऽद्म्योऽब्धि दिशितु क्रोशयामलम् ॥३००॥

इसी दाढा में इसी द्वीप से छः सौ योजन के अन्तर में छः सौ योजन लम्बा चौड़ा, चौथा 'अश्वमुख' नामक द्वीप है, जो जगती से छः सौ योजन दूर है । इसका घेराव उन्नीस सौ योजन में तीन योजन कम अर्थात् अठारह सौ सत्तानवे योजन है । जल ऊपर इसकी उंचाई द्वीप की ओर साढ़े चार योजन और चालीस-पचानवे अंश ४०/६५ समान है और समुद्र की ओर दो कोस समान है । (२६८-३००)

सप्तभिः योजन शतैरस्ति द्वीपस्ततः परम् ।
 अश्वकर्णाभिधः सप्तशतान्यायतविस्तृतः ॥३०१॥
 जगत्यास्तावता दूरे जम्बू द्वीप दिशि स्फुटम् ।
 योजनान्याद्ध षष्ठानि भागान् पंच दशोच्छ्रितः ॥३०२॥

द्वी क्रोशौ परतो व्यक्तः परिक्षेपस्तथास्य च ।

द्वे सहस्रे द्वे शते च योजनानि त्रयोदश ॥३०३॥

उसके बाद सात सौ योजन से पांचवा अश्वकर्ण नाम का द्वीप आता है, वह सात सौ योजन लम्बा-चौड़ा है और जगती से सात सौ योजन दूर है । जल की सपाटी से इसकी उंचाई जम्बू द्वीप की ओर साढ़े पांच योजन और पंद्रह, पचानवे अंश $१५/६५$ है, और समुद्र की ओर दो कोस है, इसका घेराव दो हजार दो सौ तेरह प्रमाण का है । (३०१-३०३)

अतीत्य योजन शतान्यष्टौ द्वीपालततः परम् ।

द्वीप उत्कामुखोऽस्त्यष्टौ शतान्यायत विस्तृतः ॥३०४॥

जगत्या दूर तोऽष्टामिः योजनानां शतैः स्थितः ।

अभ्योनिधे दिशि जलादुच्छ्रितः क्रोशयोर्द्वयम् ॥३०५॥

अर्धषष्ठ योजनानि पंचाशीतिं तदाधिकान् ।

भागान् पांचनवतेयान् जम्बू द्वीप दिशि स्फूट ॥३०६॥

एकानत्रिंशदाढयानि शतानि पंचविंशतिः ।

योजनानि परिक्षेपो द्वीपास्यास्य निरूपितः ॥३०७॥

इसी तरह उसी दाढ़ा में उस द्वीप से आठ सौ योजन दूर छठा 'उत्का' नाम नामक द्वीप है, वह आठ सौ योजन लम्बा-चौड़ा है, वहां जगती से आठ सौ योजन का अन्तर है, समुद्र की दिशा में दो कोस जल ऊपर है, और द्वीप की ओर साढ़े पांच योजन और पचासी, पचानवे अंश $८५/६५$ जल ऊपर है और इसका घेराव दो हजार पांच सौ उन्तीस योजन का होता है । (३०४-३०७)

योजनानां नवशतान्यतिक्रम्य ततः परम् ।

शतानि नव विस्तीर्णायतेऽस्ति धनदन्तकः ॥३०८॥

नव योजनशत्यासौ जगत्याः परिधिस्त्वह ।

शतानि पंच चत्वारिंशान्यष्टाविंशतिः किल ॥३०९॥

सान्दर्भा षड् योजनीं तादृक्षष्टिभागसमन्विताम् ।

जम्बू द्वीप दिशि व्यक्तो दिश्यब्धे स्त्वर्द्धं योजनम् ॥३१०॥

यहां से भी नौ सौ योजन छोड़ने के बाद उसी दाढ़ा में सातवां धनदंतक नाम का द्वीप आता है, वह नौ सौ योजन लम्बा चौड़ा है, और उसका जगती से नौ

सौ योजन अन्तर है और इसका घेराव दो हजार आठ सौ पैंतालीस योजन का है। जम्बू द्वीप की ओर से साढ़े छः योजन के ऊपर साठ, पचानवे ६०/६५ अंश सदृश जल ऊपर है और समुद्र की दिशा में आधा योजन जल ऊपर है । (३०८ से ३१०) (यहां श्लोक के अनुसार ४५२८ योजन अर्थ निकलता है परन्तु - गिनती के - अनुसार २८४५ होता है ।)

एवं च - एकोरूको हयकर्णः तथा दर्शमुखोऽपि च ।

अश्व मुखाश्व कर्णोल्का मुखाश्च धनदन्तकः ॥३११॥

द्वीपाः सप्त यथैशान्यां दाढायां कथिता इमे ।

तावदायाम विष्कम्भाः तावत्परस्परान्तराः ॥३१२॥

जगत्यास्तावता दूरे तावदेवोच्छ्रिता जलात् ।

तथैव सप्त सप्त स्युराग्नेय्यादिविदिक्त्रये ॥३१३॥ विशेषांक॥

इसी तरह से १- एकोरूक, २- हयकर्ण, ३- आदर्श मुख, ४- अश्वमुख, ५- अश्वकर्ण, ६- उल्कामुख और ७- धनदंतक नामक सात द्वीपों के समान इशान की ओर दाढ़ा में आए हैं । इसी तरह उतनी ही लम्बाई-चौड़ाई वाले उतने ही परस्पर अन्तर वाले हैं, उतने ही जगती से दूरस्थ, उतने ही जल से ऊंचाई वाले सात-सात द्वीप अग्नि क्रोण आदि तीन विदिशाओं की दाढ़ो में आए हुए हैं । (३११-३१३)

एषां क्रमे स्वरूपे च न विशेषो मनागपि ।

विशेषः केवलं नाम्नां तान्येतानि यथाक्रमम् ॥३१४॥

आभासिकोगजकर्णो मेंढहस्तिमुखौ तथा ।

हरिकर्णो मेघमुखो लष्टदन्तोऽग्निकोणको ॥३१५॥

इन सब का क्रम अथवा स्वरूप में कुछ भी फर्क नहीं है अन्तर केवल नाम का है और उनका नाम अनुक्रम से इस प्रकार है :- १- आभासिक, २- राजकर्ण, ३- मेंढमुख, ४- हस्तिमुख, ५- हरिकर्ण, ६- मेघमुख और ७- लष्टदंत । इस नाम के सात द्वीप अग्नि कोने की ओर दाढ़ा में आते हैं । (३१४-३१५)

वैषाणिकश्च गोकर्णं स्तथायः सिंह तो मुखौ ।

अकर्णो विधुमुखश्च नैऋत्यां गूढदन्तकः ॥३१६॥

१- वर्षाणक, २- गोकर्ण, ३- अयोमुख, ४- सिंह मुख ५- अकर्ण

६- विद्युत्मुख और ७- गूढदंतक । इस नाम के सात द्वीप नैऋत्य कोन की दाढ़ा में आते हैं । (३१६)

वायव्यां नांगोलिकाख्यः शङ्कुलीकर्ण इत्यपि ।

गोमुखो व्याघ्रमुखश्च कर्णप्रावरणाभिधाः ॥३१७॥

विद्युद्दन्तशुद्धदन्तावष्टाविंशतिरित्यमी ।

विराजनतेऽन्तर द्वीपा हिमवद्गिरिनिश्रया ॥३१८॥ युग्मं ॥

तथा १- नांगोलिक, २- शङ्कुलीकर्ण, ३- गोमुख, ४- व्याघ्रमुख ५- कर्ण प्रावरण, ६- विद्युत्दंत और ७- शुद्धदंत - इस नाम के सात द्वीप वायव्यकोण की दाढ़ा में आये हैं । इस तरह समग्र अट्ठाईस अन्त द्वीप, हिमवंत पर्वत के सान्निध्य से अतीव शोभायमान हो रहे हैं । (३१८)

तातवन्त एवं शिखरिगिरेर्दाढाचतुष्टये ।

तथैव संस्थिता एवं षट्पंचाशत् भवन्त्यमी ॥३१९॥

इसी ही तरह शिखरी पर्वत की चारों दाढ़ाओं पर भी अट्ठाईस द्वीप शोभायमान हैं । अतः कुल मिलाकर छप्पन द्वीप होते हैं । (३१९)

प्रत्येकमेते सर्वेऽपि वेदिकावनमण्डिताः ।

समानं च तयोर्मानं जगतीवेदिकावनैः ॥३२०॥

इन प्रत्येक अन्तर द्वीपों के आस-पास पद्म वेदिका और बगीचे आये हैं - उसका प्रमाण जगती की वेदिका और बाग समान ही है । (३२०)

द्वीपेषु सर्वेष्वेतेषु नरास्तिष्ठन्ति युग्मिनः ।

अष्टचापतोत्तुंगाः पल्या संख्यांश्च जीविनः ॥३२१॥

इन सर्व द्वीपों में आठ सौ धनुष्य प्रमाण काया वाला, और पल्योपम के असंख्यात्वे विभाग के आयुष्य वाले युगलिक मनुष्य रहते हैं । (३२१)

दिनान्य शीतिमेकाना विहिता पत्यपालनाः ।

चतुष्पष्टया लसत्पृष्ठकरण्डकैस्सुशोमिताः ॥३२२॥

चतुर्थभक्ताहाराश्च कल्पद्रुफल भोजिनः ।

सुन्दराकृत्यो रागद्वेषशोकरूजोज्झिताः ॥३२३॥

युग्मं सुत सुता रूपं षण्मासशेष जीविताः ।

प्रसूय यान्ति त्रिदिवमन्ते मृत्वा समाधिना ॥३२४॥ विशेषांक

इनका शरीर चौंसठ पसलियों से शोभित सुन्दर आकृति वाला होता है । ये एक एक दिन के अन्तर में कल्पवृक्ष के फलों का आहार करते हैं, उनको राग द्वेष शोक अथवा रोग आदि कुछ नहीं होता, जब छह महीने का आयु शेष रह जाता है तब वे पुत्र-पुत्री रूप युगल को जन्म देते हैं और उनका उनासी दिन तक लालन पालन कर समाधि पूर्वक मृत्यु प्राप्त कर देवलोक में उत्पन्न होते हैं । (३२२-३२४)

एवं वक्ष्यमाण हैमवतादियुग्मिनोऽपि हि ।

षण्मास शेषे सुवतेऽपत्यान्यायुषि नान्यथा ॥३२५॥

अब जिसका वर्णन किया जायेगा वह हैमवंत आदि क्षेत्र के युगलिक मनुष्य की छः मास आयुष्य रहता है, तब ऐसे युगलियों को जन्म देते हैं । (३२५)

“तथोक्तं प्रथमारक स्वरूपाधिकारे जम्बूद्वीपे प्रज्ञप्तौ अन्तरद्वीपाधिकारे, जीवाभिगमे च । छम्मासाव सेसाउया जुगलं पसवं तीति ॥” इति हिमवान् पर्वतः॥

“जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में प्रथम आरे के स्वरूप के अधिकार में इसी तरह कहा है, और जीवाभिगम सूत्र में अन्तर द्वीप के अधिकार में इसी प्रकार की ही बात कही है ।” इस तरह हिमवान् पर्वत का स्वरूप कहा है ।

क्षेत्रं विभाति हिमवन्महाहिमवदन्तरे ।

अविभक्तं द्रव्यमिव द्वाभ्यां ताभ्या सुरक्षितम् ॥३२६॥

द्वाभ्यां पूर्वा परान्ताभ्यां संस्पृष्ट लवणार्णवम् ।

हारि हैमवताभिमख्यं वर्यपर्यकसंस्थितम् ॥३२७॥ युग्मं ॥

हिमवंत और महाहिमवंत पर्वत के बीच विभाग नहीं होते, द्रव्य के समान दोनों पर्वतों से सुरक्षित पर्यकासन में रहा श्रेष्ठ और सुन्दर हैमवंत नाम का क्षेत्र है। उसके पूर्व और पश्चिम के अन्तिम विभाग में लवण समुद्र को स्पर्श करता है । (३२६-३२७)

ददाति हेम युग्मिभ्यः आसनादितया ततः ।

यद्वा देवो हैमवतः स्वामी हैमवंत ततः ॥३२८॥

युगलिक मनुष्यों को आसनादि के लिए हेम - (सुवर्ण) देने का होने के कारण अथवा इनके हैमवंत नाम के देव अधिपति होने के कारण इस क्षेत्र का नाम 'हैमवंत' कहलाता है । (३२८)

द्वे सहस्रे योजनानां शतं पंचोत्तरं तथा ।

कलाः पंचैव विष्कम्भः क्षेत्रस्यास्यनिरूपितः ॥३२६॥

इस क्षेत्र की चौड़ाई दो हजार एक सौ पांच योजन और पांच कला की कही है । (३२६)

तथा शतानि षट्त्रिंशच्चतुरशीतिरेव च ।

योजनानि चतस्रश्च कलाः शर इह स्मृतः ॥३३०॥

और इस क्षेत्र का 'शर' तीन हजार छः सौ चौरासी योजन और चार कला बतलाया है । (३३०)

सप्तत्रिंशत्सहस्राणि योजनानां शतानि षट् ।

चतुः सप्ततिरस्य ज्यान्यूनाः कलाश्च षोडश ॥३३१॥

इसकी 'ज्या' सैंतीस हजार छः सौ चौहत्तर योजन और ऊपर लगभग सोलह कला कही है । (३३१)

अष्टात्रिंशत्सहस्राणि तथा सप्त शतानि च ।

चत्वारिशानि कोदण्ड पृष्टमस्य कला दश ॥३३२॥

तथा इनका 'धनुः पृष्ट' अड़तीस हजार सात सौ चालीस योजन और ऊपर दस कला होता है । (३३२)

सहस्राः षट् सप्तशती पंच पंचाशदन्विता ।

तिस्रः कलाश्च बाहान्न प्रत्येकं पार्श्वयोः द्वयोः ॥३३३॥

और इसकी दोनो ओर दो 'बाहा' है उन प्रत्येक का प्रमाण छः हजार सात सौ पचपन योजन और तीन कला है । (३३३)

अत्र क्षेत्रफलं कोटयः षट् लक्षाणि द्विसप्ततिः ।

त्रिपंचाशत् सहस्राणि योजनानां शतं तथा ॥३३४॥

पंचचत्वारिंशदाढयं कलाः पंच तथोपरि ।

अष्टौ च विकलाः प्रोक्तं खण्डैर्योजनसम्मिदैः ॥३३५॥ युग्मं ॥

योजन-योजन प्रमाण खण्डो से बना हुआ इसका क्षेत्रफल छः करोड़ बहत्तर लाख, तिरपन हजार एक सौ पैतालीस योजन, पांच कला और ऊपर आठ विकला का है । (३३४-३३५)

सर्वं रत्नमयो वृत्तवैताढयो धरणीधरः ।

मध्यभागे विभात्यत्र पल्यवत्सर्वतः समः ॥३३६॥

इस क्षेत्र के मध्य भाग में सर्व रत्न मय तथा प्याला (कटोरा) समान गोलाकार वृत्त वैताढय पर्वत शोभायमान हो रहा है । (३३६)

“जम्बूद्वीप संग्रहणी वृत्तौतु पंचवर्ण रत्नमयः ।”

‘जम्बू द्वीप संग्रहणी की टीका में सर्व रत्नमय के स्थान पर पंचवर्ण रत्नमय पर्वत बतलाया है ।’

नाम्ना च शब्दापातिति सहस्र योजनोनतः ।

शतान्यर्द्धं तृतीयानि स निमग्नो भुवोऽन्तरे ॥३३७॥

सहस्र योजनायाम विष्कम्भः परिवेषतः ।

त्रयः सहस्रा द्वाषष्टया योजनायां शतं युतम् ॥३३८॥ युग्मं ॥

‘शब्दपाती’ नाम का यह पर्वत एक हजार योजन ऊंचा दो सौ पचास योजन पृथ्वी के अन्दर गूढ और हजार-हजार योजन लम्बा चौड़ा है इसका घेराव तीन हजार एक सौ बासठ योजन का होता है । (३३७-३३८)

अभितोऽयं गिरिः पद्म वेदिका वन मण्डितः ।

प्रासादो भात्युपर्यस्य स्वरूपं तस्य पूर्ववत् ॥३३९॥

इसके आस पास सुन्दर पद्मवेदिका और वन खंड शोभायमान हैं । इसके ऊपर एक प्रासाद है, इसका वर्णन पूर्व के समान समझना । (३३९)

स्वातिनामा सुरस्तस्य स्वाम्येकपल्यजीवितः ।

राजधान्यादिकं त्वस्य सर्वं विजयदेववत् ॥३४०॥

इसका स्वामी स्वाति नाम का देव है उसका आयुष्य एक पल्योपम का है और इसकी राजधानी आदि सर्व विजयदेव के समान है । (३४०)

“अयं क्षेत्र समासाभि प्रायः । यत्तु जम्बूद्वीप पञ्जप्त्यां अत्र शब्दापातिनामा देवः उक्तः तन्नामान्तरं वा मतान्तरं वेति सर्वं विद्धेधम् ॥”

“इस तरह से क्षेत्र समास का अभिप्राय है ‘जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति’ सूत्र में तो शब्दापति नाम का देव कहा है । नामान्तर हो अथवा मतान्तर हो वह सर्वज्ञ परमात्मा जाने ।”

द्विधा विभक्तं गिरिणा नेन हैमवंत किल ।

पूर्वहैमवंतं चैवापरहैमवंतं तथा ॥३४१॥

इस वृत वैताडय पर्वत ने हैमवंत क्षेत्र को दो विभाग में बांट दिया है । एक भाग पूर्व हैमवंत और दूसरे विभाग में पश्चिम हैमवंत क्षेत्र है । (३४१)

पुनरेकैकमर्थं तत् सरिद्भ्यां विहितं द्विधा ।

रोहितांशा रोहिताभ्यां स्नुषाभ्यामिव मंदिरम् ॥३४२॥

दक्षिणाद्धं चोत्तराद्धं इति जातं चतुर्विधम् ।

षट् पंचाशत् सहस्राणि द्वयुत्तराण्यत्र निम्नगाः ॥३४३॥ युग्मं ॥

जिस तरह दो पुत्र वधू आकर घर का बटवारा करने के लिए दो विभाग कर लेती है वैसे 'रोहिता और रोहितांशा' नाम की दो नदियों ने इस प्रत्येक भाग के दक्षिणाद्ध और उत्तराद्ध इस तरह से दो-दो विभाग कर दिये हैं, अतः इस तरह से इस हैमवंत क्षेत्र के चार विभाग बने हैं । (३४२-३४३)

क्षेत्रानुभावतस्तत्र भूः शर्करादिजित्वरी ।

चक्रीभोज्यजिदास्वादफलपुष्पाः सुरद्रुमासः ॥३४४॥

इस क्षेत्र के अन्दर छप्पन हजार और दो नदियां हैं । इस क्षेत्र का ऐसा प्रभाव है कि इसकी धरती शकर से भी मीठी है । इसके कल्पवृक्ष के पुष्पफल भी चक्रवर्ती के भोजन से भी अधिक स्वादिष्ट हैं । (३४४)

येऽपि यूका मत्कुणाद्या लोकसन्तापकारिणः ।

यक्ष भूतामयाद्युत्था दोषास्तत्र न सन्ति ते ॥३४५॥

वहां लोगों को संताप कारक जूँ खटमल आदि जीवों का दुःख नहीं है, तथा भूत प्रेत यक्ष या रोग आदि किसी तरह का उपद्रव नहीं है । (३४५)

भवन्त्यहिंसका व्याघ्रसिंहाद्याः स्वर्गगामिनः ।

उद्गतान्यपि धान्यानि नराणां नोपयुक्तये ॥३४६॥

वहां के बाघ सिंह आदि हिंसक पशु भी अहिंसक होते हैं और वे भी युगलिक होने से स्वर्गगामी हैं । अनाज भी वहां बहुत उत्पन्न होता है, परन्तु मनुष्य इसका उपयोग नहीं करते हैं । (३४६)

मनुजास्तत्र गव्यूतोत्तुंगाः पल्योपमायुषः ।

उत्कर्षतो जघन्याच्च देशेनपल्यजीविनः ॥३४७॥

वहां के मनुष्य एक कोस से ऊंचे हैं उनका आयुष्य उत्कृष्ट से एक पल्योपम है और जघन्य से पल्योपम से कुछ कम है । (३४७)

चतुः षष्टिः पृष्ट करंडकाः सुन्दरभूधनाः ।

दिनान्यशीतिमेकोमां विहितापत्यपालनाः ॥३४८॥

इनकी देहाकृति सौन्दर्यवान होती है, इनकी चौंसठ पसली होती है और वे अपनी सन्तान को उनासी दिन तक ही पालन पोषण कर बड़े करते हैं । (३४८)

सत्यपि स्वर्ण रत्नादी ममत्वावेश वर्जिताः ।

सतामपि गजादीनाम ग्रहात् पाद चारिणः ॥३४९॥

वहां सुवर्ण, रत्न आदि सब कुछ होने पर भी किसी के प्रति युगलियो को ममत्वभाव नहीं होता, तथा हस्ती घोड़े आदि सवारी के योग्य प्राणि होने पर भी उसका उपयोग नहीं करते वे हमेशा पाद चारी-पैदल चलते हैं । (३४९)

विचक्षणाश्चारुवेषाः प्रेष्य प्रेषकतोऽज्ञिताः ॥

चतुर्थान्ते चामलक फल प्रमित भोजिनः ॥३५०॥

वे विचक्षण होते हैं, सुन्दर वेष धारण करते हैं, और एक-एक दिन के अन्तर (बाद) में केवल एक आंवल के जितना आहार लेते हैं, वहां सेव्य-सेवक (स्वामी और सेवक) भाव जैसा कुछ भी नहीं होता है । (३५०)

आद्य संहननाः पृथ्वी स्वर्दु पुष्पफलाशिनः ।

प्रकृत्या प्रतनुद्वेषरागाः स्वर्लोक याधिनः ॥३५१॥ कुलकम् ॥

इनका प्रथम वज्ररूप नाराच संघयण होता है, वे पृथ्वी और कल्पवृक्ष के पुष्प फलों का आहार करते हैं और स्वभाव से अल्प रागद्वेष वाले होने से स्वर्गगामी ही होते हैं । (३५१)

बद्ध स्नेह इवैतस्मिन् कालः सुषमदुःषमा ।

सार्वदीनस्तत्स्वरूपं काल लोके प्रवक्ष्यते ॥३५२॥

इति हैमवंत क्षेत्रम् ॥

प्रेम पूर्वक बंधन हुआ हो ऐसा सुषमा दुःषमा काल सदा अवस्थित (विद्यमान) रहता है । उसका स्वरूप आगे काल लोक के अधिकार में कहा जायेगा (३५२) इस तरह से हैमवंत क्षेत्र का स्वरूप कहा है ।

अस्योत्तरान्ते च महाहिमवान्नाम पर्वतः ।

सर्वरत्नमयो भाति द्वियोजन शतान्तः ॥३५३॥

इस हैमवंत क्षेत्र की उत्तर दिशा में सर्वरत्नमय और दो सौ योजन ऊंचा हिमवान् नाम का पर्वत है । (३५३)

“अयं जम्बू द्वीप प्रज्ञप्त्यभिप्रायः ॥ बृहत्क्षेत्र विचारादौ तु अस्यपीत स्वर्ण वर्ण मयत्वमुक्तम् इति मतान्तरमसेयम् । अनेनैव च मतान्तराभि प्रायेण जम्बूद्वीप पट्टादौ अस्य पीत वर्णत्वं दृश्यते इति ॥”

‘यह अभिप्राय’ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र’ का है । ‘बृहत् क्षेत्र विचार’ आदि ग्रन्थों में तो ‘सर्वरत्नमय’ के स्थान पर ‘पीतस्वर्ण मय’ लिखा है यह मतान्तर समझना । और इस मतान्तर के ही अभिप्राय को लेकर जम्बूद्वीप के पट्ट आदि में पीत वर्ण (पीले रंग) दिखता है ।’

पंचाशतं योजनानि स निमग्नो धरान्तरे ।

पूर्वं पराम्भोनिधिस्पृक् प्रमिमासुरिवान्तरम् ॥३५४॥

यह पर्वत पचास योजन पृथ्वी के अन्दर है, मानो यह पूर्व और पश्चिम समुद्र बीच के अन्तर को मापता हो, इस तरह दोनों समुद्र को स्पर्श करके रहा है । (३५४)

योजनानां सहस्राणि चत्वार्यस्य शतद्वयम् ।

दशोत्तरं दश कला विष्कम्भोऽथ शरं बुवे ॥३५५॥

योजनानां सहस्राणि सप्तैवाष्टौ शतानि च ।

चतुर्नवत्युपेतानि चतुर्दश तथा कलाः ॥३५६॥

इसका ‘विष्कम्भ’ चौड़ाई चार हजार दो सौ दस योजन और दस कला है और ‘शर’ सात हजार आठ सौ चौरानवे योजन और चौदह कला कहते हैं । (३५५-३५६)

त्रिपंचा शतसहस्राणि शतानी नव चोपरि ।

एकत्रिंशद्यो जनानि ष्वास्य सार्धाश्च षट् कलाः ॥३५७॥

इसकी ‘ज्या’ तिरवन हजार नौ सौ इक्तीस योजन और ऊपर साढ़े छः कला है । (३५७)

सहस्राः सप्तपंचाशत्त्रिनवत्यधिकौ शतौ ।

महाहिमवति प्रोक्तं धनुःपृष्ठं कलाः दश ॥३५८॥

इसका 'घनुःपृष्ठ' सत्तावन हजार दो सौ तिरानवे योजने और दस कला कहा है । (३५८)

सहस्राणि नवशतद्वयं षट्सप्ततिस्तथा ।

सान्द्राः नवकलाः प्रोक्ता बाह्यास्यैकैक पार्श्वतः ॥३५९॥

इसके दोनों तरफ का 'बाहा' प्रत्येक नौ हजार दो सौ छिहत्तर योजन और साढे नौ कला कहा है । (३५९)

एकोनविंशति कोटयो योजनानां समन्विताः ।

अष्ट पंचाशता लक्षैरष्टषष्टया सहस्रकैः ॥३६०॥

शतं च षडशीत्याढयं कला दस तथाधिकाः ।

विकलाः पंच शैलेस्मिन् गणितं प्रतरात्मकम् ॥३६१॥ युग्मं ॥

इसका 'प्रतरात्मक गणित' अर्थात् प्रतर उन्नीस करोड़ अठ्ठावन लाख अड़सठ हजार एक सौ छियासी योजन दस कला और पांच विकला है । (३६०-३६१)

शतान्येकोन चत्वारिंशत्कोटीना तथा पराः ।

कोटयः सप्तदश लक्षाः षड्त्रिंशदथ चोपरि ॥३६२॥

सप्त त्रिंशत्सहस्राणि त्रिंशती सहिताष्टभिः ।

विकला द्वादशेत्युक्तं महाहिमवतो घनम् ॥३६३॥ युग्मं ॥

इसका घनक्षेत्रफल उन्तालीस सौ सत्रह करोड़ छत्तीस लाख सैंतीस हजार तीन सौ आठ योजन और ऊपर बारह विकला कहा है । (३६२-३६३)

कूटान्यष्टौ पर्वतेऽस्मिन् सिद्धायतनमादिमम् ।

महाहिमवदाव्हांनं तथा हैमवताभिघम् ॥३६४॥

रोहिताख्यं च ह्रीकूटं हरि कान्ताभिथा तथा ।

हरिवर्षं च वैडूर्यं कूटानि हिमवद् गिरेः ॥३६५॥ युग्मं ॥

इस पर्वत पर आठ कूट है, उसमें पहला सिद्धायतन दूसरा महा हिमवत्, तीसरा हेमवत् चौथा रोहित, पांचवा ह्रीकूट, छटा हरिकान्त, सातवां हरिवर्ष और आठवां वैडूर्य कूट है । (३६४-३६५)

पूर्वापरायत श्रेण्याः स्थितिः मानं च पूर्वं यत् ।

प्राग्वत्सिद्धायतने च प्रासाद्रः शाश्वतोऽर्हताम् ॥३६६॥

इस पर्वत की पूर्व पश्चिम लम्बी श्रेणी की स्थिति और मान, पूर्व के समान

समझना । तथा सिद्धायतन कूट और इसके ऊपर के शाश्वत श्री जिनेश्वर भगवन्त के प्रासाद का स्वरूप भी पूर्व के समान समझना । (३६६)

शेषेषु देव देवीनां प्रासादास्तेऽपि पूर्ववत् ।

स्वरूपं राजधान्यश्च प्राग्वत्तत्स्वामिनामपि ॥३६७॥

शेष सात कूट पट के देव देवियों के प्रासाद भी पूर्ववत् समझना । तथा उनकी राजधानी और स्वामियों का स्वरूप भी पूर्वोक्त के अनुसार समझना चाहिए । (३६७)

महापद्महृदश्चास्योपरिमध्ये विराजते ।

द्वे सहस्रे योजनानामायामेनोदितः स च ॥३६८॥

एकं सहस्रं विस्तीर्णः उद्विद्धोदशयोजनीम् ।

तस्य मध्ये पद्ममेकं षट् परिक्षेप शोभितम् ॥३६९॥ युग्मं ॥

इस पर्वत के ऊपर मध्य भाग में 'महापद्म' नामक सरोवर है, वह दो हजार योजन लम्बा, एक हजार योजन चौड़ा और दस योजन गहरा है, इसके बीच एक सुन्दर कमल है । उस कमल के आस-पास अन्य कमलों के छः वलय हैं ।

पद्म हृदाञ्जतुल्यानि पद्मान्येतानि संख्यया ।

विष्कम्भा यामवाहृत्यैः द्विगुणानि ततः पुनः ॥३७०॥

इन सर्व कमलों की संख्या पद्म सरोवर के 'कमलों के समान है, परन्तु उनकी लम्बाई-चौड़ाई और मोटाई से दो गुणा, दो गुणा है । (३७०)

तत्समानो द्विद्धतया हृदस्यास्य कजान्यपि ।

तावदेवोच्छ्रितानि स्युरेवमग्रेऽपि भाव्यताम् ॥३७१॥

दोनो सरोवर समान गहरे होने से दोनो के कमलों की ऊंचाई में समानता है । आगे ऐसी बात आए वहां भी इसी तरह समझ लेना । (३७१)

मूल पद्मे च भवनं श्रीदेवी भवनोपमम् ।

हीदेवी च वसत्यस्मिन्नेकपत्न्योपम स्थितिः ॥३७२॥

मूल कमल में पूर्वोक्त श्री देवी के भवन समान भवन है और उसमें पत्न्योपम के आयुष्य वाली 'हीदेवी' रहती है । (३७२)

दाक्षिणात्यतोरणेन महापद्म हृदात्ततः ।

निर्गता रोहिता नाम्नी दक्षिणाभिमुखी नदी ॥३७३॥

उस महापद्म सरोवर के दक्षिण दिशा के तोरण में होकर रोहिता नामक नदी निकलकर दक्षिण दिशा में बहती है । (३७३)

सहस्रं योजनानां षट्शतीं पंचसमन्विताम् ।

कलाः पंच दक्षिणस्यां सा गत्वा पर्वतोपरि ॥३७४॥

वज्रजिह्विकया शैलात् प्रवाहेण पतत्यथः ।

सद्रोहिताप्रपाताख्ये कुण्डेरज्जुरिवावटे ॥३७५॥ युग्मं ॥

वह नदी एक हजार छः सौ पांच योजन और पांच कला समान पर्वत पर बहकर, फिर कुएं में रस्सा गिरता है जैसे विशाल धारा रूप में रोहिता प्रपात नाम के कुंड में गिरती है । (३७४-३७५)

अत्रायमान्नायः-

व्यासं हृदस्य संशोध्य गिरि व्यासेऽर्द्धिते च यत् ।

तावन्नदीनां क्रमणं गिरौ स्याद्दक्षिणोत्तरम् ॥३७६॥

यहां परम्परा इस प्रकार से है :- पर्वत के व्यास में से सरोवर का व्यास बाद करते जो संख्या आती है उसका आधा करना, उसका जो परिणाम आता है वह नदी का पर्वत पर, दक्षिणोत्तर क्रमशः समझना । (३७६)

दाक्षिणात्यतोरणेन तस्मान्निर्गत्य कुण्डतः ।

प्राच्यं हेमवतस्यार्द्धं द्वेषा विदधती किल ॥३७७॥

क्रोशद्वयेनासंप्राप्ता शब्दापाति महीधरम् ।

आलीव रोहितांशाया हृष्टागात्पूर्वं संमुखी ॥३७८॥

अष्टाविंशत्या सहस्रैः नदीभिः परिवारिता ।

अथो विभिद्य जगती पूर्वाब्धि याति रोहिता ॥३७९॥ विशेषांक

पर्वत से कुंड में गिरने के बाद वहां से दक्षिण तरफ के तोरण में होकर बाहर निकल कर पूर्वार्द्ध हेमवत क्षेत्र को दो विभाग में बांट कर शब्दापाती पर्वत से दो कोस दूर हट कर वह रोहिता नदी मानो रोहितांशा नदी की सखी हो इस तरह हर्ष पूर्वक इसके सन्मुख आई, वहां उसे अट्ठाईस हजार नदियां आ मिली । उन्हें साथ में लेकर जगती (किले) के नीचे से भेदन कर पूर्व समुद्र को मिलती है ।

(३७७-३७९)

प्रवाह जिह्निका कुण्ड द्वीपादिषु भवेदिह ।

विष्कम्भदैर्ध्वोद्धेधादि रोहितांशासमं समम् ॥३८०॥

इसका प्रवाह, धारा, कुंड द्वीप आदि सर्व लम्बाई-चौड़ाई और गहराई आदि सारी वस्तुएं रोहितांशा नदी के समान जानना । (३८०)

औत्तराहतोरणेन महापद्म इदात्ततः ।

हरिकान्तेति तटिनी निर्गतोत्तरसन्मुखी ॥३८१॥

इस महापद्म सरोवर के उत्तर तरफ के तोरण में से हरिकान्ता नामक नदी निकलती है और वह उत्तर की ओर बहती है । (३८१)

पूर्वोक्तमानमुल्लंघ्य गिरि सोत्तरसन्मुखम् ।

हरिकान्ता प्रपाताख्ये कुण्डे पतति जिह्वया ॥३८२॥

पूर्व कथन अनुसार पर्वत पर उत्तर की ओर बहती वह नदी हरिकान्ता प्रपात नामक कुंड में विशाल धारा रूप में गिरती है । (३८२)

औत्तराहतोरणेन तस्मान्निर्गत्य कुण्डतः ।

अष्टाविंशत्या सहस्रैः नदीभिः पथि संभृता ॥३८३॥

गन्धापातिनम प्राप्तान्तरितं योजनेन सा ।

स्मृत प्रयोजने वेतः प्रस्थिता पश्चिमा मुखी ॥३८४॥

अष्टाविंशत्या सहस्रैः नदीभिः पुनराश्रिता ।

एवं नदीनां षट्पंचाशता सहस्रकैर्वृता ॥३८५॥

हरिवर्ष पश्चिमार्धं द्वेधा विदधती किल ।

अधो विभिद्य जगती पतिता पश्चिमाध्वुधौ ॥३८६॥

उस कुंड के उत्तर तोरण में से वापिस निकलकर उत्तर की ओर बहती है। मार्ग में अट्ठाईस हजार नदियां मिलती हैं । उन नदियों का परिवार लेकर गंधापाती पर्वत से एक योजन दूर रहकर, मानो कुछ काम याद आया हो, इस तरह पश्चिम की तरफ घूमकर पुनः दूसरी अट्ठाईस हजार नदियां मिलती है । उनसे चिरी हुई अर्थात् छप्पन हजार नदियों से संयुक्त होकर पश्चिमार्ध हरिवर्ष को दो विभाग में बांटते, जगती के किले के नीचे भाग को भेदन कर वह नदी पश्चिम समुद्र को मिलती है । (३८३-३८६)

योजनानि ध्रुवं पंच विंशति हृदनिर्गमे ।
 विष्कम्भोऽस्या योजनार्धे चोद्वेधः कुण्ड सीमया ॥३८७॥
 ततश्च वर्धते व्यासो धनुषि प्रतियोजनम् ।
 एकतो विंशतिश्चत्वारिंशच्चोभयतः पुनः ॥३८८॥
 एवं च द्वे शते सार्धे योजनान्यब्धि संगमे ।
 विष्कम्भेऽस्यास्तत्र पुररूद्वेधः पंचयोजनी ॥३८९॥

इसकी गहराई कुंड तक में आधा योजन की है, और चौड़ाई सरोवर में से निकलते समय में पच्चीस योजन की है, परन्तु उसके बाद प्रत्येक योजन में दोनों तरफ बीस-बीस मिलाकर चालीस धनुष्य की बैठती जाती है, अतः इस तरह समुद्र को मिलने तक में चौड़ाई अढ़ाई सौ योजन और गहराई पांच योजन की होती है । (३८७-३८९)

योजनायामबाहल्या जिहिकास्याः प्रकीर्तिता ।
 विष्कम्भतः पुनः पंच विंशतियोजनान्यसौ ॥३९०॥

इसका धारा एक योजन लम्बा और मोटा कहा है और पच्चीस योजन चौड़ा कहा है । (३९०)

द्वे शते योजनानां च चत्वारिंशत्समन्विते ।
 कुण्डस्यायाम् विष्कम्भावुद्वेधो दशयोजनी ॥३९१॥

उस कुंड की लम्बाई चौड़ाई दो सौ चालीस योजन की और गहराई दस योजन की है । (३९१)

द्वीप स्यायाम् विष्कम्भो द्वात्रिंशद्योजनानि च ।
 जलात्समुच्छ्रयः क्रोश द्वयं शेषं तु पूर्ववत् ॥३९२॥

इति महाहिमवान् पर्वतः ॥

इस कुंड में रहे द्वीप की लम्बाई-चौड़ाई बत्तीस योजन है, और जल के ऊपर ऊंचाई दो कोस की है । शेष सारा पूर्व समान समझना । (३९२)

इस तरह से महाहिमवान् पर्वत का स्वरूप समझना ॥

उत्तरस्यां हरिवर्ष महाहिमवतो गिरेः ।

प्रौढपर्यकसंस्थानमन्ताभ्यां वारिधिं स्पृशत् ॥३९३॥

अब इस महा हिमवन्त पर्वत के उत्तर दिशा में हरि वर्ष क्षेत्र है इसका पर्यक (पलंग) समान आकार है, और इसके दोनों किनारे समुद्र तक पहुँचते हैं । (३६३)

ध्यासोऽस्याष्टौ सहस्राणि योजनानां चतुः शती ।

तथैकविंशतिश्चैका कलात्राय शरं बुवे ॥३६४॥

इस क्षेत्र का विष्कम्भ चौड़ाई में आठ हजार चार सौ इक्कीस योजन और एक कला कहा है । (३६४)

सहस्राः षोडश त्रीणि योजनानां शतानि च ।

युक्तानि पंचदशभिः कलाः पंचदशोपरि ॥३६५॥

इसका 'शर' सोलह हजार तीन सौ पंद्रह योजन और ऊपर पंद्रह कला होता है । (३६५)

त्रिसप्ततिः सहस्राणि जीवा नव शतानि च ।

एकोत्तराण्यथ कलाः सार्द्धाः सप्त दशोपरि ॥३६६॥

इसकी 'ज्या' तिहत्तर हजार नौ सौ एक योजन और ऊपर साढ़े सत्रह कला होती है । (३६६)

धनुःपृष्ठं सहस्राणि चतुरशीतिरेव च ।

षोडशाढ्यान्यथ कलाश्चतस्रः परिकीर्तिताः ॥३६७॥

और इसकी 'धनुः पृष्ठ' चौरासी हजार सोलह योजन और चार कला कहा गया है । (३६७)

त्रयोदश सहस्राणि त्रिंशती चैकषष्टियुक् ।

योजनानां षट् कलाश्च सार्द्धा बाहैकपार्श्वतः ॥३६८॥

तथा इसकी प्रत्येक 'बाहा' तेरह हजार, तीन सौ इकसठ योजन और साढ़े छः कला का होता है । (३६८)

चतुः पंचाशच्च कोटयो योजनानां तथा पराः ।

सप्त चत्वारिंश देव लक्षाः किल तथोपरि ॥३६९॥

त्रिसप्ततिः सहस्राणि सप्तत्याढ्याष्ट शत्यथ ।

कलाः सप्तात्र सकलं गणितं प्रतरात्मकम् ॥४००॥ युग्मं ॥

तथा इसका प्रतरात्मक गणित सारा मिलाकर चौवन करोड़, सैंतीस लाख, तिहत्तर हजार, आठ सौ सत्तर योजन और ऊपर सात कला होती है । (३६९-४७०)

मध्येऽस्य गन्धापातीति वृत्तवैताढ्यपर्वतः ।

स्वरूपमस्य पूर्वोक्त शब्दापातिसमं समम् ॥४०१॥

इस हरिवर्ष क्षेत्र के मध्य भाग में गंधापाती नामक वृत्त वैताढ्य पर्वत है इसका सारा स्वरूप पूर्वोक्त 'शब्दापाती' पर्वत के समान है । (४०१)

पद्मनामा सुरस्त्वस्य स्वाप्येकपत्य जीवितः ।

स्वरूपं सर्वमेतस्य ज्ञेयं विजयदेववत् ॥४०२॥

पद्म नाम का एक पत्योपम के आयुष्य वाला देव इसका स्वामी है इसका स्वरूप पूर्वोक्त विजयदेव समान जानना । (४०२)

लक्षमेक सहस्राश्च द्वादश द्वयधिका इह ।

हरिवर्षाभिध क्षेत्रे नद्यः प्रोक्ता जिनेश्वरैः ॥४०३॥

इस हरिवर्ष क्षेत्र के अन्दर एक लाख बारह हजार दो नदियां हैं । ऐसा जिनेश्वर भगवन्त ने कहा है ।

क्षेत्रे पुनर्वसन्त्यत्र नरायुगलधर्मिणः ।

क्रोश द्वय समुत्तुंगाः सल्लक्षणा विचक्षणाः ॥४०४॥

इस क्षेत्र में पुत्र-पुत्री रूप साथ में जन्म लेने वाले विचक्षण विद्वान चतुर युगलिक मनुष्य निवास करते हैं, उनकी काया दो कोस की होती है और इनमें उत्तम सुलक्षण होते हैं । (४०४)

आयुरूत्कर्षतस्त्वेषां पूर्णे पत्योपमद्वयम् ।

पत्योपमासंख्यभाग हीनं तच्च जघन्यतः ॥४०५॥

इनका आयुष्य उत्कृष्ट से दो पत्योपम का होता है और जघन्य से पत्योपम के असंख्यवा भाग कम दो पत्योपम होता है । (४०५)

तेऽसकृत षष्ठभक्तान्ते बदरप्रमिताशिनः ।

अष्टाविंश शतं तेषां देहे पृष्टकरंडकाः ॥४०६॥

वे हमेशा छट्ट-छट्ट के पारणे में केवल बेर के जितना आहार लेते हैं उनके शरीर में एक सौ अट्टाईस पसली (छाती पर की हड्डी) होती है । (४०६)

चतुः षष्टिं च दिवसान् विधायापत्यपाल नाम् ।

स्वर्लोकमेव ते यान्ति कालश्च सुषमान्वहम् ॥४०७॥

ये युगलिये चौंसठ दिन तक अपने संतति का पालन पोषण करके मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग में ही जाते हैं । और वहां हमेशा सुषमा काल रहता है । (४०७)

क्षेत्रानुभावः सर्वं च बलं संहननादिकम् ।

अनन्त गुण पर्यायं ज्ञेयं हैमवतादिह ॥४०८॥

इति हरिवर्ष क्षेत्रम् ॥

इस क्षेत्र का प्रभाव, वहां के जीवों का बल, संघयण आदि सर्व वस्तु हेमवन्त क्षेत्र की वस्तु से अनन्त गुणा पर्याय वाला होता है । (४०८)

हरिवर्ष क्षेत्र का स्वरूप कहा है ।

हरिवर्षस्यात्तरान्ते निषधो नाम पर्वतः ।

स चतुर्योजन शतोऽत्तुंगो रक्तसुवर्णजः ॥४०९॥

योजनानां शतं भूमौ मग्नोऽन्तस्स्पृष्टवारिधिः ।

दाक्षिणात्या भित्तिरिव महाविदेह वेश्मनः ॥४१०॥ युग्मं ॥

इस हरिवर्ष क्षेत्र की उत्तर दिशा के अन्तिम भाग में निषध नाम का लाल सुवर्ण का पर्वत है । वह चार सौ योजन ऊंचा एक सौ योजन पृथ्वी के अन्दर रहा, और दोनों अन्तिम किनारे समुद्र को स्पर्श कर रहा है । वह मानो महाविदेह क्षेत्र रूपी घर की दक्षिण की ओर दीवार न हो इस तरह लगता है । (४०९-४१०)

योजनानां सहस्राणि षोडशाष्टौ शतानि च ।

द्विचत्वारिंशदाढ्यानि विष्कम्भोऽस्य कलाद्वयम् ॥४११॥

इस पर्वत का विष्कम्भ सोलह हजार आठ सौ बयालीस योजन और दो कला का है । (४१०)

त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि सप्तपंचाशता युतम् ।

शतमेकं सप्तदश कलाश्च निषधे शरः ॥४१२॥

इस निषध पर्वत का 'शर' तैंतीस हजार एक सौ सत्तावन योजन और सत्रह कला का है । (४१२)

योजनानां सहस्राणि चतुर्नवतिरेव च ।

षट्पंचाशं शतमेकं प्रत्यंचास्य कलाद्वयम् ॥४१३॥

और इसकी 'ज्या' चौरानवे हजार एक सौ छप्पन योजन और दो कला का कहा है । (४१३)

लक्षं चतुर्विंशतिश्च सहस्राणि शतत्रयम् ।

षट्चत्वारिंशतोपेतं धनुषष्टं कला नव ॥४१४॥

इसका धनुः पृष्ठ एक लाख चौबीस हजार, तीन सौ छियालीस योजन और नौ कला का होता है ।

विंशतिश्च सहस्राणि पंचषष्टियुतं शतम् ।

सान्द्धं कलाद्वयं ज्ञेयं बाहास्यैकैकपाश्वरतः ॥४१५॥

इनकी दोनों तरफ की दो बाहा है, उसमें प्रत्येक बाह बीस हजार एक सौ पैंसठ योजन और अढ़ाई कला का होता है । (४१५)

कोटीनां शतमेकं द्वि चत्वारिंशच्च कोटयः ।

चतुः पंचाशच्च लक्षाः षट्षष्टिश्च सहस्रकाः ॥४१६॥

सैकोनसप्ततिः पंचशती तथाधिकाः कलाः ।

अष्टादशास्य प्रतरगणितं भूवि कीर्त्तितम् ॥४१७॥ युग्मं ॥

और इसका प्रतर रूप समग्र गणित एक सौ बियालीस करोड़ चौवन लाख छियासठ हजार पांच सौ उनहत्तर योजन और अठारह कला का होना बताया है । (४१६-४१७)

सप्तपंचाशत्सहस्राः कोटीनां कोटयः पराः ।

अष्टादश तथा लक्षाः षट्षष्टि रथचोपरि ॥४१८॥

सहस्राणि योजनानां सप्तविंशतिरेवच ।

शतानि नव सैकोना शीतीन्यत्र भवेत् धनम् ॥४१९॥ युग्मं ॥

और इसका घन क्षेत्रफल सत्तावन हजार और अठारह करोड़ छियासठ लाख सत्तासी हजार नौ सौ उन्नासी योजन का होता है । (४१८-४१९)

सिद्धायतन कूटं च द्वितीय निषधाभिधम् ।

हरिवर्षाभिधं कूट पूर्वविदेहसंज्ञकम् ॥४२०॥

हरि कूटं धृति कूटं शीतोदा कूटमित्यपि ।

अपर विदेहकूटं कूटं च रूचकाह्वयम् ॥४२१॥

निषधे नव कूटानि श्रेण्या स्थितानि पूर्ववत् ।

आद्ये चैत्यं देवदेव्योऽन्येषु कूटसमाभिधाः ॥४२२॥ विशेषांक

इस निषध पर्वत पर १- सिद्धायतन कूट, २- निषध कूट, ३- हरि वर्ष कूट, ४- पूर्व विदेह, ५- धृति कूट, ७- शीतोदाकूट, ८- अपर विदेह कूट और ९- रूचक कूट रूप नौ शिखर हैं और वे पूर्व के समान श्रेणिबद्ध रहे हैं । इसमें प्रथम शिखर पर एक चैत्य है और शेष आठ पर शिखरों के ही नाम वाले देव देवियों का निवास स्थान है । (४२०-४२२)

तिंगिच्छिस्तु पौष्य रजस्तत्प्रधान इह हृदः ।

तिंगिच्छि नामा चत्वारि सहस्राण्ययमावतः ॥४२३॥

विस्तीर्णश्च द्वे सहस्र उद्विद्धो दशयोजनीम् ।

पद्म हृद समसंख्यैः पद्मै संशोभितोऽभितः ॥४२४॥

तिंगिच्छि अर्थात् पुष्परज मुख्य रूप में होने से तिगिच्छि नामक एक सरोवर यहां आया है । वह चार हजार योजन लम्बा है, दो हजार योजन योजन चौड़ा है और दश योजन गहरा है । इस सरोवर में चारों तरफ पद्मसरोवर के अनुसार की संख्या में सुन्दर कमल शोभायमान हो रहे हैं । (४२३-४२४)

विष्कम्भादि तु पद्मोभ्यस्तेभ्य एषां चतुर्गुणाम् ।

यथात्र स्यान्मूलपद्मं चतुर्योजन समितम् ॥४२५॥

इन कमलों की चौड़ाई आदि पद्म सरोवर के कमलों से चार गुणा है दृष्टान्त रूप में इस सरोवर का मूल कमल है वह उससे चार गुणा अर्थात् चार योजन का है । (४२५)

भवनं मूल पद्मोऽत्र श्रीदेवी भवनोपमम् ।

धी देवी स्वामिनी तस्य सैकपल्योपम स्थितिः ॥४२६॥

इस सरोवर के मूल कमल में भी श्री देवी के भवन सदृश एक भवन है । उसमें एक पल्योपम की आयुष्य वाली 'धी देवी' नाम की स्वामिनी निवास करती है । (४२६)

दाक्षिणात्यतोरणेन तिगिच्छिहृदतोमुतः ।

तटिनी हरिसलिला निर्गता दक्षिणामुखी ॥४२७॥

योजनानां सहस्राणि सप्तोपरि शतानि च ।

चत्वारिचैक विशानि कलां च पर्वतोपरि ॥४२८॥

गत्वासौ हरिसलिलाकुण्डे पतति पर्वतात् ।

दक्षिणेन तोरणेन तस्मान्निर्गत्य कुण्डतः ॥४२९॥

हरिवर्षपूर्वभागं विभजन्ती द्विधाकिल ।

एकेन योजनेनार्वाक् गन्धापातिधराधरात् ॥४३०॥

चलिता प्राङ्मुखीभूय विशतिप्राच्यवारिधौ ।

षट्पंचाशच्छैवलिनीसहस्रैः परिवारिता ॥४३१॥ कलापकम्

इस तिगिंछ हद (सरोवर) के दक्षिण ओर के तोरण में से हरिसलिता नामक नदी निकलती है । वहां से निकल कर दक्षिण की ओर सात हजार, चार सौ इक्कीस योजन और एक कला पर्वत पर बहती है । वहां से हरिसलिल नामक कुंड में गिरती है, इसमें से वापिस दक्षिण ओर के तोरण में से निकल कर बहती हुई पूर्व हरिवर्ष क्षेत्र को दो विभाग- बंटवारा करती गंधापति पर्वत से एक योजन प्रमाण दूर से ही पूर्व की ओर बहती है । मार्ग में छप्पन हजार नदियां मिलती हैं । उस परिवार को साथ में लेकर पूर्व समुद्र में मिलती है । (४२७-४३१)

प्रमाणंजिह्विकाकुण्डद्वीपप्रवाहवृद्धिगम् ।

हरिकान्तासमं सर्वं ज्ञेयमत्राविशेषितम् ॥४३२॥

इसकी जलधारा, कुंड, द्वीप और प्रवाह की वृद्धि सम्बन्धी सर्व स्वरूप अल्पमात्र भी फेरफार बिना हरिकांता नदी के समान समझना । (४३२)

औत्तराहतोरणेन तिगिच्छिहदतस्ततः ।

शीतोदेति निर्झरिणी निर्गतोत्तरसन्मुखी ॥४३३॥

प्रागुक्तमानमुल्लंघ्य क्षेत्रक्षितिधरोपरि ।

शीतोदा कुण्डे पतति वज्र जिह्विकया नगात् ॥४३४॥ युग्मं ॥

कुण्डादस्मादीत्तराहतोरणेनोत्तरा मुखी ।

यान्ती कुरुहृदान् पंच खलेन कुर्वती द्विधा ॥४३५॥

नदी सहस्रैश्चतुरशील्या पथ्याश्रिता क्रमात् ।

यान्ती देवकुलान्ते भद्रसालवनान्तरे ॥४३६॥

यावद्द्वार्यां योजनाभ्यां सुमेरुर्दूरतः स्थितः ।

तावत्तत्संमुखं याता कामुकीव रसाकुला ॥४३७॥

वक्षस्कारगिरेर्विद्युत्प्रभस्याधोविभागतः ।

परावृत्ता पश्चिमातो लज्जितेवाभिसारिका ॥४३८॥

द्वेधापरविदेहांश्च कुर्वती सरितां श्रिता ।

अष्टाविंशत्या सहस्रैरेकैक विजयोद्गतैः ॥४३९॥

श्रिताम्भोधि प्रवेशे च मूलतः सर्वसंख्यया ।

नदीनां पंचभिः लक्षैः सद्वात्रिंशत्सहस्रकैः ॥४४०॥

अथो जयन्तद्वारस्य विभिद्य जगतीतटम् ।

प्रविष्टा पश्चिमाम्भोधौ शीतोदाख्या महानदी ॥४४१॥ कुलकं

इस तिगिंछि सरोवर के उत्तर दिशा के तोरण में से शीतोदा नाम की नदी निकलती है और वह उत्तर की ओर बहती है, तथा पूर्व में कहा है उतना ही पर्वत पर बहती है। वहां से विशाल धारा रूप में शीतोदा कुंड में गिरती है, वहां से उसके उत्तर की तरफ के तोरण में से निकल कर उत्तर की ओर बहती है। वहां प्रपंची मनुष्य के समान उत्तर कुरुक्षेत्र के पांच सरोवरों का दो विभाग में भेदन करती, मार्ग में आने वाली चौरासी हजार नदियों को मिलाकर साथ में लेकर अनुक्रम से देव कुरुक्षेत्र के आखिर में भद्रशाल वन में पहुँचती है। वहां सुमेरू पर्वत से दो योजन दूर रहकर कामातुर स्त्री के समान उसके सन्मुख जाकर विद्युत्प्रभ नाम के वक्षस्कार पर्वत के नीचे के भाग से लज्जित, अभिसारिका के समान, वापिस मुड़कर अपर विदेह को दो भागों में बटवारा करती, एक-एक विजय की अट्ठाईस, अट्ठाईस हजार नदियों को लेकर, इस तरह प्रारम्भ से लेकर समुद्र में मिलने तक कुल पांच लाख, बत्तीस हजार नदियों के परिवार सहित बहती हुई, जयन्त द्वार के नीचे जगती किले को भेदन करती आखिर में यह महानदी पश्चिम समुद्र में मिलती है। (४३३ से ४४१)

पंचाशद्योजनान्यस्या विष्कम्भो हृदनिर्गमे ।

एकं योजनमुद्वेधः स कुण्डनिर्गमावधिः ॥४४२॥

व्यासेऽशीतिश्च वर्धन्ते धनूंषि प्रतियोजनम् ।

तत् पंचयोजनशतव्यासेयं वार्धिसंगमे ॥४४३॥

तत्रोद्वेधो योजनानि दशैतस्याश्च जिह्विका ।

पंचाशद्विस्तृता द्वे च योजने मेदुरायता ॥४४४॥

कुंड में गिरने के पहले इसकी गहराई एक योजन की है और सरोवर में से निकलते समय इसकी चौड़ाई पचास योजन की कही है, जो उसके बाद प्रत्येक योजन में अस्सी-अस्सी धनुष्य चौड़ाई में बढ़ती जाती है। आखिर समुद्र में मिलते समय पांच सौ योजन की हो जाती है और उस स्थान पर इसकी गहराई

बढ़कर दस योजन होती है । इसकी धारा पचास योजन चौड़ी और दो योजन मोटी होती है । (४४२-४४४)

चत्वारियोजनशतान्यशीतिश्च तथोपरि ।

कुण्डस्यायामविष्कम्भौ दशोद्वेधश्च कीर्त्तितः ॥४४५॥

शीतोदा कुंड की लम्बाई-चौड़ाई चार सौ अस्सी योजन है और गहराई दस योजन की कही है । (४४५)

चतुष्पष्टियोजनानि द्वीपोऽस्या विस्तृतायतः ।

योजनार्द्धमुद्धितोऽद्भ्यो गंगावत् भवनादिकम् ॥४४६॥

उस कुंड में रहे द्वीप की लम्बाई-चौड़ाई चौंसठ योजन है और इसके जल ऊपर की ऊंचाई आधा योजन है उसके ऊपर भवन आदि जो है वह सब गंगा अनुसार जानना । (४४६)

शीतोप्येवं नीलवतो निर्गता केसरिहृदात् ।

शीताकुण्डे निपत्यातः प्रस्थिता दाक्षिणामुखी ॥४४७॥

प्रागद्विदधती द्वेधा पंचोत्तरकुम्हदान् ।

नदीसहस्रैश्चतुर शीत्थोदक्कुरूगैःश्रिता ॥४४८॥

प्राप्तोत्तरकुम्हान्ते भद्रसालवनं क्रमात् ।

असंप्राप्ता योजनाभ्यां द्वाभ्यां मन्दरभूधरम् ॥४४९॥

गिरेर्माल्यवतौऽधस्तात् प्रस्थिता पूर्वं संमुखी ।

द्वेधा विदधती पूर्वविदेहान् पथि चाश्रिता ॥४५०॥

अष्टाविंशत्या सहस्रैरेकैकविजयोदगतैः ।

नदीनां पंचभिर्लक्षैः सद्वात्रिशत्सहस्रकैः ॥४५१॥

सर्वाग्नेणोति संयुक्ता विभिद्य जगतीतटम् ।

द्वारस्य विजय स्याधो विशिति प्राच्य वारिधिम् ॥४५२॥ कुलकम्

इसी तरह से नीलवान पर्वत के केसरी नाम के हृद-सरोवर में से शीता नाम की नदी निकलती है । वहां से निकल कर शीताकुंड में गिरती है, वहां से वापिस निकल कर दक्षिण सन्मुख बहती पूर्व के समान पांच उत्तर कुरु सरोवरो को दो-दो विभाग में बंटवारा करती, उत्तर कुरु की चौरासी हजार नदियों को साथ लेकर भद्रशाल वन में जाकर मेरू पर्वत से दो योजन दूर रहकर, माल्यवान

पर्वत के नीचे पूर्व सन्मुख चलती है । वहां पूर्व विदेह को दो विभाग में बटवारा करती, मार्ग में प्रत्येक विजय में से निकलती अट्टाईस-अट्टाईस हजार नदियों को साथ में लेकर, इसी तरह कुल पांच लाख बत्तीस हजार नदियों के परिवार सहित विजय द्वार के नीचे जगती के तट भेदन कर पूर्व समुद्र में मिलती है । (४४७-४५२)

अस्या बार्धिं प्रवेशान्तमारभ्य हृदनिर्गमात् ।

शीतोदया समं सर्वं ज्ञातव्यमविशेषितम् ॥४५३॥

“इति निषध पर्वतः प्रसंगात् शीतस्वरूपं च ॥”

इस शीता नदी का सरोवर में से निकल कर समुद्र में मिलने तक का समग्र वृत्तान्त अल्प मात्र भी फेर फार बिना शीतोदा नदी के समान जानना चाहिए । (४५३) 'इस तरह से निषध पर्वत का और प्रसंग के कारण शीता नदी का स्वरूप कहा गया है ।'

हिमवता महता च कनीयसा जलधिना निषधेन च यत्र त्रिधा ।

तदिह दक्षिण पार्श्वं मिहोदितम् बहुविधं नियतानिय तारकैः ॥४५४॥

इस तरह से महा हिमवंत और लघु हिमवंत तथा समुद्र निषध पर्वत से तीन-तीन विभाग होने के कारण तथा नियत, अनियत, आराधों के कारण बहु प्रकार का इस दक्षिण ओर के विभाग का वर्णन किया गया है । (४५४)

विश्वाश्चर्यद कीर्ति कीर्ति विजय श्री वाचकेनद्रान्तिष

द्राज श्री तनयोऽतनिष्ट विनय श्री तेजपालात्मजः ।

काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जगत्तत्त्व प्रदीपोपमे,

सर्गो निर्गलितार्थ सुभगः पूर्णः सुखं षोडशः ॥४५५॥

इति षोडशः सर्गः ।

सम्पूर्ण विश्व को आश्चर्य चकित करने वाले कीर्ति कारी श्री कीर्ति विजय वाचक वर्य के अन्तेवासी तथा माता राज श्री और पिता तेजपाल के सुपुत्र विनय विजय जी ने जगत के निश्चित स्वरूप को प्रकाशन करने में दीपक समान रचे हुए इस ग्रन्थ में वर्णन किये अर्थ समूह से मर्नाहर यह सोलहवां सर्ग विघ्न रहित सम्पूर्ण हुआ है । (४५५)

— सोलहवां सर्ग समाप्त —

सत्रहवां सर्ग

मध्ये द्वयोर्पर्वितयोर्नीलवनिषधाख्ययोः ।

भात्यायतचतुरस्रं क्षेत्रं महाविदेहकम् ॥१॥

नीलवान पर्वत और निषध पर्वत नामक दोनों पर्वतों के मध्य में महाविदेह नाम का समचोरस क्षेत्र आया है । (१)

सर्वक्षेत्रं गुरुत्वान्महाप्रमाणां गजनयुतत्वात् वा ।

इदमुत् महाविदेहाभिधसुरयोगान्महा विदेहाख्यम् ॥२॥

सर्व क्षेत्रों में बड़ा-महान् होने से अथवा महाविदेह नाम का अधिष्ठायक देव होने से, या महान शरीर वाले मनुष्य का वहां निवास होने से, इसका 'महाविदेह' ऐसा योग्य नाम पड़ा है । (२)

त्रयस्त्रिंशद्योजनानां सहस्राणि च षट्शती ।

युक्ता चतुरशीत्यास्य व्यासः कला चतुष्टयम् ॥३॥

इस महाविदेह क्षेत्र का त्रिष्वंश-चौड़ाई में तैंतीस हजार छः सौ चौरासी योजन और चार कला का है । (३)

वर्षवर्षधराद्रीणामन्येषा तु जिनेश्वरैः ।

अन्त्यप्रदेशपंक्तिर्या सा जीवति निरूपिता ॥४॥

अस्मिन्क्षेत्रे पुनर्मध्यप्रदेशपंक्तिरायता ।

सा प्रत्यंचा भवेत् पूर्णलक्षयोजनसम्मिता ॥५॥

अन्य क्षेत्र और वर्षधर पर्वत को तो अन्त्य प्रदेश की पंक्ति को श्री जिनेश्वर भगवन्तो ने 'जीवा' कही है । परन्तु इस क्षेत्र में तो मध्य प्रदेश की जो एक लाख योजन की दीर्घ पंक्ति कही है उसे ही जीवा- प्रत्यंचा रूप में कहा है । (४-५)

ततश्चापेक्ष्य तां जीवां धनुःषष्टद्वयं भवेत् ।

तत्रैकं दक्षिणाब्धि स्पृगुत्तराब्धिभ्रितं परम् ॥६॥

और इससे, उस 'जीवा' की अपेक्षा से दो 'धनुः षष्ट' होता है, एक दक्षिण समुद्र को स्पर्श करता है और दूसरा उत्तर समुद्र को स्पर्श करता है । (६)

एवं शरोऽपि द्विविधो दक्षिणोत्तरभेदतः ।

पूर्वापरैव बाहापि प्रत्येकं द्विविधा भवेत् ॥७॥

इसी ही तरह से 'शर' भी दो होगा, एक उत्तर तरफ का और दूसरा दक्षिण तरफ का होगा। उसी तरह प्रत्येक 'वाहा' भी पूर्व तरफ, पश्चिम तरफ का, इस तरह दो प्रकार का होता है। (७)

लक्षार्ध योजनान्यस्य विशिखौ दक्षिणोत्तरी ।

दाक्षिणात्येतरधनुःपृष्ठमानमथबुवे ॥८॥

अष्टयंचाशत्सहस्राधिकं योजनलक्षकम् ।

शतं त्रयोदशयुतं सार्धाः कलाश्च षोडश ॥९॥

एक उत्तर तरफ का और दूसरा दक्षिण तरफ का इस तरह दोनो 'शर' पचास हजार योजन के हैं तथा इसके दक्षिण और उत्तर तरफ के धनुः पृष्ठ का प्रमाण एक लाख अट्ठान्वन हजार एक सौ तेरह योजन और ऊपर साढ़े सोलह कला का कहा है। (८-९)

सहस्राः षोडशशतान्यष्टौ त्र्यशीतिरेकिका ।

बाहा त्रयोदश कलाः कलातुर्याशसंयुताः ॥१०॥

इस क्षेत्र की प्रत्येक 'बाहा' सोलह हजार आठ सौ तिरासी योजन और सवा तेरह कला से युक्त है। (१०)

शतानि त्रीणि कोटीनां कोटयः सप्तविंशतिः ।

लक्षाश्चतुर्दश तथा सहस्राण्यष्टसप्ततिः ॥११॥

पंचभिश्चाभ्यधिकानि योजनानां शतानि षट् ।

कलाद्वयं च विकला एकादश तथोपरि ॥१२॥

एतन्महाविदेहस्य गणितं प्रतरात्मकम् ।

भव्य लोकोपकाराय तत्त्वविद्भिर्निरूपितम् ॥१३॥ विशेषांक

इस महाविदेह क्षेत्र का 'प्रतरात्मक गणित' तीन सौ सताइस करोड़, चौदह लाख, अटहत्तर हजार, छः सौ पांच योजन दो कला और ऊपर ग्यारह विकला, भव्य जीव के उपकार के लिए तत्त्वज्ञानी महापुरुषों ने कहा है। (११-१३)

महाविदेह क्षेत्रं तच्चतुर्धा वर्णितं जिनैः ।

पूर्वापरविदेहाश्च द्विविधा कुत्रस्तथा ॥१४॥

इस महाविदेह क्षेत्र को जिनेश्वर भगवन्त ने चार विभाग से वर्णन किया है, १- पूर्व विदेह, २- पश्चिम विदेह, ३- उत्तर कुरु और ४- देव कुरु। (१४)

तत्र मेरोरूत्तर स्यामुत्तराः कुरुवः स्मृताः ।

गन्धमादनसन्माल्यवतोरन्तर्गिरीन्द्रयोः ॥१५॥

मेरु पर्वत की उत्तर दिशा के विभाग में उत्तर कुरु है वह गंध मादन और माल्यवान पर्वतों के मध्य में है ।

दक्षिणस्यां पुनर्देवकुखः सुरभूभृतः ।

विद्युत्प्रभसौमनसगजदन्तनगान्तरे ॥१६॥

मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा के विभाग में देव कुरु है । वह विद्युत्प्रभ और सौमनस नामक दो गजदंत पर्वतों के मध्य में है । (१६)

मेरोश्च पूर्वतः पूर्वविदेहाः परिकीर्तिताः ।

तथापरविदेहाश्च मेरोः पश्चिमतस्मृताः ॥१७॥

मेरु पर्वत की पूर्व दिशा के अन्दर पूर्व विदेह है, और पश्चिम दिशा के अन्दर पश्चिम विदेह क्षेत्र है । (१७)

शीतया सरिता पूर्वविदेहा विहिता द्विधा ।

कृताश्शीतोदयाप्येवं द्विधापरविदेहकाः ॥१८॥

पूर्व विदेह के शीता नदी के द्वारा दो विभाग होते हैं, और पश्चिम विदेह के शीतोदा नदी से दो विभाग होते हैं । (१८)

अष्टौ पूर्वविदेहेशु शीतोत्तरतटे किल ।

भवन्ति विजयाश्चक्रिजेयषट्खण्डलक्षिताः ॥१९॥

पूर्व विदेह में शीता नदी के उत्तर किनारे में चक्रवर्ती के जीतने योग्य छः खंड से युक्त आठ विजय है । (१९)

अन्तर्नदीभिस्तिस्सुभिर्वक्षस्काराचलैस्तथा ।

चतुर्भिः कृतसीमानो भवन्तीत्येवमष्ट ते ॥२०॥

इन आठ विजयों की सीमा तीन अन्तर नदी है । और चार वक्षस्कार पर्वतों के द्वारा बनती है । (२०)

शीताया दक्षिणतटे तथैव विजयाष्टकम् ।

अष्टाष्टौ विजया एवं शीतोदाकूलयोरपि ॥२१॥

शीता नदी के दक्षिण किनारे पर भी इसी तरह आठ विजय हैं, उसी ही तरह शीतोदा नदी के दोनों किनारे पर आठ-आठ विजय हैं । (२१)

पूर्वार्धे च विदेहानां मही करतलोपमा ।

ततो नद्यद्विविजयास्समश्रेण्या स्थिता इह ॥२२॥

पूर्व दिशा की ओर के आधे विदेह में जमीन हथेली के समान सपाट है, इसलिए वहां नदियां, पर्वत और विजय सम (समान) श्रेणी में रहे हैं । (२२)

अपरार्धे तु धरणी वियोगिनीव हीयते ।

समभूमैस्समारभ्यं पश्चिमायां क्रमात्ततः ॥२३॥

विजये नलिनावत्यां व प्राख्ये चान्तवर्तिनः ।

सहस्रं योजनान्युण्डा ग्रामा भवन्ति केचन ॥२४॥

ततोऽधोलौकिकग्रामा इति ते ख्यातिमैयरूः ।

तेषामन्ते स्थिता भूमिर्भिली रोघ्युमिवाणवम् ॥२५॥

परन्तु पश्चिम दिशा के विदेह में तो जमीन वियोगि (विरही) स्त्री के समान क्षीण होती जाती है । अर्थात् मेरू पर्वत के पास की सपाट भूमि से लेकर पश्चिम दिशा की ओर जाते आखिर नलिनावती तथा वप्र नामक विजय के अन्तिम किनारे के आते कितने गांव तो हजार योजन नीचे विभाग में आते हैं । और इससे वे अधोग्राम के नाम से प्रसिद्ध हैं । इन गांवों के आखिर का भाग मानो समुद्र को रोकने के लिए दीवार के समान जमीन है । (२३-२५)

तत्रैवजगतीभित्तिर्जयन्तद्वारराजिता ।

ऊर्ध्वं स्थिताधोग्रामाणां दिदक्षुरिव कौतुकम् ॥२६॥

वहीं जयन्त नाम के दरवाजे से सुशोभित जगती का किला मानो अधो गांव के कौतुक देखने के लिए खड़ा हो, इस तरह लगता है । (२६)

शीतोदायि स्त्रीत्वभावा दिवाधोगामिनी क्रमात् ।

योजनानां सहस्रैऽब्धि याति भित्त्वा जगत्यधः ॥२७॥

शीतोदा नदी भी मानो स्त्री स्वभाव अनुसार अधोगमन करती एक हजार योजन नीचे विभाग में जगती- किले के अधोभाग को भेदन करके समुद्र में मिलती है । (२७)

एवं च पश्चिमार्धस्य क्रमनिम्ना क्षितिर्भवेत् ।

कूपकोशसमाकर्षिवृषगन्तव्यभूरिव ॥२८॥

ततो निम्ननिम्नतरा भवन्ति समभूतलात् ।

तत्रत्या विजयार शैलास्सरितश्च यथोत्तरम् ॥२६॥

इस प्रकार से पश्चिम विदेह की भूमि, कुएं में से कोस खिंचने वाले बैल के चलने की भूमि समान, क्रमशः नीचे होती जाती है, वैसे ही वहां के विजय, नदियां और पर्वत भूतल से उत्तरोत्तर नीचे से नीचे होते हैं । (२८-२६)

माल्यवद्गजदन्तस्य पूर्वतो विजयो भवेत् ।

कच्छाख्यस्तस्य पूर्वान्ते सीमकृच्चित्रपर्वतः ॥३०॥

माल्यवान गजदंत की पूर्व दिशा में कच्छ नाम का विजय है। इसके पूर्व किनारे में चित्र पर्वत सीमा बन्धन करता है । (३०) दो विजय के मध्य जो पर्वत आता है उसे वक्षस्कार समझना और जो नदी आती है वह अन्तर नदी है ।

ततः सुकच्छविजयस्तस्यापि सीमकारिणी ।

गाहावती नाम नदी महाकच्छस्ततः परम ॥३१॥

विजयस्यास्य पूर्वान्ते ब्रह्मकूटाभिधो गिरिः ।

कच्छावतीति विजयस्ततः परमुदीरितः ॥३२॥

हदावती नदी तस्य मर्यादाकारिणी ततः ।

आवर्तविजयोऽस्यान्ते नलिनीकूटपर्वतः ॥३३॥

मंगलावर्तविजय एतस्मात्पूर्वतो भवेत् ।

तस्य वेगवती नाम नदी सीमाविधायिनी ॥३४॥

विजयः पुष्कलः तस्याः पर्वतस्तस्य सीमकृत ।

एकशैलगिरिस्तस्माद्विजयः पुष्कलावती ॥३५॥

विजयेस्मिन् विजयते सीमन्धरजिनोऽधुना ।

जगद्दीनकरः पुण्यप्रकर्षप्राप्यदर्शनः ॥३६॥

इसके बाद 'सुकच्छ' नाम का विजय आता है, और इसकी सीमा में 'गाहावती' नाम की नदी है । उसके बाद 'महाकच्छ' नाम का विजय आता है, इसकी सीमा में 'ब्रह्मकूट' पर्वत है । इसके बाद फिर 'कच्छावती' नाम का विजय है, और उसकी मर्यादा निश्चय करने वाली 'हदावती' नाम की नदी आती है । फिर 'आवर्त' नाम का विजय है, इसकी सीमा पर नलिनी कूट नाम से पर्वत है । उसके बाद मंगलावर्त नाम का विजय है, उसकी सीमा पर 'वेगवती' नाम की नदी है । उसके बाद 'पुष्कल' नामक विजय है, उसकी सीमा में एक शैल

पर्वत है । इसके बाद 'पुष्कलावती' नाम का विजय आता है । जिसने अभी महान् पुण्य उर्पाजन किया हो तभी दर्शन होते हैं । जगत के अंधकार दूर करने में सूर्य समान श्री सीमंधर स्वामी तीर्थकर भगवन्त विचरते हैं । उसके बाद वनमुख आता है । (३१-३६)

ततः परं वनमुखमित्येवं विजयाष्टकम् ।

शीताया उत्तरतटे पर्यन्ते वन राजितम् ॥३७॥

इस तरह से आठ विजय है, वे शीता नदी के उत्तर किनारे पर आए हैं, और इसके पर्यन्त भाग में सुशोभित वन है । (३७)

तत्संमुखं वनमुख शीताया दक्षिणे तटे ।

तस्मात्पश्चिमतो वत्सनामा विजय आहितः ॥३८॥

युगंधरजिनश्रीमान् विजयेऽस्मिन् विराजते ।

सुरेश्वरकरामशौरसकृन्वसृणकमः ॥३९॥

त्रिकूटः पर्वतोऽस्यान्ते सुवत्सा विजयस्ततः ।

तप्ता नामान्तरनदी तस्य सीमाविधायिनी ॥४०॥

इसके सन्मुख शीता नदी के दक्षिण किनारे वनमुख है, इसके पश्चिम में 'वत्स' नाम का विजय है, उसमें इस समय इन्द्र महाराजा जिनके चरणों की सेवा कर रहा है ऐसे श्री मान युगंधर तीर्थकर परमात्मा विचर रहे हैं । इस विजय की सीमा त्रिकुट नामक पर्वत है, उसके बाद 'सुवत्स' नाम का विजय आता है, इसकी 'तप्ता' नाम की अन्तर नदी है । (३८-४०)

ततो महावत्सनामा विजयोऽस्य च सीमनि ।

शैलो वैश्रमणकूटस्तस्य पश्चिमतः पुनः ॥४१॥

वत्सावतीति विजयस्यतस्य सीमाविधायिनी ।

नदी मत्ता ततः प्रत्यग् रम्याख्यो विजयस्ततः ॥४२॥

उसके बाद 'महावत्स' नामक विजय आता है उसकी सीमा में वैश्रमण नाम का पर्वत है, उसकी पश्चिम दिशा में 'वत्सावती' नाम का विजय है, यह सीमा मत्ता नाम की नदी से युक्त है । इसके बाद रम्य नाम का विजय है इसकी सीमा में अंजन नाम का पर्वत खड़ा है । (४१-४२)

अंजनाद्रिरमुष्यान्ते रम्यको विजयस्ततः ।

उन्मत्ताख्या नदी तस्या विजयो रमणीयकः ॥४३॥

मातंजनगिरिस्तस्य सीम्यथो मंगलावती ।
विजयोऽस्य च सीमायां गिरिः सौमनसाभिधः ॥४४॥

अंजन गिरि पर्वत के बाद रम्यक् नाम का विजय आता है । उसकी सीमा पर उन्मत्ता नाम की नदी आती है । उसके बाद 'रमणिक' नाम से विजय आता है, उसकी सीमा में 'मातंजन' पर्वत है, फिर 'मंगलावती' विजय है, उसकी सीमा में सौमनस नाम का गजदंत के आकार का पर्वत है । (४३-४४)

अस्य पश्चिमतो देवकु खस्तदनन्तरम् ।
गिरिर्विधुत्प्रभा नामा गजदन्ताकृतिः स्थितः ॥४५॥

इस सौमनस पर्वत की पश्चिम में 'देव-कुरु' है, उसके बाद गजदंत के आकार वाला विद्युत्प्रभ नाम का पर्वत आता है । (४५)

तस्य पश्चिमतः पक्ष्मविजयः परिकीर्तितः ।
ततोऽङ्गापाती क्षितिभृत् सुपक्ष्मो विजयस्ततः ॥४६॥
ततः क्षीरोदाख्यनदी महापक्ष्माभिधस्ततः ।
विजयोऽन्तेऽस्य च पक्ष्मपातीतिक्षितिभृद्वेत् ॥४७॥

पक्ष्मावतीति विजयः कथितस्तदनन्तरम् ।
शीत स्रोता नाम नदी तस्य सीमाविधायिनी ॥४८॥

इसके पश्चिम में 'पक्ष्म' नामक विजय है, उसके अन्तिम भाग में अंका पाती नामक पर्वत है, उसके बाद 'सुपक्ष्म' नाम से विजय है, फिर क्षीरोदा नाम की नदी है । उसके बाद 'महापक्ष्म' नाम का विजय है, उसकी सीमा में पक्ष्मपाती नाम का पर्वत है । उसके बाद पक्ष्मावती नाम का विजय है । उसकी सीमा में 'शीत स्रोता' नामक नदी आती है । (४६-४८)

तस्यः पश्चिमतः शंखविजयोऽन्तेऽस्य राजते ।
आशीविषगिरिस्तस्माद्विजयो नलिनोऽग्रतः ॥४९॥

नद्यन्तर्वाहिनी तस्य मर्यादा कारिणी भवेत् ।
तस्याः पश्चिमतः ख्यातो विजयः कुमुदाभिधः ॥५०॥

सुखावहो गिरिस्तस्य मर्यादाकारको भवेत् ।
ततः परं च नलिनावतीति विजयो मतः ॥५१॥

शीता स्रोता नदी के पश्चिम दिशा में 'शंख' नामक विजय है, इसकी

सीमा पर 'आशीविष' नामक पर्वत है। उसके बाद 'नलिन' नाम से विजय आया है। इसकी मर्यादा अन्तर्वाहिनी नदी के द्वारा है। इसके पश्चिम में 'कुमुद' नाम का विजय है, उसकी सीमा 'सुखावह' पर्वत के कारण है, उसके बाद 'नलिनावती' नाम का विजय है। (४६-५१)

नमस्यते सुकृतिभिः सांप्रतं बाहुतीर्थकृत् ।

विजये विहरन्स्मिन् शतकृतशतस्तुतः ॥५२॥

इस विजय के अन्दर सैंकड़ो इन्द्र महाराज जिसकी सेवा कर रहे हैं, और पुण्यशाली जीवात्मा नमन कर रहे हैं, ऐसे श्री बाहु स्वामी तीर्थकर परमात्मा वर्तमान काल में विहार कर रहे है। (५२)

शीतोदादक्षिणतटाश्रितं वनमुखं ततः ।

तत्संमुखं वनमुखं शीतोदोत्तरकूलजम् ॥५३॥

उसके बाद शीतोदा नदी के दक्षिण तट पर वन मुख आता है, और इसके सन्मुख उसके उत्तर तट पर भी वनमुख आता है। (५३)

वनस्यैतस्य पूर्वस्यां विजयो वप्रनामकः ।

पूर्वं तस्तस्या चन्द्राख्यो वक्षस्कारगिरिर्भवेत् ॥५४॥

इन वन की पूर्व दिशा में 'वप्र' नाम का विजय आता है, और इसके भी पूर्व में चन्द्र नामक वक्षस्कार पर्वत आया है। (५४)

विजये विहरत्यस्मिन् सुबाहुर्जगदीश्वरः ।

अधुना देशनासारैः पुनानो भव्यमडलम् ॥५५॥

इस 'वप्र' नामक विजय के अन्दर वर्तमान काल में सारभूत उपदेश द्वारा भव्यजनों को पवित्र करने वाले श्री सुबाहु जिनेश्वर भगवान विहार कर रहे हैं। (५५)

ततस्सुवप्रविजयस्ततो नद्यूर्ध्वमालिनी ।

ततो महावप्रनामा विजयः कथितो जिनैः ॥५६॥

ततः सूरुनाम गिरिस्ततो वप्रावती भवेत् ।

विजयोऽन्तेऽस्य गम्भीर मालिनी कथिता नदी ॥५७॥

उसके बाद सुवप्र विजय है, और सीमा में उर्मिमालिनी नाम की नदी है, उसके बाद माहवप्र नाम से विजय है, और सीमा पर सुर नाम का पर्वत है, फिर

'वप्रावती' विजय है और उसके आखिर में गंभीर मालिनी नाम की नदी है ।
(५६-५७)

ततश्च वल्लुविजयस्ततो नागाभिधो गिरिः ।

ततः सुवल्गुविजयस्ततश्च फेनमालिनी ॥५८॥

उसके बाद 'वल्लु' नामक विजय है, और सीमा में 'विजय' पर्वत है, बाद में 'सुवल्गु' नामक विजय और अन्त में 'फेनमालिनी' नदी है । (५८)

स्यादन्तरनदी तस्या गन्धिलो विजयः परः ।

ततो गिरिर्देवनामा ततश्च विजयः किल ॥५९॥

स्यात् गन्धिलावती नाम्ना ततश्च गन्धमादनः ।

गजदन्तगिरिस्तस्मादुत्तराः कुखः पराः ॥६०॥ युग्मं ॥

उसके बाद 'गन्धिल' नाम का विजय आता है, और उसकी सीमा में 'देव' नाम का पर्वत आता है । उसके बाद गन्धिलावती नामक विजय और इसकी सीमा में 'गन्धमादन' नामक गजदंत पर्वत खड़ा है । उसके बाद उत्तर कुरु क्षेत्र आता है । (५९-६०)

एवं च - कच्छः सुकच्छश्च महाकच्छः कच्छावतीति च ।

आवर्तो मंगलावर्तः पुष्कलः पुष्कलावती ॥६१॥

वत्सः सुवत्सश्च महावत्सो वत्सावतीति च ।

रम्यो रम्यकरमणीयौ मंगलावतीति च ॥६२॥

पक्ष्यः सुपक्ष्मश्च महापक्ष्यः पक्ष्मावतीति च ।

शंखश्च नलिनश्चैव कुमुदो नलिनावती ॥६३॥

वपः सुवपश्च महावपो वप्रावती तथा ।

वल्लुः सुवल्गुर्विजयो गन्धिलो गन्धिलावती ॥६४॥

द्वात्रिंशदेते विजयाः कच्छाधाः सृष्टितः क्रमात् ।

माल्यावद् गजदन्ताद्देवरारभ्यागन्धमादनम् ॥६५॥

वह इस तरह १- कच्छ, २- सुकच्छ, ३- महाकच्छ, ४- कच्छावती, ५- आवर्त, ६- मंगलावर्त, ७- पुष्कल, ८- पुष्कलावती, ९- वत्स, १०- सुवत्स, ११- महावत्स, १२- वत्सावती, १३- रम्य, १४- रम्यक्, १५- रमणीय, १६- मंगलावती, १७- पक्ष्य, १८- सुपक्ष्य, १९- महापक्ष्य, २०- पक्ष्मावती,

२१- शंख, २२- नलिन, २३- कुमुद, २४- नलिनावती, २५- वप्र, २६- सुवप्र, २७- महावप्र, २८- वप्रावती, २९- वल्गु ३०- सुवल्गु, ३१- गन्धिल और ३२- गन्धिलावती ये बत्तीस विजय माल्यवान नामक गजदंत पर्वत से लेकर गन्धमादन पर्वत तक अनुक्रम से आए हैं । (६१-६५)

द्वाविंशतिः शतानीषन्धूनानि च त्रयोदश ।

योजनानीह विष्कम्भस्सर्वेषु विजयेष्वथ ॥६६॥

सहस्राणि षोडशैषामायामः पंचभिरशतैः ।

योजनानां द्वानवत्या चाढयानि द्विकलाढयया ॥६७॥

इन बत्तीस विजयों की चौड़ाई दो हजार दो सौ तेरह योजन में कुछ कम है, और इसकी लम्बाई सोलह हजार पांच सौ बयानवे योजन और ऊपर दो कला कहा है । (६६-६७)

अन्तर्नदीनां सर्वासां वक्षस्कार महीभृताम् ।

सर्वेषामप्यसावेवायामो ज्ञेयो विचक्षणैः ॥६८॥

सर्व अन्तर नदियों तथा सर्व वक्षस्कार पर्वतों की लम्बाई भी इतनी ही जाननी चाहिए । (६८)

अत्रायमान्यायः -

शीताशीतोदयोर्वाब्धिप्रवेश एव यद्यपि ।

विष्कम्भः स्याद्योजनानां पूर्णपंचशतात्मक ॥६९॥

हीनो हीनतरोऽन्यत्र तथाप्युभयकूलयोः ।

कच्छादीनां विजयानां समीपे रमणोचिन्तौ ॥७०॥

द्वौ द्वौ तयोः स्तः रमण प्रदेशौ तदपेक्षया ।

सर्वत्राप्यनयोर्ध्यासो भाव्यः पंचशतात्मकः ॥७१॥ विशेषांक

ततो विदेह विष्कम्भे शीता व्यासेन वर्जिते ।

अर्धितेऽन्तर्नदीवक्षस्काराद्रिविजया इति ॥७२॥

उसकी जानकारी इस तरह है - शीता और शीतोदा नदियों की विष्कम्भ (चौड़ाई) समुद्र को मिलते समय में सम्पूर्ण पांच सौ योजन है, और दूसरे स्थान पर इससे कम होते जाता है, फिर भी कच्छ आदि विजयों के समीप में दोनो किनारे पर इनको देखे तो रमणप्रदेश आता है । इस अपेक्षा से सर्व स्थान पर इनका

व्यास पांच सौ योजन का गिना चाहिए और इससे शीता के व्यास करते विदेह का जितनी चौड़ाई रहे उसका आधा करने से जो संख्या आये वह अन्तर नदी तथा वक्षस्कार पर्वत और विजय की लम्बाई आती है । (३३६८४ योजन ४ कला ५०० योजन २ = १६५६२ यो० २ कला) (६६-७०)

एते च विजयाः सर्वे वैताढ्यैर्विहिता द्विधा ।

पूर्वापरायत्ततया स्थितैः रजतकान्तिभिः ॥७३॥

इन सब विजयों को पूर्व पश्चिम लम्बे रजत के वैताढ्य पर्वत ने दो विभागों में बांट दिया है । (७३)

स्वरूपतोऽमी भरत वैताढ्यस्य सहोदराः ।

आयामतश्च विजय विष्कम्भ सहश इमे ॥७४॥

इन वैताढ्यों का स्वरूप भरत क्षेत्र के वैताढ्य समान है, और इसकी लम्बाई विजय की चौड़ाई समान है । (७४)

समक्षेत्र स्थितेश्चैषा धनुर्बाहाद्यसम्भवः ।

मूलादूर्ध्वं योजनानां दशानां समतिक्रमे ॥७५॥

एषु द्वे खेचरश्रेण्यौ तयोर्विद्याभूतामिह ।

पुराणि पंच पंच शत् प्रत्येकं पार्श्वयोर्द्वयोः ॥७६॥ युगं ॥

चोरस जमी होने के कारण इनका शर अथवा बाहा आदि नहीं होता । इनको मूल में से दश योजन ऊंचे चढ़ते दो विद्याधरो की श्रेणियां आती है । प्रत्येक श्रेणि में दोनो तरफ विद्याधरों के पचपन-पचपन नगर होते हैं । (७५-७६)

ततः पुनर्योजनां दशानां समतिक्रमे ।

शकेशानामियोग्यानां द्वे श्रेण्यौ पार्श्वयोर्द्वयोः ॥७७॥

वहां से दस योजन आगे बढ़ते दोनो तरफ सौ धर्मेन्द्र तथा इशानेन्द्र के अभियोगी देवों (सेवक) की दो श्रेणियां आई है । (७७)

तत्रापि - शीताया दक्षिण तटे वैताढयाः विषयेषु ये ।

तत्राभियोग्य श्रेण्यो यास्ताः सौधर्मस्य वज्रिणः ॥७८॥

इसमें भी शीता नदी के दक्षिण तट पर के विजय के वैताढ्य पर जो श्रेणियां है वे सौधर्मेन्द्र के अभियोगी (सेवक) देवों की है । (७८)

शीतायाश्चोत्तरतटे वैताढयाः विजयेषु ये ।
तत्रामि योग्य श्रेण्यो यास्ता ईशान सुरेशितुः ॥७६॥

शीता के उत्तर तट पर के विजय है, उसके वैताढय पर्वत पर जो श्रेणिया हैं, वे ईशानेन्द्र के अभियोगी देवों की है, ऐसा समझना । (७६)

सर्वेऽप्यमी नव नव कूटालंकृत मौलयः ।
मानं स्वरूपं कूटानामुक्त वैताढय कूटवत् ॥८०॥

ये सर्व वैताढय नौ-नौ शिखरों से शोभायमान हो रहे हैं । इसका मान और स्वरूप पूर्वोक्त भरत के शिखर अनुसार है । (८०)

पूर्वस्यां प्रथमं कूट सिद्धायतनसंज्ञितम् ।
ततः स्वस्वविजयार्धकूटं दक्षिणशब्दयुक् ॥८१॥

खण्डप्रपातकूटं स्यानमणिभद्रं ततः परम् ।
वैताढयं पूर्णभद्रं च तमिस्रगुहामित्यपि ॥८२॥

ततः स्वस्वविजयार्धकूटमुत्तरशब्दयुक्त ।
वैताढयेष्वन्तिमं कूटज्ञेयं वैश्रमणाभिधम् ॥८३॥

प्रथम शिखर पूर्व दिशा में 'सिद्धायतन' नाम का, दूसरा उस विजय का दक्षिणार्ध कूट है, तीसरा खंड प्रपात है, चौथा मणि भद्र है, पांचवा वैताढय है, छठा पूर्णभद्र है, सातवा तमिस्र गुह, आठवां उस विजय का उत्तरार्ध कूट है, और नौवा वैश्रमण है । (८१-८३)

वैताढयेषु हि सर्वेषु कूटं द्वितीयमष्टमम् ।
स्यादक्षिणोत्तरस्वस्वविजयार्धाभिधं क्रमात् ॥८४॥

यथादक्षिणकच्छार्धकूटं द्वितीयमष्टमम् ॥
भवेदुत्तरकच्छार्धं कच्छवैताढय पर्वते ॥८५॥

यहां अन्य और आठ में इस तरह जो दो शिखरों के नाम कहे हैं उसमें जिस जिस विजय का वह शिखर हो, उस-उस विजय का नाम उसमें मिलाना चाहिए । जैसे कि 'कच्छ' नामक विजय का वैताढय का दूसरा शिखर दक्षिण कच्छार्ध कूट और इसका आठवां शिखर 'उत्तरकच्छार्ध कूट' ये नाम होता है । (८४-८५)

अर्धे द्वे द्वे विजयानां वैताढय गिरिणा कृते ।
यथा दक्षिण कच्छार्धं तथा कच्छार्धं मुत्तरम् ॥८६॥

वैताढ्य पर्वत के द्वारा बने विजय के दो-दो विभाग अनुक्रम से दक्षिणार्ध और उत्तरार्ध रूप में जाना जाता है, जैसे कि दक्षिण कच्छार्ध और उत्तर कच्छार्ध कहलाता है । (८६)

अर्धस्य तस्यैकैकस्य सहस्राण्यष्टदीर्घता ।

योजनानां द्विशत्येकसप्तत्याढ्या तथा कला ॥८७॥

इस तरह प्रत्येक अर्ध विजय की लम्बाई आठ हजार दो सौ इकहत्तर योजन और एक कला कहा है । (८७)

नीलवन्निषधक्ष्माभृद्दक्षिणोदग्निताम्बयोः ।

शैलो वृषभकूटः स्याद्वि जयं विजयं प्रति ॥८८॥

और नीलवान पर्वत के दक्षिण में तथा निषध पर्वत की उत्तर में इस तरह दोनों तरफ प्रत्येक विजय में वृषभ कूट पर्वत है । (८८)

तस्यचाद्रेरुभयतः कुण्डमेकैकमस्ति तत् ।

सिन्धु कुण्डं पश्चिमतो गंगाकुण्डं च पूर्वतः ॥८९॥

उस पर्वत के दोनों तरफ एक-एक कुण्ड है । पश्चिम दिशा में सिन्धु कुण्ड है और पूर्व दिशा में गंगा कुण्ड है । (८९)

तेच षष्टिं योजनानि विष्कम्भयामतो मते ।

किं चिदूननवत्याढ्यं शतं च परिवेषतः ॥९०॥

योजनानि दशोद्विद्वे विमलोदकपूरिते ।

द्वीपेनौकैकेन रम्ये स्वदेवीभवनस्मृशा ॥९१॥ युग्मं ॥

दोनों कुण्ड साठ-साठ योजन लम्बे-चौड़े हैं । इनका घेराव एक सौ नब्बे योजन में कुछ कम है, और उनकी गहराई दस योजन है, वे निर्मल जल से भरे हुए हैं । और उन प्रत्येक में एक एक द्वीप होता है उसमें अपनी-अपनी देवी का भवन आया है । (९०-९१)

एताभ्यामथ कुण्डाभ्यां सिन्धु गंगा च निम्नगे ।

दक्षिणेन तोरणेन निर्गते दक्षिणामुखे ॥९२॥

अपान्तरालेऽनेकाभिर्नदीभिः पथिसंश्रिते ।

वैताढ्यसविधे सप्तनदीसहस्रसेविते ॥९३॥

तमिस्रायाः पश्चिमतः सिन्धुवैताढयभूधरम् ।

गंगा खण्ड प्रपातायाः प्राग्विभिद्य च निर्गतो ॥६४॥

याम्यार्धेऽपि नदीसप्तसहस्रसंश्रिते इति ।

सरित्सहस्रैः प्रत्येकं चतुर्दशभिरन्वितो ॥६५॥

शीतानदीं प्रविशतो दक्षिणाभिमुखाध्वना ।

ततो भवन्ति षट्खंडाः सर्वेऽपि विजयाइमे ॥६६॥ कुलकं ॥

इन दोनों कुण्डों में से गंगा और सिन्धु नदी दक्षिण तोरण से निकल कर दक्षिण की ओर बहती है । मार्ग में आने वाली अनेक नदियों के साथ मिलती, वैताढय पर्वत के पास में सात हजार नदियों के परिवारयुक्त बनती है । तमिस्रा गुफा की पश्चिम की सिन्धु नदी और खंड प्रपात की पूर्व गंगा नदी, वैताढय पर्वत को भेदन कर दक्षिणार्ध की सात हजार नदियों को मिलाकर कुल चौदह हजार के साथ में दक्षिण दिशा में से शीतानदी में प्रवेश करती है । और इससे छह खंड होते हैं । इसी तरह सर्व विजय में समझ लेना । (६२-६६)

शीताया याम्यकूलेऽपि विजयेष्वेवमष्टसु ।

निषधस्योदग्नितम्बे एकैको ऋषभाचलः ॥६७॥

शीता नदी के दक्षिण तट पर भी जो आठ विजय है, उसमें निषध पर्वत की उत्तर में एक-एक ऋषभाचल पर्वत है । (६७)

तस्याप्युभयतः प्राग्वत् कुण्डे द्वे द्वे तथाविधे ।

प्रत्यग् रक्तवतीकुण्ड रक्ताकुण्डं च पूर्वतः ॥६८॥

पर्वत की दोनों तरफ पूर्व के समान दो-दो कुण्ड है, पश्चिम की ओर रक्तावती कुण्ड और पूर्व की ओर रक्ता कुंड है । (६८)

एताभ्यामपि कुण्डाभ्यां निर्गते उत्तरामुखे ।

रक्तारक्तवती नद्यौ भित्वा वैताढयभूधरम् ॥६९॥

शीता नदीं प्रविशतः स्वरूपं पुनरेतायोः ।

पूर्वोक्ताभिः नदीभिः स्यान्निःशेषम विशोषितम् ॥१००॥ युगम् ॥

इन दोनों कुण्डों में से भी उत्तर सम्मुख 'रक्ता' और 'रक्तवती' नाम की नदियां निकलती है, और वे वैताढय पर्वत को भेदन कर शीतानदी में मिलती है । (६९) इन दोनों नदियों का सर्व स्वरूप अल्प भी फेरफार बिना पूर्वोक्त गंगा सिन्धु नदियों जैसा ही जानना । (१००)

शीतोदायाम्यकुलेऽपि विजयेष्वेवमष्टसु ।

निषधस्योदग्नि एकैको वृषभाचलः ॥१०१॥

इसी ही तरह 'शीतोदा' नदी के दक्षिण किनारे भी जो आठ विजय हैं, उसमें आए निषध पर्वत की उत्तर मेखला पर एक-एक ऋषभांचल पर्वत है (१०१)

तस्याप्युभयतः कुण्डे प्राग्वद् द्वे द्वे मनोरमे ।

सिन्धु कुण्डं पश्चिमतो गंगा कुण्डं च पूर्वतः ॥१०२॥

ताभ्यां गंगा सिन्धु नद्यौ प्रव्यूढे उत्तराध्वना ।

प्राग्वद्विभिन्नवैताढये शीतोदां विशतो नदीम् ॥१०३॥

इन पर्वत की भी दोनों ओर पूर्व के अनुसार दो-दो सुन्दर कुण्ड हैं, पश्चिम में सिन्धु और पूर्व में गंगा कुंड है । इसमें सिन्धु कुंड में से सिन्धु और गंगा कुंड में से गंगा नदी निकलती है । वे उत्तर दिशा में बहती हुई पूर्व के समान वैताढय को भेदन कर शीतोदा नदी में मिलती है । (१०२-१०३)

इत्थमेवोत्तरतटे शीतोदासरितः किल ।

नितम्बे दक्षिणे नीलवतोऽस्ति वृषभाचलः ॥१०४॥

इसी ही तरह से शीतोदा नदी के उत्तर किनारे पर नीलवान पर्वत की दक्षिण मेखला पर भी ऋषभांचल पर्वत आया है । (१०४)

प्राग्वद् वृषभ कूटस्य गिरेरस्यास्ति पूर्वतः ।

रक्ता कुण्डं रक्तवती कुंड पश्चिम तस्ततः ॥१०५॥

एताभ्यामपि कुण्डाभ्यां निर्गत्य दक्षिणामुखे ।

रक्तारक्तवती नद्यौ भित्वा वैताढय भूधरम् ॥१०६॥

शीतोदायां प्रविशतः याम्येन रूजुनाध्वाना ।

गंगा सिन्धु श्रवन्तीभ्यामिमाः सर्वात्मना समाः ॥१०७॥ युग्मं ॥

इस पर्वत के पूर्व में, पूर्व के अनुसार रक्ताकुण्ड नामक कुण्ड है । और पश्चिम में रक्तावती नामक कुंड है । इन दोनों में से भी 'रक्ता और रक्तवती' नामक नदियां निकलती हैं और दक्षिण की ओर बहती हैं, फिर वैताढय पर्वत को भेदन कर सीधी दक्षिण तरफ शीतोदा नदी में मिलती हैं । दोनों नदियां का सारा स्वरूप गंगा और सिन्धु नदियों के समान ही समझना लेना चाहिए ।

(१०५-१०७)

तथाहुः क्षमा श्रमणमिश्रा :-

सीया इउन्ने सु सी ओ याए य जम्म विजयए सु ।

गंगा सिन्धु नई ओ इयरेसु य रत्तरत्तवई ॥१०८॥

इस विषय में श्री क्षमा श्रमण मिश्र कहते हैं कि - शीता नदी के उत्तर में और शीतोदा नदी के दक्षिण में जो विजय है, उसमें गंगा और सिन्धु नदियां हैं। और शीता की दक्षिण में और शीतोदा की उत्तर में जो विजय है, उसमें 'रक्ता और रक्तवती' नदियां हैं । (१०८)

कुन्दान्येवं चतुः षष्टि द्वात्रिंशत् वृषभाद्रयः ।

स्वरूपमेषां भरतर्वितकुण्डर्षभाद्रिषत् ॥१०९॥

इसी तरह महाविदेह क्षेत्र में कुंड, चौंसठ और ऋषभांचल पर्वत में बत्तीस होते हैं, इनका सारा स्वरूप भरतक्षेत्र के कुंड और ऋषभांचल के समान होता है । (१०९)

चतुःषटेः तथैवासां नदीनां हृदनिर्गमात् ।

आरभ शीताशीतोदावाहिनीसंगमावधि ॥११०॥

सर्व स्वरूपं भरतगंगासिन्धुसरित्समम् ।

प्रत्येकं परिवारोऽपि तावान् ज्ञेयो विशारदैः ॥१११॥

सरोवर में से निकल कर शीता शीतोदा के संगम तक चौंसठ नदियों का स्वरूप भी इसी तरह से, भरत क्षेत्र की गंगा सिन्धु नदियों के समान है । उनका परिवार भी उतना ही जानना चाहिए । (११०-१११)

गंगा रक्तान्यतरस्याः प्रवेशे मागधाभिधिम् ।

शीताशीतोदयोरन्तरस्यां तीर्थं माहितम् ॥११२॥

एवं सिन्धुरक्तवत्योर्योगे प्रभासनामकम् ।

तयोर्द्वयोरन्तराले वरदामं भवेदिह ॥११३॥

गंगा नदी अथवा रक्तानदी जिस स्थान पर शीता अथवा शीतोदा नदी को मिलती है, वह स्थान मागध तीर्थ कहलाता है । इसी तरह ही सिन्धु और रक्तवती के संगम पर प्रभास नामक तीर्थ कहलाता है, और दोनों तीर्थों के बीच में वरदाम नामक तीर्थ कहलाता है । (११२-११३)

एवं तीर्थत्रयं ज्ञेयं विजयं विजयं प्रति ।

स्वरूपमेषा भरत तीर्थवत् परिभाक्ताम् ॥११४॥

इस तरह से प्रत्येक विजय में तीन-तीन तीर्थ होते हैं, इनका सारा स्वरूप भरत क्षेत्र के उन तीर्थों के समान जानना चाहिए । (११४)

औत्तराहेषु शीताया कच्छादि विजयेष्विमाः ।

राजधान्यां दक्षिणाधर्मखण्डेषु कीर्तिताः ॥११५॥

क्षेमा क्षेमपुरी चैवारिष्टारिष्टवती पुरी ।

खड्गी मंजूषीषधिश्च पुरी च पुण्डरीकिणी ॥११६॥

शीता नदी की उत्तर दिशा के दक्षिणार्ध मध्य खण्डों के कच्छादि विजयो की इस तरह से आठ राजधानी होती है । उसके नाम इस प्रकार - १- क्षेमा, २- क्षेमापुरी, ३- अरिष्टा, ४- रिष्टवती, ५- खड्गी, ६- मंजूषा, ७- औषधी और ८- पुंडरीकिणी है । (११५-११६)

शीतया दक्षिणात्येषु वत्सादि विजयेष्विमाः ।

राजधान्य उत्तरार्द्धे मध्यखण्डेषु वर्णिताः ॥११७॥

सुसीमा कुण्डला चैवापराजिता प्रभंकरा ।

अंकवती पक्षमवती शुभाथ रत्नसंचया ॥११८॥

शीता नदी की दक्षिण दिशा में उत्तरार्धमध्य खण्डों में वत्स आदि विजयो की इस तरह से आठ राजधानी है - १- सुसीमा, २- कुंडला, ३- अपराजिता, ४- प्रभंकर । ५- अंकवती ६- पक्षमवती ७- शुभा और ८- रत्नसंचया । (११७-११८)

शीतोदाया याम्यतटे पश्मादिविजयेष्विमाः ।

उत्तरार्द्धे मध्य खण्डे राजधान्यो निरूपिताः ॥११९॥

अश्वपुरी सिंहपुरी महाख्या विजयाभिधा ।

अपराजितापराख्याशोका च वीतशोकिका ॥१२०॥

इसी ही तरह से शीतोदा नदी के दक्षिण किनारे में उत्तरार्ध, मध्यखंड में पश्म आदि आठ विजयों की इस प्रकार आठ राजधानी है :- १- अश्वपुरी, २- सिंहपुरी, ३- महाख्या, ४- विजया, ५- अपराजिता, ६- अपसंख्या, ७- अशोका और ८- वीतशोका । (११९-१२०)

शीतोदाया उदीच्येशु वप्रादिविजयेष्विमाः ।

याभ्याद्धै मध्यखण्डेषु राजधान्यो जिनैः स्मृताः ॥१२१॥

विजया वैजयन्ती च जयन्ती चापराजिता ।

चक्रपुरी खड्गपुर्यवन्ध्यायोध्येति नामतः ॥१२२॥

इसी ही तरह शीतोदा के उत्तर किनारे में भी दक्षिणाद्धै मध्य खण्ड में वप्र आदि आठ विजयो की इस तरह आठ राजधानी हैं - १- विजया, २- वैजयन्ती, ३- जयन्ती ४- अपराजिता, ५- चक्रपुरी ६- खड्गपुरी ७- अवन्ध्या और ८- अयोध्या । (१२१-१२२)

विजयेष्वेषु मनुजाः पंचचापशतोन्नताः ।

जघन्योत्कर्षतः पूर्वकोटीक्षुल्लभवायुषः ॥१२३॥

नानासंहनना नानासंस्थाना विविधाशयाः ।

मृत्वा नानागतिं यान्ति स्वस्वकर्मनुसारतः ॥१२४॥ युग्मं ॥

इन सब विजयों में जो मनुष्य निवास करते हैं; वे ऊँचाई में पांच सौ धनुष्य के होते हैं, और इनका उत्कृष्ट आयुष्य करोड़ पूर्व का होता है । और जघन्य क्षुल्लक (थोड़े समय का) जन्म का होता है । इन मनुष्यों का संघयण और संस्थान विविध प्रकार का है और इनके आशय (भावना) भी विविध प्रकार की होती है । मृत्यु के बाद वे अपने-अपने कर्मों के अनुसार से विविध प्रकार की गति में जन्म लेते हैं । (१२३-१२४)

कालाः सदात्र दुःषमसुषामारकसन्निभः ।

साम्प्रतीन भरतवत् गर्भापत्यावनादिकम् ॥१२५॥

आहारस्यान्तरे माने चानैयत्यं तथैव हि ।

ततश्चतुःशतगुणं मानं च स्यात् गुहादिषु ॥१२६॥

वहां हमेशा दुषम सुषमा काल रहता है, और वहां गर्म धारण, अपत्य पालन आदि सब वर्तमान भरतक्षेत्र के समान, वे कितने अन्तर में आहार लेते हैं तथा कितने प्रमाण में लेते हैं ? इत्यादि बात का कोई नियम नहीं है । इनके घर आदि का प्रमाण भरतक्षेत्र के घर आदि से चार सौ गुणा होता है । (१२५-१२६)

चित्राद्यान् देव शैलांस्तान् वक्षस्कार गिरिन् विदुः ।

चतुरश्चतुरश्शीता शीतोदयोस्तटद्वये ॥१२७॥

शीता और शीतोदा के दोनों किनारे पर चित्र से लेकर देव गिरि तक चार-चार वक्ष स्कार पर्वत होते हैं, ऐसा जानना । (१२७)

चित्रश्च ब्रह्मकूटश्च नलिनी कूट इत्यपि ।

एकशैलश्चेति शीतोत्तरकूले धराधराः ॥१२८॥

त्रिकूटश्च वैश्रमणोऽञ्जनो मातञ्जनोऽपि च ।

शीताया दक्षिणतटे वक्षस्काराचला इमे ॥१२९॥

वह इस तरह चित्रकूट, ब्रह्मकूट, नलिनी कूट और एक शैल, ये चारों शीत नदी के उत्तर तट पर आए हैं । और इसके दक्षिण तट पर त्रिकूट, वैश्रमण, अंजन और मातंजन नामक चार वक्षस्कार पर्वत आए हुए हैं । (१२८-१२९)

अंकापाती, पक्ष्मपाती आशीविषः सुखावहः ।

शीतोदाया याम्यतटे वक्षस्काराद्रयः स्मृताः ॥१३०॥

चन्द्र सूर्यश्च नागश्च देवश्चेति महीधराः ।

शीतोदाया उदक्कूले सर्व एव च षोडश ॥१३१॥

अंकापाती, पक्ष्मपाती, आशीविष और सुखावह इन नाम के चार वक्ष स्कार पर्वत शीतोदा नदी के दक्षिण तट पर आए हैं, और इसके उत्तर तट पर चन्द्र, सूर्य, नाग और देव नाम के चार वक्षस्कार पर्वत हुए हैं । इस तरह से कुल मिलाकर सब सोलह होते हैं । (१३०-१३१)

एकतोऽमी नीलवता सज्यन्ते निषधेन वा ।

द्वितीयान्तेन शीतोदा शीतां वा संस्पृशन्ति च ॥१३२॥

इन पर्वतों के एक ओर नीलवान अथवा निषध पर्वत का स्पर्श होता है जबकि दूसरी ओर से शीतोदा अथवा शीता नदी से स्पर्श होता है । (१३२)

योजनानां पञ्चशतान्येते विष्कम्भतो मता ।

सर्वत्र सर्वे सहशाः सर्वरत्नमया अपि ॥१३३॥

नील वनिषधक्ष्माभृत्समीपेऽमी समुन्नताः ।

चतुः शतीं योजनानां शतमेकं भुवोऽन्तरे ॥१३४॥

इन पर्वतों की चौड़ाई पांच सौ योजन की है, और वे सर्वत्र समान तथा सर्वरत्नमय हैं । नीलवान् और निषध पर्वतों के समीप में उनकी ऊँचाई चार सौ योजन की है । यहां उनकी पृथ्वी के अन्दर सौ योजन गहराई है । (१३३-१३४)

ततश्च मात्रया वर्द्धमाना सर्वे यथाक्रमम् ।
 शीता शीतोदयोः पार्श्वे जाताः पंचशतोन्नताः ॥१३५॥
 पंचविंशं योजनानां शत तत्र भूवोऽन्तरे ।
 तुरंगस्क्न्धसंस्थानसंस्थिता इति वर्णिताः ॥१३६॥

उसके बाद धीरे-धीरे क्रमशः बढ़ते शीता और शीतोदा के पास पहुँचने तक उनकी पांच सौ योजन की ऊँचाई हो जाती है, वहाँ पर वे पृथ्वी के अन्दर सवा सो योजन गहरे हैं, उनका आकार घोड़े के स्कंध समान कहलाता है ।
 (१३५-१३६)

स्वस्वह्वानसमाह्वानैकैक वृन्दारकाश्रिताः ।
 यथा चित्रगिरौ चित्र स्वाम्येवमपरेष्वपि ॥१३७॥

वे प्रत्येक पर्वत अपने समान नाम वाले देव से अधिष्ठित है, जैसे कि चित्र नाम के पर्वत पर चित्र नाम का देव अधिष्ठाया है । अन्य पर्वत के सम्बन्ध में भी इसी तरह समझ लेना । (१३७)

अथ चत्वारिचत्वारि कूटान्येषु किलाद्रिषु ।
 भवन्त्येवं चतुःषष्टिरेतानि सर्व संख्यया ॥१३८॥

इन सोलह पर्वतों के चार-चार शिखर होते हैं, इस तरह सब मिलाकर कुल चौंसठ शिखर होते हैं । (१३८)

आद्यं विवक्षितं गिरिप्राग्वर्तिविजयाख्याया ।
 नीलवन्निषधग्रावणोस्समीपेऽन्यतरस्य तत् ॥१३९॥
 यः पश्चिमायां विजयो द्वैतीयिकं तदाख्याया ।
 तृतीयं निजनाम्नैव सिद्धायतनमन्तिमम ॥१४०॥
 वियच्चुम्बिचलत्के तु सिद्धयतनबन्धुरम ।
 शीता शीतोदयोरन्यतरस्याः सविधे च तत् ॥१४१॥

प्रथम गिरि के पूर्व में विजय नाम का आया है, वह नीलवान और निषध इन दोनों में से एक पर्वत के समीप रहा है, दूसरा गिरि के पश्चिम विजय नाम का आया है, तीसरा गिरि के ही नाम का है, और चौथा सिद्धायतन नाम का है, और अन्तिम गगन तल का स्पर्श कर ध्वज वाला सिद्ध मंदिर से अत्यन्त मनोहर शीता और शीतोदा में से एक के समीप में आया है । (१३९-१४१)

कच्छसुकच्छयोर्मध्यस्थिते चित्रगिरौ यथा ।
 आद्यं सुकच्छकूटं स्यात् कच्छकूटं द्वितीयकम् ॥१४२॥
 तृतीयं चिकूटं स्यात् सिद्धायतनमन्तिमम् ।
 शीत शीतोदयोरेवमुदग्रोधसि भाव्यताम् ॥१४३॥

जैसे कि कच्छ और सुकच्छ विजय के मध्य में रहा, चित्रगिरि का प्रथम शिखर सुकच्छ है, दूसरा कच्छकूट है, तीसरा चित्रकूट और चौथा अन्तिम सिद्धायतन है । शीता और शीतोदा के उत्तर किनारे पर आए हुए सर्व पर्वतों के विषय में इसी तरह समझना । (१४२-१४३)

त्रिकूटे च गिरौ वत्सकूटं निषधसन्निधौ ।
 द्वितीयं च सुवत्साख्यं ततस्त्रिकूटसंज्ञितम् ॥१४४॥
 तुर्यं च सिद्धायतनं सर्वेष्वप्येवमद्रिषु ।
 शीता शीतोदयोर्ग्राम्यतटस्थेषु विभाव्यताम् ॥१४५॥ युग्मं ॥

'त्रिकूट' पर्वत के चार शिखर इस प्रकार हैं - प्रथम निषध के पास का वत्स, दूसरा सुवत्स, तीसरा त्रिकूट और चौथा सिद्धायतन है । इसी तरह शीता और शीतोदा के दक्षिण तट पर आए सर्व पर्वतों के विषय में समझ लेना चाहिए । (१४४-१४५)

एवं चतुर्णां चतुर्णां सिद्धयतनशालिनाम् ।
 कूटानां श्रेणयः शीताशीतोदोभयकूलयो ॥१४६॥
 पिधानमालिनां दिव्यकलशानामिवालयः ।
 भान्त्यर्हदभिषेकाय न्यस्तानामम्बुपूर्तये ॥१४७॥ युग्मं ॥

इसी प्रकार सिद्धायतनो से मनोहर चार-चार शिखरों की पंक्तियां शीता और शीतोदा के दोनों किनारे पर हैं । ये शिखर मानो श्री जिनेश्वर भगवान के अभिषेक के लिए जल भर कर रखे, दिव्य कलशों की श्रेणी के समान शोभायमान हो रहे हैं । (१४६-१४७)

सिद्धायतन वर्जानि स्वस्व तुल्याख्यनाकिना ।
 तान्याभ्रितानि विजयदेववत्ते महर्द्धिका ॥१४८॥
 शीता शीतोदयोर्ग्राम्योत्तरयोर्ग्राम्ये सुधाभुजः ।
 क्रमात्तेषां राजधान्यो मेरुतो दक्षिणोत्तराः ॥१४९॥

चौंसठ, शिखरों में से सोलह 'सिद्धायतन' नाम के शिखरों को छोड़ देने पर शेष रहे अड़तालीस शिखर अपने-अपने नाम समान नाम वाले देवों से अधिष्ठित हैं। ये देव विजयदेव के समान महा ऋद्धि वाले हैं। शीता और शीतोदा की दक्षिण और उत्तर में रहे इन देवों की राजधानियां अनुक्रम से मेरू के दक्षिण और उत्तर दिशा में हैं। (१४८-१४९)

गाहावती हृदावती तृतीया वेगत्यपि ।

शीताया उत्तर तटेस्युस्तिस्त्रोऽन्तरनिम्नगाः ॥१५०॥

शीतायाम्यतटे तप्ता मत्तोन्मत्तेति निश्चिताः ।

क्षीरोदाशीतस्त्रोताः चान्तर्वाहिनीति नामतः ॥१५१॥

शीतादायायाम्यतटे तस्या उत्तरतः पुनः ।

उर्मिगम्भीरफेनेभ्यो मालिन्योऽन्तरनिम्नगाः ॥१५२॥ युष्म ॥

बारह अन्तर नदियों के विषय में कहते हैं। शीता नदी के उत्तर किनारे पर गाहावती, हृदावती और वेगवती अन्तर नदियां आयी हैं। शीता नदी के दक्षिण किनारे पर, तप्ता, मत्ता और उन्मत्ता नाम की अन्तर नदियां हैं। शीतोदा नदी के दक्षिण किनारे पर क्षीतादा, शीत स्त्रोता और अन्तरवाहिनी, अन्तर नदिया हैं, और शीतोदा नदी के उत्तर किनारे पर उर्मिमालिनी, गम्भीर मालिनी और फेनमालिनी नाम की अन्तर नदिया हैं। (१५२)

द्वादशानामध्यमूषामेकैकं कुण्डमीरितम् ।

स्वतुल्याख्यं नीलवतस्समीपे निषधस्यवा ॥१५३॥

इन बारह नदियों को निकालने का अपने-अपने नाम का एक-एक कुंड है और ये नीलवान अथवा निषध पर्वत के पास में होता है। (१५३)

कुण्डंपुनस्तदेकैकं विष्कम्भायामतो मतम् ।

सपादं योजनशतमुद्विद्धं दशयोजनीम् ॥१५४॥

परिक्षेपेण साशीति योजनानां शतत्रयम् ।

मध्ये च द्वीप एकैको नदीकुण्डसमाभिधः ॥१५५॥

उन प्रत्येक कुण्ड की लम्बाई-चौड़ाई सवा सौ योजन की है, और गहराई दस योजन की है, तथा घेराव तीन सौ अस्सी योजन है। प्रत्येक कुंड के मध्य में नदी तथा कुंड के नामवाला एक-एक द्वीप आता है। (१५४-१५५)

यथा गाहावती नद्याः कुण्ड गाहावतीति च ।

तत्र गाहावती द्वीपो भवत्येवं परेऽप्यवमी ॥१५६॥

जैसे कि गाहावती नाम की नदी का गाहावती नाम का कुंड है, और इसमें रहे द्वीप का नाम भी गाहावती है । इसी तरह सर्वत्र समझ लेना चाहिए । (१५६)

योजनानि षोडशामी विष्कम्भायाममानतः ।

सातिरेकाणि पंचाशत् प्रज्ञप्ताः परिवेषतः ॥१५७॥

किंच सर्वेऽप्यमी द्वीपा द्वौ क्रोशावुच्छिता जलात् ।

पद्मवेदिकया सर्वे वनेन च विराजिताः ॥१५८॥

इस तरह बारह द्वीप हुए वे द्वीप सोलह योजन लम्बे-चौड़े हैं, और इनका घेराव पंचास योजन से कुछ अधिक है, और वे सर्व जल से दो कोश ऊँचे हैं, इन सब में पद्म वेदिका और बगीचा शोभ रहे हैं । (१५७-१५८)

मध्ये च तेषां द्वीपानामेकैकं भवनं भवेत् ।

नदीनामसहस्रानाम्ना देव्या योग्यमनुत्तरम् ॥१५९॥

प्रत्येक द्वीप के मध्य विभाग में, उस नदी के नाम समान नाम वाली वहां रहने वाली देवी के योग्य एक-एक उत्तमवन है । (१५९)

अर्धकोशव्यासमेककोशायतं मनोहरम् ।

देशोनकोतुंग स्वदेवीशय्याधिभूषितम् ॥१६०॥

प्रत्येक भवन में अर्द्धकोश चौड़ी, एक कोस लम्बी और लगभग इतनी ही ऊँची देवी की मनोहर शय्या होती है । (१६०)

एताश्च गाहावत्याद्या निम्नगा निखिला अपि ।

पंचविंश योजनानां शतं विष्कम्भतो मताः ॥१६१॥

सांद्धे द्वे योजने निम्ना आरभ्य हृदनिर्गमात् ।

शीतशीतोदाप्रवेशपर्यन्तं सर्वतः समाः ॥१६२॥ युग्मं ॥

गाहावती आदि ये सर्व नदियां एक सौ पच्चीस योजन चौड़ी हैं । और सरोवर में से निकल कर शीता शीतोदा में मिलने तक इन सब की गहराई सर्वत्र समान ही अढाई योजन की है । (१६१-१६२)

“यत्तु श्री मलय गिरयः क्षेत्र समास वृत्तौ जम्बूद्वीपाधिकारे एताश्च गाहावती प्रमुखा नद्यः सर्वा अपि सर्वत्र कुण्डाद्वि निर्गमे शीता शीतोदयोः प्रवेशे च तुल्य प्रमाण

विष्कम्भो द्वेधा इति स्वयमु क्त्वा तस्मिन्नेव ग्रन्थे घातकीखण्ड पुष्करार्धाधि कारयोस्तत्रत्य नदीनां द्वि गुण विस्ताराति देशं व्याख्यानयन्तः प्रोचुः यथा जम्बू द्वीपे रोहितांशा रोहिता सुवर्ण कूलारूप्य कूलानां गाहावत्या दीनां च द्वादशानामन्तर नदीनां सर्वांग्रेण षोडशानां नदीना प्रवाहे विष्कम्भो द्वादश योजनानि साद्धानि उद्देशः क्रोश मेक समुद्र प्रवेशे गाहावत्यादीनां च महानदी प्रवेशे विष्कम्भो योजनानि १२५ उद्देशो योजने २ क्रोश २ । तदभिप्रायं न विद्मः । किंच आसां सर्वत्र समविष्कम्भकत्वे आगमवत् युक्तिः अपि अनुकूला । तथाहि । आसां विष्कम्भ वैषम्ये उभय पार्श्ववर्तिनोः विजयोपि विष्कम्भ वैषम्यं स्यात् ।

इष्यते च समविष्कम्भकत्व मिति ॥”

पूज्य आचार्य श्री मलयगिरि महाराज ने क्षेत्र समास की टीका में जम्बू द्वीप के अधिकार में कहा है - “ये गाहावती आदि नदियां कुण्ड में निकलते समय तथा शीता अथवा शीतोदा में मिलते समय, सर्वत्र समान चौड़ाई और समान गहराई वाली है” इस तरह कहने के बाद फिर इसी ग्रन्थ में घातकीखंड तथा पुष्करार्द्ध के अधिकार में वहां की नदियां, दुगने विस्तार की बात करके इस तरह कहा है कि ‘जम्बू द्वीप में रोहितांशा, रोहिता, सुवर्णकूला और रूप्य कूला ये चार नदियां तथा गाहावती आदि बारह अन्तर नदियां इस तरह कुल मिलाकर सोलह नदियों के प्रवाह की चौड़ाई साढ़े बारह योजन, और गहराई एक कोस है और समुद्र में प्रवेश करते समय रोहितांशा नदियों के तथा महानदी के प्रवेश करते समय, गाहावती आदि नदी की चौड़ाई सवा सौ योजन है । और गहराई अढ़ाई योजन होती है ।’ इस तरह उसमें परस्पर विरोध अभिप्राय दिखता है । वह कुछ समझ में नहीं आता है । इन नदियों की चौड़ाई तो सर्वत्र समान होती है वही युक्ति अनुकूल है । क्योंकि यदि इसे कम ज्यादा मानें तो इनकी दोनों तरफ रहे विजयों की चौड़ाई भी कम ज्यादा हो जाय । यह अयुक्त होती है । जबकि ये सब विजयों की चौड़ाई तो सर्वत्र समान ही होनी चाहिए ।”

जगतीसन्निधौ शीता शीतोदयोस्तटद्वये ।

स्यादेकैकं वनमुखमेवं चत्वारितान्यपि ॥१६३॥

जगती के पास में शीता और शीतोदा के दोनों किनारे पर एक-एक वनमुख होता है । इस तरह कुल चार वनमुख हैं । (१६३)

आद्यं वनमुखं शीतानीलवद्भूधरान्तरे ।
 द्वितीयं च वनमुखं शीता निषधमन्तरां ॥१६४॥
 तृतीयं च वनमुखं शीतोदानिषधान्तरे ।
 शीतोदानीलवन्मध्ये चतुर्थं परिकीर्तितम् ॥१६५॥

वह इस तरह - प्रथम शीता और नीलवान पर्वत के मध्य में है, दूसरा शीता और निषध पर्वत के बीच में है, तीसरा शीतोदा और निषध पर्वत के बीच में है, तथा चौथा शीतोदा और नीलवान पर्वत के बीच में है । (१६४-१६५)

याम्योत्तरायतानां प्राक्प्रत्यग् विष्कम्भ शालिनाम् ।
 एषां विजयवहैर्ध्य सर्वेषामपि भाव्यताम् ॥१६६॥
 एका कलेषां विष्कम्भो नीलवन्निषधान्तिके ।
 ततो जगत्या चक्रत्वाद्दुर्धते जगतीदिशि ॥१६७॥
 त्रिसहस्री योजनामष्टसप्ततिवर्जिता ।
 शीता शीतोदयोः पार्श्वे वर्धमानः क्रमाद्भूत ॥१६८॥ युग्मं ॥

ये सब वनमुख उत्तर दक्षिण में लम्बे हैं, और पूर्व पश्चिम में चौड़े हैं । इनकी लम्बाई तो विजय की लम्बाई समान है, और चौड़ाई नीलवान् और निषध पर्वत के पास में एक कला समान है, परन्तु फिर जगती की गोलाई के कारण से जगती की दिशा बढ़ती है, उस क्रम अनुसार बढ़ती जाती है और शीता तथा शीतोदा के पास में पहुँचते तो वह चौड़ाई दो हजार नौ सौ बाईस योजन हो जाती है । (१६६-१६८)

अत्रायाम्नाय :-

षोडशानां विजयानां वक्षस्काराष्टकस्य च ।
 षण्णमन्तर्निम्नगानां कुरूणां गजदन्तयोः ॥१६९॥
 नीलवन्निषधज्याभ्यां विष्कम्भे शोधिते स्थितम् ।
 कलाद्वयं तत्सैकैका विष्कम्भो वनयोर्द्वयोः ॥१७०॥ युग्मं ॥

यहां उसकी इस तरह आम्नाय है - सोलह विजय की चौड़ाई ३५४०६ योजन है, आठ वक्षस्कार पर्वत की चौड़ाई ४००० योजन है, छः अन्तर नदी की चौड़ाई ७५० योजन है, देव कुरु की भी चौड़ाई ५३००० हजार योजन है, विद्युत्प्रभ-सोमनसगजदंत पर्वत की १००० योजन है कुल मिलाकर ६४१५६ योजन होता है । उसमें दोनों वनमुख की चौड़ाई ५८४४ योजन मिलकर एक लाख योजन

चौड़ाई मध्य भाग में होती है, नीलवान और निषध पर्वत की जया और जीवा में से निकाल देने से शेष दो कला रहती है, अर्थात् उसमें से एक-एक कला के समान दोनों वन की चौड़ाई समझना । (१६६-१७०)

दैर्घ्येऽतीते योजनादो यावति व्यास इष्यते ।

निहन्यते तद् द्वाविंशैरेकोनत्रिंशता शतैः ॥१७१॥

पुनरेकोन विंशत्याहत्य लक्षैस्त्रिभिर्भजेत् ।

सहस्रपंचदशाकसार्धद्विशतसंयुतैः ॥१७२॥

लब्धव्यासोयोजनादिस्यादत्राभीप्सितास्पदे ।

भाज्यभाजकयोरत्रोपपत्तिर्लिख्यते स्फुटा ॥१७३॥

परमव्यास रूपोऽत्र सर्वत्र गुणको ध्रुवः ।

तेन हन्वैकोनविंशत्याहतिस्तु कलाकृते ॥१७४॥

आयाम एव परमो भाजकोऽत्र ध्रुवो भवेत् ।

उपरिस्थिकलायुग्मप्रक्षेमाय कलीकृतः ॥१७५॥

अमुक लम्बाई जाने के बाद वहां चौड़ाई जाननी हो तो उस लम्बाई को दो हजार नौ सौ बाईस से गुणा करना, और फिर कला करने के लिये उन्नीस से गुणा करना उससे जो संख्या आए उसे तीन लाख पंद्रह हजार दो सौ पचास (जो वनमुख की लम्बाई वाला है) उस संख्या से भाग देना, उसका परिणाम जो आए उतनी कला के इच्छित स्थल की चौड़ाई आ जाती है । यही भाज्य और भाजक की संख्या उत्पत्ति में स्पष्ट कहा जाता है । उत्कृष्टी चौड़ाई यही सर्वत्र ध्रुव गुणक होता है, उस से गुणा करने के बाद में कला करने के लिए उन्नीस गुणा करना । यहां उत्कृष्ट लम्बाई ही ध्रुव भाजक होता है । कला के लिए निकालना । अथवा इसमें ऊपर दो कला मिलाने के लिए है । (१७१-१७५)

अथोत्तरकुरुणां यौ पर्वतौ सीमकारिणौ ।

गन्धमादनसन्माल्य वन्तौ तौ वर्णयाम्यहम् ॥१७६॥

उत्तर कुरु क्षेत्र की सीमा नक्की करने वाले गन्ध मादन और माल्यवान नाम के दो पर्वत कहे गये हैं, अब उसका वर्णन करमे में आता है ।

तत्रोत्तरकुरुणां यः पश्चिमायां व्यवस्थितः ।

वायाव्यां मेरूतः सोऽयं प्रश्रप्तो गन्धमादनः ॥१७७॥

उत्तर कुरु की पश्चिम में और मेरु पर्वत से वायव्य कोण में रहे पर्वत हैं, वह गन्ध मादन पर्वत है । (१७७)

गन्धः कोष्टपुटादिभ्यो रग्यो यदिह पर्वते ।

तथा क्षेत्रस्वभावेन ततोऽयं गन्धमादनः ॥१७८॥

गन्धमादन नामा च देवः पत्न्योपम स्थिति ।

स्वाम्यस्येति तथा ख्यातोऽपरं च शाश्वताभिधः ॥१७९॥

इस पर्वत पर किसी ऐसे क्षेत्र स्वभाव के कारण से कोष्ट पुट सदृश सुगन्ध द्रव्य से भी विशेष सुगन्ध है । इस कारण से यह पर्वत गन्धमादन कहलाता है । अथवा पत्न्योपम आयुष्य वाला कोई गन्धमादन नाम का देव इसका स्वामी है । इसीलिए यह गन्ध मादन कहलाता है अथवा तो इस तरह समझना कि इस पर्वत का नाम शाश्वत ही है । (१७८-१७९)

पीतरत्नमयश्चैष मतान्तरे हिरण्मयः ।

शोभितः सप्तभिः कुटैर्नानारत्नोपशोभितैः ॥१८०॥

यह पर्वत पीले रत्नमय है, अथवा अन्य मतानुसार सुवर्णमय है, और वह विविध रत्नो से देदीप्यमान सात शिखरों से शोभायमान है । (१८०)

“जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे तु अयं सव्व ऽयणमये इति सर्वात्मना रत्नमय उक्तः । जम्बू द्वीप समासे तु कनकमय उक्तः । बृहत्क्षेत्र समासे तु गिरिगन्ध मायणो पीयओ अ पीतकः पीतमणिमय इत्येतद् वृत्तौ ॥”

‘जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में तो इस गन्धमादन पर्वत को सर्वरत्नमय कहा है । जबकि जम्बूद्वीप समास में इसे सुवर्णमय कहा है, और बृहत् क्षेत्र समास में उसकी वृत्ति में इसे पीला अर्थात् पीले मणिमय का कहा है ।’

तत्राद्यं मन्दरासन्नं वायव्यां मन्दराचलात् ।

कूटं सिद्धायतनाख्यं तत्रोत्तुंगो जिनालयः ॥१८१॥

इस गंध मादन पर्वत के ऊपर सात शिखर हैं :- मेरु पर्वत के पास में इसके वायव्य कोने में पहला सिद्धायतन नाम का शिखर है, उसके ऊपर एक ऊँचा जिन मंदिर है । (१८१)

कूटात्ततोऽपि वायव्यां कूटं स्यात् गन्ध मादनम् ।

स्यात् गन्धिलावती कूटं वायव्याममुतो दिशि ॥१८२॥

इस शिखर से वायव्य कोने में दूसरा 'गंधमादन' नाम का शिखर है, और इससे वायव्य कोने में तीसरा गन्धिलावती नाम का शिखर है । (१८२)

तुर्यं तूत्तरकुर्वाख्यं स्याद्वायव्यां तृतीयतः ।

पंचमात्तदक्षिणस्यां वक्रत्वेनास्य भूभूतः ॥१८३॥

तीसरे शिखर से वायव्य कोने में चौथा उत्तर कुरु नाम का शिखर है, तो पर्वत की वक्रता के कारण पांचवें शिखर के दक्षिण में आया है । (१८३)

तुरीयादुत्तरस्यां च पंचमं स्फटिकाभिधम् ।

अस्यादुत्तरतः षष्ठं लोहिताक्षाभिधं भवेत् ॥१८४॥

लोहिताक्षादुत्तरस्यां सप्तमं कूटमाहिताम् ।

आनन्दाख्यमिति सप्त कूटानि गन्धमादने ॥१८५॥

चौथे शिखर से उत्तर दिशा में पांचवा 'स्फटिक' नाम का शिखर है, और इसके उत्तर में छठा 'लोहिताक्ष' नामक शिखर आता है । (१८४)

लोहिताक्ष की उत्तर दिशा में सातवा आनंद नाम का शिखर है । इस तरह गन्धमादन के सात शिखर हैं । (१८५)

भोगंकराभोगवत्यौ द्वयोः पंचमषष्ठयोः ।

दिवकुमार्यावपरेषु कूटतुल्यामिथा सुराः ॥१८६॥

इन सात में से पांचवे और छठे शिखर पर भोगंकरा और भोगवती नाम वाली दो दिक्कुमारियां रहती हैं । शेष सिद्धायतन बिना चार शिखरों पर शिखर के नाम सदृश नाम वाले देव निवास करते हैं ।

एतत्कूटाधिपदेवदेवीनां मन्दराचलात् ।

राजधान्योऽन्यत्र जम्बूद्वीपे वायव्य कोणके ॥१८७॥

इन शिखर के नाम वाले देव देवियों की राजधानी दूसरे जम्बूद्वीप में मेरूपर्वत से वायव्य कोण में होती है । (१८७)

अथोदवक्ररुतः प्राच्यां याम्यां नीलवतो गिरेः ।

ऐशान्यां मन्दरात्कच्छत्प्रतीच्यां माल्यवान्गिरिः ॥१८८॥

उत्तर कुरु से पूर्व में नीलवान पर्वत की दक्षिण दिशा में मेरु पर्वत से ईशान कोण में तथा कच्छ नाम के विजय से पश्चिम दिशा में माल्यवान् नामक पर्वत है । (१८८)

नाना कुसुम गुल्मानि विधूतानि समीरणैः ।
कुर्वन्त्येनं कीर्णपुष्पं ततोऽयं माल्यवानिति ॥१८६॥
महर्द्धिको वसत्यत्र माल्यवान्नाम निर्जरः ।
पल्योपमायुरिति वा यद्दासी शाश्वताभिधः ॥१८७॥

पवन हवा से उड़े हुए विविध जाति के माल्य अर्थात् पुष्पों के गुच्छे पर्वत पर बिखरे पड़े हैं, इसके कारण से इसका नाम माल्यवान पड़ा है, अथवा वहां पल्योपम की आयुष्य वाला महर्द्धिक माल्यवान नाम का देव निवास करता है इसलिए इसका यह नाम पड़ा है । अथवा तो इसका शाश्वत ही नाम है ।
(१८६-१८७)

सद्वैड्यंमयश्चायं नवकुटोपशोभितः ।
मेर्वासन्न कूटमाद्यं सिद्धायतन संज्ञितम् ॥१८९॥

यह माल्यवान पर्वत वैडुर्य रत्नमय है इसके नौ शिखर हैं । उसमें प्रथम सिद्धायतन नाम का है, जो मेरु पर्वत के नजदीक आया है । (१८९)

द्वितीयं माल्यवत् कुटं तृतीयं तु ततः परम् ।
भवेदुत्तर कुर्वाख्यं, तुर्यं कच्छाभिधं, मतम् ॥१८२॥

पंचमं सागराभिख्यं षष्ठं तु रजताभिधम् ।
शीताकुटं पूर्णभद्रकुटं हरिस्सहाभिधम् ॥१८३॥
दूसरे शिखर का नाम माल्यवान, तीसरे का नाम उत्तर कुरु है, और चौथा कच्छ, पांचवे का नाम सागर है, छठा 'रजत' सातवां शीता कूट, आठवां पूर्ण भद्र और नौवें का नाम हरिस्सह है । (१८२-१८३)

ऐशान्यां मन्दरात् पंक्या स्थितंकूटचतुष्टयम् ? ।
तुर्यात् पंचममैशान्यां षष्ठादक्षिणतश्चतत् ॥१८३॥

इन नौ में से चार तो मेरु पर्वत से ईशान कोण में श्रेणि बद्ध रहे हैं, और पांचवा चौथे से ईशान कोने में और छठा दक्षिण दिशा में (१८४)

पंचमादुत्तरस्यां च षष्ठं रजतमित्यर्थ ।
दक्षिणोत्तरया पंक्या शेषं कुटत्रयं ततः ॥१८५॥

छठा शिखर पांचवें से उत्तर दिशा में है, और शेष तीन शिखर इससे दक्षिणोत्तर में पंक्तिबद्ध आए हैं । (१८५)

पूर्ण भद्रादुत्तरस्यां याम्यां नीलवतो गिरेः ।

कुटं नाम्ना सहस्रांकं ख्यातं हरिस्सहं च तत् ॥१९६॥

हरिस्सह नाम से पर्वत शिखर है, वह सहस्रांक नाम से प्रसिद्ध शिखर है, वह पूर्ण भद्र से उत्तर दिशा में है और नीलवान से दक्षिण दिशा में आया है । (१९६)

एतन्नीलवतो वर्षधरस्यासन्नमीरितम् ।

जात्य स्वर्णं मयं दीप्रभापटलपिंजरम् ॥१९७॥

यह हरिस्सह शिखर है, वह 'नीलवान' वर्षधर पर्वत के नजदीक आया है । और यह सुवर्णमय और तेजस्वी कान्ति के समूह के कारण से पिंजर (पीले) रंग का दिखता है । (१९७)

योजनानां सहस्रं तत्तुंगं वृत्ताकृति ध्रुवम् ।

अद्भ्यर्थयोजनशतद्वयमुद्देशतो भवेत् ॥१९८॥

यह एक हजार योजन ऊँचा है, इसकी आकृति गोल है और दो सौ पचास योजन जमीन के अन्दर में गहरा है । (१९८)

तथ्योक्तं जम्बू द्वीपप्रज्ञप्ति वृत्तौ - 'अवशिष्टं यमकगिरि प्रमाणेन नेतव्यम् । तच्चेदम् ! अट्टाङ्गजाङ्गं जो अणं सयाङ्गं उव्वे हेणं ।'

इस सम्बन्ध में जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की टीका में कहा है कि 'शेष बात यमक गिरि के समान है अर्थात् वह दो सौ पचास योजन गहरा है ।'

योजनानां सहस्रं च स्यान्मूले विस्तृतायतम् ।

मध्ये साद्धा सप्तशतीं शतानि पंच चोपरि ॥१९९॥

इस हरिस्सह शिखर के मूल में एक हजार योजन हैं, मध्य में सात सौ पचास योजन हैं और ऊपर के भाग में पांच सौ योजन का विस्तार है । (१९९)

योजनानां त्रिसहस्री सद्वाषष्टिशतान्विता ।

द्वे सहस्रे च द्विसप्ततयधिकाद्विशतांचिते ॥२००॥

सहस्रं साधिकैकाशीत्याढ्यपंचशतान्वितम् ।

क्रमादस्य परिक्षेपा मूले मध्ये तथोपरि ॥२०१॥ युग्मं ॥

इस शिखर का मूल भाग में घेराव तीन हजार एक सौ बासठ योजन है, मध्य भाग में घेराव दो हजार दो सौ बहत्तर योजन है, और ऊपर के विभाग का घेराव एक हजार पांच सौ इकासी योजन का है ।

शतानि पंच विस्तीर्णे गजदन्तगिराविदम् ।

सहस्र योजन पृथुकूटं माति कथं ननु ॥२०२॥

यहां प्रश्न करते हैं - पांच सौ योजन विस्तार गजदंत पर्वत के समान इस एक हजार योजन विस्तार वाले की समानता किस तरह हो सकती है ? (२०२)

अत्रोच्यते - गजदन्त गिरि व्याप्य निजार्धेन स्थितं ततः ।

गिरेरुभयतो व्योम्नि शेषार्धेन प्रतिष्ठितम् ॥२०३॥

इसका उत्तर देते हैं - यह शिखर गजदंत के ऊपर आधा है, शेष आधा गिरि के दोनों तरफ आकाश में झूलता है । (२०३)

तथोक्तं क्षेत्र समास बृहद्बृत्तौ - "एव हरिकूट हरिस्सह कूटयोरपि निज निजाश्रय गिर्योः यथा रूपं उभयपार्श्वे आकाश भवरूद्धय स्थितत्वं परि भावनीय मिति ।"

इस विषय में क्षेत्र समास की बृहत् वृत्ति में कहा है कि - 'इसी तरह हरिकूट और हरिस्सह शिखर अपने-अपने आश्रय रूप पर्वत पर यथा रूप दोनो तरफ आकाश में झूलते रहते हैं । ऐसा समझना ।'

आद्यकूटं जिनगृहं तथा पंचमषष्ठयोः ।

सुभोगाभोगमालिन्यो दिक्कुमार्यो निरूपिते ॥२०४॥

प्रथम शिखर पर जिनेश्वर भगवान का एक चैत्य है, और पांचवे और छठे शिखर पर अनुक्रम से सुभोग और भोगमालिनी नाम की दिक्कुमारिका निवास करती है । (२०४)

शेषेषु षट्सु कूटेषु पत्न्योपमायुषस्सुराः ।

कूटानुरूपनामनो महद्भर्या विजयोपमाः ॥२०५॥

शेष छः शिखरों पर एक पत्न्योपम के आयुष्य वाले, शिखर सदृश नाम वाले तथा विजय देव समान ऋद्धिवाले देव निवास करते हैं (२०५)

एतेषां देवदेवीनामैशान्यां मन्दराद् गिरेः ।

जम्बू द्वीपेऽन्यत्र राजधान्यो हरिस्सहं बिना ॥२०६॥

हरिस्सह के बिना के शिखर पर रहने वाले देव देवियों की राजधानी मेरु पर्वत से ईशान कोने में अन्य जम्बू द्वीप में है । (२०६)

हरिस्सहस्यतु ख्याता राजधानी सुमेरूतः ।

उत्तरस्यामन्यज्जम्बू द्वीपे हरिस्सहाभिधाः ॥२०७॥

हरिस्सह शिखर का हरिस्सह नाम के देव की हरिस्सहा नामक राजधानी अन्य जम्बूद्वीप में है, और वह मेरू पर्वत से उत्तर दिशा में है । (२०७)

सहस्वाश्चतुरशीतिर्योजनानां भवेदिह ।

व्यासायामावपरं तु तुल्यं चमरचंचया ॥२०८॥

इसका विस्तार चौरासी हजार योजन है । शेष सर्व चमरचंचा अनुसार समझना चाहिए । (२०८)

इमावद्री योजनानां दक्षिणोत्तरमायतौ ।

त्रिंशत्सहस्रान् द्विशतीं नवोत्तरां सषट्कलाम् ॥२०९॥

पूर्वापरं च विस्तीर्णो समीपे नीलवदगिरेः ।

शतानि पंच पर्यन्तेऽङ्गुलासंख्यांशं विस्तृतौ ॥२१०॥

चतुःशतीं योजनानां गिरेर्नीलवतोऽन्तिके ।

अभ्युन्नतौ शतमेकमवगाढौ भुवोऽन्तरे ॥२११॥

समीपे मन्दरस्याथ स्यातां पंच शतोन्नतौ ।

निमग्नौ पंच गव्यूतशतानि वसुधान्तरे ॥२१२॥ कलापकं ॥

ये दोनों गन्धमादन और माल्यवान पर्वत तीस हजार दो सौ नौ योजन छः कला दक्षिण उत्तर में लम्बे हैं और नीलवान पर्वत के समीप में पांच सौ योजन पूर्व पश्चिम चौड़े हैं । मेरू पर्वत के पास में अंगुल के असंख्यवै भाग जितना चौड़े हैं । दोनों नीलवान पर्वत के पास में चार सौ योजन ऊँचे हैं और एक सौ योजन जमीन के अन्दर धंसे है । वे मेरू पर्वत के पास में तो पांच सौ योजन ऊँचे हैं और सवा सौ योजन जमीन में रहे हैं । (२०९-२१२)

नीलवत्यर्वतोपान्ताद्द्वर्धमानाविमौ क्रमात् ।

समुत्सेधावगाहाभ्यां विसतुत्या हीयमानकौ ॥२१३॥

पूर्वोक्त मान विस्तीर्णोद्विन्दोच्चावुपमन्दरम् ।

नीलवच्छैलकरिणो दशनाथिव राजतः ॥२१४॥ युग्मं ॥

नीलवान पर्वत से चौड़ाई में घटते और ऊंचाई तथा गहराई में बढ़ते मेरू

के पास में पूर्व कहे अनुसार विस्तार और गहराई को प्राप्त करते हैं, ये दोनों मानो नीलवान पर्वत रूपी हस्ती के दो दन्त शूल न हों इस तरह शोभायमान होते हैं ।
(२१३-२१४)

प्रत्येकं च पद्मवरवेदिकावनमण्डितौ ।

कुरुतस्तौ मिथो योगादधिज्यधनुराकृतिम् ॥२१५॥

इन दोनों पर्वत पर पद्मवेदिका और बगीचा शोभायमान होता है । इनका परस्पर योग होने से इनकी आकृति रस्सी चढ़े धनुष्य के समान होती है । (२१५)

गन्धमादनसन्माल्यवतोः पर्वतयोरथ ।

अभ्यन्तरे स्थिताः कान्तभुजयोरिव कामिनी ॥२१६॥

मन्दराद्रेरुत्तरस्यां दक्षिणस्यां च नीलतः ।

उत्तराः कुरवः ख्याता अनुत्तरचिदाश्रयैः ॥२१७॥ युग्मं ॥

अब मंदराचल की उत्तर में और नीलवान की दक्षिण में उत्तर कुरुक्षेत्र आया है, वह भरतार की दो भुजाओं के बीच रही स्त्री के समान गन्धमादन और माल्यवान इन दोनों पर्वतों के बीच रहा है । (२१६-२१७)

उदग्दक्षिणविस्तीर्णास्ता पूर्व पश्चिमायताः ।

अर्धेन्दुमण्डलाकारा भुवोभालमिवाहिताः ॥२१८॥

यह उत्तर कुरुक्षेत्र उत्तर दक्षिण में चौड़ा है, और पूर्व पश्चिम में लम्बा है, इसका आकार अर्धचन्द्र समान होने से यह पृथ्वी के ललाट समान दिखता है ।
(२१८)

अत्रोत्तर कुरुनाम देवः पत्न्योपम स्थितिः ।

वसत्यतस्तथा ख्याता यद्वेदं नाम शाश्वतम् ॥२१९॥

वहां पत्न्योपम के आयुष्य वाला उत्तर कुरु नाम का देव रहता है, इससे वह उत्तर कुरु कहलाता है । अथवा यह शाश्वत ही नाम समझना । (२१९)

एकादश सहस्राणि शतान्यष्ट तथोपरि ।

योजनानां द्विचत्वारिंशत् कलाद्वितयं तथा ॥२२०॥

दक्षिणोत्तर विस्तार एतासां वर्णितो जिनैः ।

ज्ञात व्यात्रोपपत्तिश्च पूर्वाचार्य प्रदर्शिता ॥२२१॥ युग्मं ॥

इसका उत्तर दक्षिण का विस्तार ग्यारह हजार आठ सौ बियालीस योजन

और ऊपर दो कला है । जिनेश्वर प्रभु ने कहा है । इस विषय में पूर्वाचार्य ने जो उपपत्ति (युक्ति) कही है वह इस तरह है - (२२०-२२१)

महा विदेह विष्कम्भे मेरु विष्कम्भवर्जिते ।

अर्धीकृते कुरू व्यासमानं भवति निश्चितम् ॥२२२॥

महाविदेह क्षेत्र के चौड़ाई से मेरु पर्वत की चौड़ाई को कम करके बाद में आधा करने से उत्तर का व्यास आता है ।

त्रिपंचाशद्योजनानां सहस्राणि भवेदिह ।

प्रत्यंचा नीलवत्याश्वे सा चैवं परिभाव्यताम् ॥२२३॥

भद्रशालवनायामो द्विगुणो मन्दरान्वितः ।

गजदन्त व्यास हीनः कुरू जीवामितिर्भवेत् ॥२२४॥

इसकी जीवा नीलवंत पर्वत के पास तिरपन हजार योजन है; वह इस प्रकार - भद्रशालवन की लम्बाई को द्वि गुणा करके उसमें मेरु पर्वत की चौड़ाई मिलाकर, उसमें से गजदंत का व्यास निकाल देने से जो संख्या आती है, वह कुरु की जीवा है । वह इस प्रकार $२२,००० \times २ = ४४,००० + १०,००० = ५४,००० - १,००० = ५३,०००$ होता है । (२२३-२२४)

योजनानांसहस्राणि षष्टिः किंच चतुःशती ।

अष्टादशाधिका शेषा कला द्वादश तद्दनुः ॥२२५॥

तच्चैवम् - आयाममानयोयोगे उभयोर्गजदन्तयोः ।

भवेत्कुरुधनुःपृष्ठमानं मेरु समीपतः ॥२२६॥

इसका धनुः पृष्ठ साठ हजार चार सौ अठारह योजन और बारह कला है, वह इस प्रकार से - दोनों गजदंत पर्वतों के लम्बाई को जोड़ लगाने से यही मेरुपर्वत के नजदीक कुरु का धनुः पृष्ठ का मान है । (२२५-२२६)

अत्यन्तं रमणीयात्र क्षितिरिति विवर्जिता ।

कल्पद्रुमा दशविधाः पूर यन्तिजनेप्सितम् ॥२२७॥

इस उत्तर कुरु क्षेत्र की धरती अत्यन्त रमणीय है, और वहां किसी भी प्रकार के उपद्रव का भय नहीं होता, वहां दस प्रकार के कल्प वृक्ष होते हैं । वे युगलियों का सर्व भावांछित पूर्ण करते हैं । (२२७)

सदा युगल धर्माणो जना ललित मूर्तयः ।

गर्वूतत्रयमुत्तुंगाः कलाः कौशल शालिनः ॥२२८॥

वहां निरन्तर युगल धर्मी सुन्दर आकृति वाले तीन कोस ऊँचे और कला कौशल में पारंगत मनुष्य निवास करते हैं । (२२८)

दधानाश्चायुत्कर्षात्पूर्ण पल्योपमत्रयम् ।

पल्यासंख्येयभागानं पल्यत्रयं जघनयतः ॥२२९॥

षट् पंचाशत्संयुते द्वे शते षष्टकरण्डकान् ।

धारयन्तः क्रोधमानमायालोभाल्पताजुष ॥२३०॥ विशेषकं ॥

उनकी उत्कृष्ट आयुष्य तीन पल्योपम की और जघन्य से एक पल्योपम के असंख्यभाग कम तीन पल्योपम होती है । इनके शरीर में दो सौ छप्पन पसलियां होती हैं । इनको क्रोध, मान, माया और लोभ बहुत ही अल्प होता है । (२२९-३३०)

ते षोढा स्युः पद्मगन्धा मृगगन्धास्तथा समाः ।

सहाश्च तेजस्तलिनः शनेश्चारिण इत्यपि ॥२३१॥

उनकी छः जातियां होती हैं - १- पद्म गंध, २- मृगगंध ३- सम, ४- सह, ५- तेजस्तलिन और ६- शनेश्चर ।

सकृदष्टमभक्तान्ते तुवरीकणमात्रया ।

पृथ्वी कल्पद्रुम फलभोजिनो मनुजाश्च ते ॥२३२॥

एकोनपंचाशद् घस्त्रविहितापत्यपालनाः ।

कासजृम्भादिभिस्त्यक्त प्राणा यान्ति त्रिविष्टपम् ॥२३३॥ युग्मं ॥

वे हमेशा तीन दिन के बाद एक ही बार पृथ्वी और कल्पवृक्ष के फल, अरहर के दाने जितना आहार करते हैं । उनचास दिन तक संतान का पालन पोषण करके फिर खांसी अथवा उबासी (जंभाई) आकर उनकी मृत्यु हो जाती है । और मृत्यु के बाद वे स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं । (२३२-२३३)

अनन्तगुणमाधुर्यो हरिचर्षाद्यपेक्षया ।

पृथ्वी पुष्प फलादीनामास्वादरतत्र वर्णितः ॥२३४॥

वहां की पृथ्वी, पुष्प, फल आदि की मिठास-मधुरता हरिवर्ष क्षेत्र की अपेक्षा से अनन्त गुणा है । (२३४)

तादृशा एव तिर्यचः तत्र हिंसादिवर्जिताः ।
पालयित्वा युगधर्मं गच्छन्ति नियमाद् दिवम् ॥२३५॥

आहारान्त्यमी षष्ठान्तरमित्थं यथागमम् ।
अन्ययुग्मतिरश्चाभ्याहारेऽन्तरमूह्यताम् ॥२३६॥

वहां के तिर्यच भी हिंसा उपद्रव आदि से रहित हैं, और वे भी वहां के मनुष्यों के समान अपना युगलधर्म का पालन कर, मृत्यु के बाद स्वर्ग में ही जाते हैं। ये तिर्यच दो दिन के बाद आहार लेते हैं। इस तरह अन्य युग्म तिर्यचों का भी आहार का अन्तर आगम में कहा है उसके अनुसार समझ लेना। (२३५-२३६)

पंचेन्द्रियतिरश्चां यद्वल्भने परमान्तरम् ।
भाषितं षष्ठरूपं तदेषामेव व्यपेक्षया ॥२३७॥

वह इस तरह कहा है कि - पंचेन्द्रिय तिर्यच दो दिन के अन्तर (चाद) में आहार लेते हैं, वह कुरु क्षेत्र के सम्बन्ध में कहा है। (२३७)

तथोक्त । पंचिन्द्रिय तिरिराणं सहामिय छद् अद्मओ ।
इत्यादि ॥

इस सम्बन्ध में कहा है कि - वहां पंचेन्द्रिय तिर्यच और मनुष्य अनुक्रम से दो दिन के अन्तर में और तीन-तीन दिन के अन्तर में आहार लेते हैं।

कालः सदात्र सुषमसुषमाख्यः प्रवर्तते ।
वृद्धः साधुरिव क्षेत्रे परावृत्ति पराङ् मुखः ॥२३८॥

क्षेत्र परावर्तन से पराङ्ग मुख वृद्ध साधु के समान यह हमेशा 'सुषमसुषम' नामक आरा रहता है। (२३८)

क्षेत्रेऽस्मिंश्च नीलवतो गिरेर्दक्षिणतः किल ।
योजनानां शतान्यष्टौ चतुस्त्रिंशत्तमेव च ॥२३९॥

चतुरः साप्तिकान् भागानतिक्रम्य स्थिताविह ।
यमकाख्यौ गिरी शीता पूर्वपश्चिमकूलयोः ॥२४०॥ युग्मं ॥

इस क्षेत्र में नीलवान पर्वत से दक्षिण दिशा में आठ सौ चौतीस पूर्णांक चार सप्तमांश ८३४ ४/७ योजन जाने के बाद शीता नदी के पूर्व और पश्चिम किनारे पर दो 'यमक' नामक पर्वत आये हैं। (२३९-२४०)

मिथस्तुल्यस्वरूपौ तौ यमलघातराविव ।
तदेतौ यमकाभिख्यौ कथितौ जिननायकैः ॥२४१॥

अथवा यमकानामशकुन्याकृतिशालिनौ ।

ततस्सथोदितौ स्वर्णमयो गोपुच्छसंस्थितौ ॥२४२॥

इनको 'यमक' नाम इस कारण से कहा है, कि जुड़वां भाईयों के समान उनका स्वरूप परस्पर एक समान जिनेश्वर भगवान ने कहा है, अथवा तो इनकी यमक नामक पक्षी सदृश आकृति है । वे स्वर्णमय तथा गोपुच्छ आकार से हैं । (२४१-२४२)

व्यासायामपरिक्षेपतुंगत्वोद्विद्धतादिभिः ।

हरिस्सिहोपमौ पद्मवेदिकावनमण्डितौ ॥२४३॥

तयोः पर्वतयोर्मौलौ भूमिभागोऽतिबन्धुरः ।

प्रत्येकं तत्र चैकैकः स्यात्प्रासादावतंसकः ॥२४४॥

इसकी लम्बाई चौड़ाई, घेराव, ऊँचाई और गहराई आदि हरिस्सिह पर्वत के समान हैं । वे पद्मवेदिका और बगीचे के कारण बहुत सुन्दर लगते हैं, इनके ऊपर भूमि का भाग अत्यन्त मनोहर है और वहाँ एक-एक महान प्रासाद है । (२४३-२४४)

द्वाषष्टिं योजनान्यर्द्धाधिकानि स समुच्छ्रितः ।

योजनान्येकत्रिंशतं क्रोशं च विस्तृता यतः ॥२४५॥

वे प्रासाद साढे बासठ योजन ऊँचे और इकतीस योजन एक कोस लम्बे-चौड़े हैं । (२४५)

तन्मध्ये सपरीवारमस्ति सिंहासनं महत् ।

यमकाख्यामहार्हं तच्छेषं विजयदेववत् ॥२४६॥

उसके अन्दर 'यमक' नामक देव के योग्य बड़े परिवार वाले सिंहासन आये हैं और शेष स्वरूप विजयदेव अनुसार समझना । (२४६)

मेरोरुत्तरतो जम्बूद्वीपेऽन्यत्र निरूपिते ।

राजधान्यां यमकयोर्निःशेषं विजयोपमे ॥२४७॥

दूसरे जम्बूद्वीप के अन्दर मेरु पर्वत के उत्तर में विजयदेव की राजधानी के समान ही यमक देवों की राजधानियां हैं । (२४७)

यदुक्तं मन्तरं नीलवतो यमक भूभृतोः ।

यमकाद्याद्य हृदयो स्ताव देवानतरं भवेत् ॥२४८॥

नीलवान और यमक पर्वत के बीच में जितना अन्तर कहा है, उतना ही अन्तर यमक पर्वत और इसके दोनो सरोवर के बीच में है । (२४८)

परस्परं हृदानां च तावदेवोक्तमन्तरम् ।

अन्त्यहृदात्तावतैव क्षेत्रपर्यन्तभूरपि ॥२४९॥

इन चारों सरोवरों का परस्पर अन्तर भी उतना ही कहा है और इस क्षेत्र की पर्यन्त भूमि भी अन्तिम कुंड के समान ही है । (२४९)

एवं च - यमक हृददीर्घत्वैः सप्तभिश्च तथान्तरैः ।

यथोक्तमुत्तर कुरु व्यासमानं प्रजायते ॥२५०॥

और वह इस प्रकार यमक और पांच जलाशय की लम्बाई और सात अन्तरा इन सब का जोड़ करने से उत्तर कुरु का यथोक्त व्यास आता है । (२५०)

तदुक्तम् - जावइयमि पमाणमि होति जमगाओ नीलवंताओ ।

तावइयमंतरं खलु जगदहाणं दहाणं च ॥२५१॥

अन्य स्थान पर कहा है कि यमक और नीलवान पर्वत के बीच में जितना अन्तर है, उतना ही अन्तर यमक और इसके प्रथम जलाशय बीच में तथा परस्पर कुंड के बीच में है । (२५१)

अथाभ्यां यमकाद्रिभ्यां दक्षिण स्यांसमानन्तराः ।

शीतायाः सरितो मध्ये हृदाः पंच यथाक्रमम् ॥२५२॥

अब यह यमक पर्वत से दक्षिण दिशा में, शीता नदी के अन्दर एक समान अन्तर से अनुक्रम से पांच सरोवर आए हैं । (२५२)

प्रथमो नीलवन्नामा नीलवद्गिरिसन्निभैः ।

शोभितः शतपत्राद्यैस्तत्तथाप्रथिताभिधः ॥२५३॥

यद्वा नागकुमारेन्द्रो नीलवन्नाम निर्जरः ।

पालयत्यस्य साम्राज्यमित्येवं प्रथिताभिधः ॥२५४॥

वह इस तरह :- प्रथम सरोवर नीलवान नाम का है । नीलवान पर्वत के समान शतपत्र कमल आदि से वह शोभायमान हो रहा है अतः वह इस नाम से प्रसिद्ध है, अथवा नीलवान नामक नागकुमारों के इन्द्र देव का वहां साम्राज्य है, इस कारण से इस नाम से पहिचाना जाता है । (२५३-२५४)

द्वितीयस्तूत्रकुरु स्संस्थानाब्जादि मत्तया ।

तुल्याख्यव्यन्तरावासाद्यद्वोत्तरकुरु हृदः ॥२५५॥

दूसरा उत्तर कुरु नाम का सरोवर है, उसमें उत्तर कुरु समान कमल पुष्प होने से अथवा उत्तर कुरु नामक व्यन्तर का वास होने से, इसका नाम यह पड़ गया है । (२५५)

चन्द्राभशतपत्रादि मत्वाच्चन्द्राभिधोहृदः ।

व्यन्तरेन्द्रचन्द्रदेवस्वामित्वाद्वातृतीयकः ॥२५६॥

तीसरा चन्द्र नाम का सरोवर है । उसमें चन्द्रमा समान आभा (कान्ति) वाले कमल आदि होने से अथवा चंद्रदेव नाम का व्यन्तरेन्द्र स्वामी होने से वह इस नाम से प्रसिद्ध है । (२५६)

ऐरावताकार हारिपद्यादि मत्तयाथवा ।

व्यन्तरेरावताढयात्वात्तुर्यश्चैरावतो हृदः ॥२५७॥

चौथा ऐरावत नाम का जलाशय है, इसमें ऐरावत के आकार के मनोहर कमल होने अथवा इनके नाम के स्वामी व्यन्तरदेव का ऐरावत नाम होने से यह नाम पड़ गया है । (२५७)

माल्यवत्पर्वताकाराम्बुजादिमत्तयाथवा ।

माल्यवद्द्वयन्तरावासात् पंचमो माल्यवान् हृदः ॥२५८॥

पांचवा माल्यवान नाम का सरोवर है, इसमें माल्यवान पर्वत के आकार के कमल आदि होने से अथवा इसमें माल्यवान नाम के व्यन्तर देव का निवास होने से यह माल्यवान सरोवर कहलाता है । (२५८)

पद्महृदसमाकाराः सर्वे सहोदरा इव ।

तथैव पद्मवलयैः षड्जातीयैरलंकृताः ॥२५९॥

ये सर्व सरोवरं पद्म सरोवर के समान हैं और सारे सहोदर भाई सदृश एक समान है तथा कमल के छः वलय से अलंकृत है । (२५९)

विशेषस्तु पद्महृदः परिक्षिप्तः समन्ततः ।

एकेन वनखण्डेन पद्म वेदिकयैकया ॥२६०॥

विभक्ताभ्यां प्रविश्यान्तर्विनिर्यान्त्या च शीतया ।

अभी पद्म वेदिकाभ्यां वनाभ्यां च परिष्कृताः ॥२६१॥

फेर फार केवल इतना ही है, कि जब पद्म सरोवर के आस-पास एक पद्म वेदिका और बगीचा है, तब इस सरोवर के आस-पास अन्दर करके फिर बाहर निकलते शीता नदी से विभक्त दो पद्म वेदिका और दो बन हैं । (२६०-२६१)

याम्योत्तरायताश्चामी पूर्व पश्चिम विस्तृताः ।

सहस्र योजनायामाः शतानि पंच विस्तृताः ॥२६२॥

यह सरोवर एक हजार योजन उत्तर दक्षिण में लम्बा है, और पांच सौ योजन पूर्व पश्चिम में चौड़ा है । (२६२)

तथाहुः-

सीयासी ओयाणं बहुमञ्जे हुंति पंच हरयाओ ।

उत्तर दहिण दीहा पुव्वाधर वित्थडा इणमो ॥२६३॥

अन्यत्र भी कहा है कि - शीता और शीतोदा नदियों में बीचोंबीच पांच सरोवर हैं । वे उत्तर-दक्षिण में लम्बे और पूर्व पश्चिम में चौड़े हैं । (२६३)

पद्म हृदादयो ये तु परे वर्षधरा हृदाः ।

ते स्युः पूर्वपरायामा दक्षिणोत्तर विस्तृताः ॥२६४॥

पद्म सरोवर आदि जो अन्य वर्ष धर पर्वत के ऊपर सरोवर हैं, वह तो उत्तर दक्षिण में चौड़े और पूर्व में लम्बे हैं । (२६४)

हृदाधिदेवतानां च पंचानाममृताशिनाम् ।

राजधान्योऽन्यत्र जम्बूद्वीपे मेरुरूदग्दिशि ॥२६५॥

इन पांच सरोवर के पांच अधिष्ठायक देवों की राजधानियां हैं, वह दूसरे जम्बू द्वीप में मेरू पर्वत की उत्तर दिशा में रही है । (२६५)

एकैकस्य हृदस्यास्य पूर्व पश्चिमयोर्दिशोः ।

योजनानि दश दश मुक्त्वा तटभुविस्थिताः ॥२६६॥

शैलाः कांचननामानोमूले लग्नाः परस्परम् ।

एकैकतो दश दश क्षेत्रेऽस्मिन् निखिलाः शतम् ॥२६७॥ युग्मं ॥

इन पांच सरोवरों के पूर्व व पश्चिम दिशा के किनारे पर दस-दस योजन छोड़कर मूल में परस्पर संलग्न कांचन नामक पर्वत है । प्रत्येक सरोवर-के दोनों तरफ से दस-दस होने से वे सब मिलाकर इस क्षेत्र में एक सौ होते हैं । (२६६-२६७)

सर्वेऽपि योजनशतोलुंगा रम्या हिरण्मयाः ।

विष्कम्भायामतो मूले योजनानां शतं मताः ॥२६८॥

मध्ये पंचसप्तति च योजनानि प्रकीर्तिताः ।

पंचाशतं योजनानि मस्तके विस्तृतायताः ॥२६९॥ युग्मं ॥

ये सब एक सौ योजन ऊँचे हैं और स्वर्णमय हैं । इसका मूल में विस्तार एक सौ योजन का है, मध्य में पचहत्तर योजन है और ऊपर का विस्तार पचास योजन का कहा है । (२६८-२६९)

शतत्रयं षोडशाढ्यं किञ्चिद्विशेषतोऽधिकम् ।

योजनानि परिक्षेपः तेषां मूले प्रकीर्तितः ॥२७०॥

मध्ये विशेषभ्याधिका सप्तत्रिंशा शतद्वयी ।

सातिरेकाष्टपंचाशद्युक्तं शतमथोपरि ॥२७१॥ युग्मं ॥

इनकी परिधि अर्थात् घेराव मूल में तीन सौ सोलह योजन से कुछ अधिक है, मध्य में दो सौ साढे तीस योजन से कुछ अधिक है और ऊपर एक सौ अट्ठावन योजन से कुछ अधिक कहा है । (२७०-२७१)

वसुन्धरावधुक्नीडास्वर्णसारिसमाः स्थिताः ।

दक्षिणोत्तरपंक्त्यैते वेदिका वनमण्डिताः ॥२७२॥

पृथ्वी रूपी वधू को खेलने-क्रीडा करने के लिए सुवर्ण के चौपड़ समान ये पर्वत पद्मवेदिका और बगीचे द्वारा शोभते हुए उत्तर-दक्षिण श्रेणिबद्ध रहे हैं । (२७२)

कांचनप्रभपाथोजाद्यलंकृत जलाश्रयाः ।

कांचनाख्यास्ततो यद्वा कांचनाख्यैः सुरैः श्रिताः ॥२७३॥

इसके ऊपर कांचन समान कान्ति वाले कमलों से युक्त जलाशय होने से अथवा कांचन नाम के इसके अधिष्ठायक देव होने से, इसका कांचन नाम कहा जाता है । (२७३)

सर्वेऽप्येकैक प्रासादावतंसाश्रितमौलयः ।

प्रासादास्ते च यमकप्रासादसदृशा मताः ॥२७४॥

इस कांचन पर्वत के शिखर पर एक-एक सुन्दर प्रासाद है, वे सर्व प्रासाद यमक पर्वत के प्रासाद समान होते हैं । (२७४)

सपरिच्छदमेकैकं तत्र सिंहासनं स्फुरत् ।

ऐश्वर्यं भुजते तेषु निर्जराः कांचनाभिधाः ॥२७५॥

सभी प्रासादों में बड़े परिवार वाले सिंहासन शोभायमान हो रहे हैं । इनका कांचन नाम का देव ऐश्वर्य पूर्वक उपभोग कर रहा है । (२७५)

ऋद्धिश्चैषां विजयवदायुः पत्न्योपमं स्मृतम् ।

मेरूरुदग् राजधान्यो जम्बू द्वीपे परत्र च ॥२७६॥

इस कांचन देव की समृद्धि विजय देव के समान है, इसका आयुष्य एक पत्न्योपम का कहा है, और इसकी राजधानी दूसरे जम्बूद्वीप के मेरू पर्वत के उत्तर में कही गयी है । (२७६)

अथोत्तरकुरुक्षेत्रस्थिता जम्बूनिरूप्यते ।

सुदर्शनाख्या यन्नाम्ना जम्बूद्वीपोऽयमुच्यते ॥२७७॥

इस उत्तर कुरु क्षेत्र में 'सुदर्शन' नाम का जम्बू द्वीप वृक्ष आया है, उसका वर्णन करता हूँ । जिस जम्बू वृक्ष पर उसका जम्बू द्वीप नाम पड़ा है । (२७७)

उत्तराः कुरवो द्वेधा विभक्ताः शितया किल ।

पूर्वापरार्धभावेन सीमन्तेनालका इव ॥२७८॥

बालो जैसे मांग के कारण से दो विभाग में बंटवारा हो जाता है, इसी तरह यह उत्तर कुरुक्षेत्र शीतानदी के कारण से १- पूर्व-उत्तर कुरु और २- पश्चिम उत्तर कुरु इस प्रकार दो विभाग में बांटा गया है । (२७८)

तत्र च - दक्षिणस्यां नीलगिरेः उदीच्यां मन्दराचलात् ।

पश्चिमायां माल्यवतः शीतायाः प्राक्तने तटे ॥२७९॥

उदक्कुरुप्राक्तनार्धमध्यभागे निरूपितम् ।

जाम्बूनदमयं जम्बू पीठं नम्रसुरासुरैः ॥२८०॥ युग्मं ॥

उत्तर कुरु क्षेत्र के पूर्वाद्ध के मध्य विभाग में नील गिरि से दक्षिण दिशा में, मेरू पर्वत से उत्तर दिशा में, और माल्यवान पर्वत से पश्चिम दिशा में शीता नदी के पूर्वतट पर, सुवर्णमय जम्बू पीठ आया है । इस प्रकार श्री जिनेश्वर भगवान ने कहा है । (२७९-२८०)

शतानि पंच विष्कम्भायामौ परिधिरस्य च ।

एकाशीत्यधिकं सार्धं सहस्रं किंचनाधिकम् ॥२८१॥

पीठस्यास्य मध्यभागे वाहल्यं परिकीर्तितम् ।

योजनानि द्वादशान्त्यभागेषु क्रोशयोर्द्वयम् ॥२८२॥

इस जम्बू वृक्ष की पीठ लम्बाई चौड़ाई में पांच योजन है और इसका घेराव पंद्रह सौ इकासी योजन से कुछ अधिक है, इसकी मोटाई मध्य भाग में बारह योजन की और अन्तिम में दो कोस की है । (२८१-२८२)

तदेकया पद्मवेदिकया वनेन च ।

समावृतं तन्मानादि जगतीवेदिकावत् ॥२८३॥

इस पीठ के आस पास एक पद्म वेदिका तथा सुन्दर बगीचा है, इसका मान आदि जगती की वेदिका के समान जानना । (२८३)

दिक्षु पूर्वाद्यासु तस्य जम्बूपीठस्य तीर्थपैः ।

एकैकं द्वारमुक्तं त्रिसोपानप्रतिरूपकम् ॥२८४॥

इस जम्बू पीठ की पूर्वादि चार दिशाओं में तीन-तीन सोपान वाला एक-एक द्वार कहा है । (२८४)

तदेक क्रोश विस्तीर्णं क्रोशद्वय समुच्छ्रितम् ।

वज्ररत्नमयैर्भूमि मूलभागैर्मनोहरम् ॥२८५॥

भूमेरूर्ध्वं प्रतिष्ठान भूतेश्चरिष्टरत्नजैः ।

प्रदेशैः शोभितं सर्ववैदूर्यस्तम्भबन्धुरम् ॥२८६॥

सुवर्णरूप्यफलकैः वैदूर्यसन्धिबन्धुरैः ।

रत्नालम्बन बाहाभिः रत्नालम्बनकैः युतम् ॥२८७॥ विशेषकं ॥

इस तरह इसके चार द्वार हैं, ये चारो द्वार एक-एक कोस चौड़ा और दो-दो कोस ऊँचा है । इसके मूल के पास की धरती वज्र रत्नमय है । इसके आस-पास का भूमि प्रदेश रिष्टरत्नमय है । और इसके स्तंभ वैदूर्य रत्नमय है । इन द्वारों के किवाड़ वैदूर्य रत्न लगे हुए सोने चान्दी के हैं । लटकते रत्नों से युक्त इसकी बाहा है । और इसके ऊपर रत्नों के झूमने वाला गुच्छा शोभायमान हो रहा है । (२८५-२८७)

द्वारेषु तेषु सर्वेषु प्रत्येकं तोरणं भवेत् ।

रत्नस्तम्भसन्निविष्टं वृषभाश्वदि चित्रयुक्तम् ॥२८८॥

इन चारों द्वारों में रत्नमय स्तंभों पर लगाये गये वृषभ, अश्व आदि नाना प्रकार के चित्र वाले तोरण लगे हैं । (२८८)

तोरणानामुपर्येषामुत्तरंगेषुसन्ति वै ।

अष्टावष्टौ मंगलानि तथा ततोरणोपरि ॥२८६॥

दण्डा वज्रमयाः पंच वर्णाश्च चामर ध्वजाः ।

पताकातिपताकाश्च छत्रातिछत्रकाणि च ॥२८७॥

भूयांसि घण्टायुग्मानि भूयांस उत्पलोच्चयाः ।

भूयांसः पद्मकुमुदनिकराः सन्ति रत्नजाः ॥२८९॥ विशेषाकं ॥

दरवाजे की चोखट के ऊपर रहे तोरण में अष्ट मंगल, तथा उस तोरण के ऊपर भाग में वज्रमय दण्ड, पंच वर्ण के चमर और ध्वजाएँ, पताकाओं पर पताकायें और छत्र पर छत्र शोभायमान हो रहा है, तथा अनेक विशाल घंटे कमल और समूहबद्ध रत्नमय पद्म और कुमुद लगे हुए हैं । (२८६-२८९)

मध्यभागेऽस्य पीठस्य स्याच्चतुर्योजनोन्नता ।

योजनान्यष्ट विस्तीर्णयतैका मणिपीठिका ॥२८९॥

इस जम्बू द्वीप के मध्यभाग में एक मणि पीठिका है, वह चार योजन ऊँची और आठ योजन लम्बी-चौड़ी है । (२८९)

उपर्यस्याः पीठिकाया जम्बू वृक्षोऽस्ति वेष्टितः ।

वेदिकाभिःद्वादशभिःप्राकाराकारचारूभिः ॥२९३॥

उस पीठिका पर पूर्वोक्त जम्बू वृक्ष आया है, उसके आस-पास किले के आकार वाली बारह वेदिका शोभायमान होती है । (२९३)

अथास्य जम्बू वृक्षस्य मूलं वज्रमयं मतम् ।

मूलादुपरि यः कन्दो भू मध्यस्थः स रिष्टजः ॥२९४॥

स्कन्धः कन्दादुत्थितो यः स तु वैडूर्यं रत्नजः ।

सुवर्णं मध्यस्तच्छाखाः प्रशाखा जातरूपजाः ॥२९५॥

इस जम्बू वृक्ष का मूल वज्रमय है, इसके मूल जड़ से ऊपर पृथ्वी के मध्य में कंद है, वह रिष्ट रत्नमय है, और कंद में से निकला हुआ स्कन्ध वैडूर्य रत्नमय है, इसकी शाखाएँ सुवर्णमय हैं, और प्रशाखाएँ रक्त सुवर्णमय हैं । (२९४-२९५)

शाखानां दिक्प्रसृतानां मध्ये स्कन्धात्समुत्थिता ।

योर्ध्वं शाखा विडिमाख्या सोक्ता रजत निर्मिता ॥२९६॥

पत्राणि तस्य वैडूर्यमयानि जगदुः जिनाः ।

तपनीय वृन्तवन्ति गुच्छा जाम्बूनदोद्भवाः ॥२६७॥

रजतोत्थास्तप्रवालांकु राःपुष्पफलावली ।

नाना रत्नमयी जम्बूतरुरिदक् श्रुतः श्रुते ॥२६८॥

चारो तरफ से फैली हुई विशाल शाखाओं के मध्य में स्कन्ध में से निकली हुई 'विडिम' नामक एक ऊंची शाखा है, वह चान्दीमय है, इसके पत्ते वैडूर्य रत्नमय है, गुच्छ सुवर्णमय और डोंडी भी सुवर्णमय है, इसके प्रवाल के अंकुर चांदीमय और पुष्प तथा विविध रत्नमय है । (२६६-२६८)

शाखा प्रभवपर्यन्तः स्कन्धः कन्दाद्य ऊर्ध्वगः ।

द्वे योजने स उत्तुंगो विस्तीर्णः क्रोश योर्द्वयम् ॥२६९॥

इस जम्बू वृक्ष के कंद से ऊपर शाखा निकलती है वहा तक का विभाग तो स्कंध कहलाता है, वह दो योजन ऊंचा और दो कोस चौड़ा है । (२६९)

या दिक् प्रसृत शाखान्तर्जाता शाखोर्ध्वगामिनी ।

विडिमापरपर्याया सोत्तुंगा योजनानि षट् ॥३००॥

चारों तरफ फैली हुई शाखाओं के अन्दर 'विडिम' नाम की सर्व से ऊंची शाखा है, वह छः योजन की ऊंची है । (३००)

एवं च कन्दादोरेभ्य सर्वांग्रेणाष्टयोजनीम् ।

जम्बू तरूः समुत्तुंगोभूमग्नः क्रोशयोर्द्वयम् ॥३०१॥

इसी तरह यह जम्बू वृक्ष कंद से ऊपर तक आठ योजन ऊंचा है । और दो कोस पृथ्वी के अन्दर गहरा है । (३०१)

या तस्य प्रसृता स्कन्धाच्छाखा दिक्षु चतसृषु ।

पूर्वादिषु किलैकैका शिष्य शाखा गुरोरिध ॥३०२॥

क्रोशेनोनानि चत्वारि योजनान्यायताश्चताः ।

प्रत्येकं चित्रकृतः पत्रफलपुष्पाद्यलंकृताः ॥३०३॥ युग्मं ॥

इस वृक्ष के स्कंध में से चार दिशाओं में फैली, गुरु की शिष्य परम्परा समान चार शाखा है, उन प्रत्येक की लम्बाई चार योजन में एक कोस कम है । और ये प्रत्येक विविध जाति के पत्र पुष्प और फल से अलंकृत है । (३०२-३०३)

एवं चोभयतः शाखादैर्घ्ये स्कन्धोर्वतान्विते ।

विष्कम्भायामतः सोऽयं भवेत् पूर्णाष्ट योजनः ॥३०४॥

इसी तरह स्कन्ध की चौड़ाई और शाखाओं की दोनो तरफ की लम्बाई गिनते इस जम्बू वृक्ष की चौड़ाई भी सम्पूर्ण आठ योजन की होती है । (३०४)

शाखायाः प्रसृतायाप्राक् मध्येभागे विराजते ।

अनादृतस्य देवस्य भवनं रत्न निर्मितम् ॥३०५॥

अनेकरत्नस्तम्भाढ्यं क्रोशमायामतो मतम् ।

विष्कम्भतस्तु क्रोशार्थं देशोनं क्रोशमुन्नतम् ॥३०६॥ युगं ॥

इस जम्बू वृक्ष को पूर्व तरफ फैली हुई शाखा के बीच 'अनादृत' देव का अनेक रत्नमय भवन शोभायमान हो रहा है । (३०५) वह भवन लम्बाई में एक कोस, चौड़ाई में आधा कोस और ऊंचाई में एक कोस से कुछ कम है । (३०६)

धनुःपंचशततुंग तदर्धं पृथुलं क्रमात् ।

प्राच्युदीची दक्षिणासु द्वारमेकैकमत्र च ॥३०७॥

इसके पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशा में तीन दरवाजे हैं, वे प्रत्येक पांच सौ धनुष्य ऊंचे तथा अढ़ाई सौ धनुष्य चौड़े हैं । (३०७)

धनुः पंचाशतायाम विष्कम्भा मणिपीठिका ।

तदर्धमान बाहल्या तत्र शय्या विराजिता ॥३०८॥

वहां एक मणि पीठिका है, वह पांच सौ धनुष्य लम्बी चौड़ी है, और अढ़ाई धनुष्य मोटी, और वहां एक शय्या शोभायमान हो रही है । (३०८)

शेष शाखासु तिसृषु स्युः प्रासादावतंसकाः ।

प्राक् शाखा भाविभवनानुकाराः सर्वमानतः ॥३०९॥

सर्वरत्नमयामविष्कम्भा मणि पीठिका ।

अनादृतस्वर्गियोग्य सिंहासन विभूषिताः ॥३१०॥ युगं ॥

शेष तीन शाखाओं में भी महान प्रासाद है । उनका प्रमाण पूर्व की ओर शाखा में रहे भवन समान ही है, वे सर्व प्रकार के रत्नों से युक्त है, देदीप्यमान कान्ति के कारण से चमकदार मणि पीठिका है । वह अनादृत देव के सिंहासन से अलंकृत है । (३०९-३१०)

“यद्यपि विषमाया मविष्कम्भं भवनं श्रीदेव्यादि भवनवत् समायाम विष्कम्भः प्रासादः विजयादि प्रासादवत् इति भवन प्रासादयो विशेषं आमनन्ति तथापि श्री जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र - श्री जिनभद्र गणि क्षमा श्रमण कृत समास - श्री उमा स्वाति वाचक कृत जम्बू द्वीप समास श्री सोमतिलक सूरि कृत नव्य बृहत् क्षेत्र समासादिषु एतेषां वक्ष्यमाण वनगतानां च प्रासादतया व्यपदिष्टत्वात् क्रोशयाम क्रोशाद्धं विष्कम्भत्वस्य च उक्तत्वात् जम्बू प्रकरणे प्रासादा अपि विषमा याम विष्कम्भा इति ध्येयम् । इति अर्थतः उपाध्याय श्री शान्ति चन्द्रो पञ्जजम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति वृत्तौ ॥”

“यद्यपि जिसकी लम्बाई-चौड़ाई विषय हो वह भवन कहलाता है । जैसे श्री देवी-लक्ष्मी देवी का भवन । और सामान्य लम्बाई चौड़ाई हो वह प्रासाद कहलाता है, जैसे कि विजय देव आदि का प्रासाद है। इस प्रकार भवन और प्रासाद में फेरफार गिना जाता है । फिर भी जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र श्री जिनभद्रगणि क्षमा श्रमण कृत क्षेत्र समास की टीका, श्री उमास्वाति वाचक कृत जम्बू द्वीप समास और श्री सोम तिलक कृत नया वृहत् समास आदि में उन्होंने वक्ष्यमाण वनगत भवनो को प्रासाद रूप में गिना हैं । इससे इनकी लम्बाई एक कोस तथा चौड़ाई आधे कोस कही है । इसलिए यह जम्बू वृक्ष के प्रकरण में प्रासाद भी विषम लम्बाई-चौड़ाई वाला है । इस तरह समझना । ऐसा भावार्थ श्री शान्तिचन्द्र उपाध्याय कृत जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति में कहा है ।”

“जीवाभिगम सूत्रे तु एषामपि समायाम विष्कम्भत्वमेवदृश्यते । तथा च तद् ग्रन्थः । तत्थ जे से दाहिणिल्ले साले एत्थ णं एगेमहं पासायावडिंसए पण्णते कोसं च उडुं उच्चतेणं उद्ध कोसं आयाम विखळं मेणं इति ॥”

‘श्री जीवाभिगम सूत्र में तो उनके भी समान लम्बाई चौड़ाई देखने में आती है । इस सूत्र में जो पाठ है, उसका अर्थ इस प्रकार है - दक्षिण दिशा में जो वृक्ष है, उसमें एक महान प्रासाद कहा है, वह ऊंचाई में एक कोस तथा लम्बाई-चौड़ाई में आधा कोस है ।’

“शेषप्रासाद सूत्राणि अपि अस्यैव सूत्रस्य अति देशेन उक्तानि इति ज्ञेयम् ।”

‘शेष प्रासाद सूत्रों में भी इसी ही सूत्र को अति देश से कहा गया है । इस तरह से समझना ।’

चतुर्दिगत शाखान्तः शाखा या विडिमा भिधा ।

तस्या मौलौ मध्यभागे सिद्धायतनमुत्तमम् ॥३११॥

चारो दिशाओं में फैली चार शाखाओं के अन्दर बीच में विडिम नाम की शाखा कही है उसके शिखर के मध्य भाग में एक उत्तम 'सिद्धायतन' है । (३११)

विष्कम्भायामतश्चैवतत् प्राक् शाखा भवनोपमम् ।

देशोनकोशमुत्तुंगं पृथुद्धारत्रयान्वितम् ॥३१२॥

तस्य मध्ये महत्येका शोभते मणि पीठिका ।

धनुः पंचाशतायाम व्यासा तदर्धं मेदुरा ॥३१३॥

इस सिद्धायतन की लम्बाई-चौड़ाई पूर्व दिशा की शाखा के भवन अनुसार से है, और ऊंचाई एक से कुछ कम है । और इसके तीन दरवाजे हैं, इसके मध्य भाग में एक मोटी मणि पीठिका है, जो पांच सौ धनुष्य लम्बी-चौड़ी और इससे आधी मोटी है । (३१२-३१३)

उपर्यस्या महानेको देवच्छन्दक आहितः ।

पंचचापशतायाम विष्कम्भः सर्वरत्नजः ॥३१४॥

सातिरेक धनुः पंचशतोत्तुंगाऽथ तत्र च ।

अष्टाधिकं जिनेर्चानां शतं वैताढय चैत्यवत् ॥३१५॥ युग्मं ॥

उस मणि पीठिका के ऊपर एक मोटा सर्व रत्नमय देवच्छन्दक है, जो पांच सौ धनुष्य लम्बा-चौड़ा और इससे कुछ विशेष ऊंचा है, इसमें वैताढय के चैत्य समान एक सौ आठ जिन बिम्ब-प्रतिमायें विराजमान हैं । (३१४-३१५)

एवमुक्तस्वरूपोऽयं जम्बू वृक्षः समन्ततः ।

भात्यष्टाग्रेण जम्बूनां शतेन परिवेष्टितः ॥३१६॥

उपरोक्त स्वरूप वाले इस जम्बू वृक्ष के चारों तरफ मण्डलाकार एक सौ आठ और जम्बू वृक्ष वहां पर हैं । (३१६)

अमी आद्यपरिक्षेपगता जम्बूमहीरूहः ।

मूलजम्बूतरोरर्धमाना भवन्ति सर्वथा ॥३१७॥

प्रथम घेराव में जितने जम्बू वृक्ष हैं उन सब का मान मूल जम्बू वृक्ष से आधा है । (३१७)

यथा द्वादशभिः पद्म वेदिकाभिः स वेष्टितः ।

तथामी निखिला षड्भिर्वेदिकाभिरलंकृताः ॥३१८॥

मूल जम्बू वृक्ष के आस-पास जिस तरह बारह पद्म वेदिका है, उसी तरह इन सर्व के परिवेष्टन मण्डलाकार छः वेदिकाएँ हैं । (३१८)

श्री देवी पद्मवच्चैते सर्वेऽनादृताकिनः ।

स्वीयाभरणसर्वस्वनिक्षेप वणिगापणाः ॥३१९॥

श्री देवी के दूसरे वलय की कमल पंक्ति समान ये सारे वृक्ष 'अनादृत' देव को अपने आभूषण आदि सर्व वस्तु रखने वाली व्यापारी की दुकान समान है। (३१९)

“एतेषु च १०८ जम्बू वृक्षेषु श्री जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति - श्री जीवाभिगम क्षेत्र विचारादौ सूत्र कृदभिः वृत्ति कृदभिश्च जिन भवन प्रासाद चिन्ता न कापि चक्रे । बहवो बहुश्रुताः श्राद्ध प्रति क्रमण चूर्णिकारादयः शाश्वत जिन स्तोत्र कर्तुं श्री जयानन्द सूरि प्रभृतयश्च मूल जम्बू वृक्षवत् प्रथम वलय जम्बूवृक्ष प्रथम खंडगत कूट काष्ठक जिन भवनैः सह जम्बू वृक्षे सप्तदशोत्तरं जिन भवनानां शतं मन्यमाना इहापि एकैकं सिद्धायतनं पूर्वोक्तं मानं मेनिरे । ततः अत्र तत्त्वं केवलिनो विदुः । इति जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति वृत्तौ ॥”

इस एक सौ आठ जम्बू वृक्षों में जिन भवन अथवा प्रासाद आदि कुछ है, या नहीं है, इस विषय में सूत्रकार या टीकाकारों ने जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति, श्री जीवाभिगम सूत्र अथवा क्षेत्र विचार आदि ग्रन्थों में कोई भी उल्लेख नहीं किया है । परन्तु श्राद्ध प्रतिक्रमण की चूर्णा के कर्त्ता आदि बहुश्रुतो ने तथा शाश्वत जिन की स्तुति के रचयिता श्री जयानंद सूरि जी आदि मूल जम्बू वृक्ष पर, तथा इसके आस पास के प्रथम वलय में रहे जम्बू वृक्षों पर, तथा प्रथम के वनखंड में रहे आठ कूट पर, इस तरह सर्व मिलाकर एक सौ सत्तर जिन भवन मानने के साथ में यहाँ पर भी पूर्वोक्त प्रमाण वाला एक-एक सिद्धायतन मानते हैं, तो ये दो प्रकार की बात में सत्य क्या है, वह केवली ज्ञानी जाने । इसके अनुसार जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की टीका में कहा है कि -

मूलजम्बूतरोस्तस्माद्यथाक्रमं दिशां त्रये ।

वायव्यामुत्तरस्यांचैशान्यां च तुल्य नाकिनाम् ॥३२०॥

जम्बू सहस्राश्चत्वारः तापतां कीर्तिता जिनैः ।

जम्बूश्चस्रः पूर्वस्यां महिषीणां चतसृणाम् ॥३२१॥ युग्मं ॥

सहस्राण्यष्ट चाग्नेय्यां जम्बूोऽभ्यन्तरपर्षदाम् ।

जम्बू सहस्राणि दश याम्यां मध्यम पर्षदाम् ॥३२२॥

ता द्वादश सहस्राणि नैऋत्यां बाह्य पर्षदाम् ।

प्रत्यक् च सप्त सेनान्यां परिक्षेपे द्वितीयके ॥३२३॥

दूसरे वलय में इस मूल जम्बू वृक्ष के वायव्य उत्तर, और ईशान इस तरह तीन दिशाओं में सामानिक देवों के चार हजार जम्बू वृक्ष है, और पूर्व दिशा में चार अग्र महिषियों के चार जम्बू वृक्ष, अग्नि कोण में अभ्यन्तर पर्षदा के आठ हजार और दक्षिण दिशा में मध्यम पर्षदा के दस हजार जम्बू वृक्ष है, और नैऋत्य कोने में बाह्य पर्षदा के बारह हजार तथा पश्चिम की ओर सेनापति के सात जम्बू वृक्ष कहे हैं ।

(३२०-३२३)

जम्बू सहस्राश्चत्वारः प्रत्येकं दिक्चतुष्टये ।

सहस्राः षोडशेत्यात्मरक्षकाणां तृतीयके ॥३२४॥

तीसरे वलय में आत्मरक्षक देवों के प्रत्येक दिशा में चार-चार हजार अतः कुल मिलाकर सौलह हजार जम्बू वृक्ष कहे हैं ।

यद्यप्युक्तं वलयोर्मानं नैवानयोः स्फुटम् ।

पूर्वाचार्यैरुच्चतादेः प्राज्ञैः ज्ञेयाः तथापि हि ॥३२५॥

श्री देवी पद्मदृष्टान्तात् प्रथमाद्वलयादिह ।

अर्धाधमानका जम्बूोऽनयोर्बलययोर्द्वयोः ॥३२६॥

जो कि इस दूसरे और तीसरे वलय में रहे इन वृक्षों की ऊंचाई आदि का मान पूर्वाचार्यों ने कुछ कहा नहीं है, फिर विद्वानों ने श्री देवी के कमल के दृष्टान्त पर भी ये दूसरे तीसरे वलय में आया है, उन वृक्षों का मान पूर्व के वलय के वृक्षों से आधा आधा है इस प्रकार समझ लेना चाहिए । (३२५-३२६)

तथाहुः- जिन भद्र गणि पादाः क्षेत्र समासं -

पउम इहे सिरिण् जो परिवारो कमेण निदिद्धो ।

सो चेव य नायत्वो जम्बू एणा ढियसुरस्स ॥३२७॥

क्षेत्र समास में श्री जिनभद्र गणि महाराज ने कहा है, कि श्री लक्ष्मी देवी के पद्म सरोवर में अनुक्रम से जो परिवार बताया है, उसी तरह से जम्बू वृक्ष के 'अनादृत' देव का भी जानना । (३२७)

तथैवोक्तं जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ता
अत्राप्येकैकया पंक्त्या परिक्षेपे विवक्षिते ।
न जम्बूनामवकाशः श्री देवी पद्मवत् भवेत् ॥३२८॥
तदिहापि परिक्षेप जातयस्तिष्ठ इत्यहो ।
ज्ञेयं जम्बू पंक्तयस्तु यथायोगमनेकशः ॥३२९॥

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की टीका में भी यही भावार्थ कहा है कि - यहां भी एक-एक पंक्ति से विवक्षित वलय में श्री देवी के कमल के समान जम्बू वृक्षों का अवकाश नहीं हो सकता है । इसलिए यहां भी वलय तीन ही समझना चाहिए । और जम्बू वृक्ष की पंक्तियां तो योग अनुसार से अनेक ही हैं । (३२८-३२९)

स चैवं सपरीवारो जम्बू वृक्षः समन्ततः ।
काननैः योजनशतमानैः त्रिभिः समावृतः ॥३३०॥
आनतरेण मध्यमेन बाह्येन च यथाक्रमम् ।
तत्रादिमे बने पूर्वादिषु दिक्षु चतसृषु ॥३३१॥
पंचाशतं योजनानि वगाह्यात्रान्तरे महत् ।
एकैकं भवनं जम्बूशाखाभवनसन्नियम् ॥३३२॥ युग्मं ॥

उपरोक्त परिवार वाले इस जम्बू वृक्ष के आस-पास सौ-सौ योजन के मान वाले तीन वन आए हैं, उसमें एक अभ्यन्तर, दूसरा मध्यम और तीसरा बाह्य है । प्रथम अभ्यन्तर वन में पूर्वादि चारों दिशाओं में पचास-पचास योजन छोड़ने के बाद जम्बू वृक्ष की शाखा के भवन समान एक एक बड़ा भवन है । (३३०-३३२)

भवनेष्वेषु सर्वेषु प्रत्येकं मणि पीठिका ।
तत्रानादृतदेवस्य शयनीयं भ्रमापहम् ॥३३३॥

इन प्रत्येक भवन में मणि पीठिका है, और इस मणि पीठिका ऊपर अनादृत देव को आराम करने की शय्या है । (३३३)

तस्मिन्नेवादिमवनखंडेऽखंड भ्रियोज्जवले ।
पंचाशतो योजनानामैशान्या समतिक्रमे ॥३३४॥

अत्रान्तरे पुष्करिण्यः चतस्रः स्युश्चतुर्दिशम् ।

प्राच्यां पश्चा दक्षिणस्यां पश्चप्रभेति नामतः ॥३३५॥

कुमुदाख्या पश्चिमाया मुदीच्यां कुमुदप्रभा ।

सर्वाः क्रोशार्द्धं विष्कम्भा एक क्रोशायताश्च ताः ॥३३६॥

धनुः पंचशतोद्बेधाः सचतुर्द्वारतोरणाः ।

वृताः पद्मवेदिकया वन खंडेन चाभितः ॥३३७॥ कलापकं ॥

इस अति सुशोभित वन खंड में ईशान कोण में पचास योजन जाने के बाद चारों दिशाओं में चार वावडी आई है १- पूर्व दिशा में पद्मा, २- दक्षिण दिशा में 'पद्मप्रभा' ३- पश्चिम में 'कुमुदा' और ४- उत्तर दिशा में कुमुद प्रभा । ये सब आधा कोस चौड़ी, एक कोस लम्बी और पांच सौ धनुष्य गहरी है । प्रत्येक के चार-चार दरवाजे हैं और तोरण है । इनके चारों तरफ पद्म वेदिका और बगीचा है । (३३४-३३७)

तासां चतसृणां मध्ये प्रासादः परिकीर्तितः ।

स च जम्बू वृक्ष शाखा प्रासाद सदृशोऽभितः ॥३३८॥

चारों वावों के मध्य भाग में एक-एक प्रासाद है, जो जम्बू वृक्ष की शाखा में रहे प्रासाद समान है । (३२८)

एवमस्मिन्नेव वने वायव्यां दिशि योजनैः ॥

पंचाशता पुष्करिण्यः चतस्रः स्युश्चतुर्दिशम् ॥३३९॥

प्राच्यामुत्पलगुल्माख्या याम्यां च नलिनाभिधा ।

स्यादुत्पला पश्चिमायामुदीच्यामुत्पलोज्ज्वला ॥३४०॥

इसी तरह से वहां वायव्य कोण में भी पचास योजन जाने के बाद चार दिशा में वावडियां हैं । १- पूर्व में उत्पल्ल गुलया २- दक्षिण में 'नलिना' ३- पश्चिम में उत्पला और ४- उत्तर में उत्पलोज्ज्वला इस तरह उनके नाम हैं । (३३९-३४०)

अयं जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र - जीवाभिसूत्राभिप्रायः ॥ बृहत्क्षेत्र समासे तु उप्पल भोमान लिणु ज्जुप्पला य वीयं भि इति वचनात् तृतीय तुर्ययोः नाग्नि व्यत्ययः प्रथमायाः नाग्नि विशेषश्च दृश्यते । इति ज्ञेयम् ॥

यह अभिप्राय जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र का और जीवाभिगम सूत्र का है, बृहत् क्षेत्र समास में तो इस प्रकार कहा है कि दूसरे चतुष्क में १- उत्पल भूमा,

२- नलिना, ३- उज्ज्वलोत्पला और ४- उत्पला । इन नामों की वावडिया है । इस वचन से तीसरे और चौथे के नाम में फेर फार आता है, और पहले के नाम में जरा फेर फार है ।

उक्त पुष्करिणी तुल्या एता अपि प्रमाणतः ।

मध्ये तथैव प्रसादो जम्बू प्रासाद सन्निभः ॥३४१॥

इन वावडियों का प्रमाण भी उपरोक्त वावडियों के समान है, और इन में भी जम्बू वृक्ष के प्रासाद समान प्रासाद है । (३४१)

वनेऽस्मिन्नेव नैर्ऋत्यां पंचाशद्योजनोत्तराः ।

यथा क्रमं पुष्करिण्यः प्राच्यादिदिक्चतुष्टये ॥३४२॥

भृंगा भृगनिभा किंचांजनाथ कज्जलप्रभा ।

मध्ये प्रासाद एतासां सर्वं मानं तु पूर्ववत् ॥३४३॥

इस वन के अन्दर नैर्ऋत्य कोण में भी पचास योजन जाने के बाद चारों दिशा में चार वावडियां हैं । उनके १- भृंगा, २- भृग निभा, ३- अंजना और ४- कज्जल प्रभा नाम हैं । इनके बीच में भी एक-एक प्रासाद है इनका प्रमाणादि सारा पूर्व के समान समझ लेना । (३४२-३४३)

आग्नेय्यां च योजनानां पंचाशतो व्यतिक्रमे ।

वनेत्रैव पुष्करिण्यो दिक्चतुष्के यथाक्रमम् ॥३४४॥

श्री कान्ता श्री महिता व श्री चन्द्रा च ततः परम ।

श्री नीलयाख्येति शेषं प्रासादादि तु पूर्ववत् ॥३४५॥

प्रासादेष्वेषु चैकैकमस्ति सिंहासनं महत् ।

अनादृतस्य देवस्य क्रीडाहं सपरिच्छदम् ॥३४६॥

उसी वन के अन्दर अग्नि कोने में भी पचास योजन छोड़ने के बाद चार दिशा में वावडिया है । वे अनुक्रम से इस प्रकार से हैं :- १- श्री कान्ता, २- श्री महिता, ३- श्री चन्द्रा और ४- श्री निलया । इन सब वावडियों में भी प्रासाद आदि पूर्व के समान समझना । प्रत्येक प्रासाद में अनादृत देव के क्रीड़ा करने के योग्य परिवार सहित बड़ा सिंहासन है । (३४४-३४६)

“अत्र जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे सीहासणा सपरिवारा इति । जीवा भिगमे च सीहासणं अपरिवार इति ॥”

‘जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में सिंहासन परिवार वाले कहा है जबकि जीवाभिगम सूत्र में परिवार बिना के कहा है ।’

अस्मिन्नेव वने पूर्वदिक्भाविभवनात् किल ।

उदीच्यां दक्षिणास्यां चैशानीप्रासादशेखरात् ॥३४७॥

एकः कूटः द्वितीयस्तु प्राग्भाविभवनादितः ।

दक्षिणास्यामुदीच्यां चाग्नेयीप्रासादपुंगवात् ॥३४८॥ युग्मं ॥

इसी ही वन में पूर्व दिशा के भवन से उत्तर और ईशान दिशा के प्रासाद से दक्षिण में एक शिखर कहा है । (३४७) तथा पूर्व दिशा के भवन से दक्षिण में और अग्नि कोण में आए प्रासाद से उत्तर में दूसरा शिखर बताया है । (३४८)

पश्चिमायामथाग्नेयीप्रासादात् पूर्वतोऽपि च ।

दाक्षिणात्यात् भवनतः कूटोऽत्रास्ति तृतीयकः ॥३४९॥

अग्नि कोण में आए प्रासाद से पश्चिम की ओर दक्षिण दिशा के भवन से पूर्व में एक तीसरा शिखर है । (३४९)

दाक्षिणात्वभवनतोऽपरास्यां पूर्वतोऽपि च ।

प्रासादा नैऋतीनिष्ठातुर्यः कूटो भवेदिह ॥३५०॥

दक्षिण दिशा के भवन से उत्तर में और नैऋत्य दिशा के प्रासाद से पूर्व में एक चौथा शिखर होता है । (३५०)

प्रासादानैऋतीसंस्थादुदीच्यामथ याम्यतः ।

प्रतीचीनभवनतः कूटो भवति पंचमः ॥३५१॥

नैऋत्य दिशा के प्रासाद से उत्तर में और पश्चिम दिशा के भवन से दक्षिण में एक पांचवा शिखर है । (३५१)

प्रतीचीनभवनतः उदीच्यामथ याम्यतः ।

वायव्यकोणप्रासादात् षष्ठ कूटः निरूपितः ॥३५२॥

पश्चिम दिशा के भवन से उत्तर में और वायव्य कोने के प्रासाद से दक्षिण में एक छठा शिखर कहा है । (३५२)

वायव्य कोण प्रासादात् प्राच्यां पश्चिमतोऽपि च ।

उदग्भवनतस्तत्र कूटो भवति सप्तमः ॥३५३॥

वायव्य कोने के प्रासाद से पूर्व में और उत्तर दिशा के भवन से पश्चिम में एक सातवां शिखर होता है । (३५३)

उदग्भवनतः प्राच्यामथ पश्चिमतोऽपि च ।

ऐशान कोण प्रासादादत्र कूटोऽष्टमो मतः ॥३५४॥

और उत्तर दिशा के भवन से पूर्व में और ईशान कोने के प्रासाद से पश्चिम में आठवां शिखर है । (३५४)

एवमष्टाप्यमी कूटा जात्यस्वर्णमया स्मृताः ।

द्वे योजने भूमिमग्ना योजनान्यष्ट चोच्छ्रिताः ॥३५५॥

इस तरह आठ शिखर हैं, वे आठों श्रेष्ठ सुवर्णमय हैं । वे दो योजन पृथ्वी में रहे हैं, और आठ योजन ऊंचे हैं । (३५५)

विष्कम्भायामतो मूले योजनान्यष्ट कीर्तिताः ।

मध्ये षड्ध्वं चत्वारि गोपुच्छाकृतयस्ततः ॥३५६॥

उनकी लम्बाई चौड़ाई मूल में आठ योजन है, मध्य में छः योजन समान है, और ऊपर चार योजन है, तथा इससे इनका आकार गोपुच्छ के समान है । (३५६)

एषां मूले परिक्षेपोऽधिकानि पंचविंशतिः ।

मध्येऽष्टादश मौलौ च योजनान्यर्कसंख्यया ॥३५७॥

इनकी परिधि मूल में पच्चीस योजन से कुछ अधिक है, मध्य में अठारह योजन से कुछ अधिक है और ऊपर बारह योजन से कुछ अधिक है । (३५७)

तथोक्तम् -

पण विसट्टार सवारसेव मूले अ मञ्जि उवरि च ।

सविसेसाई परिरओ कूडस्स इमस्स बोधत्वो ॥३५८॥

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में भी कहा है कि - इसका घेराव, मूल, मध्य और ऊपर अनुक्रम से पच्चीस, अठारह और बारह योजन से कुछ विशेष है । (३५८)

अयं जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्राभि प्रायः ॥ जिन भद्र गणि क्षमा श्रमणैः तु अष्टु सहकूड सरिसा सव्वे जम्बूण या भणिया । इत्यस्यां गाथायां ऋषभ कूट समत्वेन भणित्त्वात् मूले द्वादश योजनानि अष्टौ मध्ये चत्वारि च उपरि आयाम विष्कम्भेत्यादि ऊचे ॥ तथैव मलय गिरि पादैः व्याख्यात मयि ॥ जीवभिगम सूत्रेऽपीत्थ मे वैषां मानं दृश्यते ॥ तत्वं बहुश्रुत गम्यम् ॥

यह अभिप्राय जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र का है । परन्तु जिन भद्रगणि क्षमा श्रमण ने तो आठों जम्बू कूट, ऋषभकूट के समान कहे हैं । इसके अनुसार तो इनका माप, बारह, आठ और चार योजन कहलाता है । यह बात आचार्य श्री मलय गिरि ने भी स्वीकार की है । और जीवाभिगम सूत्र में भी इसी तरह कहा है । सत्य क्या है ? वह बहुश्रुत जाने ।

प्रत्येकमेधामुपरि चैकैकं सिद्धमंदिरम् ।

एतच्च जम्बू विडिमा सिद्धायतन सन्निभम् ॥३५६॥

इन आठ कूट के ऊपर एक-एक सिद्धायतन है । और वह जम्बू वृक्ष की बड़ी 'विडिमा' शाखा पर रहे सिद्धायतन के समान है । (३५६)

अष्टाप्येते पद्मवरवेदिका वनमंडिताः ।

दिगंगनानामष्टानां क्रीडायै निर्मिता इव ॥३६०॥

इन आठ कूट के चारों दिशाओं में मानो आठ दिशा रूपी स्त्रियों को क्रीड़ा करने के लिए निर्माण कार्य किया हो, ऐसों बगीचे और पद्म वेदिका है । (३६०)

एव मुक्तस्वरूपाया अस्या जम्बा महातरोः ।

नामानि द्वादशै तानि प्रज्ञप्तानि जिनेश्वरैः ॥३६१॥

इस तरह से जिसका स्वरूप है, ऐसे उस महान जम्बू वृक्ष के जिनेश्वर भगवन्त ने बारह नाम कहे हैं :- (३६१)

सुदर्शना तथा मोघा सुप्रबुद्धा यशोधरा ।

भद्रा विशाला सुमनाः सुजाता नित्यमंडिता ॥३६२॥

विदेह जम्बूः नियता सौमनस्येति कीर्तिताः ।

रत्नमय्या अप्य मुष्या द्रुमेषु मुख्यतां विदुः ॥३६३॥

वह इस तरह - १- सुदर्शना, २- अमोघा, ३- सुप्रबुद्धा, ४- यशोधरा, ५- भद्रा, ६- विशाला, ७- सुमना, ८- सुजाता, ९- नित्य मंडिता, १०- विदेह जम्बू, ११- नियता और १२- सौमनस्या है । ये 'जम्बू' रत्नमय होने पर भी इन्हें सर्व वृक्ष शिरोमणि कहा है । (३६२-३६३)

तथोक्तं बहुश्रुताध्ययने -

जहा दुमाण पवरा जम्बू नाम सुदंसणा ।

अणाढीयस्स देवस्स एवं हवइ बहुस्सुए ॥३६४॥

‘बहुश्रुत’ अध्ययन में इसलिए कहा है कि - जैसे ‘अनादृत देव का सुदर्शन नामक जम्बू वृक्ष सर्व वृक्षों में मुख्य- सर्व शिरोमणि है, वैसे बहुश्रुत में जम्बू स्वामी मुख्य है ।’ (३६४)

जम्बूद्वीप पतिर्देवो वसत्यस्यामनादृतः ।

जम्बू स्वामि पितृव्यो यः प्राग्भवे सोऽधुनास्त्वसौ ॥३६५॥

इस जम्बू वृक्ष में जम्बू द्वीप का स्वामी ‘अनादृत’ नामक अधिष्ठायक देव रहता है । वह जन्म में इस जम्बू स्वामी का चाचा था और अभी वहां पर है । (३६५)

चतुः सामानिनक सुरसहससेवित क्रमः ।

महिषीभिः चतसृभिः स्नेहिनीभिः कटाक्षितः ॥३६६॥

अनादृत देव की सेवा के लिए चार हजार सामानिक देव हैं, और उपभोग के लिए चार स्नेहमयी पटरानियां हमेशा उपस्थित होती है । (३६६)

पर्षद्भिः तिसृभिः जुष्टः सप्तभिः सैन्य सैन्यैः ।

उदायुधैः षौडशभिः सहस्रैश्चात्परक्षणाम् ॥३६७॥

इसकी तीन सभा हैं, सात सेना और सेना पति है, और इसके संरक्षण के लिए सोलह हजार देव शस्त्र सज्जित होकर तैयार होते हैं । (३६७)

व्यन्तराणां व्यन्तरीणामन्येषामपि भूयसाम् ।

अनादृत राजधानी वास्तव्यानामधीश्वरः ॥३६८॥

इसकी राजधानी में रहने वाले अन्य भी अनेक व्यन्तर देव और व्यन्तर देवियां हैं जिनका वह स्वामी है । (३६८)

मेरुरुदीच्यामन्यत्र जम्बू द्वीपे महर्द्धि कः ।

पुर्यामिनाहतास्त्रायां साम्राज्यं पाल यत्यसौः ॥३६९॥ कलापकं ॥

महाऋद्धि-समृद्धिशाली इस ‘अनादृत’ देव को मेरू के उत्तर में दूसरे जम्बू द्वीप में ‘अनादृत’ नाम की राजधानी है वहा वह राज्य भोगता है । (३६९)

यौ सीमाकारिणौ देवकुरुणां धरणीधरौ ।

सौमनस विद्युत्प्रभाभिधौ तौ वर्णयाम्यथ ॥३७०॥

अब कुरु देव की सीमा में ‘सौमनस’ और ‘विद्युत्प्रभ’ नाम के दो पर्वत आए हैं उसके विषय में कुछ कहता हूँ । (३७०)

निषधद्रेरुत्तरस्यामाग्नेय्यां मन्दराचलात् ।

प्रतीच्यां मंगलावत्या योऽसौ सौमनसाभिधः ॥३७१॥

इसमें जो सौमनस नामक पर्वत है वह निषध पर्वत से उत्तर में मंदराचल से अग्नि कोने में और मंगलावती विजय के पश्चिम में आया है । (३७१)

देव देव्यो वसन्त्यत्र यतः प्रशान्तचेतसः ।

ततः सौमनसो यद्वा सौमनसाख्यभर्तृकः ॥३७२॥

यहां सुमन अर्थात् शान्त मन वाले देव देवियां निवास करते हैं । इस कारण से अथवा तो इनका सौमनस नामक अधिष्ठायक देव होने से यह 'सौमनस' कहलाता है । (२७२)

तुरंग स्कन्ध संस्थानो गजदन्त सप्तोऽपि सः ।

मनोहरो रूढ्यमयः सप्त कूटोपशोभितः ॥३७३॥

इसका अश्व के स्कंध समान आकार है । गजदंत सदृश मनोहर दिखता है और यह चांदीमय है और इसके सात शिखर है । (३७३)

सिद्धायतनमाद्यं स्यात् परं सौमनसाभिधम् ।

सन्मंगलावतीकूटं देव कुर्वभिधं परम् ॥३७४॥

विमलं कांचनं चैव वासिष्टं कूटमन्तिमम् ।

प्रमाणं ज्ञेयमेतेषां हिमवद्गिरिकूटवत् ॥३७५॥ युग्मं ॥

इसके सात शिखर इस प्रकार है - १- सिद्धायतन २- सौमनस, ३- मंगलावती ४- देवकुर ५- विमल ६- कांचन और ७- वसिष्ठ । इनका प्रमाण हिमवत पर्वत के शिखर समान जानना चाहिए । (३७४-३७५)

आग्नेय्यामादिमं कूटं मन्दरासन्नमाहितम् ।

तस्याग्नेय्यां द्वितीयं तु तस्याप्याग्नेयकोणके ॥३७६॥

कूटं तृतीयमित्येतत्कूटत्रयं विदिकस्थितम् ।

अथो तृतीयादाग्नेय्यामुत्तरस्यां च पंचमात् ॥३७७॥

कूटं चतुर्थं प्रज्ञप्तमेतस्मात्कूटतः परम् ।

दक्षिणोत्तरया पंचम्या शेषं कूटत्रयं भवेत् ॥३७८॥ विशेषकं ॥

प्रथम शिखर मेरुपर्वत के पास में अग्नि कोण में आया है, इसके अग्नि कोण में दूसरा शिखर आया है, और दूसरे शिखर के अग्नि कोण में तीसरा आया

है । और इस तीसरे से अग्नि कोण में पांचवे से उत्तर में चौथा शिखर है, और शेष तीन शिखर चौथे से दक्षिणोत्तर में एक साथ में आए हैं । (३७६-३७८)

वत्समित्रा सुमित्राख्ये षष्ठपंचमकूटयोः ।

दिक्कुमार्यो कूटसमाभिधा देवाश्चतुर्षु च ॥३७६॥

पांचवे और छठे शिखर पर सुमित्रा और वत्समित्रा नाम की दिक्कुमारियां रहती हैं, शेष शिखर पर उस उस शिखर के नाम वाले देव निवास करते हैं । (३७६)

“अत्र जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे बृहत्क्षेत्र समासे सिरि निलय इति क्षेत्र समासादिषु च सौमनस पंचम षष्ठ कूट वासिन्यौ सुवत्सा वत्स मित्राख्ये एवं दिक्कुमार्यो उक्ते ॥ यत्तु जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे एवं जिन जन्माधिकारे अधोलोक वासि नीनां भोगंकरादीनामष्टानां दिक्कुमारीणां मध्ये पंचमी तोयधारा षष्ठी विचित्रा च इति उक्तं तदयं लिखित दोषः नारामान्तरं वा इति सर्वं विद् वेद ॥”

‘इस विषय में जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में, बृहत् क्षेत्र समास में तथा सिरि निलय नामक क्षेत्र समास आदि में सुमित्रा और वत्स मित्रा के स्थान पर सुवत्सा और वत्समित्रा नाम कहा है, तथा जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में ही जिन जन्म महोत्सव अधिकार में अधोलोक में रहने वाली ‘भोगकरा’ आदि आठ कुमारिका के अन्दर तो पांचवीं और छठी ‘तोयधारा’ और ‘विचित्रा’ ये नाम कहे हैं, वह कभी भूल से लिखा गया हो अथवा ये उनके दूसरे नाम ही वास्तविक हैं । वह केवली भगवन्त ही जानें ।’

एतत्कूटाधिपदेवदेवीनां मन्दराचलात् ।

दक्षिणस्यां राजधान्यो जम्बूद्वीपेऽपरत्र वै ॥३८०॥

इन शिखर के स्वामी देव, देवियों की राजधानियां दूसरे द्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिण विभाग में हैं । (३८०)

उत्तरस्यां निषधाद्रेः नैऋत्यां कनका चलात् ।

पूर्वस्यां पश्चम विजयात् गिरिः विद्युत्प्रभाभिधः ॥३८१॥

दूसरा विद्युत्प्रभ नामक पर्वत निषध पर्वत से उत्तर में कनकाचल के नैऋत्य कोने में ‘पश्चम’ विजय से पूर्व दिशा में आया है । (३८१)

तपनीयमयत्वेन विद्युद्ब्रह्मीप्तिमत्तया ।

विद्युत्प्रभेशयोगाद्वा ख्यातो विद्युत्प्रभाख्यया ॥३८२॥

वह सुवर्ण मय होने से विद्युत बिजली समान चमकता है, इसलिए अथवा विद्युत्प्रभ नाम का इसका अधिष्ठायक देव होने से इसका नाम विद्युत्प्रभ पड़ा है । (३८२)

आद्यं सिद्धायतनाख्यं विद्युत्प्रभं द्वितीयकम् ।

तृतीयं देवकुर्वाख्यं ब्रह्मकूटं तुरीयकम् ॥३८३॥

पंचमं कनकाभिख्यं षष्ठं सौवस्तिकाभिधम् ।

सप्तमं सीतोदाकूटं स्याच्छतज्वलमष्टमम् ॥३८४॥

हरिकूटं तु नवमं कूटैरेभिरलंकृतः ।

विभाति सानुमानेष वेदिकावनशोभितः ॥३८५॥

इस विद्युत्प्रभ पर्वत के नौ शिखर हैं वह इस तरह से १- सिद्धायतन, २- विद्युत्प्रभ, ३- देवकुरु, ४- ब्रह्मकूट, ५- कनक, ६- सौवस्तिक, ७- सीतोदा, ८- शतज्वल, और ९- हरिकूट है । पद्मवेदिका और बगीचों से यह पर्वत शोभायमान हो रहा है । (३८३-३८५)

नैर्ऋत्यां मन्दरात् ज्ञेयमाद्यं कूटचतुष्टयम् ।

षष्ठादुत्तरतस्तुर्यानैर्ऋत्यां पंचमं मतम् ॥३८६॥

दक्षिणोत्तरया पंक्त्या शेषं कूटचतुष्टयम् ।

मानतोऽष्टा कूटानि हिमवदगिरिकूटवत् ॥३८७॥

इन नौ शिखरों में से पहले चार शिखर मेरूपर्वत से नैर्ऋत्य कोण में आए हैं । पांचवा शिखर छठे से उत्तर में आया है, और चौथे से नैर्ऋत्य में आया है । शेष चार हैं, वे उत्तर से दक्षिण एक लाइन में आए हैं । इन नौ शिखरों में से आठ का मान हिमवत पर्वत के शिखर समान है । (३८६-३८७)

नवमं निषधासन्न दक्षिणस्यां किलाष्टमात् ।

सर्वथा माल्यवद् भाविहरिस्सहस्रं च तत् ॥३८८॥

और नौवां शिखर जो आठ में से दक्षिण में निषध पर्वत के चजदीक है, उसका माप माल्यवान पर्वत के हरिस्सह शिखर के अनुसार है । (३८८)

ज्ञेया चमरचंचावदेतत्कूटपतेर्हरेः ।

मेरोपाच्यां नगरी जम्बूद्वीपे परत्र सा ॥३८९॥

इस नौवे शिखर के स्वामी हरिदेव की राजधानी, चमर चंचा नगरी के समान दूसरे जम्बू द्वीप के अन्दर मेरूपर्वत के दक्षिण में है । (३८६)

“तथोक्तं जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे । जहा मालवंत स्स हरिस्सह कूडे तह चेव हरि कुडे राय हाणी तह चेव दाहिणोणं चमर चंचा राय हाणी तहंणे यव्वा ॥ क्षेत्र समास वृत्ता वपि सा चमर चंचा राजधानीवत् प्रत्येया इति ॥”

‘जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में भी कहा है कि - यह हरिकूट नाम का शिखर है, वह माल्यवान पर्वत के हरिस्सह शिखर के समान समझना । और इस हरिदेव की राजधानी चमर चंचा राजधानी के समान दक्षिण दिशा में समझना । क्षेत्र समास की टीका में भी इसे चमर चंचा सदृश कहा है ।’

शेषकूटपतीनां तु नगर्यो विजयोपमाः ।

जम्बू द्वीपेऽन्यत्र मेरोर्दक्षिणस्यांयथायथम् ॥३६०॥

शेष शिखरों के स्वामियों की राजधानी विजयदेव की राजधानी के समान दूसरे जम्बूद्वीप में मेरूपर्वत से दक्षिण में कही है । (३६०)

दिवक्कुमार्यो निवसतः तत्र पंचमषष्ठयोः ।

पुष्पमालाऽनिन्दिताख्ये शेषेषु पूर्ववत् सुराः ॥३६१॥

इन शिखरों में से पांचवे और छठे शिखर पर पुष्पमाला और अनिन्दिता नाम की दिक्कुमारियां रहती हैं । और शेष सात शिखरों पर पूर्व के समान उसके नाम वाले देव निवास करते हैं । (३६१)

भोगकरादिमा गन्धमादनाद्यद्रिसानुषु ।

वसन्त्यो दिक्कुमार्योऽष्टौ या एवमिह भाषिताः ॥३६२॥

शैलेष्वमीषु क्रीडार्थं तासां वासो भवेत् ध्रुवम् ।

वसन्ति च स्व स्व गजदन्ताधो भवनेष्विमाः ॥३६३॥

एकैक गजदन्ताधो द्वे द्वे स्तो भवने तयोः ।

तिर्यंग्लोकं व्यतिक्रम्या सुरादि भवनास्पदे ॥३६४॥

अधोलोकनिवासिन्योऽत एवाम् श्रुते मताः ।

भू शुद्धि सूति वेश्मादिनियुक्ता जिन जन्मनि ॥३६५॥

गन्ध मादन आदि के शिखर पर भोगकरा आदि आठ दिक्कुमारियों का निवास कहा है । इस सम्बन्ध में इस तरह समझना कि वे वहां क्रीडा करने जाती

रहती है। शेष वे वास्तविक रहते हैं। तथा गजदन्त के अधो भवन में प्रत्येक गजदन्त के नीचे उनके दो-दो भवन हैं, और वे तिर्च्छालोक को छोड़कर असुरादि के भवन आते हैं, वहां रहती है। इनको शास्त्र में अधोलोक में रहने वाली कही है, वह इसी कारण से कहा है। उनका काम श्री जिनेश्वर भगवान के जन्म समय में भूमि शुद्धि करने सम्बन्धी तथा सूतिका गृह सम्बन्धी है। (३६२-३६५)

‘यद्यपि उत्तरकुरुवक्षस्कारयोः यथायोगं सिद्धहरिस्सहकूटवर्ज कूटाधिपराज धान्यो यथाक्रमं वायव्यामैशान्यां च यथा प्राग् अभिहिताः तथा देव कुरुवक्षस्कारयोः यथा योगं सिद्ध हरिकूट वर्ज कूटाधिपराजधान्यो यथा क्रमं आग्नेय्यां नैऋत्यां च वक्तुमुचिताः तथापि प्रस्तुत सूत्र सम्बन्धि यावत् आदर्शं पूज्य श्री मलयगिरि कृत क्षेत्र विचार वृत्तौ च तथा दर्शना भावात् अस्माधिरपि राजधान्यो-दक्षिणेन इति अलेखि । इति श्री जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्तौ ॥’

‘पूर्व के अन्दर उत्तर कुरु के वक्षस्कारों में सिद्ध हरिस्सह शिखर को छोड़कर अन्य शिखर के स्वामियों की राजधानियां अनुक्रम से वायव्य कोने में, और ईशान कोण में यथा योग कही गयी है, उसी अनुसार देव कुरु के वक्षस्कारों के अन्दर सिद्ध हरि शिखर बिना शिखरों के अधिपतियों की राजधानियां अनुक्रम से अग्निकोण और नैऋत्यकोण में यथोचित कहना चाहिए। परन्तु प्रस्तुत सूत्र की एक भी प्रति-नकल में अथवा पूज्य मलय गिरि कृत क्षेत्र विचार की टीका में भी ऐसा दिखता नहीं है। इसलिए हमने भी इस तरह नहीं लिखा। ये राजधानी दक्षिण में ही होने का लिखा है, इस तरह श्री जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की टीका में विधान है।’

अनयोर्नगर्घोर्दैर्ध्य व्यासोच्चत्वादिकं समम् ।

गन्धमादन सन्माल्यवतोरिव विभाव्यताम् ॥३६६॥

इस ‘सौमनस और विद्युत्प्रभ’ पर्वतों की लम्बाई-चौड़ाई और ऊंचाई आदि सब गन्ध मादन और माल्यवान पर्वतों के समान समझना। (३६६)

सन्त्यथाभ्यां पर्वताभ्यामंकपाली कृता इव ।

मेरोर्दक्षिणतो देवकुरवो निषधादुदक् ॥३६७॥

अब महा विदेह के चौथा विभाग देव कुरु के विषय में कहते हैं - इन दोनों पर्वतों के गोद में रहे हो इस तरह ‘देव कुरु क्षेत्र’ मेरु पर्वत से दक्षिण में और निषधाचल से उत्तर दिशा में है। (३६७)

अत्र देवकुरुनाम देवः पल्योपम स्थितिः ।

वसन्त्यतस्तथा ख्याता यद्वेदं नाम शाश्वतम् ॥३६८॥

यहां देव कुरु नाम का एक पल्योपम के आयुष्य वाला देव रहता है, इसलिए इसका नाम देव कुरु पड़ा है । अथवा यह नाम एक शाश्वत ही नाम है । इस तरह समझना । (३६८)

धनुःपृष्टं व्यास जीवादिकं मानं तु धीधनैः ।

अत्राप्युत्तर कुस्वद्वि ज्ञेयम विशेषितम् ॥३६९॥

इसका धनुः पृष्ट, व्यास, जया (जीवा) आदि सर्व का प्रमाण सम्पूर्ण उत्तरकुरु के अनुसार समझना । (३६९)

किन्त्वत्र नीषधासन्ना जीवा कल्प्या विचक्षणैः ।

विद्युत्प्रभ सौमनसायामानुसारतो धनुः ॥४००॥

परन्तु यहां 'जीवा' निषधा पर्वत के पास कल्पना करना और धनुः पृष्ट विद्युत्प्रभ और सौमनस पर्वतों की लम्बाई अनुसार कल्पना करना । (४००)

शतान्यष्ट योजनानां चतुस्त्रिंशद्युतानि च ।

चतुरः साप्तिकान् भागान् व्यतीत्य निषधाचलात् ॥४०१॥

शीतोदायाः पूर्वतटे विचित्रकूटपर्वतः ।

चित्रकूटः परतटे सामस्त्याद्यमकोपमौ ॥४०२॥ युग्मं ॥

निषधाचल से आठ सौ चौतीस योजन और चार सप्तमाश (८३४-४/७) योजन जाने के बाद शीतोदा नदी के पूर्व तट पर 'विचित्रकूट' नाम से पर्वत है और पश्चिम तट पर चित्रकूट नामक पर्वत आया है, इन दोनों का समग्र स्वरूप यमक पर्वत समान समझ लेना चाहिए । (४०१-४०२)

किन्वेतत्स्यामिनोर्नूनं विचित्रचित्रदेवयोः ।

जम्बू द्वीपेऽन्यत्र पुर्यो मेरोः दक्षिणतो मते ॥४०३॥

परन्तु इनके स्वामी चित्रदेव और विचित्रदेव की राजधानी दूसरे जम्बूद्वीप में मेरुपर्वत की दक्षिण में कही है । (४०३)

अथैताभ्यां पर्वताभ्यामुत्तरस्याममी स्मृताः ।

हृदाः पंचोत्तरकुरुहृदतुल्याः स्वरूपतः ॥४०४॥

निषधाचल संकाश शतपत्रादिशोभितः ।

निषधाख्य सुरावासः प्रथमो निषध हृदः ॥४०५॥

अब इन दोनों पर्वत से उत्तर में उत्तर कुरु के सरोवर समान पांच सरोवर हैं। प्रथम निषध नाम का है उसमें निषध पर्वत जैसे कमल शोभायमान हो रहे हैं। और उसमें देव कुरु नाम का देव निवास करता है। (४०४-४०५)

सद्देव कुरु संस्थान शतपत्रद्वलंकृतः ।

देवकुर्वमरावासो हृदः देवकुरुः परः ॥४०६॥

दूसरा देवकुरु नाम का सरोवर है, वह देवकुरु के आकार वाले कमलों से शोभायमान है, और उसमें देवकुरु नाम का देव निवास करता है। (४०६)

सूरनामा तृतीयस्तु हृदः सुरसुराश्रितः ।

सुलसस्वामिकस्तुर्यो हृद स्यात् सुलसाभिधः ॥४०७॥

तीसरा 'सूर' नाम का सरोवर है उसमें सूर नाम का देव रहता है, चौथा 'सुलस' नाम का सरोवर है उसका स्वामी 'सुलस' देव है। (४०७)

भूषितः शतपत्राद्यै विद्युदुद्योतपाटलैः ।

विद्युत्प्रभः पंचमः स्याद्विद्युत्प्रभाधिदैवतः ॥४०८॥

पांचवें सरोवर का नाम विद्युत्प्रभ है। उसमें विद्युत् समान चमकते कमल शोभायमान होते हैं, उसका स्वामी विद्युत्प्रभ नाम का देव है। (४०८)

पद्म पद्मपरिक्षेपतत्संख्या भवनादिकम् ।

अत्रापि पद्महृदवत् विज्ञेयमविशेषतः ॥४०९॥

इन पांच सरोवर के मुख्य कमल के चारों तरफ, कमल वलय, उनकी संख्या, उनके भवन, आदि सारा पद्म सरोवर के समान समझ लेना। (४०९)

पूर्व पश्चिम विस्तीर्णाः ते दक्षिणोत्तरायताः ।

प्राक् प्रत्यक् च दश दश कांचनाचलचारवः ॥४१०॥

ये पांचो सरोवर पूर्व पश्चिम में चौड़े हैं और उत्तर से दक्षिण में लम्बे हैं। इनकी पूर्व पश्चिम दोनों दिशाओं में दस-दस सुन्दर कांचन गिरिनाम के पर्वत हैं। (४१०)

कांचनाद्रिहृदेशानामेषां विजयदेववत् ।

समुद्धानां राजधान्यो दक्षिणस्यां सुमेरूतः ॥४११॥

विजय देव के समान समृद्धि वाले इस कंचन गिरि तथा सरोवर के स्वामियों की राजधानी मेरू पर्वत से दक्षिण दिशा में है । (४११)

विचित्र चित्रो निषधात् यावद्दूरे व्यवस्थितौ ।

विचित्र चित्र शैलाभ्यां तावता निषधो हृदः ॥४१२॥

निषध पर्वत से दूर जितने विचित्र और चित्र पर्वत हैं, उतने ही विचित्र और चित्र पर्वत से दूर सरोवर है । (४१२)

द्वितीयादि हृदानामध्येवमन्योऽन्यमन्तरम् ।

तुल्यं तथान्तिम हृदक्षेत्रपर्यन्तयोरपि ॥४१३॥

इसके बाद अन्य सर्व सरोवरों का भी इतना ही परस्पर अन्तर है, अन्तिम सरोवर और क्षेत्र तक बीच में भी इतना ही अन्तर है । (४१३)

एता शीतास्पृर्द्धयेव शीतोदया द्विधाकृताः ।

पूर्वा परार्धभावेन संदेव कुखोऽपि हि ॥४१४॥

इस देव कुरु क्षेत्र को भी शीतोदा नदी ने मानो शीता नदी की स्पृर्द्धा के कारण पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध, इस तरह दो विभाग में बांट दिया है । (४१४)

शीतोदायास्तु यत्प्राच्यां तत्पूर्वार्द्धमिहोच्यते ।

शीतोदायाः प्रतीच्यां यद परार्द्धं तदाहितम् ॥४१५॥

जो भाग शीतादा नदी से पूर्व में है, वह पूर्वार्द्ध देवकुरु है और जो भाग इसके पश्चिम में है वह पश्चिम देव कुरु के नाम से प्रसिद्ध है । (४१५)

तत्रैतासाम परार्द्धं मध्यभागे निरूपितः ।

समानः शाल्यलीवृक्षो जम्बूवृक्षेण सर्वथा ॥४१६॥

उस पश्चिमार्द्ध देवकुरु के मध्यभाग में एक शाल्मली नाम का वृक्ष है, वह हर प्रकार से (सर्वथा) जम्बू वृक्ष के समान है । (४१६)

किं चैतच्छाल्मली पीठं ख्यातं रजत निर्मितम् ।

प्रासाद भवनान्तः स्थाः कूटा अप्यत्र राजताः ॥४१७॥

परन्तु इस शाल्मली वृक्ष का पीठ चान्दीमय है, उसके प्रासाद, भवन और अन्तः स्थ शिखर भी (रूप्य) चान्दीमय है । (४१७)

शिखरा कृति मत्वेन ख्यातोऽयं कूट शाल्मली ।

वेणु देवाख्यः सुवर्ण जातीयोऽस्त्य च नायकः ॥४१८॥

इसका आकार एक शिखर समान होने से यह 'कूट शाल्मली नाम से प्रसिद्ध है तथा सुपर्ण कुमार जातीय वेणु देव नामक देव इसका स्वामी है । (४१८)

“तथोक्तं स्थानांग सूत्र द्वितीय स्थानके । तत्थणं दो महती महालया महदुमा पण्णता यावत् कूट सामली चैव जम्बू चैव सुदंसणा । तत्थणं दो देवा महिद्धिया जाव महा सोख्ख पलि ओव मठि तीया परि वसंति । तं गरुले चैव वेणु देवे आणाढीए चैव जम्बू दिवा हि वइ । एतद् वृत्ता वपि गरुडः सुपर्ण कुमार जाती यो वेणु देवो नाम्ना इत्यादि ॥ एवं च न अयं सुपर्ण कुमाराणां दाक्षिणात्य इन्द्रः संभाव्यते । किन्तु अन्य एव । तस्य हि इन्द्र त्वेन सार्धं पल्योपम मरूपाया उत्कृष्ट स्थिते न्याय्यत्वात् । अयं तु पल्योपम स्थितिक इति ।”

इस सम्बन्ध में स्थानांग सूत्र के दूसरे स्थानांग में कहा है कि वहां दो महाबल रूप दो महान वृक्ष है । एक कूट शाल्मली और दूसरा सुदर्शन जम्बू वृक्ष है, वहां महान समृद्धिशाली, अत्यंत सुखी और पल्योपम की आयुष्य वाले दो देव रहते हैं । सुपर्ण जातीय वेणुदेव और दूसरा जम्बू द्वीप का स्वामी अनादृत देव है । इसकी टीका में भी सुपर्ण जातीय अर्थात् गरुड़ जाति का देव वेणुदेव है । यह देव सुपर्ण कुमार दक्षिण दिशा का इन्द्र संभव नहीं है । यह दूसरा देव होना चाहिए क्योंकि इन्द्रदेव की उत्कृष्ट स्थिति ढेड़ पल्योपम की होनी चाहिए और इस देव की तो एक पल्योपम की है ।

मतान्तरे तु:-

क्रीडा स्थानमयं वृक्षः स्यात्सुपर्ण कुमारयोः ।

वेणुदेव वेणुदालि सुरयोरुभयोरपि ॥४१६॥

अन्य मतवाले यह कहते हैं कि यह वृक्ष वेणु देव और वेणु दालि नाम के सुपर्ण कुमारो को क्रीडा करने के स्थान रूप है । (४१६)

“तथा चाह सूत्र कृतांग चूर्णिकृत शाल्मली वृक्षवक्त व्यतावसरे । तत्थ वेणुदेवे वेणु दाली य वसइ ॥ तयोर्हि तत् क्रीडा स्थानमिति ॥”

‘इस सम्बन्ध में सूत्र कृतांग की चूर्णी - टीका में शाल्मली वृक्ष के वर्णन करते समय में कहा है कि - वहां वेणुदेव और वेणु दालि नाम देव रहते हैं क्योंकि इन दोनों का यह क्रीडा स्थान है ।’

स्वरूपमुत्तर कु क्लृतिश्चां यदीरितम् ।

आयुः शरीर मानादि तदत्राप्यनुर्वल्ले ते ॥४२०॥

इस देव कुरु के मनुष्य और तिर्यचों का आयुष्य, शरीरमान आदि स्वरूप उत्तर कुरु के मनुष्य आदि का जो कह गये हैं, उसी तरह समझ लेना । (४२०)

कुरुवो द्विविधाः समाङ्गमाः सुषमाभिः सुतमां परस्परम् ।

मिलताः कलहाय मेरूणा प्रविभक्ता इव मध्य वर्तिना ॥४२१॥

कुरुक्षेत्र के दोनों विभाग में सुषमा आरा चल रहा है । अर्थात् परस्पर समानता होने के कारण दोनों मानो कलह (झगड़ा) करने के लिए आमने सामने मिले हो और मध्यस्थ रूप मेरु ने मध्यस्थ बन कर इनको अलग कर दिए हों, इस तरह लगता है । (४२१)

विश्वाश्चर्यद कीर्ति कीर्ति विजय श्री वाचकेन्द्रान्तिष

द्राज श्री तनयोऽतनिष्ट विनयः श्री तेजपालात्मजः ।

काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जगतत्व प्रदीपोपमे,

सर्गः सप्तदशः सभापि गम द्विद्वत्प्रमोदप्रदः ॥४२२॥

॥ इति सप्तदशः सर्गः ॥

जिनकी कीर्ति सुनकर के अखिल जगत आश्चर्य में लीन हो गया है, ऐसे श्री कीर्ति विजय जी उपाध्याय के अन्तेवासी, माता जी राजश्री जी तथा पिता श्री तेजपाल के सुपुत्र विनय विजय उपाध्याय ने जगत के निश्चित तत्व को प्रकट करने में दीपक समान इस काव्य ग्रन्थ की रचना की है, वह विद्वान् जन को प्रमोद देने वाला सत्रहवां सर्ग समाप्त हुआ । (४२२)

— सत्रहवां सर्ग समाप्त —

अठारहवां सर्ग

पाश्र्वं शंखेश्वरोत्तंसं नत्वा तत्त्वावबोधदम् ।

स्वरूपं स्वर्णशैलस्य यथाश्रुतमथोच्यते ॥१॥

अब तात्विक बोध को देने वाले, श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान को नमस्कार करके, मेरू पर्वत का शास्त्र कथन अनुसार स्वरूप कहता हूँ । (१)

उत्तरस्यां स्थितो देवकुरुभ्यः कनकाचलः ।

उत्तराभ्यः कुरुभ्यश्च दक्षिणस्यां प्रतिष्ठितः ॥२॥

प्रत्यक् पूर्वं विदेहेभ्यः प्राक् पश्चिम विदेहतः ।

रत्नप्रभाचक्र नाभिरिव मध्येऽस्त्यवस्थितः ॥३॥

यह मेरू पर्वत देव कुरु की उत्तर में उत्तर कुरु के दक्षिण में पूर्व विदेह की पश्चिम में और पश्चिम विदेह की पूर्व में मानो रत्नप्रभा रूपी चक्र को धारण किया हो जैसे ठीक (मध्य) बीचोबीच में रहा है । (२-३)

निमित्तहेत्तो भुवन पर्यायभाण्डसम्भवे ।

भ्रमतः कालचक्रस्य भ्रमिदण्ड इवोच्छ्रितः ॥४॥

इस जगत के पर्याय रूपी बर्तन बनाने में निमित्तभूत, जो काल रूपी चक्र घुमाने का दण्ड हो, इस तरह ऊंचा खड़ा है । (४)

मानदण्ड इवोदस्तो जम्बूद्वीपमीमीषया ।

तथैव स्थापितो धात्रा मेयं मत्वाभितोत्यकम् ॥५॥

मानो विधाता ने जम्बू द्वीप को मापने की इच्छा से ऊंचा किया हो और फिर मेय वस्तु को तोलने का सोचकर उन्होंने इस तरह खड़ा रखा हो, यह विधाता का मानदण्ड हो इस तरह लगता है । (५)

स्निग्धबोर्ध्वा कृतो धात्रीमात्रा स्वांकेऽति कौतुकात् ।

नीलचूलोबाल इव प्रभावलयचोलकः ॥६॥

मानो पृथ्वी रूपी स्नेहीमयी माता ने कौतुक से गोद में खड़ा रखा हो, वह कान्ति रूपी वस्त्र और श्याम शिखा वाला बालक हो इस तरह लगता है । (६)

चन्द्रार्कग्रहनक्षत्रतारा वृषभसंतततेः ।

भ्रमन्त्या मनुजक्षेत्रे मेठिदण्ड इवाहितः ॥७॥

मानो चारों तरफ फिरते हुए चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारे रूपी बैलों को घूमते समय में बंधन के लिए मनुष्य क्षेत्र में खड़ा किया, एक ऊंचा स्तंभ हो इस तरह लगता है । (७)

नीलवन्निषधोन्मत्त दन्तिनोर्युध्यतो मिथः ।

मध्ये सीमास्तम्भ इव गजदन्ताद्रि दन्तयोः ॥८॥

मानो परस्पर दन्तादन्ति युद्ध कर रहे, गजदंत रूपी दांतवाले नीलवान और निषध पर्वत रूपी दो हाथियों के बीच, मानो सीमा स्तंभ हो इस तरह लगते हैं । (८)

तिर्यग्लोक महाब्जस्य स्पष्टाष्टा शादलश्रियः ।

बीजकोश इवान्तःस्थः परागभरपिंजरः ॥९॥

मानो आठ निर्मल दिशाओं रूपी सुन्दर पत्र वाले, तिर्छा लोक रूपी महान कमल के पुष्पल पराग के कारण पीला बना हुआ, अन्दर का बीज कोश हो ऐसा लगता या दिखता है । (९)

जम्बूद्वीपोरूपोत्स्य मुक्तस्यलवणार्णवे ।

कूप स्तम्भ इवोत्क्षिप्तः प्रभासित पटांचितः ॥१०॥

मानो लवण समुद्र में रखा हुआ जम्बू द्वीप रूपी महान प्रवहण (नाव) का प्रभा रूपी श्वेत पट ऊंचा किया हो ऐसा कूप स्तंभ लगता है (१०)

न्यस्तपादो भद्रशाल कामनास्तरणोपरि ।

पश्यन्निवोर्ध्वदमोऽयं नगेन्द्रः सेविनो नगान् ॥११॥

मानो भद्रशाल वन रूपी शय्या पर खड़े होकर सेवक सदृश अन्य पर्वत पर सेठ के समान टकटकी नजर कर रहा हो ऐसा लगता है । (११)

नरक्षेत्र कटाहेऽस्मिन्नानापदार्थं पायसम् ।

पचतो विधि सूदस्य दर्वीदण्ड इवोन्ततः ॥१२॥

मानो मनुष्य क्षेत्र रूपी कढ़ाई में विविध पदार्थों रूपी क्षीरान्न पकाते हुए विधाता रूपी रसोइये का खड़ा हुआ कडली का दण्डा लगता है । (१२)

प्रादुश्चूलः सौमनसोत्तरीयोऽशुजलप्लुतः ।

देवार्चकइवोन्दिनन्दनारामधौतिकः ॥१३॥ एकादशभिः कुलकं ॥

मानो प्रकट - खुला दिखने वाला, चूल वाला, सौमन स बान रूपी उत्तरीय

वस्त्र (दुपट्टा) वाला, किरण रूपी जल से भोजा हुआ, और सुशोभित नंदनवन रूपी धोती वाला देव का पुजारी हो इस प्रकार दिखता है । (१३)

तीसरे श्लोक से लेकर यहां ग्यारह श्लोक तक में मेरु पर्वत की नांना प्रकार की उपमा-समानता देने में आई है, विद्वान् काव्य कर्त्ता की अनुपम कल्पना शक्ति है, जो वास्तविक में आश्चर्य कारक है ।

स चैकया पद्मवरवेदिकया परिष्कृतः ।

वनेन चाभितो नानारत्नज्योतिःप्रभासुरः ॥१४॥

यह मेरु पर्वत एक पद्म वेदिका और वन से घिरा हुआ है और अनेक रत्नों की कान्ति से प्रकाशमान हो रहा है । (१४)

सहस्रान्नवनवर्ति योजनानां स उन्नतः ।

योजनानां सहस्रं चावगाढो वसुधान्तरे ॥१५॥

यह मेरु पर्वत पृथ्वी के ऊपर निन्यानवे हजार योजन ऊंचा है और एक हजार योजन पृथ्वी के अन्दर रहा है । (१५)

लक्षयोजनमानोऽसौ सर्वाग्रेण भवेदिति ।

चत्वारिंशदधिकानि चूलाया योजनानि तु ॥१६॥

इस तरह वह स्वयं सम्पूर्ण एक लाख योजन का है, इसके उपरांत चालीस योजन इसकी चूलिका है । (१६)

योजनानां सहस्राणि दशान्यां नवतिस्तथा ।

योजनस्यैकादशांशा दश मूलेऽस्य विस्तृतिः ॥१७॥

मूल में इसका विस्तार दस हजार और नब्बे पूर्णांक और दस ग्याराहांश - १००६० - १०/११ योजन का है । (१७)

“अयं जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र, बृहत्क्षेत्र समासाभिप्रायः ॥ श्री समावायांगे तु मन्दरेण पव्वए मूल दस जोअण सहस्साइं विखळं भेणं पण्णते । इति ज्ञेयम ॥”

“इस तरह जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र का और बृहत् क्षेत्र समास का अभिप्राय है । समावायांग सूत्र में तो इसका विस्तार दस हजार योजन का कहा है ।”

एक त्रिंशत्सहस्राणि शता नव दशाधिकः ।

योजनानां त्रयश्चेकादशांशाः परिधिस्त्विह ॥१८॥

इसकी परिधि मूल में इकतीस हजार नव सौ दस पूर्णांक और तीन ग्यारहांश
- ३१६१० - ३/११ योजन है । (१८)

योजनानां सहस्राणि दशास्य समभूतले ।

सहस्रमेकं शिखरे व्यासः चूलोपलक्षिते ॥१६॥

समभूतल में इसकी चौड़ाई दस हजार योजन है, और जो इसकी चूलिका
अर्थात् शिखर है, उसकी चौड़ाई एक हजार योजन है । (१६)

एकत्रिंशत्सहस्राणि योजनानां शतानि षट् ।

त्रयोविंशत्यधिकानि परिधिः समभूतले ॥२०॥

इसका घेराव समभूतल में इकतीस हजार, छः सौ तेईस (३१६२३) योजन
है। (२०)

ऊर्ध्वं च परिधिस्तस्य योजनानां भवेत् गिरेः ।

सहस्राणि त्रीणि चैकं द्वाषष्ट्याभ्यधिकं शतम् ॥२१॥

इसके ऊपर घेरावा तीन हजार एक सौ बासठ (३१६२) योजन होता है
(२१)

अथ सर्वत्र विष्कम्भ ज्ञानाय करणम् ।

सहस्रं योजनं व्यासान्मेरोरू परिभागतः ।

यत्रोतीर्थं योजनादौ विष्कम्भो ज्ञातुमिष्यते ॥२२॥

तद्योजनं प्रभृत्येकादशभिः प्रविभज्यते ।

लब्धे सहस्रसंयुक्ते व्यासोऽस्य वांछितास्पदे ॥२३॥ युग्मं ।

सर्व स्थान में चौड़ाई जानने के लिए इस तरह युक्ति है :- मेरु पर्वत के एक
हजार योजन के घेराव वाले, ऊपर के विभाग से नीचे के किसी भी स्थान पर
चौड़ाई के योजन आदि जानना हो तो, उतना नीचे उतरने पर उस संख्या को ग्यारह
के द्वारा भाग देने पर जो संख्या आती है, उसमें एक हजार मिलाने पर जो अन्तर आता
है, वह उस स्थान की चौड़ाई जानना । (२२-२३)

यथाधो नवनवति सहस्राण्युर्ध्वं भागतः ।

अतीत्यात्र प्रदेशे चेद्विष्कम्भं ज्ञातुमिच्छसि ॥२४॥

तदेतैर्नवनवतिसहस्रैः रूद्रभाजितैः ।

सहस्रान्नवसंप्राप्तान् सहस्रसहितान् कुरु ॥२५॥

एवं दश सहस्राणि जातानि धरणी तले ।

विष्कम्भो मेरु शैलस्य सर्वत्रैवं विभाव्यताम् ॥२६॥ विशेषकं ॥

उदाहरण रूप में ऊपर के विभाग में निम्नानवे हजार योजन से नीचे उतरें, उस विभाग के स्थान की चौड़ाई जानने के लिए निम्नानवे हजार को ग्यारह से भाग देने पर नौ हजार $६६००० \div ११ = ६०००$ अंक आता है, उसमें एक हजार मिलाने पर $६००० + १००० = १०,०००$ दस हजार योजन आता है । यह मेरु पर्वत की पृथ्वी तल के पास की चौड़ाई हुई । और इस प्रकार से सर्व स्थान पर से ज्ञान लेना चाहिए । (२४-२६)

अथवा प्रकारान्तरेण इदमेव करणम् ।

मूलाद्यत्र योजनादावुत्पत्य ज्ञातुमिष्यते ।

व्यासः तस्मिन् योजनादौ विभक्ते रूद्रसंख्यया ॥२७॥

यल्लब्धंतमूलसत्काद्विस्ताराच्छोधयेत् बुधः ।

यच्छेषं तन्मित स्तस्यव्यासोऽधीष्टं स्थले यथा ॥२८॥ युग्मं ।

अथवा एक और भी युक्ति है - मूल से ऊपर चढ़ते किसी भी स्थान विभाग का व्यास जानने के लिए जितना ऊपर चढ़ते हैं, इसे ग्यारह द्वारा भाग देने से जो अंक आता है इसे मूल की चौड़ाई में से निकाले पर जो शेष रहे वह उस स्थान या विभाग की चौड़ाई जानना चाहिए । (२७-२८)

कंदात्सहस्रमुत्पत्य व्यासं जिज्ञाससे यदि ।

सहस्र मेका दशभिः भज लब्धमिदं पुनः ॥२९॥

नवति योजना न्यंशा दश चैकादशात्मकाः ।

कन्द व्यासाच्छोधयेदं ततः शेषाणि यानि तु ॥३०॥

योजनां सहस्राणि दशैतावान्महीतले ।

विष्कम्भः स्वर्ण शैलस्य सर्वं त्रैवं विभाव्यताम् ॥३१॥ विशेषकं ॥

जैसे कि मूल स्थान से एक हजार योजन ऊंचे विभाग की चौड़ाई जाननी हो तो, इन हजार को ग्यारह से भाग देना चाहिए । अर्थात् नब्बे पूर्णांक दस ग्यारहांश $१००० - ११ = ६० - १०/११$ योजन आता है और मूल की चौड़ाई योजन में से निकालने पर $१००६० - १०/११$ दस हजार रहेगा, इतने योजन मेरु पर्वत के उस विभाग की चौड़ाई समझना । इसी तरह सर्वत्र समझ लेना चाहिए । (२९ ३१)

अथः व्यासानु सारेण सर्वत्र उच्चत्व ज्ञानाय करणम्

यावान् यत्रास्य विस्तारो निश्चितो भूतलादिषु ।

तस्मिन्मूलस्य विस्ताराच्छोधिते यत्तु शिष्यते ॥३२॥

गुण्यं तदेकादशभिः यद् भवेत्तत्प्रमाणतः ।

उच्चत्वमस्य विष्कम्भ स्यानुसारेण तद्यथा ॥३३॥ युग्मं ॥

अब व्यास के आधार पर ऊंचाई जानने की युक्ति इस प्रकार है - मूल स्थान में अथवा किसी भी स्थान से जितनी निश्चित चौड़ाई हो उसे मूल की चौड़ाई में से निकाल देने पर जो शेष रहे, उसे ग्यारह से गुणा करने पर जो अंक आता है, वही उस स्थान की ऊंचाई समझना । (३२-३३)

योजनानां सहस्राणि दश व्यासोऽस्य भूतले ।

मूलविष्कम्भतस्तेषु विशोधितेष्वदः स्थितम् ॥३४॥

नवतिर्योजनान्यंशा दश चैकादशात्मकाः ।

अस्मिन्नैकादशगुणै सहस्रमियमुच्चता ॥३५॥ युग्मं ॥

उदाहरण तौर पर मेरु पर्वत की पृथ्वी तल की चौड़ाई दस हजार योजन है, और मूल की चौड़ाई में से बाद करते नब्बे पूर्णांक ग्यारहांश शेष - $10050 - 10/11 - 10,000 = 50 - 10/11$ योजन रहता है । यह शेष रहे, इसे ग्यारह से गुणा करने पर - $50 \times 11 = 550$ एक हजार आता है उस स्थान की ऊंचाई समझना । (३४-३५)

मूलभूतलयोर्मध्ये सर्वत्रैवं विभाक्ताम् ।

विस्तारस्यानुसारेण तुंगत्वमीप्सितास्पदे ॥३६॥

इस तरह मेरु पर्वत के मूल और भूतल के बीच में सर्वत्र इच्छित स्थान की चौड़ाई के आधार पर से ऊंचाई जान सकते हैं । (३६)

अथ सर्वत्र विष्कम्भ वृद्धिहानिज्ञानाय कारणम् ।

उपरितनेविस्तारेऽधस्तन विस्तारतः कृते दूरम् ।

तन्मध्यवर्तिशैलोच्छ्रयेण शेषे हते विदुषा ॥३७॥

यल्लब्धं तदुभयतो वृद्धिर्गिरिमौलितो ह्यधःपतने ।

तावत्येव च हानिर्मौलावारोहणेऽधस्तः ॥३८॥

अब सर्वत्र चौड़ाई ज्यादा, कम जानने के लिए इस तरह युक्ति है - नीचे की

चौड़ाई में से ऊपर के विभाग की चौड़ाई निकाल लेने के बाद, शेष रही संख्या को पर्वत की मध्यवर्ति ऊंचाई से भाग देना, इस तरह करने पर जो संख्या का अंक आता है, वह शिखर से नीचे उतरते, दोनों तरफ से वृद्धि समझना और नीचे से ऊपर चढ़ना वह दोनों तरफ हानि (कमी) समझना । (३७-३८)

तथाहि - साहस्रे मौलिविष्कम्भे कन्द व्यासाद्विशोधिते ।

शेषं नवत्यधिकानि शतानि नवतिः स्थितम् ॥३६॥

अंशा दशैकादशोत्थाः चैषां कर्तुं सवर्णनम् ।

योजनानां राशिमैकादशभिर्गुणयेत् बुधः ॥४०॥

भागान् दशोपरितनान् क्षिपेज्जाता इमे ततः ।

लक्षं भान्यराशमेनं क्वचित् संस्थापयेत् बुधः ॥४१॥

जैसे कि - मूल की चौड़ाई में से शिखर की चौड़ाई के एक हजार योजन का बाद निकाल करने पर, नौ हजार नब्बे पूर्णांक दस ग्यारहान्श - $90050 - 90/99 - 9000 = 8050 - 90/99$ शेष रहता है । इसका सवर्णन करने के लिए ग्यारह से गुणा कर दस अंश है, उसे मिला देना अतः एक लाख ($8050 \times 90/99 = 8050 + 90 = 9,00,000$) भाज्य राशि होती है । इसे एक और रखना चाहिए । (३६-४१)

नगोच्छ्रयो लक्ष रूपो भाजको रूद्रसंगुणः ।

लक्षाण्यैकादश जातस्तं भागार्थमथो न्यसेत् ॥४२॥ युग्मं ॥

इस तरह पर्वत की ऊंचाई एक लाख योजन की है, उसे भी ग्यारह से गुणा करने पर $9,00,000 \times 99 = 99,00,000$ ग्यारह लाख भाजक राशि होती है । (४२)

अल्पत्वेन विभाज्यस्य भूयस्त्वात् भाजकस्य च ।

भागा प्राप्त्यापवर्त्येते लक्षेण भान्यभाजकौ ॥४३॥

इस प्रकार भाज्य राशि जो एक लाख योजन है वह भाजक राशि से अल्प आती है, इसलिए भाग नहीं होगा, इसलिए भाज्य, भाजक को उल्टा कर देना चाहिए । (४३)

उपर्येकः स्थितोऽधस्तादेकादश स्थिताः ततः ।

लब्ध एकादश भागो योजनं योजनं प्रति ॥४४॥

अतः ऊपर एक रहेगा और नीचे ग्यारह रहेगा, अर्थात् प्रत्येक योजन में एक ग्यारहांश विभाग आता है । (४४)

यद्वा भाज्यः भाजकयोः उभयोः लक्षरूपयोः ।

राशिः भाज्योऽंशरूपोऽस्ति भाजको योजनात्मकः ॥४५॥

प्रति योजनमेकोऽंशः तत्सुखेनैव लभ्यते ।

इयं मेरूरुभयतो वृद्धिहानी निरूपिते ॥४६॥

अथवा भाज्य राशि और भाजक राशि इन दोनों में भाज्य राशि अंश रूप है, और भाजक राशि योजन रूप है, इससे प्रति योजन से एक-एक आया । यह एक ग्यारहांश योजन वृद्धिहानी आती है । यह मेरू की दोनों ओर की ज्यादा, कम आती है । (४५-४६)

ज्ञातुमिष्टे वृद्धिहानी तत्र यद्येकपाश्वरतः ।

द्वाविंशतिविभक्तस्य योजनस्यलवस्तदा ॥४७॥

परन्तु यदि एक ही ओर ज्यादा कम जानना चाहते हो, तो वह एक योजन का बाईसवां भाग है । (४७)

ततः अयं भावः -

यावदुत्पत्यते कन्दादंगुलयोजनादिकम् ।

एकादशः तस्य भागो कन्द व्यासात् क्षयं व्रजेत् ॥४८॥

इसका भावार्थ-इस तरह से है - मूल स्थान से जितना अंगुल प्रमाण अथवा योजन प्रमाण ऊंचे चढ़ने से, इसका ग्यारहवां अंश मूल की चौड़ाई से कम होता है । (४८)

तथाहि - एकादश स्वंगुलेषु समुत्क्रान्तेषु मूलतः ।

क्षीयते मूल विष्कम्भात् संपूर्णमेकमंगुलम् ॥४९॥

योजनेष्वपि तावत्सु समुद्रातेषु मूलतः ।

क्षीयते मूल विष्कम्भात् सम्पूर्णमेकयोजनम् ॥५०॥

जैसे कि - मूल स्थान से ग्यारह अंगुल ऊपर चढ़ने पर वहां की चौड़ाई मूल की चौड़ाई से एक अंगुल कम होती है, और मूल से ग्यारह योजन ऊपर चढ़ने पर वहां की चौड़ाई मूल की चौड़ाई से एक योजन घट (कम) जाती है ।

(४९-५०)

एवं योजनशतसहस्रेष्वपि भाव्यम् ।

अत एव योजनानां सहस्रे मूलतो गते ।

नवतिः योजनान्यंशा एकादशोद्भवा दश ॥५१॥

एतावानेकादशींशः सहस्रस्य क्षयं गतः ।

ततः सहस्राणि दश विष्कम्भो धरणी तले ॥५२॥

लाख योजन में इसी तरह जानना - यदि मूल स्थान से एक हजार योजन ऊंचे चढ़ा हो तो उस हजार को ग्यारह से भाग देने पर जो नब्बे पूर्णांक दस ग्यारहांश योजना आया, उस स्थान का व्यास मूल के व्यास से कम होता है, इससे मेरू पर्वत की पृथ्वीतल आगे की चौड़ाई दस हजार योजन होती है + (५१-५२)

एकादशस्वेकादशस्वतिक्रान्तेषु भूमितः ।

सहस्रेषु किलैकैकं सहस्रं व्यासतोद्भवेत् ॥५३॥

इस तरह प्रत्येक ग्यारह हजार योजन ऊंचे चढ़ने पर, चौड़ाई में एक हजार योजन घटता है । (५३)

एवं च नवनवतेः सहस्राणामतिक्रमे ।

शिरोभागेऽस्य विष्कम्भः सहस्रं भवति शिष्यते ॥५४॥

इस गिनती से निम्नानवे हजार योजन ऊंचे चढ़ने पर, चौड़ाई में नौ हजार योजन कम होता है, अतः केवल एक हजार योजन चौड़ा रहता है । (५४)

यद्वा कन्दाद्योजनानां लक्षेऽतीते शिरस्तले ।

लक्षस्यैकादशो भाग एतावान् परिहीयते ॥५५॥

नवतिर्योजनशतान्यधिका नवतिस्तथा ।

अंशा दशैकादशोत्थाः सहस्रं शिष्यते ततः ॥५६॥ युग्मं ।

अथवा मूल स्थान से एक लाख योजन ऊपर आकर, उस स्थान से इस लाख का ग्यारहवा अंश, अर्थात् नौ हजार नब्बे पूर्णांक दस ग्यारहांश, योजन चौड़ाई में घटता है, इस तरह गिनते भी शिखर में एक हजार योजन चौड़ाई में रहता है । (५५-५६)

प्रत्येकं परितः पंचशतविसत्तृतयोः ननु ।

नन्दनसौमनसयोः सद्भावान् मेखलाद्वये ॥५७॥

योजनानां सहस्रस्य द्विः भवेत् युगपत् त्रुटिः ।

कथं एकादश भागहानिः तदुप पथते ॥५८॥ युग्मं ॥

यहां प्रश्न करते हैं कि - मेरु पर्वत के चारों तरफ पांच-पांच सौ योजन के विस्तार में नन्दन और सौमनस वन होने से, दोनों मेखलाओं पर एक साथ में एक हजार योजन को दो बार घटाया जाय, वहां ग्यारहवें भाग की हानि की बात किस तरह हो सकती है ? (५७-५८)

अत्रोच्यते कर्णगत्या समाधेयमिदं बुधैः ।

का कर्णगतिरित्येवं यदि पृच्छसि तत् श्रुणु ॥५९॥

उत्तर - इस बात का 'कर्णगति' द्वारा समाधान करना चाहिए । यह कर्णगति क्या है वह सुनो :- (५९)

कन्दादारम्य शिखरं यावत्तदुभय स्पृशि ।

दत्तायां दवरिकायां स्थिरहस्तेन धीमता ॥६०॥

अपान्तराले यत् क्वापि कियदाकाशमास्थितम् ।

तत् समग्रं कर्णगत्या मेरोराभाव्यमित्यतः ॥६१॥

तत् प्रकल्प्य मेरूतया ग्राहुः गणितकोविदाः ।

सर्वत्रैकादशभागपरिहाणिं यथोदिताम् ॥६२॥ विशेषकं ॥

मूल स्थान से लेकर शिखर तक उन दोनों को स्पर्श करे, इस तरह एक रस्सी मजबूत हाथ से पकड़ कर रखते हुए बीच में कहीं पर कोई खाली (खोखलापन) रहे वह सर्वकर्णगति द्वारा मेरूपर्वत का है, ऐसा विचार करना और, इसी ही कारण से गणित शास्त्रियों ने भी उसे मेरु पर्वत रूप में कल्पना कर सर्वत्र यथोक्त ग्यारहवें भाग को घटाने का कहा है । (६०-६२)

“अयं च अर्थः श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण पून्यैरपि विशेषणवत्यां लवणोदधिघन गणित निरूपणावसरे दृष्टान्त द्वारेण ज्ञापित एव ॥”

“श्री जिनभद्र गणि ने भी 'विशेषवती' ग्रन्थ में लवणसमुद्र का घन गणित कथन करते हुए दृष्टान्त द्वारा यही भावार्थ कहा है ।”

अतोऽयं मेखलायुग्मा विवक्षया क्रमात्तनुः ।

मूले च विसृतः सुष्टदस्तगोपूच्छसंस्थितः ॥६३॥

और इस तरह होने से ही दोनों मेखलाओं को गिनती में न लें तो, वहां आगे

संकीर्ण होता है, और वहां से उतरते चौड़ा होते जाते मूल के स्थान पर बहुत चौड़ा हो जाता है तथा मेरु पर्वत को ऊंचे किए गोपूच्छ के आकार वाला कहा है । (६३)

अथात्र त्रीणि काण्डानि वर्तन्ते कनकाचले ।

काण्डं विभागो नियत विशिष्टपरिणामवान् ॥६४॥

अब इस मेरु पर्वत के तीन कांड होते हैं अर्थात् इसके विशिष्ट विभाग कहे हैं । (६४)

चतुर्विधं काण्डमाद्यं मृत्तिकाबहुलं क्वचित् ।

पाषाणबहुलं वज्रबहुलं शर्क रामयम् ॥६५॥

उसमें प्रथम कांड (विभाग) के भी चार भेद हैं - क्वचित् मिट्टीमय, क्वचित् पाषाण (पत्थर)मय, क्वचित् वज्रमय और क्वचित् वेणुमय है । (६५)

काण्डं द्वितीयमप्येवं चतुर्थाऽस्य निरूपितम् ।

अंकजं स्फटिकं क्वापि सौवर्णं राजतं तथा ॥६६॥

दूसरे कांड-विभाग के भी इसी तरह से अंक रत्नमय, स्फटिक रत्नमय, सुवर्णमय और रूप्य (चांदी) मय इस तरह चार भेद कहे हैं । (६६)

न्यात्यजाम्बूनदमयं तृतीयं काण्डमीरितम् ।

त्रयाणामपि काण्डानां परिमाणमथोच्यते ॥६७॥

सहस्र योजनोन्मानमाद्यमारभ्य कन्दतः ।

त्रिषष्टिश्च सहस्राणि द्वितीयं समभूतलात् ॥६८॥

ततस्तृतीयं षट्त्रिंशत्सहस्रावधि कीर्तितम् ।

एवं काण्डैस्त्रिभिस्तस्य लक्षमेकं समाप्यते ॥६९॥

और तीसरा काण्ड (विभाग) सम्पूर्ण उत्तम सुवर्णमय है । इन तीनों कांड का प्रमाण इस प्रकार है - मूल से लेकर समतल भूमि तक एक हजार योजन का प्रथम कांड है । समतल भूमि से तिरसठ हजार योजन तक दूसरा कांड है, और वहां से ऊपर छत्तीस हजार योजन तक तीसरा कांड है । इस तरह तीनों कांडों द्वारा मेरु पर्वत समग्र एक लाख योजन का होता है । (६७-६९)

“अयं जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्राभिप्रायः ॥ सम वायांगे तु अष्टत्रिंशत्तमे सम वाये द्वितीय विभागः अष्ट त्रिंशद्योजन सहस्राणि उच्चत्वेन भवतीति उक्तम् ॥”

‘यह अभिप्राय जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र का है । परन्तु सम वायांग सूत्र में तो कहा है कि इसका दूसरा विभाग अड़तीस हजार योजन का है ।’

चतुर्विधत्वेनन्देवमाद्य द्वितीय काण्डयोः ।

मृत्तिकादि विभागानां न पृथक्काण्डता कथम् ॥७०॥

यहां प्रश्न करते हैं कि प्रथम दूसरे काण्ड के जब चार चार भेद कहे हैं तो मृत्तिका आदि विभागों के कारण अलग अलग कांड क्यों नहीं कहा ? (७०)

अत्रोच्यते - पृथ्व्यादिवस्तुजत्वेऽपि नैयत्येनोक्तकाण्डयोः ।

पृथ्व्यादिरूपभागानाम विवेकात् न काण्डता ॥७१॥

इसका उत्तर देते हैं - वे दोनों कांड पृथ्वी आदि वस्तु के कारण से हुआ है, यह वास्तविक है, फिर भी यह पृथ्वी आदि विभाग अलग न होने के कारण इनके अलग-अलग कांड नहीं कहा है । (७१)

चतुर्भिश्चायममितो वनखण्डैरलंकृतः ।

दान शील तपो भ्रातृः जैन धर्म इवोन्नतः ॥७२॥

जैसे जैन धर्म में दान, शील, तप और भाव ये चार शोभायमान हो रहे हैं, वैसे ही यह मेरु पर्वत चार वन खंडों से शोभायमान हो रहा है । (७२)

तत्र भूमौ भद्रशालं क्रमात् मेखलयोर्द्वयोः ।

नन्दनं सौमनसं च शिखरे पण्डकं वनम् ॥७३॥

मेरु पर्वत के चारों तरफ समतल भूमि पर भद्रशाल वन आया है । इसकी दोनो मेखलाओं पर क्रमशः नंदनवन और सौमन वन आए हैं और ऊपर के विभाग में पंडक वन है । (७३)

तत्राद्यं भद्रशालाख्यं मेरोः पश्चिम पूर्वतः ।

द्वाविंशतिर्द्वाविंशतिः सहस्राण्यायतं मतम् ॥७४॥

सान्दर्भे द्वे योजन शते दक्षिणोत्तर विस्तृतम् ।

स्थितं मेरुं परिक्षिप्य वलयाकृतिनात्मना ॥७५॥

प्रथम भद्र शाल वन मेरु पर्वत के पूर्व पश्चिम में, बाईस-बाईस हजार योजन लम्बा है, और उत्तर दक्षिण में चौड़ा, अढ़ाई सौ योजन है । उसने मेरु पर्वत को वलयाकार रूप चारों तरफ घेरा हुआ है । (७४-७५)

अत्रेयमुपपत्तिः -

पूर्वास्यां पश्चिमायां वा य आयामोऽस्य वर्णितः ।

सौऽष्टा विभक्तः सन् विस्तारोऽत्रैक पार्श्वतः ॥७६॥

किंच -

उदीच्यो दाक्षिणात्यो वा विस्तारोऽस्य वनस्य यः ।

सौऽष्टाशीत्या ताडितः सन् आयामोऽस्यैक पार्श्वतः ॥७७॥

वह इस प्रकार है - पूर्व की ओर अथवा पश्चिम तरफ के वन की जो लम्बाई कही है, उसके अट्ठाईसवें भाग के समान इसके एक ओर की अर्थात् दक्षिण अथवा उत्तर की ओर चौड़ाई है । उत्तर या दक्षिण की ओर इसकी जो चौड़ाई कही है, इससे अट्ठाईसवे गुणा, इसके पूर्व या पश्चिम की ओर एक तरफ की लम्बाई है । (७६-७७)

भद्र शालवनं चैतत् अष्टधा विहितं किल ।

शीतोदया शीतया च गजदन्ताद्रि मेरुभिः ॥७८॥

इस भद्र शाल वन के शीता और शीतोदा इन दो नदियों से तथा गज दंत और मेरु पर्वत से आठ विभाग पड़े हुए हैं । (७८)

तथाहि - एको भागो मन्दरस्य प्राच्यां पश्चिमतः परः ।

विद्युत्प्रभ सौमनसमध्येऽपाच्यां तृतीयकः ॥७९॥

तुर्दशचोत्तरततो माल्यवद् गन्धमादान्तरे ।

भागाः सर्वेऽप्यमी शीता शीतोदाभ्यां द्विधाकृताः ॥८०॥

वह इस तरह - १- मेरु पर्वत के पूर्व तरफ २- मेरु पर्वत की पश्चिम तरफ ३- मेरु पर्वत की दक्षिण की ओर, विद्युत्प्रभ तथा सौमनस के बीच, ४- मेरु पर्वत की उत्तर ओर माल्यवान् और गन्धमादन के बीच, इस तरह चार विभाग बने। इसमें शीता और शीतोदा नदिया आई है, इसने दो-दो विभाग किए है, इससे सर्व मिलाकर आठ भाग होते हैं । (७९-८०)

तचैवम् - उदीच्यांशौ द्विधाचक्रे शीतया प्राक् प्रवृत्तया ।

प्राचीं प्रति प्रस्थितया प्राकंखण्डोऽपि द्विधाकृतः ॥८१॥

शीतोदया याम्यखण्डो द्विधोदग्गतया कृतः ।

द्विधा पश्चिम खण्डोऽपि कृतः प्रत्येक् प्रवृत्तयाः ॥८२॥

वह इस तरह- शीता नदी ने दक्षिण दिशा में बहते उत्तर दिशा के अंश के दो विभाग किये हैं और पूर्व दिशा में बहती पूर्व तरफ के अंश के दो विभाग होने से चार विभाग होते हैं । शीतोदा नदी से उत्तर दिशा में बहती दक्षिण खण्ड के दो विभाग होते हैं, और पश्चिम में बहती पश्चिम खंड में भी दो विभाग होते हैं, इस तरह चार विभाग हुए और कुल मिलाकर आठ भाग होते हैं । (८१-८२)

इत्येवमष्टभागेऽस्मिन् मेरोर्दिक्षु चतसृषु ।

सिद्धायतनमेकैकं पंचाशद्योजनोत्तरम् ॥८३॥

इस तरह से आठ विभागों में बंटवारा होते, इस भद्रशाल वन में मेरूपर्वत से चारों दिशा में पचास-पचास योजन दूर एक-एक सिद्धायतन है । (८३)

उक्तान्येतानि हिमवच्चैत्यतुल्यानि सर्वथा ।

स्वरूपतो मानश्च सेवितानि सुरासुरैः ॥८४॥

इन चार सिद्धायतन का स्वरूप और प्रमाण आदि सर्व प्रकार से हिमवान् पर्वत के चैत्य समान है, और सुरासुरों से सेवित है । (८४)

विदिक्षु पुनरेकैकः प्रासादस्तावदन्तरे ।

योजनानां पंच शतान्युर्ध्वोऽर्धं विस्तृतायतः ॥८५॥

चारो विदिशाओं में इतने ही अन्तर में एक-एक प्रासाद है, और वे पांच सौ-पांच सौ योजन ऊंचे और इससे आधे लम्बे-चौड़े हैं । (८५)

चतुदिशं चतसृभिस्ते वापीभिरलंकृताः ।

योजनानि दशोद्विद्धाः ताः षोडशापि वापिका ॥८६॥

पंचाशद्योजनायामा आयामार्धं च विस्तृता ।

स्वरूपतो नामतश्च जम्बू वापी समाः समाः ॥८७॥ युग्मं ।

इन चार प्रासाद के चारों दिशा में चार-चार वावड़ियाँ हैं, वे सौलह वावड़ी दस योजन गहरी, पचास योजन लम्बी और पच्चीस योजन चौड़ी है, और इन सब का स्वरूप तथा प्रमाण आदि जम्बू वृक्ष सम्बन्धी वावड़ी के समान समझना । (८६-८७)

आग्नेय्यामथ नैर्ऋत्यां यौ प्रासादौ प्रतिष्ठितौ ।

तौ सौधः पुरेन्द्रस्य तदर्हासनशालिनौ ॥८८॥

अग्नि कोण और नैऋत्य कोण में जो दो प्रासाद हैं, वे सौधर्म इन्द्र के हैं, और इसके योग्य आसनों से सुशोभायमान है । (८८)

वायव्यामथ चैशान्यां यौ प्रसादौ प्ररूपितौ ।

तावीशानसुरेन्द्रस्य तद्योग्यासन शोभनौ ॥८९॥

वायव्य कोण और ईशान कोण में जो दो प्रासाद हैं, वे ईशान इन्द्र के हैं, और वे इसके योग्य आसनों से शोभायमान हो रहे हैं । (८९)

अष्टौ दिग्गजकूटानि वनेऽस्मिन् जगदुर्जिनाः ।

गजाकृतीनि कवयो यान्याहुः दिग्गजा इति ॥९०॥

इस वन में आठ दिक् गजकूट पर्वत कहे हैं, वे हाथी के समान आकार वाले होने से गजकूट कहलाते हैं । (९०)

पद्मोत्तरो नीलवांश्च सुहस्त्यथांजनागिरिः ।

कुमुदश्च पलाशश्च वतंसो रोचनागिरिः ॥९१॥

पद्मोत्तर, नीलवान्, सुहस्ती, अंजनगिरि, कुमुद, पलाश, वतंश और रोचनागिरि इस तरह ये आठ इनके नाम हैं । (९१)

“अन्ये तु रोचना गिरि स्थाने रोहणा गिरि पठन्ति ॥”

अन्य स्थान पर कहीं-कहीं रोचन गिरि को रोहणा गिरि भी कहते हैं ।

मेरोरूत्तरपूर्वस्यां शीतायाः सरितः पुनः ।

गच्छन्त्याः प्रागभिमुखमुत्तरस्याभिहादिमः ॥९२॥

मेरू पर्वत के उत्तर पूर्व में और पूर्व तरफ बहती, शीता नदी के उत्तर में, प्रथम पद्मोत्तर गजकूट पर्वत है । (९२)

प्रादक्षिण्य क्रमेणाथ मेरोर्दक्षिण पूर्वतः ।

शीतायाः प्राक्प्रवृत्ताया दक्षिणस्यां च नीलवान् ॥९३॥

प्रदक्षिणा के क्रम से मेरू पर्वत की दक्षिण पूर्व में, और पूर्व तरफ जाती शीता नदी दक्षिण में, दूसरा नीलवान् गजकूट पर्वत आया है । (९३)

मेरोर्दक्षिणपूर्वस्यां शीतोदायाश्च पूर्वतः ।

मेरोर्दक्षिणादिकस्थायाः सुहस्ती नाम दिग्गजः ॥९४॥

मेरू पर्वत के दक्षिण पूर्व में और मेरू से दक्षिण में रही, शीता नदी के पूर्व में सुहस्ती नामक तीसरा गजकूट पर्वत आया है । (९४)

अंजनो नाम दिङ्नागो नैऋत्यां मेरुभूधरात् ।

शीतोदायाः पश्चिमतः प्रयान्त्याः उत्तरां प्रति ॥६५॥

मेरु पर्वत के नैऋत्य और उत्तर तरफ बहती शीतोदा नदी के पश्चिम में ,
अंजना नामक चौथा गजकूट पर्वत है । (६५)

दिङ्नागः कुमुदोऽप्येवं नैऋत्यामेव मेरूतः ।

शीतोदयाः दक्षिणतः प्रयान्त्या वारूणीं प्रति ॥६६॥

मेरु पर्वत के नैऋत्य में ही और पश्चिम की ओर बहती शीतोदा नदी के
दक्षिण में कुमुद नाम का पांचवा गजकूट पर्वत है । (६६)

उत्तरापरतो मेरोः पलाशो नाम दिग्गजः ।

पश्चिमाभिमुखं यान्त्या शीतोदाया उदक् च सः ॥६७॥

मेरु पर्वत से वायव्य कोने में और पश्चिम दिशा में बहने वाली शीतोदा नदी
के उत्तर में पलाश नाम का छठा गजकूट पर्वत है । (६७)

अथावतंसकोऽप्येवं वायुकोणे सुमेरूतः ।

स शीतायाः पश्चिमतः प्रयान्त्याः दक्षिणां प्रति ॥६८॥

इसी तरह से मेरुपर्वत से वायव्य कोने में और दक्षिण दिशा बहने वाली
शीता नदी से पश्चिम में अवतंसक नाम का सातवां गजकूट पर्वत है । (६८)

मेरोरूत्तर पूर्वस्थाभष्टमो रोचनाचलः ।

दक्षिणाभिमुखं यान्त्याः शीतायाः पूर्वतश्च सः ॥६९॥

मेरु पर्वत के उत्तर पूर्व में और दक्षिण में जाती शीता नदी के पूर्व में रोचन
गिरि नाम का आठवा गजकूट पर्वत है । (६९)

एकैकस्यां विदिश्येवं द्वौ द्वौ कूटौ निरूपितौ ।

प्रासाद सिद्धायतनान्तरालेषु किलाष्टसु ॥१००॥

इस तरह एक-एक विदिशा में दो-दो गजकूट पर्वत आये हैं । ये आठों प्रासाद
और सिद्धायतन के बीच-बीच में आठ के अन्तर है । (१००)

तथाहि वृद्ध संप्रदाय :-

भद्रशालवने मेरोः चतस्रोऽपि दिशः किल ।

नदी प्रवाहैः रूद्धाः तद्विष्वे वाहद गृहाणि न ॥१०१॥

इस विषय में इस प्रकार की वृद्ध संप्रदाय है - भद्र शाल वन में मेरु पर्वत की चारो दिशाओं में नदियों के प्रवाह से घिरा हुआ है, इसलिए उसी दिशा में जिन मंदिर नहीं है । (१०१)

किन्तु नद्यन्तिकस्थानि भवनानि किलार्हताम् ।

गजदन्तसमीपस्थाः प्रासादश्च बिडौजसाम् ॥१०२॥

परन्तु नदी के पास में अरिहंत भगवंत का मंदिर है, और गजदंत पर्वतों के पास में इन्द्रों का प्रासाद है । (१०२)

तदन्तरालेष्वष्टासु करिकूटा यथोदिताः ।

दर्शितः स्थान नियमस्तत्राप्येष विशेषतः ॥१०३॥

और उनके बीच में रहे आठ के पूर्व कहे अनुसार गज कूट पर्वत है । इस सम्बन्ध में विशेष रूप स्थान नियम इस प्रकार है - (१०३)

बहिरूत्तर कुरुभ्यो मेरोरूत्तर पूर्वतः ।

शीताया उत्तरदिशि प्रासादः परिकीर्तितः ॥१०४॥

उत्तर कुरु से बाहर, मेरु पर्वत से उत्तर पूर्व में, तथा शीता नदी से उत्तर में, प्रासाद कहा है । (१०४)

मेरोः प्राच्यां दक्षिणतः शीतायाः सिद्धमन्दिरम् ।

एतस्योभयतः कूटौ द्वौ प्रज्ञप्तौ जिनेश्वरैः ॥१०५॥

मेरु पर्वत के पूर्व दिशा में और शीता नदी के दक्षिण में सिद्ध मन्दिर है, इसके दोनों तरफ में दो गजकूट है, ऐसा जिनेश्वर भगवन्त ने कहा है । (१०५)

बहिर्देवकुरुणा च मेरोर्दक्षिणपूर्वतः ।

शीताया दक्षिणदिशि प्रासादः कीर्तितो जिनैः ॥१०६॥

देव कुरु के बाहर मेरु पर्वत के दक्षिण पूर्व में, तथा शीता नदी की दक्षिण दिशा में, प्रासाद आया है । ऐसा जिनेश्वर देव ने कहा है । (१०६)

मध्ये देवकुरुणां वै शीतोदायाश्च पूर्वतः ।

मेरोर्दक्षिणत सिद्धायतनं स्मृतमागमे ॥१०७॥

देव कुरु के मध्य विभाग में शीतोदा नदी के पूर्व में, और मेरु पर्वत की दक्षिण में, सिद्ध मन्दिर आया है । ऐसा आगम में कहा है । (१०७)

अस्याप्युभयतः कूटौ समश्रेण्या व्यवस्थितौ ।

धुर्यौ युगन्धरस्येव महीन्द्रस्यैव चामरौ ॥१०८॥

इसके भी दोनों तरफ में सम श्रेणि में दो गजकूट आये हैं, वह मानो युगंधर के दोनों ओर रहे दो बैल हों, अथवा राजा के दोनों तरफ में रहे दो चमर हों, इस तरह लगते हैं । (१०८)

शीतोदायाः दक्षिणतो नैर्ऋत्यां स्वर्णभूभृतः ।

बहिर्देवकुरुणां च प्रासादः प्राग्बदाहितः ॥१०९॥

देवकुरु के बाहर, शीतोदा नदी की दक्षिण में, और मेरु पर्वत की नैऋत्य में, पूर्व के समान एक प्रासाद आया है । (१०९)

शीतोदाया उत्तरतः पश्चिमायां सुमेरूतः ।

सिद्धानां सदन्नं कूटौ तस्याप्युभयतः स्थितौ ॥११०॥

शीतोदा नदी के उत्तर में, और मेरु पर्वत के पश्चिम में एक सिद्ध मंदिर है, और इसके भी दोनों बगल में दो गजकूट आये हैं । (११०)

शीतोदाया उत्तरतो वायुकोणे सुमेरूतः ।

बहिरूत्तरकुरुभ्यः प्रासादः सुरभूभृतः ॥१११॥

उत्तर कुरु के बाहर, शीतोदा नदी के उत्तर में, और मेरु पर्वत के वायव्य कोने में सुरेन्द्र का प्रासाद आया है । (१११)

शीता नद्याः पश्चिमायामुदीच्यां मन्दराचलात् ।

उत्तरासां कुरुणां च मध्येऽस्ति सिद्धमन्दिरम् ॥११२॥

उत्तर कुरु के मध्य भाग में, शीता नदी के पश्चिम में, और मंदराचल (मेरु) की उत्तर में भी एक सिद्ध मंदिर है । (११२)

कूटौ द्वौ तदुभयतो मेरोः सर्वेऽप्यमी स्थिताः ।

विहारकूट प्रासादाः पंचाशद्योजनान्तरे ॥११३॥

इसके भी दोनों तरफ में दो गजकूट पर्वत आए हैं । ये सर्व सिद्ध मन्दिर गजकूट पर्वत और प्रासाद मेरुपर्वत से पचास पचास योजन के अन्तर में आये हैं । (११३)

योजनानां पंचशतान्युच्चैस्त्वेन भवन्त्यमी ।

गव्यूतानां पंचशतीं निमग्नाश्च धरोदरे ॥११४॥

मूले पंच योजनानां शतान्यायत विस्तृताः ।

मध्ये त्रीणि पंचसप्तत्यधिकानि शतानि च ॥११५॥

उपर्यर्द्धतृतीयानि शतानि विस्तृतायताः ।

कूटा इमे वर्षधरगिरिकूटसमा इति ॥११६॥ त्रि भि विशेषकं ॥

सभी गजकूट पांच सौ-पांच सौ योजन ऊंचे है और सवा सौ योजन जमीन के अन्दर गहरे हैं, वे मूल में पांच सौ योजन लम्बे-चौड़े हैं, मध्य भाग में तीन सौ पचहत्तर योजन लम्बे-चौड़े हैं और ऊपर दो सौ पचास योजन लम्बे-चौड़े हैं। और वे वर्षधर पर्वत के कूट समान है। (११४-११६)

सर्वेऽमी वनखंडेन पद्मवेदिकयान्विताः ।

सिंहासनाढ्यस्वस्वेशप्रासादभ्राजिमौलयः ॥११७॥

इन सर्व कूटों पर वन तथा पद्मवेदिका भी रही है, और इनके शिखर भी सिंहासनों से युक्त है, और अपने-अपने स्वामियों के प्रासाद से शोभायमान हो रहे हैं। (११७)

द्वाषष्टिं योजनान्येते प्रासादा विस्तृतायताः ।

एकत्रिंशद्योजनोच्चाः रम्याः विविधरत्नजाः ॥११८॥

ये जो प्रासाद कहे हैं वे विविध रत्नों से बने हैं। वे बासठ योजन लम्बे चौड़े हैं, और ऊंचाई में इकतीस योजन हैं। (११८)

एक पत्यायुषस्तेषु स्वस्वकूटसमाभिधाः ।

क्रौडन्ति नाकिनः स्वैर दिक्कुम्भिकूट नायकाः ॥११९॥

इन प्रासादों में एक पत्यायुष के आयुष्य वाले अपने-अपने कूट के समान नाम वाले कूट पर्वत के स्वामी देव स्वेच्छानुसार क्रौड़ा करते हैं। (११९)

स्वस्व कूट विदिक्ष्वेषां राजधान्यः प्रकीर्तिताः ।

जम्बूद्वीपेऽन्यत्र यथा योगं विजयदेववत् ॥१२०॥

अपने-अपने कूट की विदिशाओं में अन्य जम्बू द्वीप में विजयदेव की राजधानी समान उनकी राजधानियां हैं। (१२०)

एतेषु करिकूटेषु पूर्वाचार्यैश्चिरन्तनैः ।

पठयन्ते जिनचैत्यानि स्तोत्रेषु शाश्वतार्हताम् ॥१२१॥

इन गजकूट पर्वतों पर शाश्वत जिनेश्वर भगवान के तीन मंदिर हैं, इस तरह प्राचीन पूर्वाचार्यों ने स्तोत्रों में कहा है । (१२१)

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्त्यादि सूत्रे तूपलभागहे ।

न साम्प्रतं तत्र तत्त्वं जानन्ति श्रुतपारगाः ॥१२२॥

परन्तु अभी जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति आदि सूत्रों में कही पर यह बात नहीं मिलती है। इस विषय में सत्य (तत्त्व) क्या है वह श्रुत पारगामी केवली भगवन्त जानें । (१२२)

“अतः एवोक्तं रत्नशेखर सूरिभिः स्वोपज्ञ क्षेत्र विचारे” -

करि कुड कुंडन इदह कुरु कंचणजमल समविअड्ढेसु ।

जिण भवण विसं वाओ जो तं जाणं ति गीयत्था ॥१२३॥

इसी ही लिए पूज्य आचार्य श्री रत्नशेखर सूरि जी ने अपने द्वारा रचित क्षेत्र विचार ग्रन्थ में कहा है - “गजकूट, कुंड, नदी, सरोवर, कुरु, कंचन गिरि, तथा समवृत्त वैताढ्य इन सब स्थान पर जिन भवन सम्बन्धी मतभेद है । वास्तविकता क्या है ? वह तो गीतार्था ही जाने ।”

भद्रशाल वनस्यास्य समभूमेरूपर्यथ ।

स्यात्पंचयोजनशतातिक्रमे नन्दनं वनम् ॥१२४॥

इस भद्रशाल वन की समभूमि से ऊपर चढ़ते, पांच सौ योजन पूर्ण होते ‘नन्दनवन’ नामक वन आता है । (१२४)

योजनानां पंच शतान्येतद्विष्कमभतो मतम् ।

स्थितं मेरुं परिक्षिप्यं वलयाकृतिनात्मना ॥१२५॥

इसका विस्तार पांच सौ योजन का है, और वह मेरु पर्वत की वलयाकारे घिरा हुआ है । (१२५)

बाह्याभ्यन्तररूपं हि विष्कम्भद्वितयं भवेत् ।

गिरीणां मेखलाभागे ततोऽत्र द्वयमुच्यते ॥१२६॥

पर्वतों की मेखला के विभाग में चौड़ाई दोनों प्रकार से होती है । एक बाहर से और दूसरा अन्दर की । अतः यहां भी दोनों प्रकार से कहते हैं :- (१२६)

एक एकादश भाग्ये योजनस्यापचीयते ।

प्रतियोजनमेवं च पंचशत्या व्यतिक्रमे ॥१२७॥

लब्धानि पंच चत्वारिंशद्योजनानि पंचभिः ।

एकादशांशैर्युक्तानि त्यज्यन्ते मूल विस्तृतेः ॥१२८॥

दशसहस्ररूपायास्तदैतदवशिष्यते ।

शतानि नवनवतिश्चतुर्ष्वं चाशदेव च ॥१२९॥

एकादशांशा षट् बाह्यो व्यासोऽयं तत्र भूभूतः ।

दक्षिणोत्तरयोः पूर्वापरयोर्वा वनान्तयोः ॥१३०॥ कलापकं ।

एक त्रिंशद्योजनानां सहस्राणि चतुःशती ।

एकोनाशीतिरधिका परिक्षेपोऽत्र बाह्यतः ॥१३१॥

पर्वत पर चढ़ते प्रत्येक योजन में एक ग्यारहांश योजन जितना चौड़ाई में घटता जाता है। इस हिसाब से पांच सौ योजन बढ़ते पैतालीस पूर्णांक पांच ग्यारहांश ४५ - ५/११ योजन मूल की चौड़ाई में कम हो गया। अतः मूल चौड़ाई दस हजार योजन की है, उसमें से यह घटा हुआ निकाल देने पर नौ हजार नौ सौ चौवन पूर्णांक छः ग्यारहांश (१०,००० - ४५ ५/११ = ९९५४ ६/११) योजन आता है, यह मेरू पर्वत की बाह्य चौड़ाई होती है, और वह इस वन की दक्षिण से उत्तर तक की तथा पूर्व से पश्चिम तक की समझना। इस कारण से बाहर का घेराव इकतीस हजार चार सौ उनासी (३१४७६) योजन होता है। (१२७-१३१)

बाह्ये च गिरि विष्कम्भे सहस्र योजनोन्निते ।

स्यादन्तर्गिरिविष्कम्भः स चायं परिभाव्यते ॥१३२॥

सहस्राणि योजनानामष्टौ नव शतानि च ।

चतुः पंचाशत्तथांशाः षडेकादशनिर्मिताः ॥१३३॥

सहस्रा योजनान्यष्टाविंशतिस्त्रिंशती तथा ।

षोडशाढ्या तथा भाग अष्टावेका दशोत्थिताः ॥१३४॥

अन्तः परिरयोऽयं च भवेदस्मिन् बने गिरेः ।

वनमेतदथो पद्मवेदिका वनवेष्टितम् ॥१३५॥

एवं चत्वार्यपि वनानि ज्ञेयानि ॥

मेरू पर्वत की बाहर चौड़ाई में से एक हजार योजन निकाल देने पर इसके अन्दर की चौड़ाई आती है। अर्थात् वह आठ हजार नौ सौ चौवन पूर्णांक छः ग्यारहांश (९९५४ ६/११) योजन आता है, इस आधार पर इसका घेराव निकाले तो वह अट्ठाईस हजार तीन सौ सोलह पूर्णांक आठ ग्यारहांश (२८३१६ ८/११)

योजन आता है, यह इस वन में मेरू पर्वत के अंदर का घेरावा है । अब यह वन भी पद्मवेदिका और वन से घिरा हुआ है । (१३२-१३५) और इसी तरह चार वन से घिरा हुआ है ।

सिद्धायतनमेकैकं पूर्वादिदिक्चतुष्टये ।

सुवर्णशैलतः पंचाशद्योजनव्यतिक्रमे ॥१३६॥

मेरू पर्वत से पचास-पचास योजन के अन्तर में पूर्व आदि चार दिशा में एक एक सिद्ध मंदिर है । (१३६)

विदिक्षु तावतैवास्मात् प्रासादा भद्रशालवत् ।

तेषां चतुर्दिशं याप्यः प्रत्येकमिति षोडश ॥१३७॥

विदशाओं में अर्थात् चारों कोनों में भी मेरू पर्वत से इतने ही अन्तर में भद्रशाल वन में इसी प्रकार प्रासाद है, और प्रत्येक की, चार दिशाओं की कुल मिलाकर सोलह वावडी है । (१३७)

नन्दोत्तरा तथा नंदा सुनन्दा वर्धनापि च ।

ऐशान्यां विदिशि प्राहुर्वापीनामानिसत्तमाः ॥१३८॥

वे सोलह वावडी इस प्रकार से है - ईशान कोने में नंदोत्तरा, नंदा, सुनंदा और वर्धना इन नाम की चार वावडी आई है । ऐसा विद्वानों ने कहा है । (१३८)

नन्दिषेणा तथाऽमोघा गोस्तूपा च सुदर्शना ।

आग्नेय्यां विदिशि प्राहुर्वापीनामानि सत्तमाः ॥१३९॥

अग्नि कोने में नन्दिषेणा, अमोघा, गोस्तूपा और सुदर्शा ये नाम की चार वावडियां विद्वानों ने कही है । (१३९)

भद्रा विशाला कुमुदा तथा च पुण्डरीकिणी ।

नैऋत्यां विदिशि प्राहुर्वापीनामानि सत्तमाः ॥१४०॥

इसी तरह नैऋत्य कोने में भी भद्रा, विशाला, कुमुदा और पुंडरिकीणी नाम की चार वावडियां ज्ञानी पुरुषों ने कहा है । (१४०)

विजया वैजयन्ती चापराजिता विजयन्त्य ।

वायाख्यां विदिशि प्राहुर्वापीनामानि सत्तमाः ॥१४१॥

तथा वायव्य कोने में विजय, वैजयन्ती, अपराजिता और जयन्ती नाम की चार वावडियां ज्ञानी महापुरुषों ने कहा है । (१४१)

स्युश्चतस्रश्चतस्रस्ताः पूर्वादिदिगनुक्रमात् ।
स्थिताः परीत्य परितः प्रासादांस्तान् विदिग्गतान् ॥१४२॥

ये चार-चार वावड़ियां विदिशाओं में रहे प्रासादों को घेरकर पूर्वादि दिशा में अनुक्रम से रही है । (१४२)

आग्नेय्यामथ नैऋत्यां प्रासादौ शक्रभर्तृको ।
वायव्यामथ चैशान्यां तावीशानसुरेशितुः ॥१४३॥

उसमें अग्निकोण और नैऋत्य कोने में सौधर्मेन्द्र का प्रासाद है, और वायव्य तथा ईशान कोण में ईशानेन्द्र का प्रासाद है । (१४३)

कूटा नव भवन्यत्र नन्दनाख्यं च मन्दरम् ।
निषधाख्यं च हिमवत्कूटं रजतनामकम् ॥१४४॥

रूचकं सागरचित्तं वज्रकूटं बलाधिधम् ।
पंचाशता योजनैः स्युर्मैरोरेतानि नन्दने ॥१४५॥ युग्मं ॥

यहां पर नौ शिखर आए हैं वह इस तरह है : १- नन्दन, २- मन्दर, ३- निषध, ४- हिमवत, ५- रजत, ६- रूचक, ७- सागर चित्र, ८- वज्र और ९- बल । ये सब शिखर इस नन्दन वन में और मेरुपर्वत से पचास-पचास योजन के अन्तर - फासले पर है । (१४४-१४५)

पौरस्त्य सिद्धायतनैशानी प्रासादयोः किल ।
अन्तरे नन्दनं कूटं तत्र मेघंकरा सुरी ॥१४६॥

प्रथम नन्दन नामक शिखर है, वह पूर्व तरफ के सिद्धायतन और ईशान कोने में आए प्रासाद के बीच में है, और वहां मेघकरा नाम की देवी का निवास स्थान है । (१४६)

जम्बूद्वीपेऽपरत्रास्या राजधानी सुमेरूतः ।
ऐशान्यां विदिशि प्रोक्ता यथाहं विजयादिवत् ॥१४७॥

इस देवी की राजधानी दूसरे जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से ईशान कोने में आई है, और वह सर्व प्रकार से विजय देव की राजधनी के समान जानना । (१४७)

पौरस्त्य सिद्धायतनाग्नेयी प्रासाद योः किल ।
अन्तरे मन्दरं कूटं तत्र मेघवती सुरी ॥१४८॥

दूसरा जो मंदर नाम का शिखर है, वह पूर्व तरफ सिद्धायतन और अग्निकोण में आए प्रासाद के बीच में आया है, और वहां मेघवती नाम की देवी रहती है ।
(१४८)

राजधानी पुनरस्या पूर्वस्यां मेरुतो मता ।

जम्बू द्वीपेऽन्यत्र यथास्थानं विजयदेववत् ॥१४९॥

इस देवी की राजधानी दूसरे जम्बू द्वीप में मेरुपर्वत के पूर्व दिशा में आई है, और इसकी सब बातें सर्व प्रकार से विजयदेव की राजधानी के समान समझना ।
(१४९)

अपाच्य सिद्धायतनाग्नेयी प्रासादयाः किल ।

अपान्तराले निषधं सुमेधा तत्र देवता ॥१५०॥

मेरोर्दक्षिणतस्तस्या राजधानी जगुर्बुधाः ।

सहस्रान् द्वादशातीत्य जम्बूद्वीपेऽपरत्र वैः ॥१५१॥

निषध नाम का तीसरा शिखर दक्षिण दिशा के सिद्धायतन और अग्नि कोने के प्रासाद के बीच में आया है । और वहां सुमेधा नाम की देवी है । (१५०) इस देवी की राजधानी भी दूसरे जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत की दक्षिण में बारह हजार की दूरी पर आयी है । इस तरह बुद्धिमानों ने कहा है । (१५१)

अपाच्यसिद्धायतनात्प्रतीच्यां पूर्वतः पुनः ।

प्रासादनैः त्रैतीनिष्ठात् कूटं हैमवतं स्थितम् ॥१५२॥

शोभते स्वाभिनी तत्र देवता मेघमालिनी ।

जम्बू द्वीपेऽन्यत्र तस्या मेरुतो राजधान्यपाक् ॥१५३॥

चौथा हैमवत नामक शिखर दक्षिण दिशा के सिद्धयतन की पश्चिम में और नैऋत्य कोने के प्रासाद की पूर्व दिशा में आया है । (१५२) इस शिखर पर मेघ मालिनी देवी स्वामी रूप में रहती है । इसकी राजधानी दूसरे जम्बू द्वीप में मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में आयी है । (१५३)

“मेघमालिनी स्थाने हेममालिनीति जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे”

‘यहां मैंने ‘मेघमालिनी’ नाम कहा है । परन्तु जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में इसके स्थान पर ‘हेममालिनी’ नाम आया है ।’

दक्षिणस्यां प्रतीचीनात् सिद्धायतनतस्तथा ।

प्रासादान्नेर्ऋतीनिष्ठादुदीच्यां रजताभिधम् ॥१५४॥

सुवत्सा देवता तत्र प्रतीच्यां कनकाचलात् ।

जम्बूद्वीपेऽन्यत्र तस्या राजधानीं निरूपिता ॥१५५॥

पांचवा 'रजत' नाम का शिखर है वह पश्चिम दिशा के सिद्ध मंदिर की दक्षिण में और नैऋत्य कोने के प्रासाद की उत्तर में आया है । (१५४) इस शिखर पर सुवत्सा नाम की देवी निवास करती है । इसकी राजधानी भी दूसरे जम्बू द्वीप की पश्चिम में आई है । (१५५)

उत्तरस्यां प्रतीचीनात् सिद्धायतनतस्तथा ।

वायव्यकोणप्रासादादपाच्यां रूचकाभिधम् ॥१५६॥

वत्स मित्रा तत्र देवी पश्चिमायां सुमेरूतः ।

जम्बू द्वीपेऽन्यत्र तस्या राजधानीं जिनेः स्मृता ॥१५७॥

रूचक नाम का छट्टा शिखर है, वह पश्चिम दिशा के सिद्ध मन्दिर की उत्तर दिशा में और वायव्य कोने के प्रासाद से दक्षिण दिशा में आया है । (१५६) वहां वत्स मित्रा नाम की देवी निवास करती है, उसकी राजधानी भी दूसरे जम्बूद्वीप में मेरु की पश्चिम में आयी है । इस तरह जिनेश्वरों ने कहा है । (१५७)

"एवं च जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र वृत्ति-बृहत् क्षेत्र समास सूत्र वृत्ति, सिरि निलय क्षेत्र समास सूत्र वृत्याद्यभि प्रायेण सौमनस गजदन्त सम्बन्धि पंचम कूट षष्ट कूट वासिन्यौ नन्दन वन पंचम कूटषष्ट कूट वासिन्यौ च दिक्कुमार्यौ तुलयाख्ये एव ! स्थानांग सूत्र कल्पान्त वाच्यटीका दिषु तु ऊर्ध्व लोक वासि नीषु सुवत्सावत्समित्रा स्थाने तोय धारा विचित्रे दृश्यते ॥"

'इस तरह जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की टीका, वृहत्क्षेत्र समास की टीका तथा सिरि निलय क्षेत्र समास की टीका आदि के अभिप्राय में सौमनस और गजदंत पर्वतों के पांचवे और छठे शिखर पर रहने वाली दिक्कुमारियों के और नन्दन वन के पांचवे छठे शिखर पर रहने वाली दिक्कुमारियों के नाम एक समान है, परन्तु स्थानांग सूत्र और कल्प सूत्र की अन्तर वाच्य टीका आदि में उर्ध्व लोक वासी दिक्कुमारियों में से 'सुवत्सा' तथा 'वत्समित्रा' के स्थान पर तोयधरा और विचित्रा नाम आए हैं ।'

उदीच्य सिद्धायतनात् प्रतीच्यामथ पूर्वतः ।

प्रासादाद्वायु कोणस्थात् कूटं सागरचित्रकम् ॥१५८॥

सागर चित्रक नाम का सातवां शिखर है, उत्तर तरफ के सिद्ध मंदिर से पश्चिम और वायव्य कोने के प्रासाद से पूर्व में आया है । (१५८)

बलाहका तत्र देवी मेरोरूत्तरतः पुनः ।

जम्बू द्वीपेऽन्यत्र तस्या राजधानी जिना जगुः ॥१५९॥

उस शिखर पर बलाह का नाम की देवी है और उसकी राजधानी जम्बू द्वीप में मेरु पर्वत की उत्तर दिशा में आई है । (१५९)

उदीच्य सिद्धायतनात् प्राच्यां वायव्य कोण जात् ।

प्रासादात् पश्चिमायां च वज्र कूटमिहान्तरे ॥१६०॥

वज्रसेना तत्र देवी राजधानी सुमेरूतः ।

उत्तरस्यामन्य जम्बू द्वीपे ज्ञेया यथागमम् ॥१६१॥

आठवां वज्र कूट नाम का शिखर है, वह उत्तर तरफ के सिद्धायतन की पूर्व में और वायव्य कोने के प्रासाद की पश्चिम में रहा है । (१६०) उस शिखर पर वज्र सेना नाम की देवी निवास करती है और उसकी राजधानी भी अन्य जम्बू द्वीप में मेरुपर्वत की उत्तर दिशा में आई है । ऐसा आगम में कहा है । (१६१)

अयं तावत् क्षेत्र समास बृहद् वृत्यभिप्रायः ॥ जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे च सागर चित्रकूटे वज्रसेना देवी वज्रकूटे बलाहका देवी पठयते इति ज्ञेयम् ॥ तथा क्षेत्र समास सूत्रे वारिसेण इति पाठः । किरणा वल्यादा वपि वारिषेणा इति । जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे वइरसेणा इति ॥ बृहत्क्षेत्र समास वृतौ च वज्र सेना इति नाम । इति ज्ञेयम् ॥

यह जो मैंने कहा है वही प्रमाण क्षेत्र समास की बड़ी टीका में भी कहा है । परन्तु जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में तो सागर चित्र शिखर पर वज्र सेना देवी और वज्रकूट शिखर पर बलाहका देवी कही है । क्षेत्र समास में 'वारिसेणा' ऐसा पाठ है । किरणावली आदि में 'वारिसेणा' ऐसा पाठ है । जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में 'वइरसेणा' ऐसा पाठ है और बृहत्क्षेत्र समास की टीका में 'वज्रसेना' ऐसा पाठ आया है ।

एता अष्टाप्यूर्ध्वलोकवासिन्यो दिक्कुमारिकाः ।

सुगन्ध्यम्बुषुष्यवृष्टि कुर्वन्ते जिन जन्मनि ॥१६२॥

ये आठ देवियां ऊर्ध्व लोक की दिक्कुमारियां हैं, और वे जिनेश्वर भगवान के जन्म समय में सुगन्धी जल का छिड़काव और पुष्प वृष्टि करती हैं । (१६२)

भद्रशालवनकूटतुल्यत्वेन भवन्त्यमी ।

मूले पंच योजनानां शतान्यायतविस्तृताः ॥१६३॥

आठ शिखरों का वर्णन हो गया है । यह भद्रशाल वन के शिखर समान मूल में पांच सौ योजन लम्बा-चौड़ा है ।

वनेऽपि पंचशतिके पंचाशद्योजनोत्तरम् ।

स्थितेषां स्थितिः किञ्चिदाकाशे बलकूटवत् ॥१६४॥

यह पांच सौ योजन के वन में पचास योजन के बाद में कहाँ है । अतः उसका कुछ भाग पचास योजन 'बलकूट' के समान आकाश में स्थिर रहा हुआ है । (१६४)

अत्रैव नन्दनवने सुधाशानधराधरात् ।

ऐशान्यां विदिशि प्रोक्तं बलकूटं जिनेश्वरैः ॥१६५॥

आखिर नौवा 'बलकूट' शिखर है, वह नंदन वन में ही मेरु पर्वत के ईशान कोण में आया है । इस तरह श्री जिनेश्वर भगवंत ने कहा है । (१६५)

“तथोक्तं - जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे । मंदर स्मरणं पव्वयस्स उत्तर पुरच्छिमेणं एत्थ णं णंदण वणे बल कुटे णामं कूडे पण्णत्ते इत्यादि ॥”

इस विषय में जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में कहा है कि. मंदराचल पर्वत की उत्तर पूर्व में अर्थात् ईशान कोने के अन्दर नंदनवन में बलकूट नाम का कूट-शिखर आया है । इत्यादि -

विदिशाऽपि विशालाः स्युः महतो वस्तुनः किल ।

तद् घटेतावकाशेऽत्र प्रासाद बलकूटयोः ॥१६६॥

महान. पदार्थों की विदिशा ये भी महान - विशाल होने से यहां प्रासाद और बलकूट दोनों का अवकाश घटता है । (१६६)

अर्धेन नन्दनवने कूटमेतदवस्थितम् ।

अपरार्धेन चाकाशे तदुक्तं पूर्वसूरिभिः ॥१६७॥

यह नौवा बलकूट आधा नंदनवन में रहा है, और आधा आकाश में स्थिर रहा है, इस तरह पूर्वाचार्य ने कहा है । (१६७)

“आह ॥ नन्दनवने बलकूटम् । नन्दनवनं च पंचयोजनशत विस्तीर्णायाम् मेरोः प्रथममेखलायां । ततः कथं तत्र माति ? उच्यते बलकूटेन पंचयोजनशतानि नन्दनवनसत्कानि रूढानि पंचयोजनशतानि पुनः मेरो बहिः आकाशे ॥ ततो न कश्चिद्दोषः ॥ ”

“यहां प्रश्न करते हैं कि - नन्दनवन में बलकूट है, इस तरह आप कहते हो परन्तु नन्दनवन तो मेरु पर्वत की पांच सौ योजन विस्तार वाली प्रथम मेखला में है, तो इसमें एक हजार योजन विस्तार वाला बलकूट का किस तरह समावेश हो सकता है ?”

इसका उत्तर देते हैं - बलकूट नन्दनवन के पांच सौ योजन रोक कर खड़ा है और दूसरे पांच सौ योजन तो मेरु से बाहर अधर के आकाश में है, इसलिए शंका का प्रश्न नहीं रहता ।

उक्तं च -

नन्दनवण रूभित्ता पंच सए जो अणाइं नीस रिओ ।

आया से पंच सए रूभित्ता ठाइ बलकूडो ॥१६८॥

इति बृहत् क्षेत्र समास वृत्तौ ।

बृहत् क्षेत्र समास की वृत्ति में भी कहा है कि - नन्दनवन के पांच सौ योजन रोक कर बलकूट पर्वत खड़ा है, शेष आकाश में पांच सौ योजन रूके हुए हैं। (१६८)

“जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र वृत्तौ तु मेरुतः पंचाशद्योजना तिकमे ईशानकोणे ऐशानप्रासादः ततः अपि ईशानकोणे बलकूटमित्युक्तम् ॥ तदधिप्रायं न विद्यः ॥ ”

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की टीका के अन्दर तो इस तरह कहा है कि 'मेरु पर्वत से ईशानकोणे में पचास योजन जाते ईशानकी ओर प्रसाद है, और इससे भी ईशानकोणे में 'बलकूट' आया है । यह बात समझ में नहीं आती ।”

माल्यवद्गिरिसम्बन्धिहरस्सहाख्य कूटवत् ।

सर्वात्मनेदं विज्ञेयं ध्यासायामोच्चतादिभिः ॥१६९॥

इस बलकूट की लम्बाई-चौड़ाई ऊंचाई आदि सर्व माल्यवान पर्वत के हरिस्सह नामक शिखर के अनुसार जान लेना । (१६९)

बलनामा सुरस्तत्र स्वामी तद्वाजधान्यपि ।

मेरोरूत्तरपूर्वस्यां जम्बूद्वीपेऽपरे मता ॥१७०॥

इस बलकूट पर बल नाम का स्वामी देव रहता है । इसकी राजधानी मेरु पर्वत के उत्तर में अन्य जम्बू द्वीप में है । (१७०)

बलाख्याया राजधान्याः स्वरूपमखिलं खलु ।

हरिस्सहायाः सदृशं विज्ञेयमविशेषितम् ॥१७१॥

उस राजधानी का नाम 'बला' है और इसकी सर्व बाते हरिस्सहा राजधानी के अनुसार समझना । (१७१)

गच्छदभिश्चैत्यनत्यर्थं पाण्डकेऽदो वनं पथि ।

विश्रान्त्ये श्रीयते विद्याचारणैः मुनिवारणैः ॥१७२॥

इस नन्दन वन, पाण्डक वन में जिनचैत्यालय की यात्रार्थ जाते समय विद्याचरण मुनियों का विश्राम स्थान है । (१७२)

प्रत्यागच्छदभिरानम्य पाण्डके शाश्वतान् जिनान् ।

विश्राम्यदभिः भूष्यतेऽदो जंघा चारण साधुभिः ॥१७३॥

पाण्डकवन में शाश्वता जिनेश्वर के दर्शन करके वापिस आते जंघा चारण मुनियों को यहां विश्राम लेने का स्थान है । (१७३)

अथास्य नन्दनाभिष्य वनस्य समभूतलात् ।

योजनानां सहस्राणि द्वाषष्टिं पंचभिः शतैः ॥१७४॥

समन्विता न्यतीत्यास्ति वनं सौमनसाभिधम् ।

योजनानां पंचशतीं विस्तीर्णं सर्वतोऽपि तत् ॥१७५॥ युग्मं ।

इस नन्दन वन के समतल भूमि से बासठ हजार पांच सौ योजन ऊपर जाने के बाद, वहां चारों तरफ से पांच सौ योजन का विस्तार वाला सौमनस नामक वन आता है । (१७४-१७५)

अस्मिन्नपि परिक्षिप्य स्थिस्ते मेरू समन्ततः ।

वक्ष्ये बाह्यान्तररूपौ विष्कम्भौ पूर्ववत् गिरेः ॥१७६॥

यह वन भी मेरु पर्वत के चारों तरफ घेराव कर रहा है, और इसका पूर्ववत् बाह्य अभ्यन्तर रूप दो प्रकार का व्यास होता है, वह इस प्रकार से कहा है । (१७६)

योजनानां सहस्राणि चत्वारि द्वे शते अपि ।

द्विसप्तत्यधिके भागा अष्टावेकादशोद्भवाः ॥१७७॥

वह्निर्वनात् गिरेर्व्यासः एष पूर्वापरान्तयोः ।

दक्षिणोत्तरयोर्वापि तत्रोपपत्तिरुच्यते ॥१७८॥ युग्मं ।

इस वन के बाहर मेरु पर्वत का पूर्व पश्चिम अथवा उत्तर दक्षिण विस्तार, व्यास चार हजार दो सौ बहत्तर पूर्णांक आठ ग्यारहांश (४२७२ ८/११) योजन का कहलाता है । (१७७-१७८)

मेरुच्छ्रयस्यातीतानि भुवः सौमनसावधि ।

त्रिषष्टिर्योजनसहस्राणि रूद्रैर्भजेत् बुधः ॥१७९॥

शतानि सप्तपंचाशत् सप्तविंशानि तत्र च ।

लब्धानि योजनान्यंशाः त्रयश्चैकादशोद्भवाः ॥१८०॥

अस्मिन् राशौ भूमिगतात् मेरुव्यासात् विशोधिते ।

मानं यथोक्तं जायेत बाह्यायाः गिरिविस्तृतेः ॥१८१॥

वह इस तरह से :- पृथ्वी से सौमनस वन तक मेरु की ऊंचाई तिरसठ हजार योजन है, इसे ग्यारह से भाग देना $६३००० \div ११$ अर्थात् भाग देने में पांच हजार सात सौ सताईस पूर्णांक तीन ग्यारहांश $५७२७ \frac{३}{११}$ योजन आता है । इस संख्या को पृथ्वी पर मेरु पर्वत की चौड़ाई, जो दस हजार योजन है, उसमें से निकाल देने से जो आती है, वह बाहर का पर्वत का विस्तार आता है । $(१०,००० - ५७२७ \frac{३}{११} = ४२७२ \frac{८}{११})$ । (१७९ से १८१)

व्यासो वनस्योभयतः पंच पंच शतात्मकः ।

बाह्य व्यासात्तसहस्रे शोधिते शेषमान्तरः ॥१८२॥

स च अयम्- योजनाना सहस्राणि त्रीणि किंच शतद्वयम् ।

द्विसप्तत्यधिकं भागाः अष्ट चैकादशोद्भवाः ॥१८३॥

इस वन की दोनों तरफ की चौड़ाई पांच सौ-पांच सौ योजन की है, कुल मिलाकर एक हजार होती है, उसे बाहर की चौड़ाई में से निकाल देने से जो संख्या आती है, वह अन्दर की चौड़ाई समझना अर्थात् $४२७२ \frac{८}{११} - १००० = ३२७२ \frac{८}{११}$ अन्दर की चौड़ाई है । (१८२-१८३)

तथा - गिरे बाह्यपरिक्षेपः त्रयोदश सहस्रकाः ।

एकादशाः शताः पंच षट् चैकादशजा लवाः ॥१८४॥

अन्तर्गिरिपरिक्षेपः सहस्राणि दश त्रयः ।

शताः चैकोनपंचाशाः त्रयो भागाश्च रूद्रजाः ॥१८५॥

इस वन के बाहर का घेराव, तेरह हजार पांच सौ ग्यारह पूर्णांक छः ग्यारहंश (१३५११-६/११) योजन आता है, और इसके अन्दर का घेरावा दस हजार तीन सौ उनचास पूर्णांक तीन ग्यारहंश (१०३४६-३/११) योजन होता है । (१८४-१८५)

एवमुक्ताभिलाषेण ज्ञेया वक्तव्यताखिला ।

अत्रापि नन्दनाभिख्यवनवत् कूटवर्जिता ॥१८६॥

नंदन वन में कूट- शिखर कहे हैं, उन कूट सिवाय सब यहां नंदन वन समान समझना चाहिए । (१८६)

तथैवैकैकमाशासु विज्ञेयं सिद्धमन्दिरम् ।

विदिक्षु पुनरेकैकः प्रासादो वापिकावृतः ॥१८७॥

सुमनाः सौमनसा च शौमनासा मनोरमा ।

ऐशान्यां विदिशि प्रोक्ताः वाप्यः प्राच्यादिदिक्क्रमात् ॥१८८॥

सदुत्तरकुरुः देवकुरुः वन्हिविदिश्यथ ।

वाप्यश्चः क्रमतो वारिषेणा सरस्वती ॥१८९॥

विशाला माघभद्रा चाभयसेना च रोहिणी ।

वाप्य चतस्रो नैऋत्यां ज्ञेयाः पूर्वाद्यनुक्रमात् ॥१९०॥

भद्रोत्तरा तथा भद्रा सुभद्रा च तथापरा ।

भद्रावतीति वायव्य कोणे वाप्यो यथा क्रमम् ॥१९१॥

इसी ही के समान प्रत्येक दिशा में सिद्धायतन समझना, विदिशा में बावडी से घिरे हुए प्रासाद समझना । ईशान कोण में पूर्वादि के अनुक्रम से सुमना, सौमनसा, शौमनासा और मनोरमा नाम की वावडियां समझना । अग्नि कोने में उत्तर कुरु, देवकुरु, वारिषेणा और सरस्वती नाम की चार वावडियां हैं, नैऋत्य कोने में अनुक्रम से विशाला, माघभद्रा, अभयसेना और रोहिणी नाम की चार वावडियां हैं, और वायव्य कोने में अनुक्रम से भद्रोत्तरा, भद्रा, सुभद्रा तथा भद्रावती नाम की चार वावडियां जानना । (१८७-१९१)

आग्नेव्यामथ नैऋत्यां प्रासादौ शक्रभर्तुको ।

ऐशान्यां वायव्यायां च तावीशानसुरेशितुः ॥१९२॥

अग्नि कोने में और नैऋत्य कोने में सौधमेन्द्र के दो प्रासाद हैं, और ईशान तथा वायव्य कोने में ईशानेन्द्र के दो प्रासाद हैं । (१६२)

एव वनं सौमनसं लेशतो वर्णितं मया ।
वर्णयामि वनमथ पाण्डकं शिखरस्थितम् ॥१६३॥

इस तरह मैंने सौमनस वन का अल्पमात्र वर्णन किया है, अब मेरु पर्वत के शिखर पर रहे पाण्डक वन का वर्णन करता हूँ । (१६३)

अतीत्योर्ध्वं सौमनसवनस्य समभूतलात् ।
योजनानां सहस्राणि षट् त्रिंशत्सुपर्यथ ॥१६४॥
प्रज्ञप्तं पाण्डकवनमनेकसुरसेवितम् ।
चारणश्रमणश्रेणि श्रित कल्पद्रुमाश्रयम् ॥१६५॥ युग्मं ॥

सौमनस वन के समभूतल से ऊपर चढ़ते छत्तीस हजार योजन पूर्ण होने के बाद, अनेक देवों से सेवित और चारण मुनियों का विश्राम स्थान रूप, कल्प वृक्षों वाला पाण्डक वन आया है । (१६४-१६५)

चतुर्नवत्या संयुज्जता योजनानां चतुःशती ।
वनस्यास्य चक्रवालविष्कम्भो वर्णितो जिनैः ॥१६६॥

उस वन की चारों तरफ की चौड़ाई चार सौ चौरानवे योजन की है । ऐसा श्री जिनेश्वर भगवन्त ने वर्णन किया है । (१६६)

उपपत्तिश्चात्र मेरुमौलेः सहस्र विस्तृतात् ।
शोधयेत् चूलिकामूलव्यासं द्वादशयोजनीम् ॥१६७॥
अवशिष्टेऽर्द्धीकृते च यथोक्तमुपपद्यते ।
मानमस्य मरकत मणि ग्रैवेयकाकृतेः ॥१६८॥ युग्मं ॥

उसकी जानकारी इस प्रकार है - मेरु पर्वत के शिखर का विस्तार एक हजार योजन है । इसमें से चूलिका के मूल की चौड़ाई जो बारह योजन की है, उसे निकाल देने से नौ सौ अठासी योजन शेष रहते हैं, उसे आधा करने से चार सौ चौरानवे योजन होता है, यह मरकत रत्न का ग्रैवेयक की आकृति वाला इस वन का प्रमाण है । (१६७-१६८)

यथा मेरुं परिक्षिप्य स्थिता पूर्व वनत्रयी ।
परिक्षिप्य स्थितमिह तथेदं मेरुचूलिकाम् ॥१६९॥

त्रिसहस्री योजनानां द्वाषष्ट्यां संयुक्त शतम् ।

विशेषाभ्यधिकं किञ्चित् परिक्षेपोऽस्य वर्णितः ॥२००॥

पूर्वोक्त तीन वन जैसे मेरुपर्वत को घेराव कर रहे हैं, वैसे यह चौथा पंडक वन मेरु की चूलिका को घेराव कर रहा है, इसका घेराव तीन हजार एक सौ बासठ योजन से कुछ अधिक कहा है । (१६६-२००)

अस्मिन् मेरु चूलिकायाः पंचाशद्योजनोत्तरम् ।

सिद्धायतनमेकैकं प्राग्वत् दिशां चतुष्टये ॥२०१॥

विदिक्षु पुनरेकैकः प्रासादो वापिकावृतः ।

नामान्यासां वापिकानामैशान्यादि विदिक् क्रमात् ॥२०२॥

इस वन में मेरु की चूलिका से पचास योजन के दूरी पर पूर्व के समान चार दिशा में एक-एक सिद्ध मंदिर है, और चार विदिशा (कोने) में वावड़ियों से युक्त एक-एक प्रासाद है । इन वावड़ियों के नाम ईशान आदि विदिशाओं के अनुक्रम से इस प्रकार है :- (२०१-२०२)

पुंड्रा पुंड्रभा चैव सुरक्ताख्या तथापरा ।

रक्तावतीति चैशान प्रासादे वापिका मताः ॥२०३॥

ईशान कोण के प्रासाद के चारों तरफ पुंड्रा, पुंड्र प्रभा, सुरक्ता तथा रक्तावती नाम की वावड़ियां हैं । (२०३)

क्षीररसा चेशुरसा तथामृतरसाभिधा ।

वारुणीति किलाग्नेय प्रासादे वापिकाः स्मृताः ॥२०४॥

अग्नि कोण के प्रासाद की चारों तरफ क्षीर रसा, इक्षुरसा, अमृत रसा, तथा वारुणी नाम की वावड़ियां हैं । (२०४)

शंखोत्तरा तथा शंखा शंखावर्ता बलाहका ।

प्रासादे नैऋती संस्थे वापिकाः परिकीर्तिताः ॥२०५॥

नैऋत्य कोने में रहे प्रासाद के चारों तरफ शंखोत्तरा, शंखा, शंखावर्ता तथा बलाहका नाम की वावड़ियां हैं । (२०५)

पुष्योत्तरा पुष्यवती सुपुष्या पुष्यमालिनी ।

वायव्य कोणे वाप्यः स्युः सर्वाः पूर्वादितः क्रमात् ॥२०६॥

और वायव्य कोने में रहे प्रासाद के चारों तरफ पूर्वादि दिशा के अनुक्रम से

पुष्पोत्तरा, पुष्पवती, सुपुष्पा एवं पुष्पमालिनी नाम की चार वावड़ियां आयी हैं ।
(२०६)

आग्नेय नैऋत्य गतो प्रासादो स्तः शतक्रतोः ।

वायव्यैशानसत्कौ तावीशानेन्द्रस्य वर्णितौ ॥२०७॥

अग्निकोण तथा नैऋत्य कोण के दो प्रासाद सौधमेन्द्र के हैं और वायव्य कोण तथा ईशान कोण के दो प्रासाद ईशानेन्द्र के हैं । (२०७)

चैत्यप्रासादवापीनां मानंत्रिषु वनेष्वपि ।

सद्भद्रशाल वनवद्विज्ञेयम विशेषितम् ॥२०८॥

भद्रशाल वन में आए चैत्य प्रासाद और वावड़ी इन सबका जो माप आदि योग्य स्थान पर कहने में आया है, वही माप शेष तीनों वन के चैत्य प्रासाद और वावड़ियों का है ।

अथास्मिन् पंडकवनेऽभिषेकार्हाः स्वयंभुवाम् ।

शिलाश्चतस्रः प्रज्ञप्ताः स्नात्रोदकपवित्रिताः ॥२०९॥

इस पांडक वन में श्री जिनेश्वर भगवान के अभिषेक के योग्य चार शिलाएं हैं । ये चारों भगवान के जन्म महोत्सव, समय में स्नात्र जल से पवित्र बनी है । (२०९)

आद्या पाण्डु शिलानाम्नी द्वितीया पाण्डु कंबला ।

तृतीया च रक्तशिला चतुर्थी रक्त कम्बला ॥२१०॥

इन चार शिलाओं के नाम इस प्रकार हैं - प्रथम पांडुशिला, दूसरी पाण्डु कम्बला तीसरी रक्तशिला और चौथी रक्त कम्बला । (२१०)

"अमूनि आसां नामनि जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे ॥ क्षेत्र समासे तु पांडु कंबला अति पाण्डु कंबला, रक्त कंबला अति रक्त कंबला एवं आसा नामानि पठयन्ते ।"

'ये नाम कहे हैं वे जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र के अनुसार हैं । क्षेत्र समास में तो पांडु कंबला, अति पांडु कंबला, रक्त कंबला और अति रक्त कंबला नाम कहे गये हैं ।'

प्राच्यां मेरू चूलिकाया प्राक्पर्यन्ते वनस्य च ।

भात्यर्जुन स्वर्णमयी शिला पाण्डुशिलाभिधा ॥२११॥

इन चार में जो प्रथम पाण्डु शिला है, वह अर्जुन स्वर्णमय है। वह मेरु की चूलिका से पूर्व में और वन के पूर्व के आखिर में आयी है। (२११)

सा पूर्वापर विस्तीर्णां तथोदग्दक्षिणायता ।

आयामतो योजनानां शतानि पंच कीर्तिता ॥२१२॥

शतान्यर्द्धं तृतीयानि मध्ये विष्कम्भतो मता ।

अर्धं चन्द्रा कृतेस्तस्या मध्ये परम विस्तृतिः ॥२१३॥

पूर्वा परः शरत्वेन व्यासोऽस्याः परमो बुधैः ।

जीवात्वेन च परमायामस्तु दक्षिणोत्तरः ॥२१४॥

वह पूर्व-पश्चिम में चौड़ी और उत्तर-दक्षिण में लम्बी है। इसकी लम्बाई पांच सौ योजन है, इसकी चौड़ाई मध्य भाग में अढाई सौ योजन है, क्योंकि यह अर्धचन्द्राकार की है, अर्थात् मध्यभाग में उत्कृष्ट चौड़ाई होती है। यह चौड़ाई पूर्व पश्चिम शर रूप में उत्कृष्ट रूप है, दोनों कोने में अंगूल का असंख्यातवां भाग है, इसकी लम्बाई जीवा रूप में उत्तर-दक्षिण तरफ उत्कृष्ट रूप में है। ऐसा ज्ञानी पुरुष कहते हैं। (२१२ से २१४)

परिक्षेपो धनुःपृष्ठतया भाव्यो यथोचितः ।

तत्तत्करणरीत्या वा समानेयं शरादिकम् ॥२१५॥

इसका घेरावा धनुः पृष्ठ रूप में यथा योग्य रूप में समझ लेना चाहिए अथवा इसका शरादि (शर जीवा और धनुः पृष्ठ) उस-उस करण युक्ति द्वारा नेकाल देना चाहिए। (२१५)

चतुर्योजनधिण्डायामस्यां भाति चतुर्दिशम् ।

तोरणालंकृतं कम्बं सौपानानां त्रयं त्रयम् ॥२१६॥

यह शिला चार योजन मोटी है, और इसके चारों दिशाओं में तोरण से शोभायमान है तथा वहां तीन-तीन सोपान हैं। (२१६)

अधिग्न्यचापाकारायाः वक्रता चूलिकादिशि ।

ऋजुता स्वस्वदिकक्षेत्राधिमुखास्याः विभाव्यताम् ॥२१७॥

उसकी आकृति रस्सी चढ़ी धनुष्य के समान है, यह चूलिका की दिशा में वक्र है और अपनी-अपनी दिशा के क्षेत्र सन्मुख सरल है। (२१७)

अत्यन्त कमनीयायामस्यां वृन्दारकव्रजाः ।

आसीनाश्च शयानाश्च विन्दन्ति परमा मुदम् ॥२१८॥

ये अत्यन्त मनोहर होने से इस शिला पर देवता अत्यन्त हर्षपूर्वक सोते हैं, बैठते हैं और वंदन करते हैं । (२१८)

वेदिकावनखंडाभ्यां समन्तादियमावृता ।

कांचीदामनीलपरिधानाभ्यामिव कामिनी ॥२१९॥

सर्वतः वेदिका तथा वनखंडे से घेराव वाली यह शिला मानो सुवर्ण मेखला और हरे वस्त्रों में सज्जित बनी स्त्री के समान शोभायमान है । (२१९)

दक्षिणस्यामुदीच्यां त तस्यां सिंहासनं स्थिते ।

धनुः पंचशत्यासायाम्रे तदर्द्धमेदुरे ॥२२०॥

उस शिला के ऊपर दक्षिण और उत्तर में पांच सौ धनुष्य लम्बे-चौड़े और अढाई सौ धनुष्य मोटे दो सिंहासन हैं । (२२०)

ज्ञेयो ग्रन्थान्तरात् सिंहासनयोरिह वर्णकः ।

अनावृतस्थलस्थानादेशां चन्द्रोदयं बिना ॥२२१॥

इस स्थान पर चन्द्रोदय नहीं हो फिर भी ये सिंहासन उसके स्थान पर शोभायमान होते हैं । इनका विशेष वर्णन अन्य ग्रन्थों से जान लेना चाहिये । (२२१)

तुल्यात्वादनयोर्व्यासायामाभ्यां चतुरस्रता ।

चतुरस्रपीठबन्धरूपे ज्ञेयं इमे ततः ॥२२२॥

लम्बाई और चौड़ाई एक समान होने से वह चौकोर (चौखंडा) है और वे सम चौरस पीठ बंध समान तथा खुले होने से चंदोवा (चांदनी) नहीं होती । (२२२)

औत्तराहे तत्र सिंहासने देवाश्चतुर्विधाः ।

अभिषिञ्चन्ति कच्छादि विजयाष्टक तीर्थपान् ॥२२३॥

इन दो में से जो उत्तर दिशा का है, उसके ऊपर चार प्रकार के देव कच्छ, आठ विजय में हुए तीर्थकर, भगवन्त का अभिषेक करते हैं । (२२३)

सिंहासने दाक्षिणातये विजयेषु किलाष्ट सु ।

वत्सादिकेषु संजातान् स्नपयन्ति जिनेश्वरान् ॥२२४॥

और जो दक्षिण दिशा का सिंहासन है, उसके ऊपर वत्स आदि आठ विजय में होने वाले तीर्थकर भगवन्तों का अभिषेक करने में आता है । (२२४)

अयं भावः -

शिलायाः संमुखं ह्यस्याः पूर्वं स्यां दिशिवर्तते ।

क्षेत्रं पूर्वं विदेहाख्यं विजयास्तत्र षोडश ॥२२५॥

उत्कर्षतोऽपि तत्र द्वौ जायेते युगपज्जिनौ ।

तत्र शीतोत्तराभावि विजयाष्टकजो जिनः ॥२२६॥

सिंहासने सुराधीशैरौत्तराहेऽभिषिच्यते ।

दाक्षिणात्ये दाक्षिणात्ये विजयाष्टकजो जिनः ॥२२७॥

इसका विस्तारपूर्वक भावार्थ इस तरह है - इस शिला के सन्मुख पूर्व दिशा में पूर्व विदेह नाम का क्षेत्र है, उसमें सोलह विजय हैं । वहां एक साथ में अधिक से अधिक दो जिनेश्वर भगवन्त होते हैं । उसमें से शीता नदी के उत्तर में रहे आठ विजय में हुए जिनेश्वर का इन्द्र उत्तर दिशा के सिंहासन पर अभिषेक करता है, और दक्षिण दिशा के आठ विजयों में उत्पन्न हुए जिनेश्वर भगवन्त को दक्षिण दिशा के सिंहासन पर अभिषेक करते हैं । (२२५ से २२७)

एवं भाव्यं पश्चिमायामपि सिंहासन द्वयम् ।

प्रत्यक् विदेहार्हद्योग्यं दक्षिणोत्तरयोर्दिशोः ॥२२८॥

इसी तरह पश्चिम दिशा की शिला ऊपर भी दो सिंहासन हैं, वह पश्चिम विदेह में उत्तर और दक्षिण में आए आठ-आठ विजयों में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकर भगवन्त के लिए हैं । (२२८)

तदेकैकं दाक्षिणात्योदीच्ययोः शिलयोः किल ।

यद् भारतैखतयोरेकै कस्यार्हं तो जनिः ॥२२९॥

उत्तर तथा दक्षिण दिशा की शिला पर एक-एक सिंहासन है । क्योंकि भारत क्षेत्र में तथा ऐरवत क्षेत्र में एक-एक तीर्थंकर परमात्मा का जन्म होता है । (२२९)

वनस्याथो दाक्षिणात्य पर्यन्ते पाण्डु कंबला ।

दक्षिणस्यां दिशि मेरु चूलिकायाः प्रतिष्ठिता ॥२३०॥

जो पांडुक बला नाम की दूसरी शिला कही है, वह इस वन के दक्षिण के अन्तिम विभाग, मेरु की चूलिका से दक्षिण दिशा में है । (२३०)

दक्षिणोत्तर विस्तीर्णां प्राक्पश्चिमायता च सा ।

ऋजुतास्या दक्षिणस्यां वक्रता चूलिका दिशि ॥२३१॥

यह शिला उत्तर दक्षिण में चौड़ी और पूर्व पश्चिम में लम्बी होती है। यह दक्षिण दिशा में सरल सीधी है, और चूलिका की ओर वक्र-टेढ़ी है । (२३१)

उपर्यस्या मध्यभागे सिंहासानमनुत्तरम् ।

सुरेन्द्रैस्तत्र भरतजातो जिनोऽभिषिच्यते ॥२३२॥

इसके ऊपर मध्यभाग में उत्तम सिंहासन है, उस सिंहासन ऊपर इन्द्र महाराज भरत क्षेत्र में जन्म लेने वाले जिनेश्वर प्रभु का अभिषेक करते हैं । (२३२)

अमुष्या दक्षिणा मुख्याः सम्मुखं भरतं यतः ।

ततस्तत्रत्यसार्वस्य युक्तमत्राभिषेचनम् ॥२३३॥

इस शिला के संमुख दक्षिण दिशा में भरत क्षेत्र आता है, और इससे वहां जन्म लेने वाले श्री जिनेश्वर भगवान का वहां जन्म अभिषेक होता है । (२३३)

शेषं तु मानसंस्थानसोपानवेदिकादिकम् ।

सर्वासामपि विज्ञेयमविशेषेण पाण्डुवत् ॥२३४॥

इस शिला सम्बन्धी आकृति, परिमाण, सौपान तथा वेदिका आदि शेष सर्व पाण्डुक शिला के समान जान लेना । (२३४)

वर्णातश्चोक्तरूपे द्वे कुमुदोदरसोदरे ।

वक्ष्यमाणे पुनः कोकनदविद्भुमबन्धुरे ॥२३५॥

उपरोक्त उभय (दोनों) शिलाओं का वर्णन कुमुद के गर्भ समान है। और जो अब वर्णन करेंगे, उन दोनों शिला का वर्ण माणिक्य तथा प्रवाल समान है । (२३५)

“अयं तावत् जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र वृत्यभिप्रायः । बृहत्क्षेत्र समास सूत्र वृत्तौ तु सर्वाः श्वेत सुवर्णं मय्य उक्ता इति ज्ञेयम् ॥”

‘यह बात जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की टीका के अनुसार कही है । बृहत् क्षेत्र समास की टीका में तो सर्व शिलाएं श्वेत स्वर्णमय है ।’

वन पश्चिम पर्यन्ते शिला रक्त शिलाभिधा ।

प्रतीच्यां मेरुचूलायाः तपनीयमयी मता ॥२३६॥

तीसरी रक्त शिला नाम की शिला है, वह वन के पश्चिम छेडे पर मेरु पर्वत की पश्चिम में आई है, और रक्त स्वर्णमय है, ऐसा कहा है । (२३६)

पूर्व पश्चिम विस्तीर्णा सा दक्षिणोत्तरायता ।

ऋजुता स्याः पश्चिमाया वक्रता चूलिका दिशि ॥२३७॥

यह पूर्व पश्चिम दिशा में चौड़ी है, और उत्तर दक्षिण दिशा में लम्बी है, एवं यह पश्चिम की ओर सरल सीधी है, और चूलिका की ओर टेडी है । (२३६)

स्यात् प्रतीची संमुखायामस्यां सिंहासन द्वयम् ।

जिनजन्माभिषेकार्ह दक्षिणोत्तरयोर्दिशोः ॥२३८॥

पश्चिम सन्मुख रही इस शिला पर उत्तर और दक्षिण दिशा में जिनेश्वर भगवान के अभिषेक के योग्य दो सिंहासन हैं । (२३८)

शीतोदोत्तर दिग्भाविपक्ष्मादिविजयाष्टके ।

संजातोऽर्हन्तोत्तराह सिंहासनेऽभिषिच्यते ॥२३९॥

शीतोदादक्षिणाभाविप्रादिविजयाष्टके ।

जातो जिनो दाक्षिणात्यं सिंहासनेऽभिषिच्यते ॥२४०॥

उत्तर दिशा के सिंहासन ऊपर शीतोदा नदी के उत्तर में आए पक्ष्मादि आठ विजय में उत्पन्न होने वाले जिनेश्वर भगवन्त का अभिषेक करने में आता है । और दक्षिण दिशा के सिंहासन ऊपर शीतोदा के दक्षिण दिशा में आए वप्रादि विजय में जन्म लेने वाले जिनेश्वर भगवन्त का अभिषेक करने में आता है । (२३९-२४०)

उदीच्यां मेरुचूलाया उदीच्यान्ते वनस्य च ।

रक्त स्वर्णमयी रक्तकंबला वर्तते शिला ॥२४१॥

चौथी रत्न कम्बला नामक शिला है, वह मेरु पर्वत की चूलिका के उत्तर में वन के उत्तरी किनारे में आई है, और यह भी लाल स्वर्णमय है । (२४१)

दक्षिणोत्तरविस्तीर्णा सा पूर्वपश्चिमायता ।

उदग् रून्वी चूलिकातो वक्रा तथोत्तरामुखी ॥२४२॥

यह शिला उत्तर दक्षिण में चौड़ी और पूर्व पश्चिम दिशा में लम्बी है, वह उत्तर सन्मुख आई है, और उत्तर दिशा में सीधी तथा चूलिका की ओर टेडी है । (२४२)

अस्यां सिंहासनं मध्ये मणिरत्न मनोहरम् ।

एरावत क्षेत्रजातो जिनस्तत्राभिषिच्यते ॥२४३॥

इस शिला पर मणि रत्न से मनोहर सिंहासन रहा है, और उस सिंहासन पर ऐरवत क्षेत्र में जन्म लेने वाले श्री तीर्थकर भगवान का अभिषेक करने में आता है । (२४३)

एवं मेरूगिरावस्मिन्नभिषेकासनानि षट् ।

अभिषेकस्तु युगपच्चतुर्णामथवा द्वयोः ॥२४४॥

इस तरह इस मेरू पर्वत पर अभिषेक करने के छः आसन हैं, वहां एक साथ में चार अथवा दो जिनेश्वर भगवन्तो का अभिषेक होता है । (२४४)

पूर्वापराविदेहेषु निशीथेऽर्हज्जनिर्यदा ।

भरतैरवत क्षेत्रे मध्यान्हः स्यात्तदा यतः ॥२४५॥

जिस समय पूर्व पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में अर्हत् परमात्मा का जन्म मध्य रात्रि में होता है, उस समय भरत क्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में तो दिन का मध्यान्ह काल होता है । (२४५)

शेषेष्वपि व्यवस्थेयं तुल्या चतुर्षु मेरूषु ।

सिंहासनान्यतस्त्रिंशत् सर्वसंख्यया ॥२४६॥

शेष चार मेरू पर्वत पर भी यही व्यवस्था है । अतः सर्व मिलाकर तीस सिंहासन होते हैं । (२४६)

द्विंशतस्तीर्थराजां तु युगपन्न जनिर्भवेत् ।

भरतैरवतविदेहेषु कालविपर्ययात् ॥२४७॥

युक्तैवोक्ता ततः प्राच्यैरर्हतां युगपज्जनिः ।

उत्कर्षाद्विंशतेरेव दशानां च जघन्यतः ॥२४८॥

भरतक्षेत्र ऐरवत क्षेत्र तथा महाविदेह क्षेत्र में काल के विपर्यय (उलट-पलट) होने के कारण एक साथ में तीस तीर्थकरों का जन्म नहीं होता है, इसलिए पूर्वाचार्यों ने इस तरह कहा है कि - उत्कृष्ट बीस तीर्थकर भगवान का और जघन्य रूप में दस भगवान का जन्म होता है । यह बात युक्ति पूर्ण ही कही है । (२४७-२४८)

भारतेष्वैरावतेषु कालस्य साम्यतो मिथः ।

हीनाधिकानां पूर्वोक्तसंख्यातो न जनिर्भवेत् ॥२४९॥

इसी ही तरह भरत और ऐरावत क्षेत्र में काल की परस्पर साम्यता होने के कारण पूर्वोक्त संख्या से कम, ज्यादा तीर्थकरों का जन्म नहीं होता है । (२४६)

पाण्डकाख्यवनस्यास्य मध्यभागे सुनिश्चिते ।

चकास्ति चूलिका मेरोर्वर्यवैडूर्यरत्नजा ॥२५०॥

विस्फुरत्पंडकवन शरावान्तः प्रतिष्ठितः ।

यवारकस्तंब इव भद्रकृज्जिनजन्मनि ॥२५१॥ युग्मं ॥

इस पांडक वन में सुनिश्चित मध्य भाग में उत्तम वैडूर्य रत्नों से बनी हुई मेरू पर्वत की चूलिका, मानो श्री जिनेश्वर भगवान के कल्याणकारी जन्म समय में प्रफुल्लित बनी पांडकवन रूपी कसोरे के अन्दर जुवारे का रोपण किया हो इस तरह शोभायमान लगता है । (२५०-२५१)

चत्वारिंशद्योजनानि तुंगत्वेन भवेदसौ ।

द्वादशैव योजनानि मूले विष्कम्भतो मता ॥२५२॥

मध्ये च योजनान्येष्टौ चत्वार्युपरि विस्तृता ।

उदस्तादुत्थगोपुच्छसुस्थसंस्थानशालिनी ॥२५३॥

इसकी चौड़ाई चालीस योजन की है, चौड़ाई मूल में बारह योजन की है, मध्य में आठ योजन की है, और ऊपर चार योजन का विस्तार है । इसका आकार गायके ऊंचे किए पुच्छ के समान होता है । (२५२-२५३)

सप्तत्रिंशद्योजनानि सातिरेकाणि किंचन ।

मूले ऽस्या परिधिमध्ये साधिका पंचविंशतिः ॥२५४॥

साधिकानि द्वादशैतत्परिक्षेप उपर्यथ ।

व्यासानुसारतो भाव्योऽन्यत्रापि परिधिः बुधैः ॥२५५॥ युग्मं ।

इसका घेराव मूल में सैंतीस योजन से कुछ अधिक है, मध्य विभाग में पच्चीस योजन से कुछ अधिक है, और ऊपर बारह योजन से कुछ अधिक है । इसका अन्यत्र घेराव कहा हो तो व्यास के अनुसार से गिनकर निकाल देना चाहिए । (२५४-२५५)

अथैतस्यां चूलिकायामुत्क्रान्ते योजनादिके ।

मूलात्तत्पंचमलवः क्षीयते मूलविस्तृतेः ॥२५६॥

इस चूलिका में प्रत्येक एक योजन ऊपर चढ़ते मूल के विस्तार का पांचवा भाग घटता है । (२५६)

मेरोर्यथैकादशभिः योजनं ह्रसेत् ।
क्षीयते योजनं तद्वत् पंचभिः योजनैरिह ॥२५७॥

जिस तरह मेरू पर्वत पर प्रत्येक ग्यारह योजन में मूल के विस्तार में एक योजन घटता जाता है, वैसे इस चूलिका में प्रत्येक पांच योजन में एक योजन की कमी होती जाती है । (२५७)

उत्क्रान्तायां मूलभागाद्यथा योजनविंशती ।
विंशतेः पंचमो भागः स्याच्चतुर्योजनात्मकः ॥२५८॥
तस्मिश्च मूल विष्कम्भादपनीते भवेदिह ।
विष्कम्भो योजनान्यष्टावित्थं सर्वत्र भावना ॥२५९॥ युगम् ।

उदाहरण तौर पर मूल से बीस योजन ऊपर चढ़ने में वहां बीस का पांचवां भाग जो चार है, उतने योजन कम होते हैं । अतः मूल के बारह योजन के विस्तार में से चार योजन आता है, तो वहां आठ योजन का विस्तार रहता है । इसी तरह सर्वत्र गिनती कर लेना चाहिए । (२५८-२५९)

यद्वा स्रौतेरतिक्रान्तमधो यद्योजनादिकम् ।
बिभक्ते पंचभिस्तस्मिन् लब्धे चतुर्भिरन्विते ॥२६०॥

अथवा यदि ऊपर से नीचे उतरना हो तो, उस स्थल का विस्तार जानना हो तो, उतना नीचे उतरने के बाद उसके पांचवे भाग से जो संख्या आए, उसमें चार मिला देना चाहिए । (२६०)

जायतेऽभीप्सिते स्थाने विष्कम्भोऽत्र यथोर्ध्वतः ।
अपक्रान्तौ योजनानां विंशतेः स विभाव्यते ॥२६१॥
विंशतेः पंचभिर्भागे योजनानां चतुष्टयी ।
लब्ध्वा चतुर्भिर्युक्ताष्टौ योजनानीति भावना ॥२६२॥

जैसे कि - ऊंचे स्थान से बीस योजन नीचे उतरने के बाद वहां का विस्तार जानना हो तो, बीस के पांचवे भाग देने पर चार आता है, उसमें चार मिलाने पर आठ आता है । यह आठ योजन उस स्थान का विस्तार है या उसकी चौड़ाई होती है । इसी तरह उस स्थान पर गिनती कर देना चाहिए । (२६१-२६२)

असौ पद्मवेदिकया परीता काननेन च ।

सहकारलतेवोच्चैरालवालेन राजते ॥२६३॥

यह चूलिका पद्मवेदिका और वनखंड से घेराव वाली है, इसके लिए क्यारी से घेराव वाली आम्रलता के समान शोभायमान दिखती है । (२६३)

एतस्याच्च शिरोभागे कमनीय महीतले ।

प्राप्नुवन्ति परां प्रीतिं निर्जराः सुखनिर्भराः ॥२६४॥

इसकी मनोहर भूमि पर रहकर देवता सदैव सुख में निमग्न होकर उत्कृष्ट प्रीति-आनंद प्राप्त करते हैं । (२६४)

मध्येऽत्र सिद्धायतनं तदेकं क्रोशमायतम् ।

तथा क्रोशाद्धविस्तारं देशोनक्रोशमुन्नतम् ॥२६५॥

इसके मध्य भाग में सिद्ध मंदिर है, उसकी लम्बाई एक कोस है, चौड़ाई आधा कोस और ऊंचाई एक कोस से कुछ कम है । (२६५)

अष्टोत्तरशतं तत्र प्रतिमाः शाश्वताहंताम् ।

वैढाढयचैत्यवत्सर्वं वक्तव्यमिह वर्णनम् ॥२६६॥

इस सिद्ध मंदिर में शाश्वत तीर्थंकर भगवन्त की एक सौ आठ प्रतिमाएं हैं। इसका वर्णन वैताढय पर्वत के चैत्य अनुसार जानना । (२६६)

अनेके सुरगन्धर्वाः तत्र गायन्ति लीलया ।

शृण्वन्ति श्रोत्रसुभगं जिन गीतं सुरेश्वराः ॥२६७॥

वहां अनेक गन्धर्व श्री जिनेश्वर भगवन्त के कर्णप्रिय गुणगान करते हैं, और उसे सुरेन्द्र श्रवण करते हैं । (२६७)

जिनाग्रे तत्र नृत्यन्त्यः कुर्वन्ति त्रिदशांगनाः ।

मेरुमौलिस्थमरुतां वंशारूढनटीभ्रमम् ॥२६८॥

वहां देवांगनाए श्री जिनेश्वर भगवान के आगे नृत्य करती हैं, उस मेरु पर्वत के शिखर पर रहे देव समुदाय को, वांसं पर नृत्य करती कोई नटनियां हो, इस तरह भ्रम उत्पन्न करती हैं । (२६८)

किंचायं मन्दरो मेरुः सुदर्शनः स्वयंप्रभः ।

मनोरमो गिरिराजो रत्नोच्चय शिलोच्चयौ ॥२६९॥

लोकमध्यो लोकनाभिः सूर्यावर्तोऽस्तसंज्ञितः ।

दिगादि सूर्यावरणावतंसकनगोत्तमाः ॥२७०॥

एभिः षोडशभिः ख्यातो नामभिः भूधरो भूवि ।

स्मृशन्नभ्रमदधांशुः कलाभिरिव चन्द्रमाः ॥२७१॥ विशेषकं ॥

यह मेरू पर्वत मंदर, मेरू, सुदर्शन, स्वयंप्रभ, मनोरम, गिरिराज, रत्नोच्चय, शिलोच्चय, लोकमध्य, लोकनाभि, सूर्यावर्त, अस्त दिगादि, सूर्यावरण, अवतंसक और नगोत्तम ऐसे सोलह नाम से प्रसिद्ध है। मानो सोलह कला वाला निर्मल चन्द्र आकाश को स्पर्श करके रहे हो ऐसे दिखता है। (२६६-२७१)

तत्रापि मन्दर इति मुख्यं नामैषु नामसु ।

मन्दराख्यः सुरोद्गात्र स्वामी पत्न्योपमस्थितिः ॥२७२॥

महर्द्धिको निवसति ख्यातं तद्योगतो ह्यदः ।

यद्वेदं शाश्वतं नाम भरतैरवतादिवत् ॥२६३॥ युग्मं ॥

इनके सोलह नामों में भी मुख्य तो 'मन्दर' नाम है। इस पर्वत का स्वामी पत्न्योपम के आयुष्य वाला एक मंदर नाम का देव है। इसके नाम पर से यह नाम पड़ा हो ऐसा कहलाता है। अथवा तो भरत ऐरावत आदि के समान इसका नाम शाश्वत ही समझना। (२७२-२७३)

एवं महाविदेहानां स्वरूपं लेशतो मया ।

कीर्तितं कीर्तिविजय गुरुक्रमकजालिना ॥२७४॥

इस तरह कीर्तिमान श्री कीर्ति विजय जी गुरु महाराज के चरण रूपी कमल आगे भ्रमण करते, भ्रमर समान मेरे जैसे ने महाविदेह क्षेत्र के अल्पमात्र स्वरूप का वर्णन किया है। (२७४)

सततममहतमोक्षं न्यलक्ष्मीनिधानम् जयतिजगतिवर्षं श्रीविदेहाभिधानम् ।

अविरहितमनेकैर्देवदेवैर्नदेवैः अतिबल बलदेवैः वासुदेवैः सदैव ॥२७५॥

अखंड मोक्ष लक्ष्मी के निधान स्वरूप तथा अनेक इन्द्र महाराजा, राजा (चक्रवर्ती) बलदेव और वासुदेवों का निरन्तर सहयोग वाला, यह विदेह क्षेत्र दिन प्रतिदिन विजयी बनता है। (२७५)

तत्र तीर्थकर चक्रवर्ती नाम् वासदेव बलदेवयोरपि ।

स्याञ्जघन्य पदतश्चतुष्टयम् ब्रूमहेऽथ परम प्रकर्षतः ॥२७६॥

इस महाविदेह क्षेत्र के अन्दर तीर्थकर भगवन्त, चक्रवर्ती, वासुदेव और बलदेव जघन्य से चार होते हैं । अब उत्कृष्ट से कहते हैं :- (२७६)

द्वात्रिंशत्तीर्थनाथाः प्रतिविजयभिहैकैकभावेन बोध्याः ।

अष्टादश्या विंशतिः स्यात् प्रबलहल भृतां शार्ङ्गिणां चक्रिणा च ॥

व्यत्यासोऽन्योऽन्यमेषामकथि गणधरेन्द्रैः प्रकर्षाप्रकर्षे ॥२७७॥

और उत्कृष्ट से प्रत्येक विजय में एक-एक तीर्थकर कुल बत्तीस तीर्थकर भगवन्त होते हैं । तथा अठाईस बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती होते हैं, यहां गणधर भगवन्त ने उत्कृष्ट से और जघन्य से परस्पर फेर-फार कहा है उसका कारण यह है कि चक्रवर्ती के साथ में एक ही स्थान पर बलदेव था । वासुदेव की उत्पत्ति नहीं होती । (२७७)

कहने का भावार्थ यह है जब २८ विजय में २८ चक्रवर्ती होते हैं, उस समय शेष चार विजय में वासुदेव बलदेव होते हैं । और जब २८ विजय में वासुदेव-बलदेव होते हैं, उस समय में शेष चार विजय में ४ चक्रवर्ती होते हैं ।

विश्वाश्चर्यद कीर्ति कीर्ति विजय श्री वाचकेन्द्रान्तिष

द्राज श्री तनयोऽतनिष्ट विनयः श्री तेजपालात्मजः ।

काव्यं यत्किल तत्र निश्चितजगत्तत्त्व प्रदीपोपमे ।

सर्गो निर्गलि तार्थ सार्थ सुभगः पूर्णोऽयमष्टादशः ॥२७८॥

॥ इति अष्टादशः सर्गः ॥

सारे विश्व को आश्चर्यजनक करने वाले कीर्तिमान श्री कीर्तिविजय वाचकेन्द्र के अन्तेवासी तथा माता राज श्री और पिता तेजपाल के पुत्र विनय विजय जी ने जगत के निश्चित तत्त्वों को प्रकाशित करने में दीपक समान जो यह काव्य ग्रन्थ रचा है, उसका निर्मल अर्थों के समूह से सुभग यह अठारहवां सर्ग विघ्नरहित सम्पूर्ण हुआ है । (२७८)

—अठारहवां सर्ग समाप्त—

उन्नीसवां सर्ग

अथो महाविदेहानामुदक्सीणाविधायकः ।

भूधरो नीलवान्नाम स्याद्वैदूर्य मणीमयः ॥१॥

इसके बाद महाविदेह क्षेत्र के उत्तर दिशा के सीमा पर नीलवान नाम का पर्वत आया है । वह वैदूर्य मणीमय है, उसका वर्णन किया जाता है । (१)

स्वामिनो नीलवान्नाम्नो योगात् पल्योपम स्थितेः ।

नीलवनित्यसौ ख्यातो यद्वेदं नाम शाश्वतम् ॥२॥

इसका एक पल्योपम के आयुष्य वाला नीलवान नाम का देव स्वामी है । इस कारण से पर्वत का नाम नीलवान कहलाता है । अथवा तो इसका नाम ही शाश्वत कहलाता है । (२)

जम्बूद्वीपेऽन्यत्र चास्य मेरोरुत्तरतः पुरी ।

वक्ष्यमाण सुराणामप्येवं पुर्यायुरादिकम् ॥३॥

इस नीलवान देव की राजधानी दूसरे जम्बूद्वीप में मेरू पर्वत से उत्तर दिशा में है । अब जिसका आगे वर्णन करने में आयेगा, उन देवों की राजधानी तथा आयुष्य आदि के विषय में इस तरह ही समझ देना । (३)

दक्षिणोत्तर विस्तीर्णः स पूर्व पश्चिमा यतः ।

सर्वमस्य निषधवत् ज्ञेयं धनुः शरादिकम् ॥४॥

किन्तु जीवा दक्षिणस्यामुत्तरस्यां शरासनम् ।

दक्षिणाभिमुखो बाण एवमग्रेऽपि भाव्यातम् ॥५॥

यह नीलवान पर्वत उत्तर दक्षिण में चौड़ा है । तथा पूर्व पश्चिम में लम्बा है । इसका धनुःपृष्ठ और शर आदि सब निषधपर्वत के समान है, परन्तु इसकी 'जीवा' दक्षिणोन्मुखी है, इसका 'धनुःपृष्ठ' उत्तर दिशा में है और इसका 'शर' दक्षिणाभिमुख है । आगे भी इसी तरह समझ लेना । (४-५)

दीप प्रभैरयं कूटैर्नवभिः शोभितोऽभितः ।

ब्रह्मव्रतश्रुतस्कन्ध इव गुप्ति निरूपणैः ॥६॥

जिस तरह ब्रह्मचर्यव्रत (आचारांग सूत्र) श्रुत स्कंध में नौ गुप्तिका निरूपण करने वाला नौ अध्ययन से शोभायमान है, वैसे ही यह पर्वत भी देदीप्यमान नौ शिखर से चारो तरफ शोभायमान है । (६)

तत्र सिद्धायतनाख्यं समुद्रा सन्नमादिमम् ।
 द्वितीयं नीलवत्कूटं नीलवत्पर्वतेशितुः ॥७॥
 ततः पूर्वं विदेहशसुपवैश्चर्यशालितम् ।
 कूटं पूर्वं विदेहाख्यं तृतीयं परिकीर्तितम् ॥८॥
 शीताकूटं तुरीयं च शीतानदी सूरीश्रितम् ।
 नारीकान्तं पंचमं तन्नारीकान्तासूरीश्रितम् ॥९॥
 केसरिहृदवासिन्याः कीर्तिदेव्या निकेतनम् ।
 षष्ठं स्पष्टं जिनप्रष्टैः कीर्तिकूटं प्रकीर्तितम् ॥१०॥
 तथाऽपरविदेहाख्यं कूटं सप्तममीरितम् ।
 सदाऽपरविदेहेशनिर्जरस्थानमुत्तमम् ॥११॥
 रम्यकक्षेत्रनाथेन रम्यकाख्यसुधाभुजा ।
 अधिष्ठितं यच्छिष्टेष्टैस्तन्निष्ठं कितमष्टमम् ॥१२॥
 तथा चानवमज्ञानैः कूटं नवममीरितम् ।
 उपदर्शनं संज्ञं तदुपदर्शनदैवतम् ॥१३॥
 एषामाद्ये जिनगृहं शेषेषु पुनरष्टसु ।
 तत्तत्कूटसमाख्यानां प्रासादः कूटं नाकिनाम् ॥१४॥

इन नौ शिखर में प्रथम समुद्र के नजदीक आया है, उसका नाम सिद्धायतन है । दूसरे पर्वत के नीलवान नाम के स्वामी का नीलवान नाम का शिखर है। तीसरा पूर्व विदेह के स्वामी का ऋद्धि से समृद्धशाली पूर्व विदेह नाम का शिखर है। चौथा शीता नदी की अधिष्ठात्री देवी का आश्रय वाला 'शीतकूट' नाम से है। पांचवा नारी कांता देव से अधिष्ठित बना नारी कांत नाम का शिखर है । छठा केसरी सरोवर निवासी कीर्तिदेवी का आश्रय रूप 'कीर्तिकूट' नाम का है । सातवां अपर विदेह के स्वामी का निरन्तर आश्रय रूप 'अपरविदेह' नाम का शिखर है, आठवां रम्यकक्षेत्र के रम्यकनाम के स्वामी से अधिष्ठित रम्यकनाम का शिखर है । अन्तिम नौवा उपदर्शन देव के स्थान रूप 'उपदर्शन' नाम का शिखर है । इन नौ में से प्रथम शिखर पर श्री जिनेश्वर भगवान का मंदिर है, शेष आठ शिखरों पर उस उस शिखर के नाम वाले देवताओं के प्रासाद (महल) है । (७-१४)

उक्तवक्ष्यमाणकूट प्रासाद चैत्यगोचरम् ।

स्वरूपं हिमवत्कूट प्रासाद जिनसद्यवत् ॥१५॥

यह कहा है, और अब कहा जायेगा, ये प्रासाद और चैत्यो का समस्त स्वरूप हिमवत पर्वत के प्रासाद तथा जिन चैत्य के अनुसार है । (१५)

अस्योपरि महानेकश्चकास्ति केसरिहृदः ।

निषधो परिभागस्थातिगिच्छरिवसोदरः ॥१६॥

इस पर्वत पर एक महान तथा सुन्दर केसरी सरोवर नाम का सरोवर है । जो निषध पर्वत के तिगिच्छि सरोवर के समान ही है । (१६)

अत्यन्त सुन्दराकारकेसरा लीपरिष्कृतैः ।

शोभते शत पत्राद्यैः ख्यातोऽयं केसरी ततः ॥१७॥

अतीव सुन्दर आकृति के केसर वाले संख्या बद्ध शतपत्र-कमल इसके अन्दर होने के कारण, यह केसरी सरोवर नाम से पहिचाना जाता है । (१७)

द्वे निम्नगे हृदादस्मान्निर्गते कन्यके इव ।

शीता च नारीकान्ता च दक्षिणोत्तरगे क्रमात् ॥१८॥

इस सरोवर में से कन्या सदृश, शीता और नारीकान्ता नाम की नदियां निकलती हैं । इसमें शीता दक्षिण की ओर बहती है और नारीकान्ता उत्तर दिशा में बहती है । (१८)

दाक्षिणात्यतोरणेन निर्गत्य दक्षिणामुखी ।

शीतापूर्वं विदेहान्तर्गतवैति प्राक्पयोनिधिम् ॥१९॥

शीता नदी यह हृद के दक्षिण दिशा के तोरण से निकल कर दक्षिण की ओर बहती हुई, पूर्व विदेह के अन्दर से होती हुई, पूर्व समुद्र में मिलती है ।

विशेषतोऽस्याः स्वरूपं च प्रागुक्तमेव ॥

इस 'शीता' का विशेष समस्त स्वरूप पहले कह गये हैं ।

उत्तराहतोरणेन विनिर्गत्योत्तरामुखी ।

नारीकान्ता स्वप्रपातकुंडे निपत्य निर्गता ॥२०॥

दक्षिणाद्धर्म्यकस्य विदधाना द्विधाखलु ।

असंप्राप्ता योजनेन माल्यवन्तं नगं ततः ॥२१॥

रम्यकस्यापरभागं द्विधा कृत्वाऽपराम्बुधो ।

षट् पंचाशच्छैबलिनीसहस्रैर्याति संश्रिता ॥२२॥ विशेषकं ॥

दूसरी नारीकांत नदी है, वह उसी सरोवर के उत्तर दिशा के तोरण में से निकल कर उत्तर तरफ बहती हुई, अपने ही नारीकांत प्रपात कुंड में गिरकर, वहां से बाहर निकलकर दक्षिणार्ध रम्यक क्षेत्र को दो विभाग में बांटती (विभाजन करती) माल्यवंत पर्वत के एक योजन दूर उत्तरार्ध रम्यक् क्षेत्र को भी दो विभाग करती, अपने में छप्पन हजार नदियों को मिलाती हुई, पश्चिम समुद्र में मिलती है । (२०-२२)

अस्या वाद्धिप्रवेशान्तं स्वरूपमाहदोदगमात् ।

विज्ञेयं हरिसलिलानद्या इवाविशेषितम् ॥२३॥

सरोवर में से निकलकर समुद्र में मिलने तक, इस नदी का समस्त स्वरूप हरिसलिला नदी अनुसार समझ लेना (२३)

हृदेऽस्मिन् मूलकमलं चतुर्योजनसंमितम् ।

तदर्धार्धप्रमाणानि पद्यानां वलयानि षट् ॥२४॥

इस सरोवर में मुख्य कमल चार योजन का है - इसके आस-पास दूसरे छः वलय है । इन वलयों के कमलों का माप एक के बाद एक का आधा-आधा होता है । (२४)

पत्योपमस्थितिस्तत्र कीर्तिता कीर्तिदेवता ।

भवनादिस्थितिस्त्वस्याः श्री देव्या इव भाव्यताम् ॥२५॥

इति नीलवान् पर्वतः ॥

मुख्य कमल में पत्योपम के आयुष्यवाली कीर्ति देवी का स्थान है । इस कीर्ति देवी का भवन आदि सारा श्री देवी के समान जानना । (२५)

इस तरह नीलवान पर्वत का स्वरूप कहा है ।

उत्तरस्यां नीलवतो दक्षिणस्यां च रुक्मिणः ।

राजते रम्यकक्षेत्रं रम्यकामरभर्तुकम् ॥२६॥

इस नीलवान पर्वत के उत्तर में और रुक्मि पर्वत के दक्षिण में, रम्यक नामक देव का रम्यक् नाम का क्षेत्र है । (२६)

स्वर्ण माणिक्यखचितैः भूप्रदेशैः मनोरमैः ।

नाना कल्पद्रुमैः रम्यतयेदं रम्यकाभिधम् ॥२७॥

सुवर्णमय और माणिक्यप्रदेश, और विविध जाति के कल्प वृक्षों के कारण से यह क्षेत्र अत्यन्त रम्य अर्थात् रमणीय लगता है । इस कारण इस क्षेत्र का नाम 'रम्यक्' पड़ा है । (२७)

परमायामरूपाऽस्य प्रत्यंचा हरिवर्षवत् ।

किन्त्वत्र सा दक्षिणस्यामुत्तरस्यां शरासनम् ॥२८॥

इसकी उत्कृष्ट लम्बाई रूपी जीवा हरिवर्ष क्षेत्र के अनुसार है । परन्तु वह दक्षिण में है और इससे 'धनुःपृष्ठ' उत्तर में है । (२८)

इषुबाहाक्षेत्रफलाद्यपीह हरिवर्षवत् ।

क्षेत्रानुभावकालादिस्वरूपं तद्वदेव च ॥२९॥

इसका शर, बाहा क्षेत्रफल इत्यादि तथा इसका क्षेत्र प्रभाव काल आदि सर्व स्वरूप हरिवर्ष क्षेत्र के अनुसार ही है । (२९)

क्षेत्रस्यास्य मध्यभागे विभाजकोऽर्धयोः द्वयोः ।

माल्यवानिति विख्यातो वृत्तवैताढयपर्वतः ॥३०॥

इस क्षेत्र में, क्षेत्र को दो विभाग में बांटने वाला, माल्यवान नाम का गोलाकार वैताढय पर्वत है । (३०)

माल्यवत्सदृशाकारैः तद्वदेवांरूपाप्रभैः ।

सदा राजन्नुत्पलाद्यैः माल्यवानिति कीर्त्यते ॥३१॥

इसमें माल्यवान के आकार के और इसके समान रक्त प्रभा वाले अतीव सुशोभित कमल आदि होने से यह 'माल्यवान' नाम से प्रसिद्ध है । (३१)

"जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे तु माल्यवत् पर्याय इति नामे दृश्यते ॥"

'जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र' में तो इसका 'माल्यवत् पर्याय' नाम कहा है ।

प्रभासाख्यसुरस्तत्र स्वामी पत्योपम स्थितिः ।

मेरुरूत्तरतस्तस्य पुरी नीलवदादि वत् ॥३२॥

इस पर्वत का स्वामी 'प्रभास' नाम का देव है, उसकी एक पत्योपम की आयुष्य है । इसकी राजधानी नीलवान् आदि पर्वतों के समान दूसरे जम्बूद्वीप के मेरू पर्वत की उत्तर दिशा में है । (३२)

हरिवर्षस्थाधिगन्धापाति वैताढय शैलवत् ।

ज्ञेयमस्यापि सकलं स्वरूपम विशेषितम् ॥३३॥

इसका भी सारा स्वरूप हरिवर्ष क्षेत्र के गंधापति वैताढ्य पर्वत के अनुसार हैं । इसमें कोई विशेषता नहीं है । (३३)

उदकरम्यकवर्ष त्र्यापाग् हैरण्यवतंस्य च ।

रुक्मी नाम्ना वर्षधरः प्रज्ञप्तः परमर्षिभिः ॥३४॥

रम्यक क्षेत्र से उत्तर दिशा में और हैरण्य वंत क्षेत्र से दक्षिण में रुक्मि नाम का वर्षधर पर्वत आया है । (३४)

स पूर्वं पश्चिमायाप्रो दाक्षिणोत्तर विस्तृतः ।

महाहिमवतो बन्धुरिवात्यन्त समाकृतिः ॥३५॥

यह पर्वत पूर्व पश्चिम में लम्बा है और उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । महाहिम वंत पर्वत के बन्धु समान सम्पूर्ण रूप में एक समान आकृति वाला है । (३५)

रुक्मं रूप्यं तदस्यास्तीत्यन्वर्थ कलिताभिधः ।

सर्वात्मना रूप्यमयो रुक्मिनामसुराश्रितः ॥३६॥

रुक्म अर्थात् चान्दी । यह पर्वत रूप्यमय होने से, इसका नाम रुक्मि सार्थक पड़ा है । इसका अधिष्ठात्रा देव भी रुक्मि नाम का है । (३६)

"इदं जम्बू द्वीप प्रज्ञप्तौ ॥ क्षेत्र समास वृत्तौ तु रुक्मं श्वेत हेम तन्मय अयमुक्त इति ज्ञेयम् ॥"

'रुक्मि का यह अर्थ जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की टीका में है, जबकि क्षेत्र समास की टीका में रुक्म अर्थात् श्वेत सुवर्ण, और रुक्मि अर्थात् श्वेतसु वर्णमय अथ किया है ।'

विशिष्टैरष्टभिः कूटैः सोऽतितुंगैरलंकृतः ।

दिग्ङ्गनानामष्टानां क्रीडा पर्वतकैरिव ॥३७॥

इस रुक्मी पर्वत के आठ दिक्कुमारियों के क्रीडा पर्वत समान, आठ सुन्दर ऊंचे शिखर हैं । (३७)

आद्यं पूर्वाण्णवासन्नं सिद्धायतन संज्ञितम् ।

रुक्मि देवाधिष्ठितं च रुक्मिसंज्ञं द्वितीयकम् ॥३८॥

रम्यकाधीश्वर स्थानं तृतीयं रम्यकाभिधम् ।

तुर्यं नरकान्ता देव्या नरकान्ताभिधं च तत् ॥३९॥

तथा महापुंडरीक हृदेशायाः शुभास्यदम् ।

बुद्धि देव्या पंचमं परिकीर्तितम् ॥४०॥

रूप्यकूला नदी देव्याः षष्टं कूट तदाख्यया ।

सप्तमं हैरण्यवतं हैरण्यवतं दैवतम् ॥४१॥

प्रथम पूर्व समुद्र के नजदीक में सिद्धायतन नाम का शिखर है, दूसरा रूक्मी देव के आश्रय रूप रूक्मी नाम का शिखर है, तीसरा रम्यक् क्षेत्र के स्वामी के आश्रय रूप रम्यक् नाम का शिखर है । चौथा नरकांता देवी के स्थान रूप नरकांता नाम का है, पांचवा महापुंडरीक सरोवर के स्वामी की बुद्धि देवी का आश्रय रूप 'बुद्धि कूट' नाम का शिखर है । छठा रूप्य कूला नदी देवी से अधिष्ठित, 'रूप्य' नाम का शिखर है । सातवा हैरण्यवतं देव का निवास स्थान रूप हैरण्यवतं का शिखर है । (३८ से ४१)

मणिकांचन देवाढ्यं मणिकांचनमष्टमम् ।

आद्ये जिनालयोऽन्येषु प्रासादाः स्वामिनाकिनाम् ॥४२॥

और आठवां मणिकांचन देव की स्वामीत्व का मणिकांचन नाम का शिखर है, इसमें सिद्धायतन शिखर पर श्री जिनेश्वर भगवान का चैत्य है और शेष सात पर उनके स्वामी रूप देवों के प्रासाद है । (४२)

मानं स्वरूपं कूटानां चैत्य निर्जरसन्ननाम् ।

हिमवद् गिरिवत् सर्वं तथैवास्य गिरेरपि ॥४३॥

इस पर्वत का तथा इसके शिखरों का माप, स्वरूप तथा इसके ऊपर आए चैत्य, देव, प्रासाद आदि सर्व स्वरूप हिमवत पर्वत के अनुसार है । (४३)

द्वदो महापुंडरीको महापद्म हृदोपमः ।

विभाति सलिलैः स्वच्छैः निर्जयन् मानसं सरः ॥४४॥

इस पर्वत के ऊपर महापद्म सरोवर के समान महा पुंडरीक नाम का सरोवर है । मानस सरोवर के जल से भी बढ़ जाय, ऐसा इसका स्वच्छ, निर्मल जल है ।

(४४)

अस्मिंश्च मूलकमलं योजनद्वय संमितम् ।

तदर्धार्धं प्रमाणानि शेषाब्जवलयानि षट् ॥४५॥

इस सरोवर का मुख्य कमल दो योजन का है, इसके पश्चात् आस-पास छः वलय है, जो प्रत्येक कमल का एक के बाद एक वलय के आधे-आधे अनुसार है।

अत्राधिष्ठायिका बुद्धैः बोधिता बुद्धिदेवता ।

भवनादि समृद्धया सा श्रीदेवतानुकारिणी ॥४६॥

इस कमल की अधिष्ठात्री 'बुद्धि' नाम की देवी है इसका भवन आदि समृद्धि लक्ष्मी देवी के अनुसार है । (४६)

हृदादस्मादापगे द्वे दक्षिणोदगमुखे क्रमात् ।

विनिर्गते श्रमश्रुलेखे इवोत्तरोष्ठ मध्यतः ॥४७॥

इस सरोवर में से मानो ऊपर के होठ के मध्यभाग से दोनों भाग में मूछ निकलती हो, इस तरह दक्षिण और उत्तर दिशा में बहती हुई नदियां निकलती हैं ।

दाक्षिणात्यतोरणेन निःसृत्य दाक्षिणामुखी ।

नरकान्ता स्वके कुण्डे स्नात्वेव निर्गता ॥४८॥

रम्यकोदीच्यभागस्य द्वैधीकारभयादिव ।

अर्वाक् स्थिता योजनेन माल्यवद्धरणीधरात् ॥४९॥

ततो बलित्वा भिन्दाना पूर्वाद्धे रम्यकस्य सा ।

पूर्वाम्भोधौ याति नदीषट्पंचाशत्सहस्रयुक् ॥५१॥ विशेषकं ॥

इन दो में से एक नरकांता नाम की नदी है, वह इस सरोवर के दक्षिण दिशा के तोरण में से निकलकर दक्षिण तरफ बहती हुई, मानो अपने कुंड में स्नान करके, वहां से बाहर निकलकर रम्यक् क्षेत्र के उत्तरार्द्ध के दो टुकड़े हो जाने के भय से मानो माल्यवान पर्वत से एक योजन दूर से ही मुड़कर, इसी रम्यक् के पूर्वार्ध को दो विभाग में विभाजन करती, मार्ग में छप्पन हजार नदियों को साथ में मिलती हुई पूर्वसमुद्र में जाकर मिलती है । (४८-५०)

औत्तराहतोरणेन विनिर्गत्योत्तरामुखी ।

रूप्यकूला स्वप्रपातकुंडे निपत्य निर्गता ॥५१॥

दक्षिणार्धच हैरण्यवतस्य कुर्वती द्विधा ।

क्रोशद्वयेना संप्राप्ता विकटापातिनं गिरिम् ॥५२॥

ततो निवृत्य हैरण्यवंतस्य कुर्वती द्विधा ।

अष्टाविंशत्या सहस्रैः सरिद्भिराश्रिता पथि ॥५३॥

तादृक् क्षेत्र विभेदोत्थ पातकानुशयादिव ।

पपात पश्चिमाभ्यधौ तद्दुष्कृत जिधांसया ॥५४॥

इति रूक्मि पर्वत ॥

दूसरी 'रूप्यकला' नाम की नदी है, वह इसी ही सरोवर के उत्तर दिशा के तोरण में से निकल कर, उत्तर दिशा के मार्ग में जाकर, अपने प्रपात कुंड में गिरती है, वहां से बाहर निकलकर, हैरण्यवंत क्षेत्र के दक्षिण दिशा के अर्ध भाग के दो विभाग करती हुई विकटापति पर्वत से दो कोस दूर रहकर इसी हैरण्यवंत के उत्तर तरफ के अर्धभाग को भी दो विभाग में विभाजन करती हुई रास्ते में अट्टाईस हजार नदियों को साथ में मिलाती हैरण्यवंत क्षेत्र के भेदन से लगे पाप-प्रायश्चित्त के लिए ही, पश्चिम समुद्र में जाकर गिरती है । (५१-५२) इस तरह रूक्मि पर्वत का वर्णन हुआ ।

क्षेत्रं च हैरण्यवतमुदीच्यां रूक्मिणो गिरेः ।

दक्षिणस्यां शिखरिणोद्वयोर्लीनमिवान्तरे ॥५५॥

अब हैरण्यवंत क्षेत्र का वर्णन करते हैं - यह क्षेत्र रूक्मि पर्वत के उत्तर में और शिखरि पर्वत की दक्षिण में आया है । मानो इन दोनों पर्वतों के बीच में छिप कर बैठा हो इस तरह दिखता है । (५५)

रूप्य हिरण्य शब्देन सुवर्णमपि वोच्यते ।

ततो हिरण्य वन्तौ द्वौ तन्मयत्वात् धराधरीः ॥५६॥

रूक्मी च शिखरी चापि तद्विरण्यवतोरिदम् ।

हैरण्यवंतमित्याहुः क्षेत्रमेतत् महाधियः ॥५७॥

हिरण्य-अर्थ चान्दी होती है और सुवर्ण भी होता है । इससे रूक्मि और शिखरी पर्वत जो दोनों अनुक्रम से चान्दीमय और सुवर्णमय है, इन दोनों का 'हिरण्यवत' नाम कहा जा सके इसलिए यह हिरण्यवंत पर्वत के सम्बन्ध वाला जो क्षेत्र है वह हैरण्यवंत क्षेत्र कहलाता है । (५६-५७)

प्रयच्छति हिरण्यं वा युग्मिनामासनादिषु ।

यत् सन्ति तत्र बहवः शिलापट्टा हिरण्यजाः ॥५८॥

अथवा तो वहां पर हिरण्य अर्थात् सुवर्ण की शिलापट्ट (तख्त) होने से वहां के युगलिकों को आसन आदि के लिए यह क्षेत्र दिया हो, इस कारण से यह इसका नाम पड़ा है । (५८)

प्रभूतं तन्नित्ययोगि वास्यास्तीति हिरण्यवत् ।

तदेव हैरण्यवतमित्याहुः मुनिसत्तमाः ॥५९॥

अथवा तो इनको नित्य उपयोगी बहुत अधिक वस्तुओं का हिरण्यवत् अर्थात् सुवर्ण वाली होने से मुनिवरों ने यह नाम रखा है । (५९)

हैरण्यवत नामा वा देवः पल्योपम स्थितिः ।

ऐश्वर्यं कलयत्यत्र तद्योगात् प्रथितं तथा ॥६०॥

अथवा तो वहां एक पल्योपम के आयुष्य वाला हैरण्यवंत देव प्रभुत्व भोगता है। इस कारण से यह नाम पड़ गया है । (६०)

क्षेत्रानुभावो मानं च नृत्तिरश्चामपि स्थितिः ।

निखिलं हैमवतद्वि ज्ञेयमिह धीधनैः ॥६१॥

इस क्षेत्र का प्रभाव, उसका प्रमाण तथा वहां के मनुष्य और तिर्यचों की स्थिति इत्यादि सब हैमवत क्षेत्र के समान जानना । (६१)

क्षेत्रस्यास्य मध्यभागे चतुरंशविभाजकः ।

वैताढयो विकटापाती रत्निकः पल्यसंस्थितः ॥६२॥

इस क्षेत्र के मध्यभाग में रत्नमय 'विकटापति' वैताढय पर्वत आया है। इसका आकार प्याले के समान है और इससे इस क्षेत्र के चार विभाग पड़े हैं । (६२)

पद्मोत्पलशतपत्रादीनि सन्त्यत्र संततम् ।

विकटापाति वर्णानि विकटापात्ययं ततः ॥६३॥

विकटापाति अर्थात् कभी उड़ न जाय इस तरह पक्के रंग वाले पद्म, उत्पल, तथा शतपत्र आदि वहां हमेशा प्राप्त होते हैं इसलिए विकटापति कहलाता है । (६३)

आस्ते देवोऽरूणाख्योऽत्र स्वामी पल्योपम स्थितिः ।

जम्बू द्वीपेऽन्यत्र नगर्युदीच्यामस्य मेरूतः ॥६४॥

यहां एक पल्योपम आयुष्य वाला, अरूण नाम का देव स्वामित्व भोगता है। इसकी राजधानी का नगर दूसरे जम्बू द्वीप में मेरु पर्वत के उत्तर में है । (६४)

शेषमस्य स्वरूपं तु गन्धापाति नगेन्द्रवत् ।

एवं चत्वारोऽपि वृत्त वैताढया रत्निकाः सभाः ॥६५॥

इसका शेष स्वरूप गन्धापाति वैताढय अनुसार है । और ये चारों वृत्त वैताढय एक समान रत्नमय हैं । (६५)

“एवं च क्षेत्र विचार सूत्र वृत्यभिप्रायेण हैमवते शब्दापाती हैरण्यवते विकटापाती हरिवर्षे गन्धापाती रम्यके माल्यवान् इति वृत्त वैताढयानां व्यवस्था ॥ जम्बू द्वीप वृत्यभिप्रायेण तु हैमवते शब्दापाती हरिवर्षे विकटापाती रम्यके गन्धापाती माल्यवान् इति व्यवस्थेति ॥ अत्र तत्त्वं सर्वविद्वेधम् ॥” इति हैरण्यवत क्षेत्रम् ॥

‘क्षेत्र विचार सूत्र की वृत्ति के अभिप्राय से इसी ही तरह व्यवस्था है अर्थात् हैमवंत क्षेत्र में ‘शब्दापाती’ नाम का वृत्त वैताढय पर्वत आया है, हैरण्यवंत में ‘विकटापाती’ नाम, हरिवर्ष क्षेत्र में ‘गन्धापाती’ नाम का और रम्यक में ‘माल्य’ नाम का कहा है । परन्तु जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में तो इस तरह कहा है कि - हैमवंत में ‘शब्दापाती’ आया है, हरिवर्ष में ‘विकटापाती’ रम्यक में गन्धापाती और हैरण्यवंत में माल्यवान पर्वत आया है । इस तरह दोनों में अन्तर आता है । सत्य क्या है वह केवली भगवन्त जाने ।’ इस तरह हैरण्यवंत क्षेत्र का स्वरूप कहा ।

उदीच्यां हैरण्यवतादपागैखतादपि ।

षष्ठो वर्षधरः ख्यातः शिखरी नाम पर्वतः ॥६६॥

अब शिखरी पर्वत का वर्णन करते हैं - हैरण्यवंत से उत्तर दिशा में और ऐरवत क्षेत्र से दक्षिण में छठा शिखरी नाम का वर्षधर पर्वत आया है । (६६)

ज्ञेयः शिखरि शब्देन वृक्षस्तदाकृतीनि च ।

भूयांसि रत्न कूटानि सन्त्यत्रेति शिखर्यसौ ॥६७॥

शिखरी शब्द अर्थ यहां वृक्ष लेना चाहिए, और इस आकार के यहां पुष्कल, (विशाल) रत्नमय शिखर है । इससे यह शिखरी पर्वत कहलाता है । (६७)

सन्त्येकादश कूटानि वक्ष्माणानि यानि तु ।

तेभ्योऽमृत्यति रिक्तानि कूटानीति विभाव्यताम् ॥६८॥

अन्यथा सर्व शैलानां यथोक्त कूटयोगतः ।

शिखरित्वव्यपदेशः सम्भवत् केन वार्यते ॥६९॥

जो ग्यारह शिखरों की बात अब आगे अभी कहेंगे, इससे यह अलग समझना चाहिए । क्योंकि ऐसे कूट-शिखर के कारण से पर्वत मात्र के शिखर नाम का संभव हो सकता है । अतः अब उन ग्यारह का वर्णन करते हैं । (६८-६९)

स चैकादशभिः कूटैः परितोऽलंकृतो गिरिः ।

प्रतिमाभिरिव श्राद्धधर्मः शर्मददर्शनः ॥७०॥

सुन्दर सम्यक्त्व वाले श्राद्ध (श्रावक) धर्म जैसे ग्यारह पडिमा (प्रतिमा) से शोभायमान होता है वैसे यह पर्वत चारों तरफ आगे ग्यारह शिखरों से शोभायमान हो रहा है । (७०)

आद्यं सिद्धायतनाख्यं पूर्ववारिधि सन्निधौ ।

द्वितीयं शिखरि स्वर्गिकूटं शिखरि संज्ञकम् ॥७१॥

तृतीयं हैरण्यवतकूटं तत्स्वामिदैवतम् ।

तूर्यं सुवर्णकूलाख्यं तन्नदीदेवतास्पदम् ॥७२॥

दिवकुमार्याः सुरादेव्याः पंचमं च तदाख्यया ।

षष्ठं रक्तावर्तनाख्यं लक्ष्मीकूटं च सप्तमम् ॥७३॥

रक्तवत्यावर्तनाख्यं प्रज्ञप्तं कूटमष्टमम् ।

इला देव्या दिक् कुमार्या नाम्ना च नवमं मतम् ॥७४॥

दशमं चैखताख्यमैरावत सुराश्रियम् ।

स्यात्तिगिंछहृद्देशायास्तिगिंछिकूटमन्तिमम् ॥७५॥

इन ग्यारह शिखरों में से प्रथम शिखर पूर्व महासागर के नजदीक में आया है उसका "सिद्धायतन" नाम है, दूसरा शिखरी देव का 'शिखरी' नाम है तीसरा हिरण्य क्षेत्र का स्वामी 'हैरण्यवत' नाम है । चौथा सुवर्ण कूलानदी की देवी का 'सुवर्णकुल' नाम है, पांचवा सुरादेवी नाम की दिक्कुमारी है उसी ही नाम का शिखर है, छठा 'रक्तवर्तन', सातवां 'लक्ष्मीकूट', आठवां 'रक्त वतया वर्त' है । नौवा इला देवी नामक दिक्कुमारी का उसी के नाम का शिखर है दसवां ऐरवत नाम के देव के आश्रयभूत ऐरवत नाम का शिखर है और अन्तिम ग्यारहवां तिगिंछ हृद् के स्वामीत्व का तिगिंछ कूट नाम का शिखर है । (७१-७५)

"इदं जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्राभि प्रायेण ॥ क्षेत्र समासे तु अत्र पंचमं श्री देवी कूटं नवमं गन्धापाती कूट मिति दृश्यते ॥"

'यह जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र के अनुसार कहा है । क्षेत्र समास में तो ऐसा उल्लेख मिलता है कि - पांचवा श्री देवी कूट और नौवा गंधापाति कूट है ।'

आद्ये चैत्यं शेषकूटदशके च सुधाभुजाम् ।

तत्तत्कूटसमाख्यानां स्युः प्रासादावतंसका ॥७६॥

प्रथम शिखर पर श्री जिनेश्वर भगवान का मन्दिर है, शेष दस शिखर पर उस शिखर के नाम वाले देवों का प्रासाद है । (७६)

पुण्डरीकहृदश्चात्र पद्महृदसहोदरः ।

अस्मिंश्च मूल कमलमेकयोजनसंमितम् ॥७७॥

तदर्धार्धं प्रमाणानि शेषाब्जबलर्यानि षट् ।

लक्ष्मी देवी वसत्यत्र स्थित्या श्रीदेवतेव सा ॥७८॥

इस पर्वत पर पद्म सरोवर के समान ही एक पुंडरीक नामक सरोवर है । उसमें एक मूल कमल है । वह एक योजन प्रमाण है दूसरे और चारों तरफ छः बलयों में जितने कमल हैं, वे उत्तरोत्तर एक के बाद एक, दूसरे बलय में आधे से आधे विस्तार वाले हैं । यहां श्री देवी के समान ही लक्ष्मी देवी का निवास स्थान है । (७७-७८)

हिमवद् गिरिवत् सर्वं मान मात्रापि चिन्त्यताम् ।

ज्यावाहां धनुरादीनां केवलं दिग्विपर्ययः ॥७९॥

इस पर्वत की जया, बाहा, धनु आदि सर्व का प्रमाण हिमवत पर्वत के अनुसार ही है, केवल दिशा का विपर्यय (उलटी) है । (७९)

नद्यस्तिस्त्रो हृदस्मात् निर्गताः त्रिभिरध्वभिः ।

नदी सुवर्णकूलाख्या रक्ता रक्तवतीति च ॥८०॥

जो पुंडरीक नाम का यहां सरोवर कहा है, उसमें से तीन रास्ते से तीन नदियां निकलती हैं । १- सुवर्णकूला, २- रक्ता और ३- रक्तवती (८०)

दक्षिणेनाध्वना तत्र निर्गत्य दक्षिणामुखी ।

सुवर्णकूला पतति कुण्डे स्वसम नामनि ॥८१॥

ततो निर्गत्य हैरण्यवतोत्तरार्धं भेदिनी ।

योजनार्धेन दूरस्था विकटापाति भूधरात् ॥८२॥

प्राक् परावर्त्य हैरण्यवत पूर्वार्धमादित् ।

सूत्रधारस्येव रज्जुः द्विधा विदधती क्रमात् ॥८३॥

अष्टाविंशत्या सहस्रैः नदीभिः परिपूरिता ।

गृहिणीब स्वाभिगेहे विशति प्राच्य वारिधौ ॥८४॥ त्रिभि विशेषकं ॥

सुवर्ण कूला नदी दक्षिण मार्ग से निकलती है और बहती हुई अपने नाम के ही कुंड में गिरती है । वहां से वापिस निकलकर हैरण्यवंत क्षेत्र के उत्तरार्द्ध को दो भाग में विभाजन करती, विकटापाति पर्वत से आधे योजन दूर से पूर्व दिशा में मुड़कर बढई की रस्सी के समान इसी हैरण्यवत के पूर्वार्द्ध को भी दो भाग में बंटवारा करती, मार्ग में क्रम से अपने में अट्ठाईस हजार नदियां मिलती, उसे साथ में लेती, पति के घर जाती एक स्त्री के समान पूर्व समुद्र में प्रवेश करती है ।

(८१-८४)

अस्मादेव हृदात् प्राच्यतोरणेन विनिर्गता ।

रक्तानदी पूर्वदिशि प्रवृत्ता पर्वतोपरि ॥८५॥

योजनानां पंचशतीमतिक्रम्य ततः परम् ।

रक्तावत्तत्र कूटस्याधस्तादुत्तरतो भवेत् ॥८६॥

त्रयोविंशां पंचशतीं योजनानां कलात्रयम् ।

सार्द्धं गत्वाधिकमुदक् शिखरिक्षमाधरो परि ॥८७॥

वज्रजिह्विकयोत्तीर्य कुंडे रक्ताप्रपातके ।

शतयोजनप्रपाता भुंजगीवाविशत् बिले ॥८८॥

उदीच्य तोरणेनास्माद्वि निर्गत्योत्तरा मुखी ।

नदी सप्तसहस्राढ्या वैताढयागिरिसीमया ॥८९॥

दर्याः खण्डप्रपातायाः प्राच्यां वैताढय भूधरम् ।

भित्वादीच्यैः सप्तनदी सहस्रैराश्रिता ध्वनि ॥९०॥

सहस्रैः सरितामेवं चतुर्दशभिराश्रिता ।

विभिद्य जगतीं पूर्वार्णवेऽसौ विशति द्रुतम् ॥९१॥

इसी सरोवर के पूर्व दिशा के तोरण में से रक्तनदी निकलती है, और पर्वत पर उसी दिशा में पांच सौ योजन जाने के बाद, रक्तावर्तन नामक शिखर के पास में जाकर उत्तर दिशा में बहती है । इस तरह पांच सौ तेईस योजन और साढ़े तीन कला उत्तर तरफ बहती है । एक नागिन जैसे अपने बिल में प्रवेश करती हों, वैसे ही एक

योजन की ऊंचाई से रक्ता प्रपात कुंड में गिरती है । वहां से वापिस उत्तर दिशा के तोरण में से निकल कर उत्तर दिशा में बहती हुई सात हजार नदियों के साथ में वैताढय पर्वत की सीमा में आती है । वहां खंड प्रपाता-गुफा की पूर्व में इसी पर्वत को भेदन कर मार्ग में दूसरी सात हजार नदियों को मिलाकर, कुल मिलाकर चौदह हजार नदियों के परिवार सहित जगती-कोट को भेदन कर पूर्व समुद्र में जाकर मिलती है । (८५-६१)

पश्चिमेन तोरणेन हृदादस्माद्विनिर्गता ।
 रक्तावती पश्चिमायां प्रवृत्ता पर्वतोपरि ॥६२॥
 अतिक्रम्य पंचशतीं निजावर्तन कूटतः ।
 पर्वतोपर्युत्तरस्यां व्यूढा तत्र व्यतीत्य च ॥६३॥
 त्रयोविंशतिं पंचशतीं साग्रं सार्धकलात्रयम् ।
 वज्रमय्या जिह्विकया योजनैकशतोन्नतात् ॥६४॥
 निपत्य पर्वतात् रक्तावती प्रपातकुण्डके ।
 रोषावेशात् भाभिनीय दत्तज्ञपा महावटे ॥६५॥
 उदीच्येनाध्वना तस्मादुदग्मुखी विनिर्गता ।
 आवैताढयान्तिकं सप्तनदी सहस्रंसेविता ॥६६॥
 कन्दरायाः तमस्त्रायाः पश्चिमायां धराधरम ।
 द्रुतं विभिद्य वैताढयमुत्तरार्धं समागता ॥६७॥
 उदीच्यैः सप्तभिः सिन्धुसहस्रैः सह गच्छति ।
 पश्चिमाब्धाविति नदीचतुर्दशसहस्रयुक् ॥६८॥

इति शिखरी पर्वतः ॥

तीसरी रक्तवती नामक नदी है, वह इसी सरोवर के पश्चिम तोरण में से निकलकर पश्चिम दिशा के पर्वत पर पांच सौ योजन जाने के बाद अपने आवर्तन कूट से उत्तर दिशा में मुड़कर पांच सौ तेईस योजन साढ़े तीन कला जाकर, एक सौ योजन ऊंचे पर्वत से किसी क्रोधाविष्ट, अभिमानी स्त्री बड़े कुए में गिरती है, वैसे वज्रमय जीव्हाकार में रक्तावती प्रपातकुंड में गिरती है । वहां से उत्तर मार्ग से निकल कर उत्तर दिशा की ओर बहती हुई वैताढय पर्वत की सीमा तक में सात हजार नदियों के परिवार सहित तमिस्रा गुफा से पश्चिम में वैताढय पर्वत को भेदन कर, उत्तरार्ध में आकर और उत्तर दिशा की सात हजार नदियों को मिलाने से कुल चौदह

हजार नदियों के परिवार सहित पश्चिम समुद्र में मिलती है । (६२-६८) इस तरह शिखरी पर्वत का वर्णन सम्पूर्ण हुआ ।

उत्तरस्यां शिखरिण उदीच्यलवणार्णवात् ।

दक्षिणस्यामैरवतक्षेत्रं भाति मनोहरम् ॥६६॥

शिखरी पर्वत के उत्तर में और उत्तर लवण समुद्र से दक्षिण दिशा में ऐरवत नाम का मनोहर क्षेत्र आया है । (६६)

ऐरावतः सुरो ह्यस्य स्वामी पत्न्योपमस्थितिः ।

वसत्यत्र ततः ख्यातमिदमैरवताख्यया ॥१००॥

एक पत्न्योपम के आयुष्य वाला ऐरवत देव, नामक स्वामी से अधिष्ठित होने से इस क्षेत्र का नाम ऐरवत पड़ा है । (१००)

भरतस्य प्रतिबिम्बमिवेदं संमुखेऽम्बुधौ ।

तत्रप्रमाणं तेन तुल्यं सदा तदनुवर्तते ॥१०१॥

सन्मुख में समुद्र रहने से मानो भरत क्षेत्र ही प्रतिबिम्बत बना हो, ऐसा यह क्षेत्र दिखता है, क्योंकि यह प्रमाण में इसके समान ही है, और हमेशा इसका ही अनुवर्तन करता है । (१०१)

भानुना भासिते तस्मिन्नेनेदमपि भासितम् ।

इन्दुना शोभते तत्रादोऽपि स्यात्तेन शोभितम् ॥१०२॥

तद्यदा षड्भिररकैः भिन्नां भिन्नां दशां श्रयेत् ।

तथेदमपि सन्मित्रमिव मित्रानुवृत्तिकृत् ॥१०३॥

जिने तत्र जिनोऽत्रापि चक्रयत्र तत्र चक्रिणि ।

वासुदेवादिषु सत्सु तत्रात्रापि भवन्ति ते ॥१०४॥

इदं दशाश्चर्ययुतं स्यात्तत्राश्चर्यशालिनि ।

हसतीव मित्रं मित्रं भरतं तुल्यचेष्टया ॥१०५॥

जब भरत क्षेत्र में सूर्य का उदय होता है, तब वहां भी उदय होता है । चन्द्र वहां उदय होता है, तब यहां पर भी उदय होता है । भरत क्षेत्र के जैसे अलग-अलग स्थिति वाले छः हजार आरे आते हैं, वैसे ही छः आरों में से यह क्षेत्र भी व्यतीत होता है । क्योंकि एक उत्तम मित्र हो, वह अपने मित्र के अनुसार चलता है । जब भरतक्षेत्र में जिनेश्वर, चक्रवर्ती और वासुदेव आदि होते हैं, तब इस क्षेत्र में भी होते हैं । वहां

वैताढ्यस्याप्यत्र तत उत्तरस्यां किलाल्पकः ।

आयामो दक्षिणस्यां च वर्द्धमानः क्रमात् महान् ॥११२॥

याम्यविद्याधरश्रेण्यां विद्याधरपुराण्यतः ।

षष्टिः भवन्त्युदीच्यायां श्रेण्यां पंचाशदेव च ॥११३॥

इससे इस क्षेत्र में वैताढ्य की भी लम्बाई, जो उत्तर दिशा में स्वल्प है, वह दक्षिण में क्रमशः बढ़ती जाती है । और इस तरह होने से दक्षिण तरफ की विद्याधरों की श्रेणि में साठ नगर हैं, जबकि उत्तर दिशा की श्रेणी में इनके पचास नगर हैं । (११२-११३)

शेषं सर्वमाभियोग्य श्रेणि वेदी वनादिकम् ।

ज्ञेयं भरत वैताढ्योपम मुक्तानुसारतः ॥११४॥

इसके शेष सब पदार्थ अर्थात् अभियोगिकों की श्रेणी, वेदी, वन आदि भरत क्षेत्र के जो वैताढ्य कहे गये हैं, उसी के अनुसार है । (११४)

कूटाभि नव चात्रापि तन्नामानि तथा क्रमात् ।

किन्तु नाम्नि विशेषोस्ति, द्वितीयस्याष्टमस्य च ॥११५॥

दक्षिणैरवताद्वाख्यं द्वैतीयीकं भवेदिह ।

उत्तरैरवताद्वाख्यं, भवेच्च कूटमष्टमम् ॥११६॥

इस वैताढ्य पर्वत पर भी नौकूट-शिखर है । दूसरे और आठवें कूट सिवाय उनके नाम पूर्व के समान है । दूसरे का नाम दक्षिणैरवतार्थ है और आठवें का नाम उत्तरैरवतार्थ है । (११५-११६)

रक्तारक्तावती स्रोतस्विनीभ्यां तस्थुषान्तरे ।

वैताढ्येन च षट्खंडमिदमैरावतं कृतम् ॥११७॥

रक्ता और रक्तावती नदियों से, तथा बीच में रहे वैताढ्य पर्वत के कारण इस ऐरवत क्षेत्र के छः विभाग होते हैं । (११७)

तथा च- उत्तरार्धं मध्यखंडे उदीच्यलवणोर्दधेः ।

दक्षिणस्यामुदीच्यां च वैताढ्याभिध भूधरात् ॥११८॥

चतुर्दशाधिकशतं योजनानां कलास्तथा ।

एका दशातिक्रम्याब्धि वैताढ्याभ्यामिहान्तरे ॥११९॥

वैताढयस्याप्यत्र तत उत्तरस्यां किलाल्पकः ।

आयामो दक्षिणस्यां च वर्द्धमानः क्रमात् महान् ॥११२॥

याम्यविद्याधरश्रेण्यां विद्याधरपुराण्यतः ।

षष्टिः भवन्त्युदीच्यायां श्रेण्यां पंचाशदेव च ॥११३॥

इससे इस क्षेत्र में वैताढय की भी लम्बाई, जो उत्तर दिशा में स्वल्प है, वह दक्षिण में क्रमशः बढ़ती जाती है । और इस तरह होने से दक्षिण तरफ की विद्याधरों की श्रेणि में साठ नगर हैं, जबकि उत्तर दिशा की श्रेणी में इनके पचास नगर हैं । (११२-११३)

शेषं सर्वमाभियोग्य श्रेणि वेदी वनादिकम् ।

ज्ञेयं भरत वैताढयोपम मुक्तानुसारतः ॥११४॥

इसके शेष सब पदार्थ अर्थात् अभियोगिकों की श्रेणी, वेदी, वन आदि भरत क्षेत्र के जो वैताढय कहे गये हैं, उसी के अनुसार है । (११४)

कूटामि नव चात्रापि तन्नामानि तथा क्रमात् ।

किन्तु नाम्नि विशेषोस्ति, द्वितीयस्याष्टमस्य च ॥११५॥

दक्षिणैरवतान्द्वांख्यं द्वैतीयिकं भवेदिह ।

उत्तरैरवतान्द्वांख्यं, भवेच्च कूटमष्टमम् ॥११६॥

इस वैताढय पर्वत पर भी नौकूट-शिखर है । दूसरे और आठवें कूट सिवाय उनके नाम पूर्व के समान है । दूसरे का नाम दक्षिणैरवतार्थ है और आठवें का नाम उत्तरैरवतार्थ है । (११५-११६)

रक्तारक्तावती स्रोतस्विनीभ्यां तस्थुषान्तरे ।

वैताढयेन च षट्खंडमिदमैरावतं कृतम् ॥११७॥

रक्ता और रक्तावती नदियों से, तथा बीच में रहे वैताढय पर्वत के कारण इस ऐरवत क्षेत्र के छः विभाग होते हैं । (११७)

तथा च- उत्तरार्धं मध्यखंडे उदीच्यलवणोर्दधेः ।

दक्षिणस्यामुदीच्यां च वैताढयाभिध भूधरात् ॥११८॥

चतुर्दशाधिकशतं योजनानां कलास्तथा ।

एका दशातिक्रम्याब्धि वैताढयाभ्यामिहान्तरे ॥११९॥

नगरी स्यादयोध्याख्या नव योजन विस्तृता ।

द्वादशयोजनायामालंकृतोत्तमपूरुषैः ॥१२०॥ विशेषकं ॥

इस छः खण्डों में से एक उत्तरार्द्ध मध्यखण्ड है, जो उत्तर लवण समुद्र के दक्षिण में है, और वैताढ्य पर्वत के उत्तर में एक सौ चौदह योजन और ग्यारह कला पार करने के बाद समुद्र और वैताढ्य के बीच में आया है । उसमें नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी उत्तम पुरुषों के निवास स्थान रूप अयोध्या नाम की नगरी है। (११८-१२०)

शेषाः पंचापि खंडाः स्युरनार्या धर्मवर्जिताः ।

अत्रापि चार्यदेशानामध्यर्द्धा पंचविंशतिः ॥१२१॥

एतेष्वैव हि देशेषु जिनचक्रयर्धचक्रीणां ।

स्यादुत्तमनृणां जन्म प्रायो धर्मव्यवस्थितिः ॥१२२॥

शेष पांच खंड हैं वे अनार्य हैं, वहां धर्म जैसा कुछ भी नहीं है । पर्वत उत्तरार्ध मध्य खंड में भी केवल साढ़े पच्चीस आर्य देश हैं, और इसमें ही श्री जिनेश्वर भगवंत, चक्रवर्ती तथा वासुदेव आदि उत्तम महापुरुष जन्म लेते हैं, और वही धर्म की व्यवस्था है । (१२१-१२२)

एवं च जम्बू द्वीपस्मिन् सप्तक्षेत्री विराजते ।

मध्ये महाविदेहाख्यमपागुदक् त्रयं त्रयमं ॥१२३॥

भरतैरावन्तेतत्र तुल्यरूपे निरूपिते ।

समस्वरूपे हैरण्यवते हैमवते अपि ॥१२४॥

रम्यकाख्य हरिवर्षे उभे तुलाधृते इव ।

पूर्वापर विदेहानामप्येवं तुल्यता मता ॥१२५॥

देवोत्तर कुरुणामप्येवं तुल्यत्वमाहितम् ।

बिना भरतैरवतविदेहान् अपराः पुनः ॥१२६॥

अकर्म भूमयः षट् स्युः कृष्यादिकर्म वर्जिताः ।

तिस्त्रो भरतैरवतविदेहाः कर्मभूमयः ॥१२७॥ युग्मं ।

इस प्रकार जम्बू द्वीप के अन्दर सात क्षेत्र हैं । मध्य विभाग में एक महाविदेह है, और उत्तर दक्षिण तीन-तीन हैं । इसमें भरत और ऐरवत दोनों एक सहाय हैं, तथा हैरण्यवंत और हैमवंत दोनों एक समान हैं, रम्यक तथा हरिवर्ष क्षेत्र, ये दोनों भी एक समान हैं । वैसे ही पूर्व महाविदेह और पश्चिम महाविदेह भी परस्पर समान

हैं। इसी तरह देवकुरु तथा उत्तर कुरु के बीच में भी समानता है। इन नौ में भरत, ऐरवत और विदेह क्षेत्र को छोड़कर छः अकर्म भूमि अर्थात् कृषि आदि कर्म रहित है। भरत ऐरवत और महाविदेह ही कर्मभूमि है। (१२३-१२७)

तथाचात्र वर्षधरपर्वताः षट् प्रकीर्तिता ।

विदेहेभ्यो दक्षिणस्यामुदीच्यां च त्रयं त्रयम् ॥१२८॥

तथा छः वर्षधर पर्वत कहे हैं, वे महाविदेह क्षेत्र से उत्तर दिशा में तीन और दक्षिण में भी तीन होते हैं। (१२८)

हिमवच्छिखरी चैकादशकूटो मिथः समौ ।

रुक्मिमहाहिमवंतावष्टकूटौ तथैव च ॥१२९॥

नीलवन्निषधौ तुल्यौ नवकूटौ परस्परम् ।

मेरूः निरूपमः सोऽपि नवकूटोपशोभितः ॥१३०॥

इन छः में हिमवान और शिखरी पर्वत के ग्यारह-ग्यारह शिखर हैं और ये दोनों एक समान है। वैसे ही रुक्मी और हिमवान् आठ-आठ शिखर वाले, एक जैसे ही हैं, इसी तरह से नीलवान् और निषधपर्वत के नौ-नौ शिखर हैं, दोनों के बीच में समानता है। मेरू पर्वत आठ्ठीतीय है, इसकी बराबरी कोई नहीं है। और इसके भी नौ सुशोभित शिखर हैं। (१३०)

भरतैरवत क्षेत्रद्वात्रिंशद्विजयोद् भवाः ।

वैताढयाः स्युः चतुस्त्रिंशत् प्रत्येकमेक भावतः ॥१३१॥

सर्वेऽप्येते रूप्यवर्णा नवकूटोपशोभिताः ।

दशोत्तरशतद्रंगाभिभोग्यालिद्वयान्विताः ॥१३२॥

भरत क्षेत्र में एक, ऐरवत क्षेत्र में एक और महाविदेह क्षेत्र के बत्तीस विजय में एक-एक, इस तरह सब मिलाकर चौतीस वैताढय पर्वत होते हैं। वे सब रूप्य वर्ण युक्त नौ-नौ शिखर से अलंकृत हैं, और उन प्रत्येक पर्वत में एक सौ दस नगर दो-दो श्रेणियों वाले हैं। (१३१-१३२)

चत्वारो वृत्तवैताढयाः समरूपाः परस्परम् ।

हरिवर्षहैमवत हैरण्यवतरम्यके ॥१३३॥

हरिवर्ष, हैमवत हैरण्यवत तथा रम्यक् इन चारों में एक-एक इस तरह कुल चार, एक समान वृत्त वैताढय पर्वत हैं। (१३३)

देवोत्तरकुरुस्थेषु हृदेषु दसु ध्रुवम् ।

प्राक् प्रत्यक् च दशदशकांचनाचलभावतः ॥१३४॥

द्वे शते कांचननगाः परस्परानुकारिणः ।

स्थिताभोक्तुं चतसृभिः पंक्तिभिः बान्धवा इव ॥१३५॥ युग्मं ॥

उत्तर कुरु और देवकुरु के दसों सरोवर के दो तरफ में, मानो चार श्रेणीबद्ध भोजन करने के लिए बैठे बन्धुजन हों, इस तरह दस-दस पूर्वा दिशा के और दस-दस पश्चिम दिशा के मिलाकर कुल दो सौ एक समान, कांचन पर्वत हैं ।
(१३४-१३५)

गजदन्तौ सौमनसगन्धमादन संज्ञितौ ।

रूप्यपीतरत्नमयौ सप्तकूटोपशोभितौ ॥१३६॥

विद्युत्प्रभमाल्यवन्तौ वैदूर्यतपनीयजौ ।

नवकूटांचितौ तुल्या इत्याकृत्या नगा अमी ॥१३७॥ युग्मं ॥

रूप्य (चान्दी) मय और पीले रत्नमय, सौमनस और गंधमादन नामक दो गजदन्त पर्वत हैं, जो सात-सात शिखर वाले हैं और परस्पर एक समान हैं, और वैदूर्यमय और सुवर्णमय विद्युत्प्रभ और माल्यवान नाम के दो गजदन्त पर्वत हैं, वे नौ-नौ शिखर वाले हैं वे परस्पर एक-समान हैं । (१३६-१३७)

चतुः कूटाः षोडशापि वक्षस्कारादयः समाः ।

विचित्र चित्रयमकाः समरूपाः परस्परम् ॥१३८॥

चार-चार कूट वाले परस्पर एक समान सोलह वक्षस्कार पर्वत हैं तथा चित्र विचित्र और दो यमक ये चार एक समान पर्वत हैं ।

द्विशत्येकोनसप्तत्याधिकेत्यत्र धराधराः ।

हिमवच्छिखरीस्पृष्टाः दंष्ट्राश्चाष्टौमिथः समाः ॥१३९॥

इस तरह कुल दो सौ उनहत्तर पर्वत हैं । हिमवान और शिखरी पर्वत की आठ-आठ दाढ़ाए हैं वे भी एक समान हैं । (१३९)

वैताढयेषु नव नव कूटाः प्रत्येकमित्यतः ।

सर्ववैताढय कूटानि षडुत्तरं शतत्रयम् ॥१४०॥

प्रतिवैताढयमेतेषु कूटत्रयं तु मध्यमम् ।

सौवर्ण शेषकूटाश्च रालिका इति तद्विदः ॥१४१॥

सक्रोशषड्योजनोच्चाः चैत्य प्रासाद शोभिताः ।

सर्वेऽपि भरतस्थायिवैताढयाकूटसोदराः ॥१४२॥

प्रत्येक वैताढय पर्वत के नौ-नौ शिखर है अतः चौतीस वैताढय के सर्व मिलाकर तीन सौ छः शिखर होते हैं । नौवे के बीच में तीन-तीन सुवर्णमय होते हैं और शेष सब रत्नमय होते हैं । ये सब शिखर छः योजन और एक कोस ऊंचे होते हैं, चैत्य और प्रासादों से अलंकृत होते हैं और भरत क्षेत्र के वैताढय के शिखरों के समान ही होते हैं । (१४०-१४२)

कूटाः सप्त सौमनसगन्धमादन शैलयोः ।

रुक्मिमहाहिमवतोरष्टावष्टौ पृथक् पृथक् ॥१४३॥

सौमनस और गंधमादन पर्वत के सात-सात शिखर हैं और रुक्मी तथा महा हिमवत के आठ-आठ शिखर हैं । (१४३)

विद्युत्प्रभ माल्यवतोः नीलवन्निषधागयोः ।

पेरोश्च नन्दनवने कूटाः नवं नवोदिताः ॥१४४॥

विद्युत्प्रभ और माल्यवान के, नीलवान और निषध के, तथा मेरू पर्वत के, नन्दन वन में नौ-नौ शिखर हैं ।

हिमवच्छिखरि कूटाः एकादश पृथक् पृथक् ।

षोडशानां चतुःषष्टिः वक्षस्कारमहीभूताम् ॥१४५॥

हिमवान तथा शिखरी के अलग-अलग ग्यारह शिखर हैं, सोलह वक्षस्कार पर्वतों के मिलाकर चौंसठ शिखर होते हैं ।

हरिस्सहहरिकूट बलकूटोन्मिता इमे ।

शतं सर्वेऽष्टपंचाशं हिमवत्कूटसन्निभाः ॥१४६॥

योजनानां पंच शतान्युच्चा रात्नाः मिथः समाः ।

साहस्राः स्वर्णजाः तुल्याः हरिस्सहादयः त्रय ॥१४७॥

ये सब मिलाकर एक सौ इकसठ शिखर होते हैं । इसमें से हरिस्सह, हरिकूट तथा बलकूट ये तीन निकाल देने पर एक सौ अट्ठान्णव शेष रहे, ये सब रत्नमय हैं। पांच सौ योजन ऊंचे होते हैं और परस्पर समान हैं, तथा हरिस्सह आदि तीन शिखर परस्पर समान हैं, स्वर्णमय हैं, और हजार-हजार योजन ऊंचे हैं । (१४६-१४७)

एवं च गिरि कूटानां त्रिविधानां प्रमाणतः ।

सर्वसंख्या सप्तषष्टया समन्विता चतुःशती ॥१४८॥

इस तरह तीनों पर्वतों के शिखरों का कुल मिलाकर चार सौ सड़सठ होते हैं। (१४८)

द्वात्रिंशतिविजयेषु भरतैरवताख्ययोः ।

चतुस्त्रिंशतद्वि वृषभकूटाः तुल्याः परम्परम् ॥१४९॥

भद्रसालाभिधवने जम्बूशाल्मलीवृक्षयोः ।

अष्टाष्टेत्यष्टपंचाशत् भूमिकूटा मिथः समाः ॥१५०॥

बत्तीस विजय के बत्तीस तथा भरत और ऐरवत के दो, इस तरह कुल चौतीस, एक समान वृषभ कूट है। भद्रशाल वन के, जम्बू वृक्ष के और शाल्मलीवृक्ष के आठ आठ कुल चौबीस है। इस तरह चौतीस और चौबीस मिलाकर सब अट्ठावन परस्पर समान भूमि कूट है। (१४९-१५०)

एतेषां वक्तुमुचिते पर्वतत्वेऽपि वस्तुतः ।

कूटत्व व्यवहारोऽयं पूर्वाचार्यानुरोधतः ॥१५१॥

वस्तुतः तो इन सब को कूट न कहकर पर्वत ही कहना चाहिए। परन्तु पूर्व चार्य के अनुरोध होने के कारण से इस तरह व्यवहार हो गया है। (१५१)

महाहृदाश्च षट् पद्म पुण्डरीकौ समाविह ।

महापद्म महापुण्डरीकावपि मिथः समौ ॥१५२॥

तिर्गिच्छि केसरिणो च तुल्यौ द्विधौ यथोत्तरम् ।

दश देवोत्तरकुरुहृदाः पद्महृदोपमा ॥१५३॥

बड़े सरोवर छः कहे हैं, उसमें पद्म सरोवर और पुण्डरीक सरोवर, ये दोनों एक समान हैं। महापद्म और महापुण्डरीक ये दोनों एक समान सरोवर हैं, तथा तिर्गिच्छि और केसरि ये दोनों एक समान सरोवर हैं। वे उत्तरोत्तर पूर्व-पूर्व के से दोगुणा है। दोनों कुरु में पद्म सरोवर के समान दस सरोवर हैं। अतः कुल मिलाकर सोलह सरोवर है। (१५२-१५३)

एवं हृदा षोडशैते षण्महाहृद देवता ।

श्री हीं कीर्ति बुद्धि लक्ष्म्यः परस्परं समा ॥१५४॥

छः महासरोवर की श्री, हीं, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नाम की छः देवियां कही हैं जो परस्पर समान ही हैं । (१५४)

चतुर्दश महानद्यो गंगाधाः सपरिच्छदाः ।

जम्बूद्वीप शुभ क्षेत्रे कुल्या तुल्या विभान्ति याः ॥१५५॥

गंगा सिन्धू रोहितांशा रोहिता च तथापरा ।

हरिकान्ता हरिनदी शीतोदा चेति नामतः ॥१५६॥

मेरोः दक्षिणतः सप्तख्याता एता महापगाः ।

मेरोरुत्तरतोऽप्येवं शोभन्ते सप्त सिन्धवः ॥१५७॥

शीता च नारीकान्ता च नरकान्ता तथापरा ।

रूप्यकूला स्वर्णकूला रक्ता रक्तवतीति च ॥१५८॥

यहां मानो जम्बू द्वीप रूपी उत्तम क्षेत्र की सुन्दरियों के समान गंगा आदि चौदह महानदियां सपरिवार बहा करती है । उसमें १- गंगा, २- सिन्धु, ३- रोहितांशा, ४- रोहिता, ५- हरिकान्त, ६- हरि नदि और ७- शीतोदा ये सात मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में है । तथा १- शीता २- नारीकान्ता ३- नरकान्ता ४- रूप्यकूला, ५- स्वर्णकूला, ६- रक्ता और रक्तवती, ये मेरुपर्वत से उत्तर दिशा में (१५५-१५८)

हिमवत्पर्वतस्थाधिपद्महृदाद्वि निर्गताः ।

गंगा सिन्धू रोहितांशाः नाम्नाः तिस्त्रेभ्योपगाः ॥१५९॥

महाहिमवदद्रिस्थ महापद्म हृदात् पुनः ।

रोहिता हरिकान्तेति निर्गते द्वे महापगे ॥१६०॥

निषधाचलमौलिस्थतिगिंछि हृदमध्यतः ।

समुद्भूते हरिनदी शीतोदेति महापगे ॥१६१॥

नीलवत्पर्वतगत केसरिहृदतः किल ।

शीता च नारीकान्ता च निर्गते द्वे महापगे ॥१६२॥

तथा महापुण्डरीकहृदात् रुक्मि नगाश्रितात् ।

नरकान्ता रूप्य कूलेत्युद्गते निम्नगे उभे ॥१६३॥

शिखरिक्षमाधरस्थाधि पुण्डरीक हृदोत्थिताः ।

रक्ता रक्तवती स्वर्णकूलाभिधा महापगा ॥१६४॥

गंगा, सिन्धु और रोहिताशा नाम की तीन नदियां हिमवान पर्वत के पश्चिमोत्तर में से निकलती हैं । रोहिता और हरिकान्ता नाम की दो नदियां, महाहिमवन्त पर्वत के महापद्म सरोवर से निकलती हैं, हरि और शीतोदा नाम की दो, निषाचलपर्वत के तिगिञ्ज सरोवर में से निकलती हैं । शीता और नारीकान्ता नाम की दो नदियां नीलवान पर्वत के केसरी सरोवर में से निकलती हैं । नरकान्ता और रूप्यकूला नाम की दो नदियां रुक्मी पर्वत के महापुण्डरीक सरोवर में से निकलती हैं । और रक्ता, रक्तावती और स्वर्णकूला ये तीन नदियां शिखरी पर्वत के पुण्डरीक सरोवर में से निकलती हैं । (१५६-१६४)

एवं च -

तिस्रो नद्यो हिमवतस्तिस्त्रः शिखरिणो गिरेः ।

शेषवर्षधरेरम्यश्च महानद्यो द्वयं द्वयम् ॥१६५॥

इस तरह से हिमवन्त और शिखरी पर्वत में से तीन-तीन नदियां और शेष वर्षधर पर्वतों में से दो-दो नदियां निकलती हैं । (१६५)

वर्षाण्याश्रित्य सरितः प्रतिवर्षं द्वयं द्वयम् ।

द्वे विदेहेष्वपाच्यां षट् पडुदीच्यां ततो यथा ॥१६६॥

गंगा सिन्धुश्च भरते रोहिता रोहितांशिके ।

हैमवते हरिवर्षे हरिकान्ता हरि उभे ॥१६७॥

शीता शीतोदे विदेहक्षेत्रे तथा च रम्यके ।

नारीकान्ता नरकान्ते हैरण्यवतगे उभे ॥१६८॥

रूप्यकूला स्वर्णकूले तथा चैखतस्थिते ।

नद्यौ रक्तारक्तवत्यावेव मेताश्चतुर्दशः ॥१६९॥

क्षेत्र की अपेक्षा से प्रत्येक क्षेत्र में दो-दो नदियां हैं, दो विदेहों में दो और इसकी दक्षिण में छः तथा उत्तर दिशा में छः हैं । अर्थात् गंगा और सिन्धु भरत क्षेत्र में हैं, रोहिता और रोहितांशा, हैमवन्त क्षेत्र में हैं, हरिकान्ता और हरि सलिला, हरिवर्ष क्षेत्र में हैं, शीता और शीतोदा दोनों विदेह क्षेत्र में हैं, नारिकान्ता और नरकान्ता, रम्यक क्षेत्र में हैं, रूप्यकूला और स्वर्णकूला हैरण्यवन्त क्षेत्र में हैं तथा रक्त और रक्तावती नदी ऐरवत क्षेत्र में हैं इस तरह कुल चौदह नदियां हैं । (१६६-१६९)

गंगा सिन्धु रक्तवती रक्तानां सरितामिह ।

चतुर्दश सहस्राणि परिवारः प्रकीर्तितः ॥१७०॥

रूप्य कूला स्वर्ण कूला रोहिता रोहितांशिकाः ।

अष्टाविंशत्यासहस्रैः स्रोतस्विनीभिराश्रिताः ॥१७१॥

नारीकान्ता नरकान्ता हरिकान्ता हरिस्तथा ।

षट्पंचाशच्छैबलिनी सहस्रैः परिवारिताः ॥१७२॥

शीता शीतोदयोर्नद्योः प्रत्येकं च परिच्छदः ।

पंचलक्षाः सहस्राणि द्वात्रिंशत् परिकीर्तितः ॥१७३॥

गंगा, सिन्धु रक्तवती और रक्ता ये चार नदियां चौदह-चौदह हजार नदियों के परिवार वाली है । रूप्यकूला, स्वर्णकूला रोहिता और रोहितांशा इन चार नदियों के प्रत्येक को अट्ठाईस हजार नदियों के परिवार है । नारीकान्ता, नरकान्ता हरिकान्ता ये चार छप्पन हजार नदियों के परिवार वाली हैं । जबकि शीता और शीतोदा नदियां प्रत्येक को पांच लाख बत्तीस हजार नदियों के परिवार वाली कंहा है ।
(१७०-१७३)

श्लोक क्रमेण सरिताभिह श्लोक चतुष्टये ।

द्विगुणं जिह्विकामानं विस्तारो द्वेन्दुतादिकम् ॥१७४॥

एक श्लोकोदितानां तु सर्वं तुल्यं परस्परम् ।

गंगासिन्धुरक्तवतीरक्तानां तुल्यता यथा ॥१७५॥

इन चारों श्लोकों में वर्णन किये नदियों के जिह्वा, चौड़ाई, ऊंचाई आदि का प्रमाण पूर्व-पूर्व के श्लोकों में वर्णन किए, दो गुना नदियों से उत्तर-उत्तर श्लोक में वर्णन किये नदियों का अनुक्रम से दो गुना है । एक ही श्लोक में कहा, चार का जैसे कि गंगा सिन्धु रक्तवती और रक्ता का तो सर्वप्रमाण एक समान है । (१७४-१७५)

दश लक्षाश्चतुः षष्टिः सहस्राणि विदेहागाः ।

नद्योऽपाच्यां लक्षमेकं षण्णवति सहस्रयुक् ॥१७६॥

उदीच्यामपि तावत्य एवं च सर्वसंख्यया ।

षट्पंचाशत्सहस्राढया नदीलक्षाश्चतुर्दश ॥१७७॥

महाविदेह क्षेत्र में दस लाख चौसठ हजार नदियां हैं, इसके दक्षिण में एक लाख छियानवें हजार नदियां हैं, और उतनी संख्या इसके उत्तर दिशा में है । अतः सब मिलाकर कुल चौदह लाख छप्पन हजार नदियां हैं । (१७६-१७७)

जम्बू द्वीपोऽमितो रूद्धः स्वविरूद्धेन वार्धिना ।

स्वमोक्षायैव दत्तेऽस्मै कनीः शैवलिनीरिमा ॥१७८॥

जम्बू द्वीप की ये सब नदियां समुद्र में मिलती हैं, इसके ऊपर ग्रन्थकार कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि दुश्मन से घिरा हुआ एक राजा जैसे अपना छुटकारा प्राप्त करने के लिए उसे अपनी कन्या देता है वैसे ही समुद्र रूपी दुश्मन से घिरा हुआ यह जम्बूद्वीप अपना छुटकारा प्राप्त करने के लिए मानो इन सारी नदियों रूपी कन्याओं का समर्पण करता है । (१७८)

चतुः षष्टिर्विजयगा महानद्याश्चतुर्दश ।

अन्तर्नद्यो द्वादशातिरिच्यन्ते नवतिस्त्रियम् ॥१७९॥

इस गिनती के उपरांत नब्बे और नदियां हैं, बत्तीस विजय में रही, चौंसठ महानदियां हैं और बारह नदियां, अन्तर नदियां हैं । (१७९)

तथाहुः श्री रत्नशेखर सूरयः स्वक्षेत्र समासे ।

अडसयरि महाण्डओ वारस अंत रणडओ सेसाओ ।

परिररणडओ चंडदस लख्खा छप्पण सहस्साय ॥१८०॥

इस सम्बन्ध में श्री रत्न शेखर सूरि जी के रचित क्षेत्र समास में इस तरह उल्लेख मिलता है - अठत्तर महानदियां हैं और बारह अन्तर नदियां हैं, दूसरी चौदह लाख छप्पन हजार उनके परिवार रूप नदियां हैं । (१८०)

“ श्री मलयगिरयस्तु प्रवेशे व सर्वसंख्यया आत्मना सह चतुर्दशभिः नदीसहस्रैः समन्विता भवतीति । क्षेत्र समास वृत्तौ कच्छ विजय गत सिन्धुनदी वर्णयन्तो महानदीना न पृथक् गणना इति सूचयां चक्रुः । तथापि द्वादश अन्तर नद्यो ऽतिरिच्यन्त एव इत्यत्र तत्त्वं बहुश्रुत गम्यमिति ज्ञेयम् ॥ ”

“ आचार्य श्री मलयगिरि जी ने तो क्षेत्र समास की वृत्ति में कच्छ विजय में रही सिन्धु नदी का वर्णन करते कहा है कि समुद्र में चौदह हजार नदियां मिलती हैं। इन चौदह हजार में सिन्धु महानदी स्वयं भी आ जाती है । अर्थात् महानदियों को अलग गिनने का नहीं है, इस प्रकार उन्होंने सूचना दी । फिर भी बारह अन्तर नदियां तो अधिक गिनना ही चाहिए । इसमें वास्तविकता क्या है ? यह तो बहुश्रुत ही जाने । ”

तथापि पूर्वाचार्यानुरोधात् संख्या तथोदिता ।

नात्र पर्यनुयोगार्हा वयं प्राच्य पथानुगाः ॥१८१॥

हमने तो पूर्वाचार्यों के अनुसार की संख्या कही है, हमसे फेर फार नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि हम पूर्वाचार्यों के मार्ग अनुसार चलने वाले हैं। (१८१)

“केचित्तु गाहावई महानईप वूडा समाणी सुकच्छ महाकच्छ विजयए दुहाविभयमाणी अट्टाविसाए सलिला सहस्सेहिं समग्गा दाहिणेणं सीयं महानई समप्पेइ इत्यादि जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वचनात् तथा नद्यो विजयच्छेदिन्यो रोहितावत्कुंडाः स्वनाम समदेवी वासा अष्टविंशति नदी सहस्रानुगाः प्रत्येकं सर्वत्र समाः पंचविंशति विस्तृता अर्धतृतीय योजनाव गाहा गाहावती पंक्तौ इत्याद्युमास्वाति चाचक वचनाच्च द्वादशानामंतर्नदी नामपि प्रत्येकमष्टा विंशति सहस्र रूपं परिवारं मन्यमानाः षट्त्रिंशत्सहस्राधिक नदी लक्ष त्रयेणन्तर्नदी परिवारेण सह द्विनवति सहस्राधिकानि सप्तदश नदी लक्षाणि मन्यन्ते ॥”

‘कईयों ने तो ‘सुकच्छ और महाकच्छ’ विजय को ‘गाहावती’ अन्तर नदी, दो विभाग में बटवारा करने वाली अट्टाईस हजार नदियों के परिवार सहित दक्षिण में शीता महानदी से मिलती है।’ इत्यादि जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में उल्लेख मिलता है, इसके आधार पर विजय को विभाग करने वाली रोहिता के समान कुंडवाली अपने नाम वाली देवियों के निवास युक्त है। अट्टाईस हजार नदियों से संगत सर्वत्र समान रूप में सवा सौ योजन विस्तार वाली और अट्टाई योजन गहरी गाहावती आदि अंतर नदियां हैं। इत्यादि उमास्वाति वाचक वर्ण के वचन से प्रत्येक अन्तर्नदी के अट्टाईस-अट्टाईस हजार के परिवार की गिनती करे तो बारह अन्तर नदियों का तीन लाख छत्तीस हजार परिवार मानकर तो कुल मिलाकर सत्रह लाख बयानवें हजार नदियां कही हैं।”

उक्तं च -

सूत्रे चउहसलक्खा छप्पन्न सहस्य जम्बूद्वीवंधि ।

हुंति उ सत्तरस लक्खा बाणवइ सहस्स मेल विद्या ॥१८२॥

अन्य स्थान पर भी उल्लेख मिलता है कि - सूत्र में जम्बूद्वीप के अन्दर चौदह लाख छप्पन्न हजार नदियां हैं। उसमें अन्य नदियां मिलाए तो सर्व मिलाकर सत्तर लाख बयानवे हजार नदियां होती हैं। (१७२)

“अन्ये तु यदि अन्तर्नदीषु अनेकानि परिवार नदी सहस्राणि प्रवेशेयुः तदाकथं तासां क्रमेण परतः परतः गच्छन्तीनां विस्तार विशेषो गंगादिनदीनामिब न संपद्येत। यस्तु परिवारः सिद्धान्तेऽभिदधे स तु यथाष्टा शीतिः ग्रहाः चन्द्रस्यैव

परिवारतया प्रसिद्धा अपि सूर्यस्यापि स एव परिवारः । नपुनः पृथक् प्रतीयते ॥ उक्तं च समवा यांग वृत्तौ । अष्टाशीतिः महाग्रहाः एते यद्यपि चन्द्र स्यैव परिवारः अन्यत्रश्रु यते तथापि सूर्यस्यापि इन्दुत्वात् एते एव परिवार तथा अवसेया इति । तथा गंगादि सम्बन्धीनि एवं अष्टाः विंशति नदी सहस्राणि अर्त्तनदीनामपि परिवार इति ॥ एवं चान्तर्नदीनां पृथक्परिवारमनभ्युपगच्छन्तो यथा वस्थितामेव नदी संख्या मन्यन्ते इत्यादिकं जम्बू द्वीप संग्रहणी वृत्तौ ।”

‘और कोई इस तरह कहता है कि - ‘यदि अन्तर्नदियों में हजारों नदियां परिवार रूप में प्रवेश करती हैं तो फिर अनुक्रम से आगे बढ़ते उन नदियों का विस्तार गंगा आदि नदियों के समान क्यों नहीं होता ? इसलिए सिद्धान्त में जो परिवार कहा है, उस सम्बन्ध में यह समझना है कि जैसे जो अमुक अट्टाईस ग्रह चन्द्रमा के परिवार रूप है वही अट्टाईस ग्रह सूर्य के परिवार रूप है । इस सूर्य का कोई अलग परिवार नहीं है । इसी तरह इसके विषय में वैसे ही है । श्री समवायांग सूत्र की टीका में कहा है कि ये अट्टाईस महाग्रहों को अन्यत्र केवल चन्द्रमा के ही परिवार भूत कहे है, फिर भी इन्द्र होने से इसके परिवार रूप भी उन्होंने कहा है । अतः गंगा आदि का अट्टाईस हजार नदियों का परिवार है, वही परिवार अन्तर्नदियों का है । उनका अलग परिवार नहीं है । अर्थात् नदियों की यथा १४५६००० संख्या ही वास्तविक है’ इस प्रकार से जम्बू द्वीप संग्रहणी की टीका में उल्लेख मिलता है ।’

तथा चाहुः श्री हरिभद्र सूरयः-

सीया सी ओया विय बत्तीस सहस्स पंचलक्खेहि ।

सव्वे चउद्दसललक्ख्खा छप्पन्न सहस्स मेल विया ॥१८३॥

आचार्य श्री हरिभद्र सूरि जी भी कहते हैं कि शीता और शीतोदा को पांच लाख बत्तीस हजार नदियों का परिवार होता है । इस तरह सारा जोड़ लगाने, चौदह लाख छप्पन हजार नदियां होती है । (१८३)

दिक्पटोऽप्येवमाह :-

जम्बू हीवि नराहिव संखा सव्वनइ चउद्दहपलक्ख्खा ।

छप्पन्नं स सहस्सा नवइ नइओ कहंति जिणा ॥१८४॥

दिगम्बर आचार्य भी कहते हैं कि - हे राजन् ! जम्बू द्वीप के अन्दर श्री

जिनेश्वर भगवान ने सब मिलाकर चौदह लाख छप्पन हजार नब्बे नदियां कही हैं।
(१८४)

कुंडोद्वेधस्तथा द्वीपोच्छायस्तद् भवनस्य च ।

परिमाणं समग्रासु नदीषु सदृशं भवेत् ॥१८५॥

कुंड की गहराई, द्वीपों की ऊंचाई तथा भवन का माप, सर्व नदियों में एक समान होता है । (१८६)

शीता च हरिसलिला गंगा सिन्धु च रोहिता ।

स्वर्ण कूला नरकान्ता नद्योऽभूः दक्षिणामुखाः ॥१८६॥

उदक् याता रक्तवती रक्ता च रूप्यकूलिका ।

नारीकान्ता रोहितांशा शीतोदा हरिकान्ति का ॥१८७॥

शीता, हरिसलिला, गंगा, सिन्धु, रोहिता, स्वर्ण कूला और नरकान्ता ये सात नदियां दक्षिण सन्मुख बहती हैं, जबकि रक्तवती, रक्ता रूप्यकूला, नारीकान्ता, रोहितांशा शीतोदा और हरिकान्ता ये सात नदियां उत्तर सन्मुख बहती हैं ।
(१८६-१८७)

सिन्धुं बिना याः सरितो दक्षिणां दिशा भागताः ।

ताः पूर्वाम्बुधि गामिन्याः सिन्धुस्तु पश्चिमाब्धि गा ॥१८८॥

दक्षिण दिशा में बहने वाली में से एक सिन्धु के बिना शेष सब पूर्व समुद्र में मिलती हैं । सिन्धु पश्चिम समुद्र में मिलती हैं । (१८८)

उदक् याताश्च या नद्यो बिना रक्ता महानदीम् ।

ताः पश्चिमाब्धि गामिन्यो रक्ता पूर्वाब्धि गामिनी ॥१८९॥

उत्तर दिशा में बहने वाली में से एक रक्ता के बिना शेष सब पश्चिम समुद्र में मिलती हैं, रक्ता नदी पूर्व समुद्र में मिलती हैं । (१८९)

स्वकीय हृद विस्तारेऽशीति भक्ते यताप्यते ।

दक्षिणाभिमुखीनां सा नदीनां मुख विस्तृतिः ॥१९०॥

उत्तराभिमुखीनां तु स्वकीय हृद विस्तृतौ ।

चत्वारिंशद्भिभक्तायां यल्लब्धं तन्मिता मता ॥१९१॥

व्यवस्थेयं दक्षिणस्यां सरितां मन्दराचलात् ।

उदक् याम्योत्तर दिशाभि मुखीनां विपर्ययात् ॥१९२॥

अपने सरोवर के विस्तार के अस्सीवें भाग में जो संख्या आती है उसे दक्षिणाभिमुख नदियों के मुख का विस्तार समझना, और इसके अनुसार अपने सरोवर के विस्तार के चालीसवें भाग में जो संख्या आती है उसे उत्तराभिमुख नदियों के मुख का विस्तार समझना । मन्द्राचल से उत्तर में दक्षिणाभिमुखी तथा उत्तराभिमुखी नदियों की विपर्यता के कारण मन्द्राचल से दक्षिण में यह व्यवस्था है । (१६०-१६२)

सर्वासां मुख विस्तारे दशध्वे प्रान्तविस्तृतिः ।

व्यास पंचाशत्तमांशः सर्वत्रोद्धेध आहितः ॥१६३॥

सब नदियों के मुख के विस्तार को दस से गुणा करते, अन्तिम स्थान के विस्तार का प्रमाण आता है, और गहराई सर्वत्र विस्तार के पचासवे भाग जितना होता है । (१६२)

मुखपर्यन्त विस्तारविश्लेषे गतयोजनैः ।

गुणिते पंचचत्वारिंशत्सहस्र विभाजिते ॥१६४॥

लब्धं यत्तदुभयतो व्यासवृद्धिरभीप्सिते ।

योजनादौ गते सर्वास्वपि तस्यार्धमेकतः ॥१६५॥ युग्मं ॥

प्रत्येक नदी में एक स्थान में से दूसरे स्थान में जाते, इसकी चौड़ाई कितनी होती है, उसे जानने के लिए, मुख और अन्तिम सीमा तक के विस्तार में जितने योजन कहा गया हो उतने योजन से गुणा करके पैंतालिस हजार से भाग देने पर जो संख्या आती है, वह दोनों तरफ की वृद्धि समझना । इसका आधा करते, एक तरफ की वृद्धि होती है । (१६४-१६५)

चतुःषष्टिः विजयेषु सप्तवर्ष्यां चतुर्दश ।

द्वादशान्तर्नदीनां च कुंडानां नवतिस्त्वयम् ॥ १६६॥

इस जम्बू द्वीप के अन्दर कुंड, सब मिलाकर नब्बे हैं, बत्तीस विजय में, चौंसठ, सात क्षेत्रों में, चौदह और बारह अन्तर्नदियों में बारह है । (१६६)

द्विघ्नद्विघ्न प्रमाणानि कुंडानि जिहिकादिवत् ।

तुल्यान्यन्तर्निम्नगानां मिथो विजयगानि च ॥१६७॥

इन कुण्डों का मान (माप) जिह्वादि के समान उत्तरोत्तर दो गुणा-दो गुणा होता है और अन्तर्नदियां तथा विजय के कुण्ड एक समान है । (१६७)

प्रागुक्ताः पर्वताः कूटाः कुंडानि च महापगाः ।

सर्वे वृत्ता वेदिकया वनाढयोभयपार्श्वया ॥१६८॥

पूर्वोक्त सर्व पर्वत, शिखर, कुंड और महानदियों के चारों तरफ पच वेदिक हैं और पचवेदिका के दोनों तरफ में बगीचा है । (१६८)

वेदिकावनखंडानां सर्वत्राप्यविशेषितम् ।

स्वरूपं जगती स्थायिवेदिकावनखंडवत् ॥१६९॥

इन वेदिका और बगीचों का समस्त स्वरूप सर्वत्र, जगती के वेदिका और बगीचों के अनुसार है । (१६९)

ऐरवते च भरते विजयेष्वखिलेषु ।

प्रत्येकं त्रित्रिसद्भावात्तीर्थानां द्वयुत्तरं शतम् ॥२००॥

ऐरवत क्षेत्र में भरत क्षेत्र में और प्रत्येक विजय में तीन-तीन तीर्थ आए हैं इससे तीर्थों की कुल संख्या एक सौ दो होती है । (२००)

श्रेण्यः चतस्रः प्रत्येकं वैताढयेषु गुहाद्वयम् ।

श्रेण्यः शतस्युः षट्त्रिंशमष्टषष्टिश्च कन्दराः ॥२०१॥

प्रत्येक वैताढय पर्वत में चार चार श्रेणि और दो-दो गुफा आई हैं, इससे चौतीस वैताढय की कुल श्रेणि एक सौ छत्तीस है और गुफा अड़सठ है । (२०१)

दशोत्तरं पुरशातं प्रति वैताढयपर्वतम् ।

सप्तत्रिंशच्छतान्येवं चत्वारिंशानि तान्यपि ॥२०२॥

प्रत्येक वैताढय पर्वत पर एक सौ दस नगर है । इससे सब मिलाकर तीन हजार सात सौ चालीस नगर है । (२०२)

द्वात्रिंशच्च विदेहस्था भरतैरवते इति ।

विजयाः स्युः चतुस्त्रिंशच्चक्री जेतव्यभूभयः ॥२०३॥

चतुस्त्रिंशश्राजधान्यो द्वौ कुरुस्थो महाद्रुमौ ।

अस्यान्तिकेन्तर द्वीपाः षट्पंचाशच्च वान्दिगाः ॥२०४॥

विदेह में बत्तीस भरत क्षेत्र में एक और ऐरवत क्षेत्र की एक, इस तरह सब मिलाकर चौतीस विजय है उसे चक्रवर्ती जीतता है, इसी ही तरह चौतीस राजधानी है, और कुरु में दो महावृक्ष है और समुद्र के नजदीक के अन्दर छप्पन अर्न्तद्वीप आये हुए है । (२०३-२०४)

एवं च संग्रह द्वारा यदुक्तमप्यनूदितम् ।

सुखावबोधोद्यताना तदस्माकं न दोषकृत ॥२०५॥

इस प्रकार से मैने सरलता से ज्ञान प्राप्त कराने के लिए उपसंहार किया है ।
इस तरह कहते हुए पूर्व में रह गया हो तो इसमें हमारा दोष नहीं है । (२०५)

जिनैश्चक्रिभिः सीरिभः शार्गिभिश्च, चतुर्भिः चतुर्भिः जघन्येमयुक्ता ।

सनाथस्तथोत्कर्षतस्तीर्थ नाथैः चतुस्त्रिंशताऽयं भवेदद्वीप राजः ॥२०६॥

चक्रवर्ति बलदेव केशवैः त्रिंशता परिचितः प्रकर्षतः ।

भारतैरवतयो द्वयं तथा ते परे खलु महाविदेहगाः ॥२०७॥

इस जम्बू द्वीप के अन्दर जघन्य से तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव चार-चार होते हैं । जबकि उत्कृष्ट से तीर्थकर चौतीस और चक्रवर्ती बलदेव तथा वासुदेव तीस-तीस होते हैं । इसमें भरत और ऐरवत क्षेत्र में दो ही होते हैं और शेष सब महाविदेह क्षेत्र में होते हैं । (२०६-२०७)

जम्बू द्वीपे स्युः निधीनां शतानि षड्युक्तानि त्रीणि सत्तामपेक्ष्य ।

षट्त्रिंशते चक्रिभोग्या जघन्यादुत्कर्षेण द्वे शते सप्ततिश्च ॥२०८॥

इस जम्बू द्वीप के अन्दर विद्यमान में तीन सौ छः निधान हैं, उसमें चक्रवर्ती को कम से कम छत्तीस और अधिक से अधिक दो सौ सत्तर उपयोग में आते हैं । (२०८)

घ्नक्री गंगाद्यापगानां मुखस्थनेतानात्ता शेषषट्खंडराजयः ।

व्यावृत्तः सन्नष्टमस्य प्रभावात् साधिष्टातृनात्मसान्निर्मिमीते ॥२०९॥

चक्रवर्ती समस्त छः खंड राज्य का दिग्विजय करके वापिस आता है, तब अट्टम (तीन उपवास) तप के प्रभाव से गंगा आदि नदियों के मुख में रहे उन निधानों को और उसके अधिष्टाताओं को अपने आधीन करता है । (२०९)

पंचाक्षरलद्विशती दशाधिकोत्कर्षेण भोग्यात्र च चक्रवर्तिनाम् ।

जघन्यतोऽष्टाभ्यधिकैव विंशतिरेकाक्षरलेष्वपि भाव्यतामिदम् ॥२१०॥

अधिक से अधिक दो सौ और दस और कम से कम अट्ठाईस पंचेन्द्रिय रत्नों का चक्रवर्ती के उपयोग में आता है, एकेन्द्रिय रत्नों के सम्बन्ध में भी इसी ही तरह समझना । (२१०)

चन्द्रौ द्वौ दिनेन्द्राविह परिलसतो दीपकौ सद्यानीव ।

षट् सप्तत्या समेतं ग्रह शतमभितः कान्तिमाविष्करोति ॥

षट् पंचाशच्चक्रक्षायनिलपथपृथग्निद्रचन्दोदयान्तर ।

मुक्ताश्रेण्याः श्रयन्तिश्रयमतिविततश्रीभरैः विश्रुतानि ॥२११॥

घर में जैसे दीपक प्रकाश फैलाता है वैसे जम्बूद्वीप में प्रकाश करने वाले दो सूर्य और दो चन्द्र हैं, और इसके चारों तरफ चमकते एक सौ छिहत्तर ग्रह हैं, इतना ही नहीं परन्तु आकाश रूपी अत्यन्त विस्तार रूपी चंदोहे के अन्दर मोती की श्रेणि की शोभा धारण करने वाले छप्पन प्रसिद्ध नक्षत्र हैं । (२११)

एकं लक्षं सहस्राः सततमिह चतुस्त्रिंशदुद्योतहृद्याः ।

न्यूनाः पंचाशत्तौच्यैः दधति रूचिरतां तारकाकोटिकोटयः ॥

प्रोद्यत्प्रस्वेदविन्द्रावलय इव निशि व्योमलक्ष्मीमृगाक्ष्याः ।

रत्यध्यासं विधातुं प्रियतम विधुना गाढमालिर्गितायाः ॥२१२॥

मनोहर उद्योत वाले और मन को उल्लसित करने वाले एक लाख तैंतीस हजार नौ सौ पचास कोटा कोटी तारा समूह हैं । जो मानो रात के समय में रंति सुख प्रसंग पर अपने स्वामी से आलिङ्गित हुई आकाश लक्ष्मी रूपी स्त्री को उत्पन्न हुए प्रस्वेद बिन्दु समान लगता है ।

कोटाकोटिपदेन केचन बुधाः कोटिं वदन्यत्र यत् ।

क्षेत्रस्तोकतयावकाश घटना नैषां भवेदन्यथा ॥

अन्ये कोटय एव तारकततेरीत्सेधिकैरंगुलैः ।

कोटा कोटिदशां भजन्ति घटिता इत्यूचिरे सूरयः ॥२१३॥

यहां कोटा कोटी पद का अर्थ कई विद्वान 'कोटी-करोड़' ही करते हैं, क्योंकि क्षेत्र अल्प होने से इतनी बड़ी संख्या में ताराओं के अवकाश की बात संभव नहीं हो सकती है । अन्य आचार्य इस तरह कहते हैं कि - उत्सेधांगुल के प्रमाण से घटाने से करोड़ ताराओं की संख्या कोटा कोटी संभव हो सकती है । (२१३)

“तथा च संग्रहणी वृत्तौ ॥ इह द्वे मते । तत्रैके कोटीनामेव कोटी कोटीति संज्ञांतरं नामान्तरं मन्यन्ते क्षेत्रस्य स्तोकत्वेन तथा पूर्वाचार्य प्रसिद्धेः । अन्ये त्वाहुः नग पुढ्वी विमाणा इं मिणासु पमाणांगुलेषां तु इति वचनात् ताराविमानानां स्वरूपेण कोटय एव सन्त्यो यदौत्सेधांगुलेन सर्वतो मीन्यन्ते तदा कोटा कोटयो जायन्ते । तथोक्तं विशेषणवत्याम् ॥”

'इस सम्बन्ध में संग्रहणी की वृत्ति में इस तरह उल्लेख मिलता है - इस विषय में दो मत हैं । एक मत वाले कहते हैं कि 'कोटा कोटी' यह शब्द कोटि का

ही दूसरा नाम समझना । क्योंकि क्षेत्र तो अल्प है । इससे पूर्वाचार्यों ने इस तरह प्रसिद्ध कहा है । दूसरा मत इस प्रकार है कि - पर्वत पृथ्वी और विमानों का प्रामाणंगुल से माप करने को कहा है, अतः उस माप से ताराओं के विमान के स्वरूप में कोटि ही होता है, किन्तु जब उनसे आंगुल के माप से सर्वतः मापने में आए तब वह कोटा कोटी होता है ।' विशेषणवती में इस तरह कहा है -

कोडा कोडी सन्नतरं तु भन्नति खिल्लथोच तथा ।

अन्ने उस्सेहंगुलमाणं काउण ताराणाम् ॥२१४॥

कई आचार्य, क्षेत्र अल्प होने से कोटा कोटी को ही कोटी का ही दूसरा नाम कहा है । और दूसरों ने ताराओं का उत्सेधांगुल द्वारा ही माप निकलने का कहते हैं। (२१४)

जयति जगति जम्बूद्वीप भूमि द्यवोऽद्यम् ।

सतत मितरवारिधिद्वीप सामन्तसेव्यः ॥

सुर गिरिरयमुच्चैरंशुको नीलचूल ।

श्रयति कनकदंडो यस्य राजध्वजत्वम् ॥२१५॥

हमेशा अन्य द्वीप समुद्र रूपी सेवकों से सेवा होती यह जम्बू द्वीप मानों एक विजयी राजा के समान है । क्योंकि इसे भी उच्च अंशवाला (मेरुपक्ष में अंशु-किरणवाला) नील चूलावाल - चूलिका वाला और कनक दंड वाला सुरगिरि अर्थात् मेरु पर्वत रूपी राजध्वज है । (२१५)

विश्वाश्चर्यद कीर्ति कीर्ति विजय श्री वाचकेन्द्रान्तिषद्राज श्री तनयोऽतनिष्ठ विनयः श्री तेजपालात्मजः ।

काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जगत्तत्त्व प्रदीपोपमे, सर्गः पूर्तिमितो युतोऽदभुत गुणैरैकोनविंशः सुखम् ॥२१६॥

इति एकोनविंशः सर्गः

समस्त विश्व को आश्चर्य चकित करने वाले कीर्तिमान श्री कीर्ति विजय जी वाचस्पति के अन्तेवासी शिष्य तथा माता राज श्री और पिता श्री तेजपाल के सुपुत्र विनय विजय जी उपाध्याय ने जगत के निश्चित तत्त्वों को दीपक के समान प्रकाश में लाने वाले यह जो काव्य रचा है इसका अद्भुत गुणवाला उन्नीसवां सर्ग विघ्न रहित सम्पूर्ण हुआ ॥२१६॥

उन्नीसवां सर्ग समाप्त

बीसवां सर्ग

प्रणम्य परमज्ञान प्रभा प्रस्तावकं प्रभुम् ।

द्वीपेऽस्मिन्नथ सूर्येन्दु चाररीतिर्विभाव्यते ॥१॥

अब श्री जिनेश्वर भगवंत को नमस्कार करके उत्कृष्ट ज्ञानरूपी प्रभा को फैलाव करने वाले इस जम्बूद्वीप में रहे सूर्य और चन्द्रमा की गति के विषय में वर्णन करता हूँ । (१)

सर्वेषां कालमानानामादिरादित्य एवहि ।

ततोऽस्य वक्तुमुचिता पूर्वं चारनिरूपण ॥२॥

सूर्य ही सर्व काल, मान आदि का मूल ही है, इसलिए प्रथम इस सूर्य की गति का निरूपण (कथन) करूंगा । (२)

‘तथाहुः पंचमागे ॥ से केण ठेणं भंते एवं वुच्चइ सूरे आइच्चे । सूरे आइच्चे गोयम सूराइयाणं समयाइवा आबलियाइ वा जाव वा उस्सप्पिणीति वा अवसप्पिणीति वा ॥’

‘सूर्य को आदित्य क्यों कहने में आता है ? इस विषय में पांचवे अंग श्री भगवती सूत्र में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है - हे गोतम ! सूर्य को आदित्य कहने का कारण यह है कि समय आवलि आदि से लेकर वह उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी तक सर्व काल का माप सूर्य से होता है ।’

ततोऽत्र बहुवाच्चेऽपि प्रथमं सैवतन्वते ।

पंचानुयोगद्वारणि तस्यामाहुः जिनेश्वराः ॥३॥

मंडलानामिह क्षेत्र प्ररूपणा ततः परम् ।

संख्या प्ररूपणा तेषां तदबाधा प्ररूपणा ॥४॥

ततः परं मण्डलानामन्तरस्य प्ररूपणा ।

चार प्ररूपणा चैषां भाव्यन्तेऽनुक्रमादिमा ॥५॥

इस सूर्य के सम्बन्ध में बहुत कहने का है, परन्तु प्रथम इसकी गति के विषय में कहते हैं । इसके लिए श्री जिनेश्वर भगवन्त ने पांच अनुयोग द्वार कहे हैं, मंडल की १- क्षेत्र प्ररूपणा, २- संख्या प्ररूपणा, ३- अबाधा प्ररूपणा, ४- अन्तर प्ररूपणा और ५- चार प्ररूपणा । इन पांचों का अनुक्रम से निरूपण करने में आयेगा । (३ से ५)

इह प्रकरणे यत्र क्वाप्यंशा अविशेषतः ।

कथ्यन्ते तत्रेकषष्टिछिन्नांस्तान् परिचिन्तयेत् ॥६॥

इस प्रकरण में जिस स्थान पर सामान्य से अंश कहा हो, वह एक योजन का इकसठवां अंश-भाग समझना । (६)

अभ्यन्तरादिभिः बाह्य पर्यन्तैः सूर्यमण्डलैः ।

आकाशं स्पृश्यते यत्तन्मण्डल क्षेत्रमुच्यते ॥७॥

क्षेत्र की व्याख्या में अभ्यन्तर से लेकर बाह्य में आखिर मंडल तक के सर्व सूर्य मंडल जितने आकाश प्रदेश स्पर्श करके रहा हो, उतना प्रदेश उस मंडल का क्षेत्र कहलाता है । (७)

योजनानां पंचशती दशोत्तरा तथा लवाः ।

अष्टचत्वारिंशदस्य विष्कम्भाः चक्रवालतः ॥८॥

उस मंडल क्षेत्र का विस्तार चारों तरफ से पांच सौ दस योजन और अड़तालीस लव-अंश है । (८)

तथाहि -

अष्टचत्वारिंशदशा विष्कम्भाः प्रतिमण्डलम् ।

मण्डलानां च चतुरशीत्याढ्यं शतमीरितम् ॥९॥

अष्ट चत्वारिंशता सा गुण्यते मण्डलावली ।

द्वात्रिंशानि शतान्यष्टाशीति भागा भवन्ति ते ॥१०॥

विभज्यन्ते चैकषष्टया योजनानयनाय ते ।

पूर्वोदितानामं शानामेकषष्टयात्मकत्वतः ॥११॥

चतुष्टचत्वारिंशमेवं योजनानां शतं भवेत् ।

अष्टचत्वारिंशदशाः शेषमत्रावशिष्यते ॥१२॥

वह इस तरह अड़तालीस-अड़तालीस 'अंश' का एक में एक सौ चौरासी मंडल है । अर्थात् एक सौ चौरासी को अड़तालीस से गुणा करने से आठ हजार आठ सौ बत्तीस अंश आते हैं । अब इसको योजन करने के लिए इस संख्या को इकसठ से भाग देना चाहिए । क्योंकि इकसठ अंश का एक योजन कहा है । इस तरह इसमें से एक सौ चवालीस योजन निकलता है, और ऊपर अड़तालीस अंश बड़े । $(108 \times 84 = 9072 \div 69 = 131$ योजन ४८ अंश) (६ से १२)

मण्डलानामन्तराणि स्युः त्र्यशीत्यधिकं शतम् ।
 स्युः सर्वत्राप्यन्तराणि रूपोनान्यद्गुलीष्विव ॥१३॥
 योजनद्वयमानं स्यादेकैकं मण्डलान्तरम् ।
 शतं त्र्यशीत्याभ्यधिकं द्विकेन गुण्यते ततः ॥१४॥
 शतानि त्रीणि षट् षष्ट्याभ्यधिकानि भवन्त्यतः ।
 प्राच्यमत्र चतुश्चत्वारिंश प्रक्षिप्यते शतम् ॥१५॥
 योजनानां पंचशती दशोत्तरा तथा लवाः ।
 अष्टचत्वारिंशदेषा मण्डल क्षेत्र विस्तृतिः ॥१६॥
 इति सूर्य मण्डल क्षेत्रम् ॥११॥

इन मण्डलों के बीच-बीच अन्तर है, इन अंतरों की संख्या एक सौ तिरासी है, क्योंकि अन्तरा सर्वत्र एक रूप कम होता है, जैसे पांच अंगुलियों के बीच का अन्तर चार है तथा एक-एक अंतर दो योजन प्रमाण का है। इसलिए एक सौ तिरासी दो से गुणा करने से ३६६ योजन होता है। इसमें पूर्वोक्त विस्तार का १४४ योजन और ४८ अंश मिलाने पर कुल ५१० योजन और ४८ अंश होता है। यह मण्डलों के क्षेत्र का विस्तार हुआ। (१३-१६)

इस तरह से सूर्य मंडलों के क्षेत्र विषय में कहा है। (१)

समाक्रम्य योजनानामशीतिसंयुतंशतम् ।
 पंचषष्टिः मण्डलानि जम्बूद्वीपे विवस्वतः ॥१७॥

अब सूर्य मंडलों की संख्या कहते हैं - जम्बू द्वीप में सूर्य के पैंसठ मण्डल हैं और वह एक सौ अस्सी योजन के जितना प्रदेश रोक कर रहा है। (१७)

विशेषश्चायमत्र -

पंचषष्टथा मण्डलैः स्यादेकोनाशीतियुक्शतम् ।
 योजनानामेकषष्टि भागैर्नवभिरंचितम् ॥१८॥
 ततः षट्षष्टितमस्य मण्डलस्य लवैः सह ।
 स्यात् द्विपंचाशताशीतियुक् योजनशतं ह्यद्रः ॥१९॥

यहां इतना विशेष कहना है कि इन पैंसठ मण्डलों के तो एक सौ उन्नीस योजन और ६ नौ अंश होता है। किन्तु इसमें इसके बाद के छियासठ में मण्डल के बावन अंश मिलाकर एक सौ अस्सी (१८०) योजन होता है। (१८-१९)

तथा -

सष्ट चत्वारिंशद् भागां योजनशतत्रयीं त्रिंशाम् ।

व्याप्याब्धौ मण्डल शतमर्कस्यैकोनविंश स्यात् ॥२०॥

तथा सूर्य के दूसरा एक सौ उन्नीस मण्डल, लवण समुद्र सम्बन्धी है, उन्हींने तीन सौ तीस योजन और अड़तालीस अंश जितने प्रदेश को रोक रखा है । (२०)

एवं च मण्डलशतं खेचतुरशीतिभत् ।

पूर्वोक्तं मण्डक्षेत्रं समाक्रम्य व्यवस्थितम् ॥२१॥

अतः जोड़ लगाते सूर्य के एक सौ चौरासी मंडल, आकाश में पूर्वोक्त पांच सौ दस योजन और अड़तालीस अंश क्षेत्र को व्याप्त कर रहा है । (२१)

“अत्र जम्बू द्वीपवर्तिनां पंच षष्टेः मण्डलानां विषय विभाग व्यवस्थायां संग्रहणी वृत्या द्युक्तः अथं वृद्ध सम्प्रदायः ॥”

जम्बू द्वीप वृत्ति में पैसठ मंडलों के विषय की व्यवस्था के सम्बन्ध में तथा संग्रहणी की टीका आदि में इस तरह वृद्ध संग्रदाय है :-

यथैकतो मेरु गिरेः त्रिषष्टिः निषधोपरि ।

हरिवर्षजीवाकोटयां विज्ञेयं मण्डलद्वयम् ॥२२॥

मेरोरपरतोऽप्यूर्ध्वं त्रिषष्टिः नीलवदगिरेः ।

रम्यक जीवा कोटयां च मण्डले द्वे विस्वतः ॥२३॥

मेरु पर्वत से एक दूसरे निषध पर्वत पर तिरसठ, और हरिवर्ष की जीवा की कोटी में दो, इस तरह पैसठ मंडल है । मेरु के दूसरी ओर नीलवान पर्वत पर तिरसठ और रम्यक क्षेत्र की जीवा की कोटी (पूर्व-पश्चिमगत जो कोना है, वह कोटी कहलाता है) में दो इस तरह पैसठ मंडल है । (२२-२३)

इयं भरतैरवतापेक्षया मण्डलस्थितिः ।

अग्नि वायुस्थयोर्मेरोः ज्ञेया निषध नीलयोः ॥२४॥

यह मण्डल निषध और नीलवान् पर्वत पर, भरत और ऐरवत क्षेत्र की अपेक्षा से मेरु से अग्नि और वायव्य कोण में समझना । (२४)

प्राग्विदेहापेक्षया तु मेरोरैशानकोणके ।

स्युः त्रिषष्टिः नीलवति मण्डलानीति तद्विदः ॥२५॥

एवं प्रत्यग्विदेहा नामपेक्षया सुमेरुतः ।

नैऋतस्थायि निषधे विज्ञेया मण्डलावली ॥२६॥

परन्तु पूर्व महाविदेह की अपेक्षा से नीलवान पर के तिरसठ मंडल मेरु पर्वत से ईशान कोने में समझना । जबकि पश्चिम विदेह की अपेक्षा से निषध के ऊपर के तिरसठ, मेरु पर्वत से नैऋतय में समझना चाहिए । (२५-२६)

किं च - विदिग्गताभ्यां श्रेणीभ्यां मण्डलाभ्यौ स्थिते इमे ।

औदधिक क्षेत्र परावर्त्तादयनयोः द्वयोः ॥२७॥

विदिशा की श्रेणि में रहे ये दोनों तिरसठ-तिरसठ मंडल उदय क्षेत्र के परावर्त्तन के कारण अलग-अलग दो 'अयन' में आते हैं । (२७)

कान्तिहान्याऽयने याम्येऽर्वागर्वागगतो रवि ।

दृश्येते कान्ति वृद्धया चैक दूरतोऽप्युत्तरायणे ॥२८॥

दक्षिणायन में दोनों सूर्य की कान्ति घटती जाती है, परन्तु आगे बढ़ते उत्तरायण में कान्ति बढ़ती जाती है और इससे उस समय में वे दूर से भी दिखते हैं । (२८)

'एवं हरिवर्ष रम्यक जीवा कोटयोरपि भावना ॥'

'हरिवर्ष क्षेत्र तथा रम्यक क्षेत्र की जीवा की दोनों कोटी पर रहे, दो-दो मंडलों की भी इसी ही तरह से भावना समझना ।'

"तथा हु :- जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे - जम्बू द्वीपेण भंते दीवे सूरिया उदीण पाइणं उगच्छ पाइण दाहिणं आगच्छन्ति (१) पूर्व विदेहापेक्षयेदम् । पाइणदाहिणं उगच्छ दाहिण पडीणं आगच्छन्ति (२) भरतोपेक्षयेदम् । दाहिण पडीणं उगच्छ पडीण उदीणं आगच्छन्ति (३) पश्चिम विदेहापेक्षयेदम् । पडीण उदीणं उगच्छ उदीण पाइणं आगच्छन्ति (४) ऐरावता पेक्षयेदम् ॥"

'इस सम्बन्ध में 'श्री जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र' में कहा है कि हे भगवन् ! जम्बू द्वीप में सूर्य १- पूर्व विदेह की अपेक्षा से उत्तर-पूर्व में उदय होकर पूर्व-दक्षिण में आता है । २- भरतक्षेत्र की अपेक्षा से पूर्व-दक्षिण में उदय होकर दक्षिण-पश्चिम में आता है । ३- पश्चिम विदेह की अपेक्षा से दक्षिण-पश्चिम में उदय होकर पश्चिम-उत्तर में आता है, और - ऐरावत क्षेत्र की अपेक्षा से पश्चिम-उत्तर में उदय होकर उत्तर-पूर्व में आता है ।'

या मण्डलानां विषय व्यवस्थेयमुदीरिता ।

भारतादिमध्यभागापेक्षया सा विभाव्यताम् ॥२६॥

मण्डलों की यह विषय व्यवस्था कही है, वह भरत क्षेत्र आदि के मध्य भाग की अपेक्षा से समझना चाहिए । (२६)

अन्यत्र तु स्वस्व भानूदय क्षेत्रे यथोदिता ।

मण्डलानां व्यवस्था साऽव्यक्ता वक्तुं न शक्यते ॥३०॥

परन्तु अन्यत्र तो उनकी अपने-अपने सूर्य के उदय क्षेत्र में जो व्यवस्था है, वह अव्यक्त (स्पष्ट न होने पर) होने से कह नहीं सकते । (३०)

एवं च -

येषामद्दृश्यो दृश्यत्वं दृश्यो वा यात्यद्दृश्यताम् ।

यत्र तत्रैवेदोयास्तौ तेषां भानुमतो नृणाम् ॥३१॥

इसी तरह जिस मनुष्य को जहां अदृश्य सूर्य दृश्य हो, और दृश्य सूर्य अदृश्य होता है, वहीं उस मनुष्य को उदय-अस्त होता है । (३१)

नन्वेवं सति सूर्य स्योदयास्तमयने खलु ।

स्यातामनियते बाढं स्तो यदुक्तं पुरातनैः ॥३२॥

यहां प्रश्न करते हैं कि - यदि इस तरह हो तो सूर्य का उदय और अस्त अनियत हो जायेगा ? इसका उत्तर देते हैं - यह इसी तरह ही है, सूर्य उदय अस्त अनियत है । इस सम्बन्ध में पूर्वाचार्यों ने कहा है कि :- (३२)

जहं जह समए समए पुरओ संचरइ मक्खरो गयणो ।

तह तह इओ वि मियमा जायइ रयणीइ भावत्थो ॥३३॥

जैसे-जैसे समय-समय पर सूर्य आकाश में आगे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे वहां-वहां उसके पीछे रात्रि होती जाती है, यह स्वाभाविक ही है । (३३)

एवं च सइ नराणां उदयत्थमणाइ होतऽनिययाइ ।

सइ देसकाल भेए कस्सइ किंचिव दिस्सए नियमा ॥३४॥

इस तरह अमुक मनुष्य को सूर्य का उदय-अस्त देशकाल के भेद से अनियमित होता है, परन्तु वह अमुक को तो नियमित रूप में दिखता है । (३४)

सइ चेव अनिहिट्ठो रूद्धमुहूर्त्तो कमेण सब्बेसिं ।

तेसिं चीदाणिंपि य विसय पमाणो रवी जेसिं ॥३५॥

यह सबको क्रमशः अदृश्य होता जाता है, और वापिस क्रमशः उन को दिखता जाता है, उसकी अपेक्षा से वह सूर्य अस्त, उदय होता माना जाता है । (३५)

भगवती सूत्र शतक ५ प्रथमोद्देशक वृत्तौ ॥

इति सूर्य मण्डल संख्या प्रसंगात् द्विषय व्यवस्था च ॥२॥

इस प्रकार से भगवती सूत्र के पांचवे शतक के पहले उद्देश की टीका में कहा है । ' इस तरह से सूर्य के मण्डलों की संख्या के विषय में तथा प्रसंगोपात् उनके विषय की व्यवस्था सम्बन्धी कथन सम्पूर्ण हुआ । (२) '

वाच्याऽथ मण्डलाबाधा त्रिविधा सा निरूपिता ।

ओघतो मण्डलक्षेत्राबाधाधिकृत्य मन्दरम् ॥३६॥

मेरुमेवाधिकृत्यान्या चाबाधा प्रतिमण्डलम् ।

मण्डले मण्डलेऽबाधा तृतीया त्वर्कयोः मिथः ॥३७॥

अब इस मण्डल की अबाधा निरूपण करते हैं :- मण्डल की अबाधा तीन प्रकार की है । १- सर्व मंडलों की मेरु पर्वत को अपेक्षी के कारण ओघ से अबाधा, २- मेरु पर्वत को ही अपेक्षी से प्रत्येक मंडल की अबाधा और ३- दोनों सूर्य की परस्पर के मंडल-मंडल की अबाधा इस तरह तीन प्रकार कहा है । (३६-३७)

सहस्राणि चतुश्चत्वारिंशदष्टौ शतानि च ।

विंशानि मेरुतो दूरे मण्डल क्षेत्रमोघतः ॥३८॥

तथाहि जम्बू द्वीपान्तः सर्वाभ्यन्तर मण्डलम् ।

साशीतियोजनशतं स्थितं वगाह्य सर्वतः ॥३९॥

ततश्च द्वीप विष्कम्भाल्लक्ष रूपाद्वियोज्यते ।

साशीति योजन शतं प्रत्येकं पार्श्वयोः द्वयोः ॥४०॥

सहस्रा नवनवतिश्चत्वारिंशा च षट्शती ।

ईदृग्रूपः स्थितो राशिस्मादप्यपनीयते ॥४१॥

सहस्राणि दश व्यासो मेरोस्ततोऽवशिष्यते ।

नवा शीतिः सहस्राणि चत्वारिंश च षट्शती ॥४२॥ युग्मं ।

इन तीन प्रकार में से प्रथम प्रकार-ओघ से अबाध विषय कहते हैं - सूर्य के मण्डलों का क्षेत्र मेरु पर्वत से चवालीस हजार आठ सौ बीस योजन दूर है । वह इस प्रकार :- सर्व से अभ्यन्तर मण्डल जम्बू द्वीप में चारों तरफ एक सौ अस्सी योजन अवगाही करके रहा है । इससे इस द्वीप के एक लाख योजन प्रमाण

विस्तार में से दोनों ओर के एक सौ अस्सी, एक सौ अस्सी योजन निकालने पर निम्नान्वे हजार छः सौ चालीस योजन रहेगा । इसमें से भी मेरू पर्वत का दस हजार योजन प्रमाण निकालने पर नवासी हजार छः सौ चालीस योजन रहता है ।
(३८-४२)

एतावान् मण्डल क्षेत्रे मेरूव्यासो न यद्यपि ।

तथापि भूतलगतो व्यवहारादि ह्योच्यते ॥४३॥

सूर्य मंडल के क्षेत्र में मेरू पर्वत का इतना व्यास नहीं है, फिर भी उसका पृथ्वीतल पर दस हजार योजन का व्यास होता है, वही यहां पर व्यवहार से कहा है। (४३)

(यह सूर्य मण्डल जमीन से आठ सौ योजन ऊंचा है । वहां मेरू पर्वत का विस्तार ११ योजन में एक योजन घटता है, तो ८०० योजन में ७२ ८/११ घटता है परन्तु उस हिसाब से नहीं लिया है ।)

“तथाहुः श्री मलय गिरि पादा बृहत्क्षेत्र समास वृत्तौ । यद्यपि च नाम मण्डल क्षेत्रे मेरो विष्कम्भो दश योजन सहस्रात्मको न लभ्यते किन्तु ऊनः तथापि धरणि तले दशयोजन सहस्र प्रमाणः प्राप्यते इति तत्रापि स तावान् व्यवहारतः विवक्ष्यते ॥”

‘इस सम्बन्ध में पूज्यपाद आचार्य देव श्री मलय गिरि की बृहत्क्षेत्र समास की टीका में कहा है कि - मंडल क्षेत्र मेरू पर्वत का व्यास दस हजार योजन जितना नहीं है, किन्तु कम है फिर भी पृथ्वीतल पर यह दस हजार योजन प्रमाण होने से यहां भी व्यवहार से दस हजार योजन कहलाता है ।’

अस्मिन्नाशावद्धिते च सम्पद्यते यथोदितम् ।

ओघ तो मण्डल क्षेत्रान्तरं मेरूव्यपेक्षया ॥४४॥

उसके बाद इस राशि (८८६४०) को आधा करने से मण्डल के क्षेत्र का अन्तर मेरू पर्वत की अपेक्षा से पूर्व कहे अनुसार ४४८२० योजन ओघ से होता है।
(४४)

इति मेरू प्रतीत्य मण्डल क्षेत्रा बाधा ॥१॥

इस प्रकार से मेरू पर्वत के अपेक्षी, मण्डल के क्षेत्र की ओघ से अबाधा कहा (१)

एतदेवान्तरं मेरोः सर्वान्तरमंडलस्य च ।

अतः परं यदपरं नास्ति मंडलमान्तरम् ॥४५॥

पूर्व में कहा है वह अन्तर है, मेरू और सर्व से अभ्यन्तर मंडल बीच में है क्योंकि उसके बाद दूसरा अभ्यन्तर मंडल नहीं है । (४५)

सर्वान्तरानन्तरे तु द्वितीयमंडले ततः ।

साष्टाचत्वारिंशदंशं वर्द्धते योजनद्वयम् ॥४६॥

इत्थं प्राग्मंडलादग्य मंडल योजन द्वयम् ।

साष्टा चत्वारिंश दंशम बाधायां विवर्द्धते ॥४७॥

सर्वाभ्यन्तर मंडल के बाद का दूसरे मण्डल में दो योजन के अड़तालीस अंश अन्तर बढ़ता है, और इसी तरह पूर्व के मंडल के आगे के मंडल में ओषरं अबाधा में दो योजन अड़तालीस अंश बढ़ता है । (४६-४७)

एवं यावत्सर्वबाह्यमंडलं, मेरूतः स्थितम् ।

सहस्रैः पंचचत्वारिंशता त्रिंशै त्रिभिः शतैः ॥४८॥

इति मेरू प्रतीत्य प्रतिमंडलम बाधा ॥२॥

इस तरह से गिनते सर्व बाह्य मंडल मेरू पर्वत से पैंतालीस हजार तीन सौ तीस योजन दूर रहता है । (४८) इस प्रकार से मेरूपर्वत के आश्रित प्रत्येक मण्डर की अबाधा कहा है ।

यदाकौ चरतः प्राप्य सर्वाभ्यन्तर मंडलम् ।

तदा सूर्यस्य स्यात् परस्परमन्तरम् ॥४९॥

सहस्रा नवनवतिश्चत्वारिंशाश्चषट्शती ।

द्वीप व्यासादुभयतो मंडल क्षेत्र (१८०) कर्षणात् ॥५०॥ युग्मं ॥

जब दोनों सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल में घूमते हैं तब उनका परस्पर अन्तर्निन्यानवें हजार छः सौ चालीस योजन होता है, द्वीप के एक लाख योजन प्रमाण विस्तार में से मंडल क्षेत्र के दोनों तरफ से एक सौ अस्सी योजन, कुल मिलाकर ३६० योजन निकाल देने से यह संख्या आती है । (४९-५०)

सर्वान्तरानन्तरौ तौ द्वितीयं मंडलं यदा ।

उपसंक्रम्य चरतः तदामिथोऽन्तरं तयोः ॥५१॥

सहस्रा नवनवति योजनानां च षट्शती ।

पंच चत्वारिंशदाढया पंच त्रिंशत्तथा लवाः ॥५२॥ युग्मं ।

सब अभ्यन्तर मंडल के बाद जब ये दोनों सूर्य दूसरे मंडल में फिरते हैं, उनका परस्पर अन्तर (दूरी) निम्नानवें हजार छः सौ पैंतालीस योजन और पैंतीस सब जितना रहता है । (५१-५२)

तथा होकोऽप्यर्क इह द्वितीय मंडले व्रजन् ।

साष्टाचत्वारिंशदंशे द्वे योजने व्यतिक्रमेत् ॥५३॥

एवं द्वितीयोऽपि ततोवर्द्धन्ते प्रतिमंडलम् ।

योजनानि पंच पंचत्रिंशद्भागानि मिथोऽन्तरे ॥५४॥

एवं भावत्सर्व बाह्य मंडले चरतस्तदा ।

तयोः मिथोऽन्तरं लक्ष सषष्टीनि शतानि षट् ॥५५॥

अन्तर्विंशन्तौ तो सर्व बाह्य मंडलतः पुनः ।

अर्वाचीने सर्व बाह्याद्वर्त्तते मंडले यदा ॥५६॥

तदार्कयोरन्तरं स्याल्लक्षमेकं शतानि षट् ।

चतुः पंचाशानि लवाः षड् विंशतिः पुरोदिताः ॥५७॥

एवमन्तः प्रविशतः प्रतिमंडलमन्तरम् ।

पंचभिर्द्योजनैः पंचत्रिंशतांशैश्च हीयते ॥५८॥

वह इस तरह - एक सूर्य दूसरे मंडल में गया अतः दो योजन और अड़तालीस अंश दूर जाता है, इसी तरह दूसरा सूर्य भी इस प्रकार करने से दूर जाता है, इससे प्रत्येक मंडल में उनका परस्पर अन्तर पांच योजन पैंतीस अंश बढ़ जाता है । इसी प्रकार से जब ये दोनों सूर्य सर्व बाह्य मंडल में विचरते हैं, तब उनका परस्पर अन्तर एक लाख छः सौ साठ योजन होता है । उसके बाद सर्व बाह्य मंडल में से पुनः अन्दर प्रवेश होते समय में सर्व बाह्य मंडल के पास का प्रथम मंडल में आता है तब दोनों सूर्यों के बीच का अन्तर एक लाख छः सौ चौवन योजन और छत्तीस अंश होता है । इस तरह अन्दर आए प्रत्येक मंडल में उनका अन्तर पांच योजन और पैंतीस अंश घटता जाता है । (५३-५८)

एवं पूर्वोदितमेव सर्वाभ्यन्तर मंडले ।

मिथोऽन्तरं द्वयोः भान्वोः पुनस्तदवशिष्यते ॥५९॥

इस तरह से सर्व अभ्यन्तर मण्डलों में दोनो सूर्यो का परस्पर अन्तर पूर्व में कहे अनुसार ६६६४० योजन शेष रहता है । (५६)

इति मंडल मंडले सूर्ययोः परस्परम बाधा ॥ ३ ॥ इति मण्डलाबाधा प्ररूपणा ॥३॥

इस प्रकार से मण्डल-मण्डल में सूर्यो का परस्पर अबाधा कहा है । (३) यह तीसरी मंडलाबाधा की प्ररूपणा पूर्ण हुई (३)

द्वे द्वे च योजने सूर्य मण्डलानां मिथोऽन्तरम् ।

कथमेतद् इति श्रोतुं श्रद्धा चेत् श्रूयतां तदा ॥६०॥

अब मण्डलों के अन्तर विषय कहते हैं । सूर्य के मण्डलों का परस्पर अन्तर दो-दो योजन का है । वह किस प्रकार का है, वह श्रद्धा-पूर्वक सुनो जैसा मैंने सुना है । - (६०)

सूर्य मण्डल विष्कम्भे स्फुरच्चतुरशीतिना ।

शतेन गुणिते त्यक्ते मण्डलक्षेत्रविस्तृतेः ॥६१॥

शेषा स्थिता योजनानां सषट्षष्टिः शतत्रयी ।

सत्र्यशीतिशतेनास्यां भक्तायामेतदन्तरम ॥६२॥

इति मण्डलाऽन्तर प्ररूपणा ॥४॥

सूर्य मंडल की चौड़ाई ४८/११ को १८४ से गुणा करने से जो संख्या आती है, उसे मंडल क्षेत्र की चौड़ाई में से निकाल देने पर ३६६ योजन रहता है, और इसे १८३ द्वारा भाग देने पर दो योजन आता है । (६१-६२) इस तरह से मंडल का अन्तर का कथन कहा है । (४)

कर्त्तव्या मण्डलचारप्ररूपणा च सम्प्रति ।

सप्तानुयोगद्वाराणि तत्राहुः तत्त्ववेदिनः ॥६३॥

अब मंडल की गति विषय कहते हैं, इसके लिए तत्त्ववेत्ता महापुरुषों ने सात अनुयोग द्वार कहे हैं वह इस प्रकार :- (६३)

प्रत्यब्दं मण्डलचार संख्या प्ररूपणा रवेः ।

वर्षान्तः प्रत्यहं रात्रि दिनमान प्ररूपणाः ॥६४॥

मण्डले मण्डले क्षेत्र विभागेनाप्यहर्निशोः ।

प्ररूपणा मण्डलानां परिक्षेपप्ररूपणा ॥६५॥

प्रति मण्डलं मुहूर्त्तं गतिमानप्ररूपणा ।

मण्डले मण्डले दृष्टियथ प्राप्तिप्ररूपणा ॥६६॥

प्ररूपणा सप्तमी च ख्यातार्धमण्डलस्थितेः ।

अनुयोगद्वारमथ प्रथमं परितन्वते ॥६७॥

१- प्रत्येक वर्ष में सूर्य के मण्डल में गति की संख्या, २- वर्ष में हमेशा की रात्रि और दिन का प्रमाण, ३- प्रत्येक मंडल में क्षेत्र विभाग अनुसार रात-दिन, ४- मण्डल का परिक्षेप अर्थात् घेरावा, ५- प्रत्येक मंडल में एक मुहूर्त्त में गति का माप, ६- प्रत्येक मण्डल में दृष्टि पथ प्राप्ति और ७- अर्धमण्डल की स्थिति । ये सात अनुयोग द्वार हैं । इन सात द्वार में से प्रथम द्वार के विषय में कहते हैं । (६४-६७)

चरतोऽर्को यदा सर्वान्तरानन्तर मण्डले ।

सूर्यसंवत्सरस्याहोरात्रोऽयं प्रथमस्तदा ॥६८॥

जब दोनों सूर्य सर्व प्रकार से अभ्यन्तर मंडल के बाद के मंडल में फिरता है, तब संवत्सर का प्रथम दिन-रात कहलाता है । (६८)

त्र्यशीतियुक् शततमे द्वैतीयीकालु मण्डलात् ।

परिपाद्या सर्वबाह्यामण्डले तौ यदागतौ ॥६९॥

संपूर्णाः सूर्यवर्षस्य षणमासाः प्रथमे यदा ।

एतदेव च वर्षेऽस्मिन् दक्षिणायनमुच्यते ॥७०॥ युग्मं ॥

उसके बाद जब वे दूसरे मण्डल में घूमते हुए अनुक्रम से एक सौ तिरासी दिन में, अर्थात् सर्व प्रकार से बाहर के मण्डल में आता है, तब सूर्य वर्ष के प्रथम छः महीने होते हैं, जो इस वर्ष का दक्षिणायन कहलाता है । (६९-७०)

सर्वबाह्यावर्तिनेऽथ मण्डलेऽर्को यदा पुनः ।

तदोत्तरायणस्याहोरात्रोऽयं प्रथमो भवेत् ॥७१॥

जब वे दोनों सूर्य सर्वबाह्य मंडल से अन्दर के पहले मंडल में आते हैं, तब वह उत्तरायण का प्रथम दिन रात होता है । (७१)

त्र्यशीतियुक्शततमे बाह्यार्वाचीन मण्डलात् ।

यदा क्रमाद्रवी प्राप्तौ सर्वाभ्यन्तर मण्डले ॥७२॥

पूर्णा द्वितीया षणमासाः पूर्णं तथोत्तरायणम् ।

पूर्णं वर्षं स षट्षष्ट्यहोरात्रिणि शतात्मकम् ॥७३॥

उसके बाद फिरते हुए दोनों सूर्य बाहर के पहले मंडल से सर्व के अन्दर एक सौ तिरासी दिन में मंडल में आते हैं, तब दूसरे छः महीने पूरे होते हैं । अतः उत्तरायण सम्पूर्ण होता है और तीन सौ छियासठ दिन रात का एक वर्ष पूर्ण होता है । (७२-७३)

एवं च :-

सर्वान्तर सर्व बाह्य मण्डलयोः किलैकशः ।

प्रत्यब्दं सूर्यचारः स्यात् सर्वेष्वन्येषु च द्विशः ॥७४॥

इस तरह से १- सर्व से अन्दर और २- सर्व से बाहर के इस प्रकार दो मंडलों में एक-एक बार और शेष सर्व मंडलों में दो बार प्रत्येक वर्ष में सूर्य का गमनागमन (आना जाना) होता है । (७४)

“तथा च आगमः । ज आणं सूरि ए सव्वम्भन्तराओ मंडलाओ सव्वबाहिरं मंडलं उवसकं मित्ता चार चरइ सव्व वाहिराओ य मंडलाओ सव्वभन्तर मंडलं उवसकं मित्ता चार चरइ ए सणं अद्दा केवइएणं राइं दियग्गेणं आहियत्तिवएज्जा ॥ तिन्नि छावट्ठे राइंदियसए राइंदियग्गेण आहियत्तिवएज्जा ॥ ता ए याएणं अद्दाए सूरि ए कइ मंडलाइ चरइताः । चुल सीयं मंडलसयं चारं चरइ, बासीयं मंडल सयं दुप्पुत्तो चरइ । तं जहां निक्ख समाणं चैव पवि समाणे चैव दुवेय खलु मंडलाइं सइं चरइ । तं जहा । सव्वभन्तरं चैव सव्व वाहिरं चैव मंडलं ॥”

इति मंडल चार संख्या प्ररूपणा ॥

“इस सम्बन्ध में आगम के अन्दर उल्लेख मिलता है कि - सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल से संक्रमण करके, सर्व बाह्य मंडल में आता है और वापिस सर्व बाह्य मंडल से संक्रमण करके सर्वाभ्यन्तरमंडल में गमन करता है, उतने काल कितने अहोरात कहलाते हैं ? उत्तर - उतने काल में तीन सौ छियासठ अहोरात कहलाता है उतने समय में सूर्य कितने मंडल में फिरते हैं ? उत्तर - उतने समय में सूर्य एक सौ चौरासी मंडलों में फिरते हैं । उसमें से एक सौ बयासी मंडल में दो दो बार फिरते हैं (फिर कर निकलते हैं और फिर प्रवेश करते हैं इस तरह दो बार) और एक सबसे बाहर का । इस तरह दो मंडल में वे एक ही बार फिरते हैं ।”

इसके अनुसार प्रत्येक वर्ष के मण्डल की चार (गति) संख्या की प्ररूपणा की । यह प्रथम अनुयोग द्वार है ।

आक्रमेते यदा भानू सर्वाभ्यन्तर मंडले ।

अष्टादश मुहुर्त्तात्मा सर्वेत्कृष्टा दिनस्तदा ॥७५॥

रात्रिः सर्वजघन्या तु स्यात् द्वादश मुहुर्त्तिका ।

अथ क्रमात् रात्रिवृद्धिः भावनीया दिन क्षतिः ॥७६॥ युग्मं ॥

अब दूसरा अनुयोग द्वार के विषय में कहते हैं - जब दोनों सूर्य सर्व अभ्यन्तर मंडल में संक्रमण करते हैं, तब दिन बड़े में बड़ा अठारह मुहुर्त्त का होता है और रात्रि छोटे में छोटी बारह मुहुर्त्त की होती है, फिर क्रमशः दिन छोटा होता जाता है और रात्रि लम्बी होती है । (७५-७६)

यदा तस्माद्विनिर्यान्तौ सर्वाभ्यन्तर मण्डलात् ।

आरभमाणौ नत्याद्वमहोरात्रेऽस्य चादिमे ॥७७॥

संक्रम्य चरतः सर्वाभ्यन्तरानन्तर स्थितम् ।

द्वितीयं मण्डलं सूर्यो द्वीपमन्दिर दीपकौ ॥७८॥

द्वाभ्यां मुहुर्त्तैकषष्टि भागाभ्यां दिवसस्तदा ।

हीयतेवासतेयी च ताभ्यामेवविवर्द्धते ॥७९॥ त्रिभि विशेषकं ॥

जब द्वीपरूपी मन्दिर के दीप समान दोनों सूर्य इस सर्वाभ्यन्तर मण्डल से निकलते हुए नये वर्ष का प्रारंभ करता है, तब उसके पहले अहो रात्रि में वह सर्वाभ्यन्तर मंडल के पास रहता है, तब दूसरे मण्डल में गमन करता है, और उस समय में २/६१ मुहुर्त्त जितना दिन कम होता है और रात्रि उतनी लम्बी होती है । (७७-७९)

अहोरात्रे द्वितीयेऽस्य तृतीयमंडले यदा ।

संक्रान्तौ तरणी सर्वान्तरानन्तर मण्डलात् ॥८०॥

मुहुर्त्तैकषष्टि भागैश्चतुर्भिः दिवसस्तदा ।

हीयते वर्द्धते रात्रिः भागैस्तावद्भिरेव च ॥८१॥ युग्मं ॥

इस वर्ष में दूसरी अहो रात में जब ये सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल से तीसरे मंडल में प्रवेश करता है तब दिन ४/६१ मुहुर्त्त प्रमाण कम होता है और रात इसके अनुसार लम्बी होती जाती है । (८०-८१)

एवं मुहुर्त्तैकषष्टि भागौ द्वौ प्रतिमण्डलम् ।

हापयन्तौ दिनक्षेत्रे वर्द्धयन्तो निशा दिशि ॥८२॥

अर्को यदासर्वबाह्यमण्डले समुपस्थितौ ।
 अहोरात्रेऽस्य वर्षस्य त्र्यशीतियुक् शतोन्मिते ॥८३॥
 तदा ताम्यां मुहूर्त्तैकषष्टयंशानां शतत्रयम् ।
 सषट्षष्टिदिनांकृष्टं रजन्यां चाभिवर्द्धितम् ॥८४॥
 तावद्भिश्च मुहूर्त्तैकषष्टि भागेर्यथोदितैः ।
 विभाजितैरेकषष्टया मुहूर्त्तानि भवन्तिषट् ॥८५॥
 अहोरात्रेऽस्यऽत्र तद्रात्रिरष्टादशमुहूर्त्तिका ।
 उत्कृष्टाहश्चापकृष्टं स्यात् द्वादशमुहूर्त्तकम् ॥८६॥
 याम्यायनस्य पूर्णस्याहोरात्रोऽयं किलान्तिमः ।
 त्र्यशीतियुगहोरात्रशतेनेदं हि पूर्यते ॥८७॥

इस तरह प्रत्येक मण्डल में २/६१ मुहूर्त्त जितना दिन अल्प होते जाते हैं और इतने प्रमाण में रात्रि बड़ी होती जाती हैं । जब दोनों सूर्य वर्ष के १८३वें अहोरात्र में सर्व से बाहर के मंडल में आता है, तब दिन ३६६/६१=६ मुहूर्त्त प्रमाण छोटा होता है । और इतने प्रमाण में रात्रि लम्बी होती है, अतः दिन अठारह के बदले बारह मुहूर्त्त का होता है, और रात्रि इसी प्रमाण में लम्बी अर्थात् बारह के बदले अठारह मुहूर्त्त की होती है । यह १८३वा अहोरात्र जब पूर्ण होता है । दक्षिणायन का आखिर अहोरात्र होता है, इस तरह दक्षिणायन १८३ अहोरात्र से पूर्ण होता है । (८२-८७)

लोके तु :-

रसद्विनाडयोऽर्कपला मृगेस्यु, स चाप कुम्भेऽष्टकृतैः पलैस्ताः ।
 अलौ च मीनेऽष्टयमाः सशक्रा मेषे तुलाग्रामपि त्रिंशदेव ॥८८॥
 कन्या वृषे यूशिखिनोऽङ्ग वेदाः सार्कास्त्रिरामा मिथुने च सिंहे ।
 कर्के त्रिरामा वसुवेदयुक्ता एषा मितिः संक्रमवांसराणाम् ॥८९॥

लोक रूढि तो इस तरह है - दिनमान मकर संक्रान्ति में छब्बीस घड़ी और बारह पल होती है, धनुष्य (धन) और कुंभ संक्रान्ति में छब्बीस घड़ी और ४८ पल होते हैं, वश्चिक और मीन संक्रान्ति में अट्ठाईस घड़ी और चौदह है, मेष और तुला संक्रान्ति में तीस घड़ी है, कन्या और वृष संक्रान्ति में इकतीस घड़ी और छियालीस पल है, मिथुन और सिंह संक्रान्ति में तैंतीस घड़ी और बारह पल हैं तथा कर्क संक्रान्ति में तैंतीस घड़ी और अड़तालीस पल होते हैं । (८८-८९) इसका कोष्टक इस प्रकार है :-

राशि	म०	घ०	कृ०	वृ०	मी०	मे०	तु०	क०	वृष	मि०	सि०	कर्क
घड़ी	२६	२६	२६	२८	२८	३०	३०	३१	३१	३३	३३	३३
पल	१२	४८	४८	१४	१४	०	०	४६	४६	१२	१२	४८

ततश्च :-

एकार्कपक्षद्विशरास्त्रिदन्ताः त्रिदन्तपक्षद्विशराःकुसूर्याः ।

मृगादि षट् केऽहनि वृद्धि रेवम् कर्कादिषट् केऽपचितिः पलाढया ॥६०॥

इससे मकर संक्रान्ति से छः संक्रान्ति तक अनुक्रम से १२१, ५२२, ३२३, ३२३, ५२२, १२१ पल की वृद्धि होती है और कर्क संक्रान्ति से धन संक्रान्ति तक छः संक्रान्ति में उसी अनुक्रम से उतने पल दिन में घटते हैं । (६०)

यह सारी बात उसके असल स्थान देखे बिना निश्चय नहीं हो सकता है ।

प्रविशन्तौ सर्वं बाह्य मण्डलात्तरणी यदा ।

संक्रम्य चरतः सर्वं बाह्यार्वाचीन मण्डले ॥६१॥

तदा द्वाभ्यां मुहूर्तैकषष्टयंशाभ्यां विवर्द्धते ।

दिवसः क्षीयते रात्रि स्ताभ्यामेव यथोत्तरम् ॥६२॥ युग्मं ॥

सर्व से बाहर के मंडल में से, संक्रमण करके दोनों सूर्य जब बाहर से अन्दर के पहले मंडल में प्रवेश करता है तब दिन २/६१ मुहूर्त लम्बा होता है । और रात्रि उतनी छोटी होती है । (६१-६२)

क्रमादेवं यदा प्राप्तौ सर्वाभ्यन्तर मण्डले ।

त्र्यशीतियुक्शततमे बाह्यार्वाचीन मण्डलात् ॥६३॥

तदोत्कृष्टं दिनमानमष्टादश मुहूर्तकम् ।

रात्रिः सर्वजघन्याः तु स्यात् द्वादश मुहूर्तिका ॥६४॥ युग्मं ॥

एतदेवोदगयनस्थान्त्यं दिनमुदीरितम् ।

पूर्णे चास्मिन्नहोरात्रे संपूर्णः सूर्यवत्सरः ॥६५॥

इस तरह वे अनुक्रम से जब सूर्य से अन्दर के मंडप में अर्थात् बाहर के अर्वाचीन मंडल से एक सौ तिरासीवें मंडल के अन्दर प्रवेश करता है तब दिनमान उत्कृष्ट अर्थात् अठारह मुहूर्त का होता है, और रात्रि जघन्य बारह मुहूर्त की होती है । यह दिन उत्तरायण का अन्तिम दिन होता है । यह अहो रात पूर्ण हो तब सूर्य सम्वत्सर संपूर्ण होता है । (६३-६५)

अत्युत्कृष्टं चापकृष्टं प्रत्यद्वमेकमेव हि ।

दिनं रात्रिस्तथैवैका सर्वोत्कर्षायकर्षमाक् ॥६६॥

इस तरह प्रत्येक वर्ष में लम्बे में लम्बा एक ही दिन आता है, और छोटे में छोटा भी एक ही दिन आता है । रात भी इसी तरह लम्बी में लम्बी एक ही तथा छोटी में छोटी भी एक ही आती है । (६६)

रात्रिर्याम्यायनान्तेऽतिगुर्वी लघुतमं दिनम् ।

दिनसौम्यायनान्तेऽतिगुरुः निशा लधीयसी ॥६७॥

दक्षिणायन के आखिर में रात्रि सब से बड़ी और दिन सबसे छोटा होता है, जब उत्तरायण के आखिर दिन सबसे बड़ा होता है, और रात सब से छोटी होती है। (६७)

“तथा च सिद्धान्तः ॥ इह खलु तस्मेयं आइच्चसंवच्छ रस्ससइं अट्टारसमुहुत्ते दिवसे भवइ । सइं अट्टारस मुहुत्ताराइ भवइ । सइं दुवाल समुहुत्तो दिवसो भवइ ॥ सइं दुवाल समुहुत्तो राइ भवइ ॥”

‘इस विषय में सिद्धान्त में भी उल्लेख मिलते हैं वह इस प्रकार सूर्य संवत्सर का एक ही दिन अट्टारह मुहुर्त्त का होता है, और रात्रि भी एक ही बारह मुहुर्त्त की होती है । दिन भी एक ही बारह मुहुर्त्त का होता है, और रात्रि भी एक ही अट्टारह मुहुर्त्त की होती है ।’

जम्बू द्वीपे यदा मेरोः दक्षिणोत्तरयोः दिनम् ।

चकितेव सदा रात्रिः स्यात् पूर्वापरयोः दिशोः ॥६८॥

जम्बू द्वीप में जब मेरु पर्वत से दक्षिण और उत्तर में दिन होता है, तब रात्रि मानो उससे भयभीत बनकर जाती हो, इस तरह वह उसके पूर्व और पश्चिम दिशा में होती है । (६८)

जम्बू द्वीपे यदा मेरोर्दक्षिणोत्तरयोर्निशा ।

तदास्याद् वासरो मेरोः पूर्व पश्चिमयोर्दिशोः ॥६९॥

जम्बूद्वीप में जब मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण दिशा में रात्रि हो, तब मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम दिशा में दिन होता है । (६९)

सर्वोत्कृष्टं दिनमानं दक्षिणोत्तरयोर्यदा ।

रात्रिः सर्वजघन्या स्यात् पूर्व पश्चिमयोस्तदा ॥१००॥

सर्वोत्कृष्टं दिनमानं पूर्वं पश्चिमयोर्यदा ।

रात्रिः सर्वजघन्या स्यात् दक्षिणोत्तरयोस्तदा ॥१०१॥

दक्षिण और उत्तर दिशा में जब सर्वोत्कृष्ट दिनमान होता है, तब पूर्व और पश्चिम दिशा में सर्व जघन्य रात्रि होती है । और पूर्व तथा पश्चिम में जब सर्वोत्कृष्ट दिनमान होता है, तब दक्षिण तथा उत्तर दिशा में सर्व से जघन्य रात्रि होती है । (१००-१०१)

किं च क्षेत्रेषु सर्वेषु सम मानमहर्निशोः ।

किन्वेतयोरवस्थाने यथोक्तः स्याद्विपर्ययः ॥१०२॥

यद्यपि सर्व क्षेत्रों में दिन रात का मान समान होता है, फिर भी अवस्थान में पूर्व कहे अनुसार फेरफार होता है । (१०२)

क्षेत्रे काले च सर्वस्मिन्नहोरात्रो भवेद् ध्रुवम् ।

त्रिंशन्मुहूर्तं प्रमाणो न तु न्यूनाधिकः क्वचित् ॥१०३॥

सर्व क्षेत्र में और सर्व काल में अहो रात्रि तो तीस मुहूर्त का ही होता है । कभी भी और कहीं पर भी ज्यादा नहीं होती है । (१०३)

लोके तु :-

भवेत् पैत्रं त्वहोरात्रं मासेनाब्देन दैवतम् ।

दैवे युगं सहस्रे द्वे ब्राह्म्यं कल्पौ तु तौ नृणाम् ॥११॥

लोक रूढि इस तरह से है - पितृ का अहो रात एक महीने का होता है, देवों का अहोरात एक वर्ष का होता है और ब्रह्मा का अहोरात्रि देव के दो हजार वर्ष युग का होता है । यह ब्रह्मा की अहोरात्रि में मनुष्य के दो कल्प कहलाते हैं । (१)

“एवमहो रात्रे विशेषं वदन्ति । अत एव दक्षिणायनं देवानां रात्रिः उत्तरायणं तेषां दिनम् इति शुभकार्यं तत्र विहितमिति मन्यन्ते ॥”

‘इस तरह अहोरात्रि के सम्बन्ध में फेर फार है । इस प्रकार से दक्षिणायन में उन देवों की रात्रि कहलाती है और उत्तरायण में उनका दिन कहलाता है । इससे शुभकार्य उत्तरायण में करना चाहिए । ऐसी लोक मान्यता है ।’

ननु चाष्टादश मुहूर्तात्माहर्भरते यदि ।

स्यात्तदा च विदेहेषु रात्रिः सर्व लघीयसी ॥१०४॥

तर्हि रात्रेर्द्वादशानां मुहूर्त्तानां व्यतिक्रमे ।

स्यात् क्षेत्रे तत्र कः काल इति चेदुच्यते शृणु ॥१०५॥

यहां प्रश्न करते हैं कि - जिस समय भरत क्षेत्र में अट्टारह मुहूर्त्त का दिन होता है, उस समय महाविदेह क्षेत्र में रात्रि बारह मुहूर्त्त की छोटी में छोटी होती है। तो फिर उस रात्रि के बारह मुहूर्त्त व्यतिक्रम (सिलसिले) में तब उस क्षेत्र में कौन काल आता है ? (१०४-१०५)

द्वारात्रिमानविश्लेषे शेषार्थार्थं भवेत् द्वयेः ।

सामान्यं क्षेत्रयो रात्रि दिन पूर्वापरांशयोः ॥१०६॥

उत्तर - दिनमान और रात्रिमान का समय निकालने पर जो शेष रहे उसका आधा-आधा दोनों क्षेत्र में रात्रि-दिन के पूर्व और पश्चिमांश में सामान्य रूप से रहता है । (१०६)

तद्यथा -

क्षणेभ्यो ऽष्टादशभ्यो द्वादशापकर्षणो स्थिताः ।

षट् तदर्थे त्रयं साधारणं ज्येष्ठदिनोषयोः ॥१०७॥

वह इस तरह-अठारह मुहूर्त्त में से बारह निकाल देने में शेष छः मुहूर्त्त रहते हैं । इसका आधा तीन होता है वह उत्कृष्ट दिन और रात्रि में सामान्य रूप में रहता है । (१०७)

एवं च - अष्टादश मुहूर्त्तात्मा यदोत्कृष्ट दिनस्तदा ।

पश्चात्त्रिक्षणशेषेऽहि भवेत् भानूदयोऽग्रतः ॥१०८॥

और वह इस प्रकार से जब अठारह मुहूर्त्त का उत्कृष्ट दिन होता है, तब पिछले भाग में तीन मुहूर्त्त दिन शेष रहता है । तब अगले विभाग में सूर्य का उदय होता है । (१०८)

तथाहि - मुहूर्त्तत्रयशेषद्वि भरतैरवताख्ययोः ।

भवेदभ्युदयो भानोः पूर्वापरविदेहयोः ॥१०९॥

दिने त्रिक्षण शेषे च पूर्वापरविदेहयोः ।

स्यात् भरतैरवतयोः तरणोरुदयः खलु ॥११०॥

वह इस प्रकार भरत और ऐरवत क्षेत्र में जब तीन मुहूर्त्त दिन शेष रहता है, तब पूर्व और पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में सूर्योदय होता है । तथा पूर्व और पश्चिम

महाविदेह क्षेत्र में तीन मुहूर्त्त दिन शेष रहता है, तब भरत और ऐरवत क्षेत्र में सूर्य का उदय होता है । (१०६-११०)

एवं च -

स्यात् भरतैरवतयोः अह्नोऽन्त्यं तत्क्षणत्रयम् ।

ज्येष्ठेऽहनि तदेवाद्यं पूर्वापरविदेहयोः ॥१११॥

दिने गुरौ यदेवाद्यं पूर्वा परविदेहयोः ।

तत् भरतैरवतयोरह्नोऽन्त्यं स्यात्क्षणत्रयम् ॥११२॥

इस तरह से, भरत और ऐरवत क्षेत्र में उत्कृष्ट दिन के अन्तिम तीन मुहूर्त्त है, वही पूर्व और पश्चिम महाविदेह क्षेत्र के दिन के पहले तीन मुहूर्त्त होता है । और पूर्व तथा पश्चिम महाविदेह में उत्कृष्ट दिन के पहले तीन मुहूर्त्त होता है, तब भरत व ऐरवत क्षेत्र के दिन का अन्तिम तीन मुहूर्त्त होता है । (१११-११२)

तथा - अष्टादश मुहूर्त्ता स्यात् यदोत्कृष्टा निशा तदा ।

तन्मुहूर्त्तत्रयेऽतीते भवेदकोदयः पुरः ॥११३॥

तथा जब रात्रि बड़ी में बड़ी अठारह मुहूर्त्त की होती है उस समय उसके तीन मुहूर्त्त व्यतीत होने के बाद के आगे के भाग में सूर्योदय होता है । (११३)

तथाहि - पूर्वापर विदेहेषु भानोरस्तात् त्रिभिः क्षणैः ।

स्यात् भरतैरवतयोः तरणेरुदयः खलु ॥११४॥

भरतैरवत योश्च भानोरस्तादनन्तरम् ।

त्रिभिः क्षणैः स्यात् प्रत्यूषं पूर्वापर विदेहयोः ॥११५॥

वह इस तरह - पूर्व और पश्चिम महाविदेह में सूर्य अस्त होता है, उसके बाद तीन मुहूर्त्त में भरत और ऐरवत क्षेत्र में सूर्य उदय होता है । और भरत तथा ऐरवत में सूर्य अस्त होता है, उसके बाद तीन मुहूर्त्त में पूर्व और पश्चिम महाविदेह में सूर्य का उदय होता है । (११४-११५)

'क्षण शब्दश्चात्र प्रकरणे मुहूर्त्तवाचीति ध्येयम् ॥'

इस प्रकरण में क्षणशब्द मुहूर्त्तवाची लेना चाहिये ।

तथा च - भवेद्विदेहयोराद्यं यन्मुहूर्त्तं त्रयं निशः ।

स्यात् भरतैरवतयोः तदेवान्त्यं क्षयत्रयम् ॥११६॥

स्यात् भरतैरवतयोः यन्निशाद्यं क्षण त्रयम् ।

भवेद्विदेहयो रात्रेः तदेवान्त्यं क्षण त्रयम् ॥११७॥

दोनों विदेह में रात्रि के पहले तीन मुहूर्त के समय भरत और ऐरवत में अन्तिम तीन मुहूर्त होते हैं, तथा भरत और ऐरवत में रात्रि के जो पहले तीन मुहूर्त होते हैं, वही दोनों विदेह में रात्रि के अन्तिम तीन मुहूर्त होते हैं । (११६-११७)

इह च प्राग्विदेहादि क्षेत्राव्धानोपलक्षिताः ।

पूर्वादिक्षेत्रदिग्मध्यभागा ज्ञेया विवेकिभिः ॥११८॥

तेष्विदं कालनैयत्यं ज्ञेयमन्यत्रतुस्फुटम् ।

भाव्यमस्यानुसारेणकोर्दयास्तविभावनात् ॥११९॥

यहां पूर्व महाविदेह क्षेत्र और पश्चिम महाविदेह क्षेत्र नाम कहे हैं इसका विवेकीजन ने पूर्व और पश्चिम क्षेत्र दिशा के मध्य भाग का अर्थ लेना चाहिए । इस भाग में ऐसे काल का नियम समझना । अन्यत्र तो इसके अनुसार से सूर्योदय और सूर्यास्त के भाव से स्पष्ट रूप में ज्ञान लेना चाहिए । (११८-११९)

एवं च -

अपाच्यु दीच्योः प्रत्यूषात् मुहूर्तत्रितये गते ।

लघोर्निशायाः प्रारम्भःस्यात् पूर्वापरयोः दिशोः ॥१२०॥

अपराह्त्रिमुहूर्तर्यां शेषायां चानयोः दिशोः ।

प्रत्यक् प्राक् च निशान्तः स्यादेवं सर्वत्र भाव्यताम् ॥१२१॥

और इसी प्रकार दक्षिण और उत्तर दिशा में प्रभात काल होता है, उसके बाद तीन मुहूर्त पूर्व और पश्चिम दिशा में जघन्य रात का प्रारम्भ होता है । इन दोनों दिशाओं में दिन के दोपहर के बाद तीन मुहूर्त शेष रहता है, तब पश्चिम और पूर्व दिशा में प्रभातकाल होता है । इस तरह सर्वत्र समझ लेना चाहिए । (१२०-१२१)

इदं गुरुदिने गुर्व्या रात्रो त्वस्याः क्षणत्रये ।

गते शेषे च कल्याहःप्रान्तावुक्त दिशोः क्रमात् ॥१२२॥

यह बात कही है, कि यह उत्कृष्ट दिनमान हो, उस समय का समझ लेना । रात्रि उत्कृष्ट हो तब तो इसके तीन मुहूर्त व्यतीत होने के बाद शेष मुहूर्त में उक्त दिशाओं में क्रमशः दिन पूर्ण होता है । (१२२)

निशां चाह्नां मध्यमानामप्येवं स्तो यथोचितम् ।

विश्लेष शेषान्दशेषे याते चादिपरिक्षयौ ॥१२३॥

मध्यम रात्रि और मध्यमदिन का भी आदि और अन्त, मुहूर्तों का बाद करने पर शेष मुहूर्त रहे इसका आधा प्रमाण पूर्ण होने के बाद होता है । (१२३)

“इति कृता वर्ष मध्ये दिन रात्रि प्रमाण प्ररूपणा ॥”

‘इस तरह से वर्ष के सब अहो रात के प्रमाण के कथन रूप दूसरे अनुयोग द्वार का वर्णन सम्पूर्ण हुआ ।’

मण्डलस्याभ्यन्तरस्य दशात्र परिधेर्लवाः ।

कल्प्याः तत्रोद्योतयेत्तांस्त्रीनेको ऽर्को दिने गुरौ ॥१२४॥

त्रींश्च तत्संमुखानन्यः षट्स्वंशेषु दिनं ततः ।

मध्ये तयोः लवौ द्वौ द्वौ रजनीति लवा दश ॥१२५॥

अब चार कथन में से तीसरे द्वार के विषय में कहते हैं - अब अभ्यन्तर मंडल के घेराव के यदि हम दस विभाग की कल्पना करें, तो इन दस में से तीन विभाग को बड़े दिन में एक सूर्य प्रकाशित करता है, और इसके सन्मुख के तीन विभाग को दूसरा सूर्य प्रकाशित करता है । इससे ये छः विभाग में दिन होता है, शेष बीच में से दो-दो विभाग रहे, उसमें रात होती है, इस तरह दस विभाग समझना । (१२४-१२५)

जघन्येऽहनि च द्वौ द्वौ भागौ दीपयतो रवी ।

दिनं चतुर्षु भागेषु निशा षट्सु लवेष्वतः ॥१२६॥

जब छोटा दिन होता है, तब दोनों सूर्य दो-दो विभाग को प्रकाशित करते हैं। इससे चार विभाग में दिन होता है, और छः विभाग में रात्रि होती है । (१२६)

प्रकाश क्षेत्रतश्चैव दशांशौ दक्षिणायने ।

हीयेते क्रमतस्तौ च वद्धंते उत्तरायणे ॥१२७॥

इस प्रकार क्षेत्र से बताये गये दशांश में प्रकाश होता है, और दशांश अनुक्रम से दक्षिणायन में घटता जाता है, और उत्तरायण में बढ़ता जाता है । (३/१० से घटता है, और ३/१० से बढ़ते हैं) ऐसा समझना । (१२७)

अत्रोपपत्ति :-

द्वाभ्यां किलाहोरात्राभ्यामेकेनार्केन मण्डलम् ।

पूर्यतेऽहोरात्रयोश्च मुहूर्त्ताः षष्टिराहिताः ॥१२८॥

षष्टेश्च दशमो भागः षट्ते च त्रिगुणी कृतः ।

दशांशत्रयरूपाः स्युः षष्टेरष्टादश क्षणाः ॥१२९॥

तदेभिरष्टादशाभिः मुहूर्त्तैः परिधेरपि ।

उत्कृष्ट दिवसे युक्तं दशांशत्रयदीपनम् ॥१३०॥

दशांशद्वय रूपाश्च षष्टेः द्वादश निश्चिताः ।

तत् तैः द्वादशाभिः युक्तं दशांशद्वयदीपनम् ॥१३१॥

यहां इस तरह से उपपत्ति (सिद्धि) है - एक सूर्य दो अहोरात में मंडल पूरा करते हैं, दो अहोरात के साठ मुहूर्त्त होते हैं, साठ का दशांश छः है उसे तीन गुणा करते अठारह मुहूर्त्त होते हैं, अतः उत्कृष्ट दिनमान में सूर्य तीन दशांश ३/१० परिधि में - अर्थात् घेराव में अठारह मुहूर्त्त तक प्रकाश करता है । साठ के दशांश को दो गुणा करने पर बारह होता है । अतः इस तरह समझना कि उस समय में सूर्य के घेराव के दो दशांश में बारह मुहूर्त्त तक प्रकाश देता है । (१२८ से १३१)

तथाहुः -

इह छच्चिय दस भाए जम्बू द्वीवस्स दुन्नि दिवसयरा ।

ताविंति दित्तलेसा अब्भितरमंडले संता ॥१३२॥

चत्तारिय दस भाए जम्बू द्वीवस्स दुन्नि दिवसयरा ।

ताविंति मंदलेसा बाहिरए मंडले संता ॥१३३॥

कहा है कि - दोनों सूर्य जब अभ्यन्तर मंडल में होते हैं, उस समय जम्बू द्वीप के छः दशांश भाग को दिप्त लेश्या से प्रकाशित करते हैं, और जब बाहर के मंडल में होता है, तब जम्बू द्वीप के दशांश भाग को मंदलेश्या से प्रकाशित करते हैं (१३२-१३३).

एवं प्रकाशक्षेत्रस्य दशांशकल्पना बुधैः ।

आपुष्करार्थं कर्तव्या रवीनामथ तत्र च ॥१३४॥

दिशत्येकोनपंचाशाचतुस्त्रिंशत् सहस्रकाः ।

द्वि चत्वारिंशच्च लक्षाः कोटयेका परिधिर्भवेत् ॥१३५॥

दशांशत्रितयं लक्षा द्विचत्वारिंशदस्य च ।
 सप्तत्रिंशा चतुस्त्रिंशत् सहस्राः परमे दिने ॥१३६॥
 तापक्षेत्रं तिर्यगेतत् पुष्करार्धे विवस्वताम् ।
 ततस्तदर्थे पश्यति तत्रत्याः सूर्यमुदगतम् ॥१३७॥

इस प्रकार से सूर्यो के प्रकाश क्षेत्र के दशांश की कल्पना पुष्करार्ध द्वीप करना चाहिए । वह इस तरह :- पुष्करार्ध द्वीप का मानुषयोत्तर पर्वत के पास एक करोड़ बियालीस लाख चौतीस हजार और उनचास योजन का घेरावा है । (पुष्करार्ध की परिधि के दशांश का तीसरा भाग ४२७०२७ ३/१० योजन होता है । क्योंकि मानुषोत्तर पर्वत की अभ्यंतर पुष्करार्ध की परिधि १४२३०२४६ योजन प्रमाण है । इससे इस श्लोक में संख्या कही है वह युक्त नहीं है ।) इस संख्या के दशांश को तीन गुणा करें तो बियालीस लाख चौतीस हजार सैंतीस योजन होता है । इतने योजन पुष्करार्ध द्वीप में सूर्यो का उत्कृष्ट दिनमान में तिरछा ताप क्षेत्र है, और इससे उसके आधे भाग से अर्थात् २११७०१८॥ योजन से, वहां के लोग सूर्य का उदय देखते हैं । (१३४-१३७)

तथोक्तम् -

लक्रंछेहि एगवीसाइ साइरेगेहि पुक्खरद्धंभि ।
 उदए पिच्छति नरा सूरं उक्कोसए दिक्से ॥१३८॥

तथा अन्य स्थान पर भी कहा है कि - पुष्करार्ध द्वीप में उत्कृष्ट दिन के अन्दर इकतीस लाख से कुछ अधिक योजन तक के दूर से लोगों को सूर्य उदय दिखता है । (१३८)

सर्वान्तरमंडलगतसूर्ययोरातपाकृतिः ।
 ऊर्ध्वास्य तालिका पुष्य संस्थान संस्थिता मता ॥१३९॥
 मेरूदिश्यंथवलयाकारा वारिनिधेर्दिशि ।
 शकटोर्ध्वमूल भागानुकारेयं प्रकीर्तिता ॥१४०॥
 मेरोर्दिशि संकुचिता विस्तृता चाम्बूधेर्दिशि ।
 प्रत्येकमस्या आयामो दक्षिणोत्तरयोः दिशो ॥१४१॥
 मेरोरन्तात् योजनानां सहस्राण्यष्ट सप्ततिः ।
 शतत्रयं त्रयस्त्रिंशं तृतीय योजनांशयुक् ॥१४२॥

सहस्राः पंचचत्वारिंशद्योजनानि तत्र च ।

जम्बू द्वीपे शेषमब्धौ द्वयोर्योगे यथोदितम् ॥१४३॥

सर्व अभ्यन्तर मंडल में रहे दोनों सूर्यो के आतप की आकृति ऊंचे वाले ताल पुष्प की आकृति समान कही है । वह मेरु पर्वत की ओर अर्धवलयकाकार है और समुद्र के तरफ गाड़ी की ऊंघ के मूल भाग के आकार से है । मेरु पर्वत के तरफ संकोच प्राप्त करता और समुद्र तरफ विस्तार वाला है । दोनों आकृति उत्तर-दक्षिण में लम्बी है और वे मेरु के किनारे पर जाने से अठहत्तर हजार तीन सौ तैंतीस पूर्णांक और तृतीयांश योजन सदृश है, इसमें से पैतालीस हजार योजन जितना जम्बूद्वीप में और शेष तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस योजन जितना समुद्र में है । (१३६-१४३)

मेरुणायन्मते सूर्यप्रकाशः प्रतिहन्यते ।

तेषां मते मानमिदं तापक्षेत्रायतेः ध्रुवम् ॥१४४॥

सूर्य के आतप क्षेत्र की लम्बाई जिसके मतानुसार मेरु पर्वत से सूर्य का प्रकाश प्रतिघात करता है, उसके मत में है । (१४४)

येषां मते मेरुणार्कप्रकाशो नाभिहन्यते ।

किन्तु मेरुगुहादीनामप्यन्तः प्रथते महः ॥१४५॥

तेषां मते मन्दरार्धादारभ्य लवणोदधेः ।

षड्भागं यावदायामः तापक्षेत्रस्य निश्चितः ॥१४६॥

तदा च - योजनानां सहस्राणि पंच राशौ पुरातने ।

क्षिप्यन्ते मन्दरार्थस्य ततो मानमिदं भवेत् ॥१४७॥

योजनानां सहस्राणि त्र्यशीतिः त्रिंशती तथा ।

त्रयस्त्रिंशत्समधिका तृतीयोऽंशश्च योजनः ॥१४८॥

जिसके मत में मेरु से सूर्य का प्रकाश प्रतिघात नहीं होता, परन्तु मेरु की गुफा आदि के अन्दर भी फैल जाता है, उनके मतानुसार तो मेरु के अर्धभाग से लेकर लवण समुद्र के छठे भाग तक सूर्य का ताप क्षेत्र लम्बाई वाला है अतः उनके मतानुसार पूर्वोक्त मान में मेरु पर्वत के आधे विस्तार के पांच हजार योजन मिलाने से लम्बाई आती है । अर्थात् वह तिरासी हजार तीन सौ तैंतीस पूर्णांक एक तृतीयांश योजन उन लोगों के मतानुसार कहलाता है । (१४५-१४८)

सुपर्वपर्वतादेवं पूर्वपश्चिमयोरपि ।

तापक्षेत्रस्य प्रत्येकं आयामो ज्ञायतामियान् ॥१४९॥

मेरु पर्वत से पूर्व पश्चिम में भी सूर्य के ताप क्षेत्र की लम्बाई उतनी ही समझनी चाहिए । (१४६)

सर्वेषु मण्डलेष्वेष चरतोः भानुमालिनोः ।

अवस्थितः सदा ताप क्षेत्रायामः प्रकीर्तितः ॥१५०॥

सभी ही मंडलों में विचरते दोनों सूर्यों के ताप क्षेत्र की लम्बाई हमेशा एक समान होती है । (१५०)

विष्कम्भस्तु मेरुपार्श्वे तस्यार्धवलयकृतेः ।

स्यात् मेरु परिधेः भागे दशमे त्रिगुणीकृते ॥१५१॥

तथा च - सहस्रा नव षडशीत्यधिका च चतुः शती ।

योजनानां दशछिन्नयोजनस्य लवा नव ॥१५२॥

विष्कम्भोऽम्भोधिपार्श्वे तु ताप क्षेत्रस्य निश्चितः ।

अर्न्तमण्डल परिधेदंशांशे त्रिगुणी कृते ॥१५३॥

सचायम् :- योजनानां सहस्राणि चतुर्नवतिरेव च ।

षड्विंशता पंचशत्यंशा षष्टिजा द्वयब्धिसंमिताः ॥१५४॥

अब इन सूर्यों के ताप क्षेत्र की चौड़ाई के विषय में कहा जाता है - अर्ध विलयाकार इस ताप क्षेत्र की मेरु पर्वत के पास में चौड़ाई, मेरु परिधि के तीन दशांश सदृश है । अर्थात् नौ हजार चार सौ छियासी पूर्णांक नौ दशांश ६४८६ ६/१० योजन है । परन्तु समुद्र के पास में यह चौड़ाई अर्न्तमण्डल की परिधि के तीन दशांश समान है । अर्थात् चौरानवे हजार पांच सौ छब्बीस योजन और बयालीस साठांश ६४५२६ ४२/६० योजन है । (१५१ से १५४)

नन्वेवंमध्येः षड्भागं यावद्द्वयाप्तिमुपेयुषः ।

तापक्षेत्रस्य विष्कम्भः संभवेत् नाधिकः कथम् ॥१५५॥

तथाहि - पूर्वोक्त ताप क्षेत्रस्य प्रान्ते ऽब्धौ परिधिस्तु यः ।

तद्दंशांशत्रयस मितो विष्कम्भः संभवेत् न किम् ॥१५६॥

यहां प्रश्न करते हैं कि कईयों के मतानुसार सूर्यातप क्षेत्र लवण समुद्र के छोटे विभाग तक लम्बा है, तो इसकी चौड़ाई भी पूर्व में कही है, इससे अधिक क्यों नहीं होती है ? पूर्वोक्त ताप क्षेत्र के प्रान्त-किनारे समुद्र का जो परिधि है, उसके तीन दशांश सदृश चौड़ाई क्यों नहीं संभव है ? (१५५-१५६)

अत्रोच्यते - संभवत्येव किन्त्वत्र करणेनैव संवदन् ।

चतुर्नवतिसहस्रादिक एवमतो बुधैः ॥१५७॥

व्यक्तित्तु करणस्यास्य मुहूर्त्तगति चिन्तया ।

कार्या दृग्गोचरस्वेव साम्या दृक्पथताषयो ॥१५८॥

तथाहुः - अत्रोदयास्तान्तरं प्रकाशक्षेत्रं ताप क्षेत्र मित्येकार्थाः ।

यहां उत्तर देते हैं - संभव ही है, परन्तु विद्वानों ने यहां 'करणयुक्ति' के साथ में वास्तविक चौड़ाई की गिनती की है, और यह चौड़ाई चौरानवे हजार शंख सौ छब्बीस योजन पूर्णांक और बयालीस साठांश योजन है । तथा इस करणयुक्ति की युक्ति से मुहूर्त्त गति का विचार करना, क्योंकि उसका जैसे दृग्गोचर के साथ में साम्य है वैसा ही दृक्पथ और ताप क्षेत्र के साथ में साम्य है । (१५७-१५८) कहा है कि १- उदय और अस्त के बीच का अन्तर, २- प्रकाश क्षेत्र और ताप क्षेत्र यह तीनों एकार्थवाची शब्द हैं ।

विष्कम्भरस्त्वेष तापस्य द्विविधे ऽप्यनवस्थितः ।

याम्येऽयने हीयमानः सौम्ये वृद्धिमवम्नुयात् ॥१५९॥

मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयगम्यं तु यद्भवेत् ।

क्षेत्रं तावन्मितां वृद्धिः हानिश्च प्रति मण्डलम् ॥१६०॥

तथा च मण्डलैः सार्धत्रिंशत्तैकैकभानुमान् ।

क्षेत्रं गम्यं मुहूर्त्तेन वर्षयेद्वा क्षयं नयेत् ॥१६१॥

मण्डलानां सत्र्यशीतिशते नैवमनुक्रमात् ।

वर्धितं क्षपितं ताभ्यां सौम्ययाम्यायनान्तयोः ॥१६२॥

मुहूर्त्तैः षड्भिराक्रम्यं क्षेत्रं स्यादेव एव च ।

बाह्यान्तर मण्डलाभ्यां दशांशो वृद्धि हानिभाक् ॥१६३॥ युग्मं ॥

ताप क्षेत्र की दोनों प्रकार की यह चौड़ाई अनवस्थित - अनिश्चित है क्योंकि दक्षिणायन में वह घटता है और उत्तरायण में बढ़ता है, एक मुहूर्त्त के एक साठांश में क्षेत्र पार हो, उतने उत्तरायण में वृद्धि होती है, और दक्षिणायन में हानि प्रत्येक मंडल में होती है, इससे सैंतीस मंडल में प्रत्येक सूर्य एक मुहूर्त्त में गमन कर सकता है । इतना क्षेत्र बढ़ घट सकता है । और इससे अनुक्रम से एक सौ तिरासी मंडल में घूमकर उत्तरायण अथवा दक्षिणायन के आखिर तक दोनों सूर्यों ने इतना क्षेत्र बढ़ाया है अथवा घटाया है । वह छः मुहूर्त्त में गमन कर सकता है, और इतना ही

होता है । क्योंकि बाहर और अन्दर के इस तरह दोनों मंडलों में प्रांत के अन्दर एक दशांश वृद्धि या हानि होती है । (१५६-१६३)

प्रकाशपृष्ठलग्नस्यान्धस्यैव तमसोऽप्यथ ।

आकृतिश्चिन्त्यते भान्वोः सर्वान्तर्मण्डल स्थयोः ॥१६४॥

अस्याप्याकृतिरूर्ध्वास्य तालिका पुष्प संस्थिता ।

तापक्षेत्रवदायाप्तमानं चास्याप्यवस्थितम् ॥१६५॥

अस्तंगते दिनपतौ मेरोरपि गुहादिषु ।

ध्वान्तोपलब्धेरायामः तमसोऽपि प्रकाशवत् ॥१६६॥

जब दोनों सूर्य सबसे अन्दर के मंडल में होते हैं, तब अघ के समान प्रकाश के पीछे लगे अंधकार की आकृति ऊर्ध्वमुखी ताल पुष्प के समान है, इसकी लम्बाई का प्रमाण भी ताप क्षेत्र की लम्बाई जितना ही है । सूर्य का अस्त होता है, उस समय मेरू की गुफा आदि में भी अंधकार छा जाता है, इससे अंधकार की लम्बाई भी प्रकाश की लम्बाई सदृश ही है । (१६४-१६६)

विष्कम्भो मेरू संलक्ष्ने स्यादेवं ध्वान्तचोलके ।

मन्दराद्विपरिक्षेपदशांशे द्विगुणीकृते ॥१६७॥

षट् योजन सहस्राणि चतुर्विंशं शतत्रयम् ।

दश भागी कृतस्यैक योजनस्य लवाश्च षट् ॥१६८॥

लवणाभ्रोधि दिशि तु विष्कम्भः तमसो भवेत् ।

अन्तर्मण्डलपरिधेः दशांशे द्विगुणीकृते ॥१६९॥

स चायम् -

योजनानां सहस्रास्त्रि षष्टिः सप्तदशाधिकाः ।

अष्टचत्वारिंशदशाः षष्टिजाः तत्र मण्डले ॥१७०॥

अब इसकी चौड़ाई मेरू के आगे, मेरू परिधि के दो दशांश समान है, अर्थात् छः हजार तीन सौ चौबीस पूर्णांक छः दशांश ६३२४ ६/१० योजन है । जब लवण समुद्र की दिशा भी अंधकार का विष्कम्भ (चौड़ाई) सब अभ्यंतर मंडल की परिधि के दशांश को दुगना करने से तिरसठ हजार सत्रह और अड़तालीस साठांश (६३०१७ ४८/६०) योजन होता है । (१६७-१७०)

इति कर्क संक्रान्तौ आतप क्षेत्रतमः क्षेतयोः स्वरूपम् ।

सर्वबाह्यमण्डलं तु प्राप्तयोरूष्ण रोचिषोः ।

तापान्धकारयोः प्राग्वत् संस्थानादि निरूपणम् ॥१७१॥

किन्त्वब्धिदिशि विष्कम्भे विशेषोऽस्ति भवेत्स च ।

बाह्यमण्डल परिधेः दशांशे द्विगुणीकृते ॥१७२॥

स्यु त्रिषष्टिः सहस्राणि सत्रिषष्टिश्च षट्शती ।

तद्दशांशे त्रिगुणिते ध्वान्तव्यासोऽप्यसौ तदा ॥१७३॥

सहस्राः पंचनवतिश्चत्वार्येव शतानि च ।

चतुर्नवतियुक्तानि त्रिंशदशांश्च षष्टिजाः ॥१७४॥ विशेषकं ॥

इस तरह कर्क संक्रान्ति में सूर्य के आतप क्षेत्र का और अंधकार क्षेत्र का स्वरूप कहा है । जब दोनों सूर्य सब प्रकार से बाहर के मंडल में आता है, तब ताप और अंधकार के आकार आदि का स्वरूप तो पूर्व के समान जान लेना, केवल समुद्र की ओर की चौड़ाई में फेर है, यह चौड़ाई सब बाह्य मंडल के परिधि का दो दशांश समान है, अर्थात् तिरसठ हजार छः सौ तिरसठ (६३६६३) योजन है । उस समय की परिधि के तीन दशांश के जितना है अर्थात् पंचानवे हजार चार सौ चौरानवे पूर्णांक एक द्वितीयांश (६५४६४ १/२) योजन अंधकार का व्याप्त होता है (१७१-१७४)

बाह्यान्तर्मण्डलस्थाकं तापः क्षेत्रानुसारतः ।

वृद्धि हानि व्यतीहारः प्रकाशतमसोर्भवेत् ॥१७५॥

सामीप्यात् दीप्रतेजस्त्वात् सर्वान्तर्मंडलेऽर्कयोः ।

दिनातप क्षेत्रवृद्धि घर्मस्तीव्रस्तमोऽल्पता ॥१७६॥

मन्दतेजस्तया दूरतया च बाह्यमण्डले ।

निशातमः क्षेत्रवृद्धिस्तापक्षेत्राल्पता हिमम् ॥१७७॥

बाहर और अन्दर के मंडल में रहे सूर्य के ताप, क्षेत्र, के अनुसार, प्रकाश और अंधकार की वृद्धि और हानि होती है । सब प्रकार से अन्दर के मंडल में आता है तब दोनों सूर्य नजदीक और तीव्र तेज वाले होने से दिन के प्रमाण तथा आताप क्षेत्र की वृद्धि होती है । इससे तीव्र ताप (गरमी) लगती है, और अन्धकार अल्प रहता है । दोनों सूर्य सर्वप्रकार से बाह्य मंडल में होते हैं तब उनके दूर और मंद तेजवाला होने से रात्रि और अंधकार के क्षेत्र की वृद्धि होती है । ताप क्षेत्र स्वल्प होता है और हिम पड़ता है । (१७५-१७७)

“यत्तु जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे सर्वान्तर्मण्डलस्थे रवौ समुद्र दिशि तापक्षेत्र विष्कम्भः चतुर्नवतिः योजन सहस्राणि अष्टौ शतानि अष्ट षष्टयाधिकानि चतुरश्र च दश भागान् योजनस्य उक्तः, तथा ध्वान्त विष्कम्भश्च त्रिषष्टिः योजन सहस्राणि द्वे च पंच चत्वारिंश दधिके योजनशते षट् च दशभागा योजनस्यायमेव च सर्वबाह्य मण्डलस्थेरवौ ताप क्षेत्र ध्वान्त क्षेत्रयोः पिर्ययेण विष्कम्भः उक्त, स तु जम्बू द्वीप परिधेरेव दशांश द्वय त्रय कल्पनया इति व्यामोहो न विधेयः । यत्तु तत्र सर्वान्तर्मण्डले उभयतः समुदितं द्वीप सम्बन्धि षष्टयाधिकं योजन शतत्रयं न्यूनतया न विवक्षितं । यच्च सर्वबाह्य मण्डले उभयतः समुदितानि समुद्र सम्बन्धीनि षष्ट योजनशतान्यधिकतया न विवक्षितानि तत्राविवक्षैव बीजम् । इत्यादिकं अर्थातः उपाध्याय श्री शान्ति चन्द्रो कृत जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ते अवसेयम् ॥”

“जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में सब प्रकार से अन्दर के मंडल में सूर्य होता है उस समय समुद्र तरफ ताप क्षेत्र की चौड़ाई चौरानवे हजार आठ सौ अड़सठ पूर्णांक चार दशांश (६४८६८ ४/१०) योजन का जो कहा है, तथा अंधकार की चौड़ाई तिरसठ हजार दो सौ पैतालीस पूर्णांक छः दशांश (६३२४५ ६/१०) योजन का जो कहा है, और इससे उलटी रीति से उतना ही सर्व प्रकार से बाहर के मंडल में सूर्य होता है तब तापक्षेत्र और अंधकार क्षेत्र की चौड़ाई कही है । वह जम्बू द्वीप की परिधि के दो दशांश तथा तीन दशांश की कल्पना से कहा है । इसलिए उस सम्बन्ध में नहीं मुरझाना चाहिए । वहां सर्व प्रकार से अन्दर मंडल में दोनों तरफ के मिलाकर द्वीप सम्बन्धी तीन सौ साठ योजन कम नहीं कहा, तथा सर्व प्रकार से बाहर के मंडल में दोनों तरफ के मिलाकर समुद्र सम्बन्धी छः सौ साठ योजन अधिक नहीं कहा । उसमें अविबक्षा ही कारण समझना । यह विषय उपाध्याय श्री शान्ति चन्द्र कृत जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति की टीका में कहा है वहां से जान लेना ।”

ताप क्षेत्रस्य च व्यासो यावान् स्याद्यत्र मण्डले ।

करप्रसारस्तस्यार्द्धे पूर्वतोऽपरतो ऽपि च ॥१७८॥

जिस मंडल में ताप क्षेत्र का जितना व्यास हो इससे आधा-आधा पूर्व और पश्चिम में सूर्य के किरणों का प्रसार-फैलाव होता है । (१७८)

मेरोर्दिशि तु मेर्वर्द्धं यावत्तेजः प्रसर्पति ।

पाथोधि दिशि पाथोधेः षड्भागं यावदर्कयोः ॥१७९॥

दोनों सूर्य का तेज मेरू पर्वत की दिशा में मेरू के अर्धभाग तक और समुद्र की दिशा में समुद्र के छोटे भाग तक फैलते हैं । (१७६)

कर प्रसार ऊर्ध्व योजनानां शतं मतः ।

यत्तापयत एतावदूर्ध्व निजविमानतः ॥१८०॥

दोनों सूर्यों की किरण ऊंचे एक सौ योजन तक पहुँचती है, वे अपने विमान से ऊंचे उतने क्षेत्र तथा सकता है । (१८०)

शतेष्वष्टासु सूर्याभ्यामधस्तात् समभूतलम् ।

सहस्रं च योजनानामधोग्रामास्ततोऽप्यधः ॥१८१॥

तांश्च यावत्तापयतः प्रसरन्ति करास्ततः ।

विवस्वतोर्योजनानामष्टादश शतान्यधः ॥१८२॥

दोनों सूर्य से आठ सौ योजन नीचे सम पृथ्वी तल है और इससे भी एक हजार योजन नीचे विभाग में 'अधोग्राम' आता है वहाँ तक दोनों सूर्यों के ताप की किरणे फैलती है, अतः कुल दोनों सूर्य की किरण नीचे अठारह सौ योजन तक फैलती है । (१८१-१८२)

सप्त चत्वारिंशदथ सहस्राणि शतद्वयम् ।

त्रिषष्टिश्च योजनानां षष्टयंशा एकविंशतिः ॥१८३॥

करप्रसार एतावान् सर्वान्तमंडलेऽर्कयोः ।

पूर्वतोपरतश्चाथ दक्षिणोत्तरयोः बुवे ॥१८४॥

सहस्राणि पंचचत्वारिंशत्स्वर्गिगिरे दिशि ।

साशीति योजनशतानान्यथाब्धेर्दिशि बुवे ॥१८५॥

त्रयस्त्रिंशत् सहस्राणि त्रयस्त्रिंशं शतत्रयम् ।

योजनत्रयंशयुक्त्वाद्द्वौ द्वीपेऽशीति युतं शतम् ॥१८६॥

सर्व प्रकार से अन्दर के मण्डल में रहे दोनों सूर्यों के किरणों का विस्तार पूर्व और पश्चिम में सैंतालीस हजार दो सौ तिरसठ पूर्णांक और सात वीसांश (४७२६३ ८/२०) योजन सदृश है । जब उत्तर और दक्षिण में मेरू पर्वत की और चवालीस हजार आठ सौ बीस (४४८२०) योजन है, और समुद्र की ओर तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस पूर्णांक और एक तृतीयांश ३३३३३ १/३ योजन तक समुद्र में तथा एक सौ अस्सी योजन द्वीप में किरणों का विस्तार है । (१८३ से १८६)

सर्वबाह्यमण्डले तु चरतोरूष्णरोचिषोः ।
 करप्रसार एतावन् स्यात् पूर्वापरयोर्दिशोः ॥१८७॥
 एकत्रिंशत् सहस्राणि शतान्यष्टौ तथोपरि ।
 एकत्रिंशद्योजनानि त्रिशदंशाश्च षष्टिजा ॥१८८॥
 मेरोर्दिशि योजनानां वाद्धौत्रिशंशतत्रयम् ।
 द्वीपे च पंचचत्वारिंशत्सहस्रास्ततः परम ॥१८९॥
 त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि सत्र्यंशं योजनत्रयम् ।
 कर प्रसारो भान्वोः स्याल्लवणाब्धौ शिखादिशि ॥१९०॥
 ऊर्ध्वं तु योजनशतं तुल्यं सर्वत्र पूर्ववत् ।
 अष्टादश योजनानां शतान्यधस्तथैव च ॥१९१॥

सर्व प्रकार से बाहर के मण्डल में जब ये दोनों सूर्य विचरते रहते हैं तब उनकी किरणों का विस्तार पूर्व और पश्चिम में इकतीस हजार आठ सौ इकतीस पूर्णांक और एक द्वितीयांश (३१८३१ १/२) योजन है । और मेरू तरफ समुद्र तीन सौ तीस योजन है, और द्वीप में पैंतालीस हजार योजन है । लवण समुद्र में शिखा की ओर तैंतीस हजार और तीन पूर्णांक एक तृतीयांश = ३३००३ १/३ योजन पर्यन्त है, ऊपर ऊंचाई तो पूर्व के समान सर्व स्थान पर सौ योजन है, और नीचे अठारह सौ योजन है । (१८७-१९१)

“इति क्षेत्र विभागेन दिन रात्रि मान प्ररूपणा तत्प्रसंगादात् पततमः
 संस्थाना दि प्ररूपणा च ॥”

‘इस तरह से क्षेत्र विभाग द्वारा दिन और रात के अनुसार का कथन किया है और इसके प्रसंग से ताप (प्रकाश) और अंधकार के आकार आदि की प्ररूपणा भी की है ।’

कृता क्षेत्र विभागेन दिनरात्रिप्ररूपणा ।
 परिक्षेपमितिं क्षुमंः साम्प्रतं प्रतिमण्डलम् ॥१९२॥

इस तरह क्षेत्र विभाग से दिन रात की प्ररूपणा की । अब प्रत्येक मंडल में इसका परिक्षेप (परिधि) कितना होता है उसे कहते हैं - (१९२)

वगाहोभयतो द्वीपे सर्वान्तर्मण्डलं स्थितम् ।
 साशीतियोजनशतम् द्विध्नं कार्यमिदं ततः ॥१९३॥

सषष्टियोजनशतत्रयं जातमिदं पुनः ।
 द्वीप व्यासाल्लक्षरूपाद्विशोधयते ततः स्थितम् ॥१९४॥
 विष्कम्भायामतो नूनं सर्वाभ्यन्तर मण्डलाम् ।
 सहस्रा नवनवतिश्चत्वारिंशा च षट्शती ॥१९५॥
 परिधिस्तु यथाग्नायमस्य लक्षत्रयं युतम् ।
 सहस्रैः पंच दशभिः नवाशीतिश्च साधिका ॥१९६॥

सर्व से अन्दर का मण्डल द्वीप में उभय से एक सौ अस्सी योजन अवगाहन रूप में रहा है । इस संख्या को दो गुणा करे तो तीन सौ साठ योजन आता है । यह संख्या द्वीप के विस्तार, एक लाख योजन है, उसमें से निकाल देने पर निन्यानवे हजार छः सौ चालीस (६६६४०) योजन आया । इन सबसे अन्दर के मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई आती है । अर्थात् बीच का अन्तर आया है । इसके आधार पर इसकी परिधि तीन लाख पंद्रह हजार नवासी (३१५०८६) योजन होता है । (१९३-१९६)

सषष्टियोजनशतत्रयं यत्प्रागपाकृतम् ।
 तस्य वा परिधिः कार्यः पृथगीदृद्धिस्तु सः ॥१९७॥
 एकादश शतान्यष्टत्रिंशान्येनं विशोधयेत् ।
 जम्बूद्वीपस्य परिधेः स्यादप्येवं यथोदितः ॥१९८॥

अथवा इस तरह भी होता है :- पूर्वोक्त तीन सौ साठ योजन की अलग परिधि निकाले, तो वह ग्यारह सौ अड़तीस योजन आता है, और जम्बू द्वीप के परिधि में से निकाल दे, अतः उपर्युक्त परिधि आती है । (१९७-१९८)

अथैकतः स्थितं सर्वान्यरानन्तर, मण्डलम् ।
 अष्ट चत्वारिंशदंशान् सर्वान्तर्मण्डलात्मकान् ॥१९९॥
 द्वे योजने च त्यक्त्वाक् परतोऽप्येवमेव तत् ।
 एवं पंचत्रिंशदंशं भवेद्योजन पंचकम् ॥२००॥
 ततोऽर्क युग्मान्तरवद्धर्धन्ते प्रतिमण्डलम् ।
 योजनानि पंच पंचत्रिंशदंशाश्च विस्तृतौ ॥२०१॥
 ततस्तेषां परिक्षेपा ज्ञेया व्यासानुसारतः ।
 स पंचत्रिंशदंशस्य योजनपंचकस्य वा ॥२०२॥
 परिक्षेपः पृथक्कार्य ईदृगूपः स जायते ।
 साधिकाष्टात्रिंशदंशयुक्त सप्तदशयोजनी ॥२०३॥

अष्टादश योजनानि परन्तु व्यवहारतः ।

सम्पूर्णानि विवक्ष्यन्ते ततोऽष्टादश योजनीम् ॥२०४॥

प्राच्य प्राच्य मण्डलस्य परिक्षेपे नियोजयेम् ।

ततो अग्नयग्न्य मण्डलस्य परिक्षेपमितिर्भवेत् ॥२०५॥ युग्मं ॥

एवं वृद्धिः परिक्षेपे यावच्चरममण्डलम् ।

ततो यथावृद्धिहानिरासर्वान्तर मण्डलम् ॥२०६॥ युग्मं ॥

अब एक तरफ से सर्व से अन्दर मंडल के पास का मंडल पूर्व पश्चिम, सर्व से अन्दर के दो योजन और अड़तालीस अंश छोड़कर रहा है । जिससे दोनों तरफ के मिलाकर पांच योजन और पैंतीस अंश होता है । दोनों सूर्यों के अन्तर के समान प्रत्येक मंडल में पांच योजन और पैंतीस अंश विस्तार में बढ़ता है । इसका परिक्षेप (घेरावा) भी व्यास के अनुसार से निकालना चाहिए । अथवा पांच योजन और पैंतीस अंशवाला व्यास का ही परिक्षेप-घेराव अलग निकालना । वह सत्रह योजन और अड़तीस अंश लगभग आता है, किन्तु व्यवहार से वह सम्पूर्ण अठारह योजन कहलाता है । इस अठारह योजन को पूर्व-पूर्व के मंडल के परिधि में मिलाने से आगे आगे के मंडल के परिधि का माप आता है । इस तरह अन्तिम मंडल तक परिक्षेप-घेरावा बढ़ता जायेगा । यहां जैसे वृद्धि होती जायेगी वैसे सर्व प्रकार से अन्दर के मंडल तक वापिस आते हानि होती जायेगी । (१६६-२०६)

एवं च परिधिः सर्वान्तरानन्तर मण्डले ।

लक्षत्रयं पंचदससहस्राः सप्तयुक् शतम् ॥२०७॥

तार्तीयिके मण्डले च सर्वाभ्यन्तर मण्डलात् ।

लक्षास्त्रिः पंचदश सहस्रास्तत्त्वयुक्शतम् ॥२०८॥

लक्षास्त्रिः षोडशसहस्रास्तत्त्वयुक्शतम् तथा ।

युक्तो नैः पंच दशभिः सर्वान्त्ये परिधिर्भवेत् ॥२०९॥

इस गिनती से सर्व से अन्दर मण्डल के बाद के मण्डल की परिधि तीन लाख पंद्रह हजार एक सौ सात (३१५१०७) योजन आता है, सर्व से अन्दर के मण्डल के तीसरे मंडल की परिधि तीन लाख पंद्रह हजार एक सौ पच्चीस (३१५१२५) योजन आता है । और सर्व से अन्तिम मंडल की परिधि तीन लाख अठारह हजार तीन सौ लगभग पंद्रह (३१८३१५) योजन आते हैं । (२०७-२०९)

“तथाहुः श्री मलय गिरि पादाः क्षेत्र विचार बृहद् वृत्तौ ॥ एवं मण्डले मण्डले आयामविष्कम्भयोः पंच-पंच योजनानि पचत्रिंशदेकषष्टिभागाधिकानि परिरय अष्टादश-अष्टादश योजनानि परिवर्धयता तावद्वक्तव्यं यावत्सर्व बाह्य मण्डलं एकं योजन शत सहस्रं षट्शतानि षष्टयधिकानि आयाम विष्कम्भाभ्यां त्रीणि योजन शत सहस्राणि अष्टादश सहस्राणि त्रीणि शतानि पंचदशोत्तराणि किंचिद् नूनानि परिरये इति । अत्र च यद्यपि प्रति परिक्षेपं अष्टादश-अष्टादश वृद्धौ त्र्यशीत्यधिक शतस्य अष्टा दशभिः गुणने चतुर्नवत्यधिकानि द्वात्रिंशच्छतानि भवन्ति एतेषा च सैकोननवति पंच दश सहस्राधिकलक्षत्रय रूप प्रथम मण्डल परिक्षेपेण सहयोगे सर्वबाह्या मण्डल परिरयः तिस्रो लक्षा अष्टादश सहस्रा त्रिशती त्र्यशीत्युत्तरा भवति । परन्तु प्रागुक्तानि सप्तदश योजनानि साधिकयोजन सत्काष्ठा त्रिंशदेक भागाधिकानि प्रति परिरय वृद्धि रिति विभाव्यैव न्यूनपंचदशाधिक शतत्रय युक्ताष्टादश सहस्राधिकलक्षत्रयरूपः सर्वबाह्य मण्डल परिधिः उक्तः इति सम्भाव्यते । यद्यपि अत्रापि उपरितनं शतत्रयं चतुर्दशोत्तर मेव भवति तथापि उपरितनानां अष्टत्रिंशतो भागानां साधिकत्वात् न्यूनानि पंच दशैव विवक्षितानि इति सम्यग् विभागनीयं गणितज्ञैः ।”

“इस सम्बन्ध में आचार्य श्री मलय गिरि ने क्षेत्र विचार ग्रन्थ बृहत् टीका में कहा है कि - इस तरह प्रत्येक मंडल में मंडल के विस्तार में पांच योजन और पैंतीस इकसठ अंश अथवा मंडल के परिधिमें अठारह योजन बढ़ते हुए वहां तक पहुँचना कि मंडल का विस्तार एक लाख छह सौ साठ (१००६६०) योजन आ जाय । अथवा इस मंडल की परिधि तीन लाख अठारह हजार तीन सौ और लगभग पंद्रह (३१८३१५) योजन आये । यहां प्रत्येक परिधि में अठारह बढ़ा देने से एक सौ तिरासी को अठारह से गुणा करने से बत्तीस सौ चौरानवे (३२६४) आता है, और इस संख्या को प्रथम मंडल के परिधि की तीन लाख पंद्रह हजार निचासी वाली संख्या में मिला देने से सर्व बाहर मंडल के सर्व से बाहर मंडल की परिधि तीन लाख अठारह हजार तीन सौ तिरासी (३१८३८३) योजन होते हैं, परन्तु सत्रह योजन और अड़तीस अंश वाली संख्या पूर्ण अठारह योजन गिना है । इसके कारण ही इतना ज्यादा परिधि में आता है, परन्तु यदि १७ योजन और ३८ अंश ही परिधि में बढ़ाना चाहिए, तो सर्व से बाहर के मंडल की परिधि तीन लाख अठारह हजार तीन सौ

और लगभग पंद्रह (३१८३१५) योजन ही आता है । यहां भी ऊपर तो तीन सौ और चौदह योजन होता है, फिर भी उसके ऊपर अड़तीस अंश अधिक होने से तीन सौ और लगभग पंद्रह कहा है । इस तरह गणित शास्त्र के जानने वाले को सम्यग् रूप से विचार कर लेना चाहिए ।"

एवं कृता मण्डलानां परिक्षेप प्ररूपणा ।

गतिं प्रतिमुहूर्त्तं च ब्रूमहे प्रति मण्डलम् ॥२१०॥

इस तरह से सूर्य के प्रत्येक मंडल के परिधि का कथन करके अब इन प्रत्येक मंडल में सूर्य की प्रत्येक मुहूर्त्त में गति के विषय में कहते हैं । (२१०)

एकैक मण्डलं होकमार्तण्डेन समाप्यते ।

द्वाभ्यां किलाहोरात्राभ्यां मुहूर्त्ताः षष्टिरेतयोः ॥२११॥

ततः षष्टया विभज्यन्ते परिक्षेपाः स्वकस्वकाः ।

एवं सर्व मण्डलानां मुहूर्त्तगतिराप्यते ॥२१२॥

एक सूर्य दो अहोरात के अन्दर एक मंडल समाप्त करता है, और दो अहो रात्रि के साठ मुहूर्त्त होते हैं । इससे उस मण्डल के परिधि के साठ द्वारा भाग देने पर उस मंडल से सूर्य की मुहूर्त्त गति आती है (२११-२१२)

एवं च- संक्रम्य चरतः सूर्यो सर्वान्तर्मण्डले यदा ।

तदा प्रत्येकमेकैक मुहूर्त्तेऽसौ गतिस्तयोः ॥२१३॥

नूनं पंच सहस्राणि योजनानां शतद्वयम् ।

एक पंचाशमेकोनत्रिंशदंशाश्च षष्टिजाः ॥२१४॥ युग्मं ॥

और वह इस तरह - सर्व से अन्दर के मंडल में संक्रमण करके जब दोनों सूर्य गमन करता है, उस समय प्रत्येक मंडल में एक मुहूर्त्त के अन्दर उनकी गति पांच हजार दो सौ इकावन पूर्णांक उन्तीस साठांश (५२५१ २६/६०) योजन होता है । (२१३-२१४)

द्वितीयादि मण्डलेऽवप्येवं परिरयैः स्वकैः ।

मुहूर्त्तगतिरानेया षष्टया भक्तैर्विवस्वतोः ॥२१५॥

इसी प्रकार द्वितीयादि मंडलों में भी उस-उस मंडल के परिधि का साठ से भाग देने पर दोनों सूर्य का मुहूर्त्त गति का प्रमाण आता है । (२१५)

यद्वा प्रति परिक्षेपं योक्ताष्टादश योजनी ।
 वृद्धि षष्ट्या विभक्तुं तामूर्ध्वाधस्तदद्वयं न्यसेत् ॥२१६॥
 राशिःषष्टेर्न दत्तेऽशं तत्राष्टा दश लक्षणः ।
 ततोऽष्टादश षष्टिघ्नाः स्युः सहस्रमशीतियुक् ॥२१७॥
 तेषां षष्ट्या हृते भागे लब्धा अष्टादश स्फुटम् ।
 एतावन्तः षष्टिभागाः किञ्चिदूनास्तु निश्चयात् ॥२१८॥
 प्राच्य मण्डल मुहूर्त्तगतौ क्षिप्यन्त इत्यतः ।
 यथोक्तं तत्परिमाणं भवेदेवं यथोत्तरम् ॥२१९॥ युग्मं ॥

अथवा प्रत्येक मण्डल में जो अठारह योजन की वृद्धि कही है, उसे साठ से भाग देना परन्तु ६० से भाग नहीं दिया जाता इसलिए १८ को ६० से गुणा करना अतः १०८० अंश आता है उसे ६० द्वारा भाग देते साठांश आता है-इस रकम को पूर्व के मंडल की मुहूर्त्त गति में मिलाना । इस तरह करने से इसका यथोक्त परिणाम आता है । उत्तरोत्तर भी इसी ही तरह कहना । (२१६ से २१९)

एतद्याम्यायने सौम्यायने तु प्रतिमण्डलम् ।
 अष्टादशांशाः क्षीयन्ते मुहूर्त्तीर्यं गतौ रवेः ॥
 एव च - सर्व बाह्ये योजनानां पचोत्तरं शतत्रयम् ।
 सहस्राणि पंच पंचदशभागाश्च षष्टिजाः ॥२२१॥
 सर्वान्तिमावाचीने तु त्रिंशती चतुरूत्तरा ।
 सहस्राणि पंच सप्तपंचाशत् षष्टिजाः लवाः ॥२२२॥

इसी तरह दक्षिणायन में समझना । उत्तरायण में तो प्रत्येक मंडल में सूर्य की मुहूर्त्त गति में अठारह अंश घटते जाते हैं और इसी तरह सर्व से बाहर के मंडल में पांच हजार तीन सौ पांच पूर्णांक पंद्रह साठांश (५३०५ १५/६०) योजन सूर्य की मुहूर्त्त गति आती है । और सर्व से बाहर के बाहर मंडल के आगे के मंडल में इसकी मुहूर्त्त गति अठारह साठांश कम आती है । अर्थात् पांच हजार तीन सौ चार पूर्णांक सत्तावन साठांश (५३०४ ५७/६०) योजन का आता है । (२२०-२२२)

मुहूर्त्तगतिरित्येवं विवस्वतोः निरूपिता ।
 अथ प्रपंच्यते दृष्टि पथ प्राप्ति प्ररूपणा ॥२२३॥

इसी तरह दोनों सूर्य की मुहूर्त्त गति में जानकारी दी है, अब उनकी दृष्टि पथ प्राप्ति के विषय में कहते हैं । (२२३)

मुहूर्त्तगतिरर्कस्य या विवक्षित मण्डले ।
 यच्चतस्मिन् दिनमानं द्वयमेतत् पृथग् न्यसेत् ॥२२४॥
 मुहूर्त्तगतिरेषाऽथ दिनमानेन गुण्यते ।
 एकार्कस्य तदैकाहः प्रकाश्यं क्षेत्रमाप्यते ॥२२५॥
 यावच्चैकाहःप्रकाश्यं क्षेत्र मेकत्रमण्डले ।
 तदर्धेन मनुष्याणां भवेत् दृग्गोचरो रविः ॥२२६॥
 अयं भावः - यावत्क्षेत्रं दिनार्धेन भानुः भावयितुं क्षमः ।
 दृश्यते तावतः क्षेत्रात् मण्डले एव खिलेष्वपि ॥२२७॥

विवक्षित मंडल में सूर्य की जो मुहूर्त्त गति होती है वह संख्या एक तरफ
 रखो और उस मंडल में जो दिनमान हो वह संख्या एक तरफ रखो, दोनों संख्या का
 गुणा करने पर जो जो संख्या आती है, वह सूर्य का एक दिन में जितना क्षेत्र प्रकाशित
 करता है उतना प्रमाण समझना, और एक मंडल में सूर्य जितना क्षेत्र एक दिन में
 प्रकाशित करता है, उससे आधा क्षेत्र जितना दूर रहे मनुष्य को सूर्य दृष्टिगोचर होता
 है। इसका भावार्थ यह है कि - आधे दिन में सूर्य जितने क्षेत्र को प्रकाशित करता
 है उतने क्षेत्र के लोगों को सूर्य उतनी दूर से दृष्टिगोचर होता है। (२२४-२२७)

यथा पंच सहस्राणि योजनानां शत द्वयम् ।
 एकपंचाशमेकोत्रिशदंशाश्च षष्टिजाः ॥२२८॥
 मुहूर्त्त गतिरेषा या प्रोक्ताऽभ्यन्तर मण्डले ।
 गुण्यते सा दिनार्धेन मुहूर्त्तनवकात्यना ॥२२९॥
 सप्तचत्वारिंशदेवं सहस्राणि शतद्वयम् ।
 त्रिषष्टिश्च योजनानां षष्टयंशा एक विंशति ॥३३०॥
 उदगच्छन्नियतः क्षेत्रात् भानुरस्तमयन्नपि ।
 इहत्यैः दृश्यते लौकः सर्वाभ्यन्तर मण्डले ॥२३१॥
 ततश्चैतत् द्विगुणितमुदयास्तान्तरं भवेत् ।
 प्रकाश क्षेत्रमप्येतावदेवो भयतोऽन्वितम् ॥२३२॥

जैसे कि पांच हजार दो सौ इक्यावान पूर्णांक उन्तीस साठांश ५२५१ २६/६०
 गोजन जो अंदर के मंडल में रहे सूर्य की मुहूर्त्त गति कही है, उसे आधे दिन द्वारा
 अर्थात् नौ मुहूर्त्त से गुणा करना अतः सैंतालीस हजार दो सौ तिरसठ पूर्णांक
 इक्कीस साठांश (४७२६३ २१/६०) योजन आयेगा, इतने क्षेत्र में रहे लोगों को दूर

से सर्व अंदर के मंडल में उदय होते तथा अस्त होते सूर्य दृष्टिगोचर होता है - दिखता है । इस संख्या को दो गुणा करते जो संख्या आती है, वह उदय और अस्त के बीच का अन्तर समझना । प्रकाश क्षेत्र भी उतनी ही योजन (दोगुणा) समझना चाहिए ।
(२२८-२३२)

तथाहुः -

रविणो उदयत्थंतर चउणवइ सहस्स पणसय छव्विसा ।

बायाल सट्ठिभागा कककडसंकं तिदिय हंमि ॥२३३॥

अन्यत्र स्थान पर भी कहा है कि - कर्क संक्रान्ति के दिनों में सूर्य के उदय और अस्त के बीच का अन्तर चौरानवे हजार पांच सौ छब्बीस पूर्णांक बियालिस साठांश (६४५२६ ४२/६०) योजन है । (२३३)

एवं च - सहस्रैः सप्त चत्वारिंशता द्वितीय मण्डले ।

सैकोनाशीतिनादृश्यो योजनानां शतेन च ॥२३४॥

सप्तपंचाशता षष्टि भागैरेकास्य तस्य च ।

अंशैरेकोन विंशत्या विभक्तस्यैक षष्टिधा ॥२३५॥

एवं च - त्र्यशीतिः योजनान्यंशाः त्रयो विंशतिरेव च ।

षष्टिभक्तयोजनस्यैकस्य षष्टिलवस्य च ॥२३६॥

एक षष्टि विभक्तस्य द्विचत्वारिंशदंशकाः ।

हानिरेयमाद्यात् स्यात् पुरो हानौ ध्रुवोऽण्ययम ॥२३७॥

द्वितीय मंडल में इन सूर्य का उदय और अस्त के बीच का अन्तर सैताली हजार एक सौ उनासी पूर्णांक सतावन साठांश (४७१७६ ५७/६०) योजन है । उसके ऊपर एक साठांश १६/६१ है, अर्थात् लगभग ४७१७६ ५८/६० योजन सह है । इसके आधार पर से इस तरह समझना कि आधे मंडल की गति में से लगभग ८३ २३/६० ४२/६१ योजन की हानि हुई । इसी प्रकार आगे भी उत्तरोत्तर प्रत्येक मंडल में इतनी ही हानि समझना । अतः ये संख्या (ध्रुव) अखण्ड समझना
(२३४-२३७)

किं च - सर्वान्त मण्डलात्तातीयीकं यत्किल मण्डलम् ।

तदेवाद्यं प्रकल्प्याग्रे येषु येषु विभाव्यते ॥२३८॥

दृग्मार्गस्तरणोस्तर तवैकद्वयादि संख्यया ।

हत्वा षट्त्रिंशतं भागं भागांस्तान् योजयेत् ध्रुवे ॥२३९॥

ततश्च - पूर्व मण्डल दृग्मार्ग प्राप्तिस्तेन विवर्जिता ।

खरांशोः दृक्पथ प्राप्तिमानं स्याद्विष्ट मण्डले ॥२४०॥

सर्व से अभ्यन्तर मंडल से जो तीसरा मंडल है, उसे ही पहले कल्पना कर आगे जैसे-जैसे सूर्य की दृष्टिपथ-प्राप्ति भाव में आती है उसमें १/३६, २/३६ आदि संख्या ध्रुव (निश्चय) की संख्या में मिलाते जाना, मिलाते जो संख्या आती है, उस संख्या को पूर्व मंडल के दृष्टिपथ की रकम में से निकालते जो संख्या आती है, वह इच्छित मंडल में सूर्य की दृष्टिपथ प्राप्ति का मान समझना । (२३८ से २४०)

यश्चान्तर्मण्डलात्तीर्थीके तरणिमण्डले ।

षट्त्रिंशदेकेन गुण्या स्थितौ राशिस्तथैव सः ॥२४१॥

ततः षट्त्रिंशदेववैते त्र्यशीत्युपरिवर्तिषु ।

योजिता भाग भागेषु जातास्ते चाष्टसप्ततिः ॥२४२॥

एकषष्टया लवैश्चैकः षष्टिभागो भवेत् स च ।

योज्यते षष्टिभागेषु शेषाः सप्तदश स्थिताः ॥२४३॥

एवं च - त्र्यशीति योजनान्यंशा षष्टिजाता जिनैर्मताः ।

सप्तदशैकषष्टयंशा शोध्यराशिः भवत्वसौ ॥२४४॥

उदाहरण रूप में अभ्यन्तर मण्डल से तीसरा मंडल लो, उसमें पूर्व कहे अनुसार 'ध्रुव' की संख्या १/३६ मिलाना, अर्थात् ध्रुव की संख्या लगभग ८३ २३/६१ योजन है उसमें १/३६ मिलाने से लगभग ८३ २४/६० होती है यह संख्या 'शोध्य राशि' कहलाती है । शोध्य राशि अर्थात् निकालने वाली संख्या है । (२४१-२४४)

अनेन राशिना हीने द्वितीय मण्डलाश्रिते ।

दृगोचरे तृतीये स्थात् मण्डले दृक्पथो रवेः ॥२४५॥

वह संख्या द्वितीय मंडला श्रित रवि के दृष्टिपथ की संख्या में से निकाल देने से तृतीय मंडल में सूर्य का दृष्टिपथ का माप आता है । (२४५)

एवं च - सहस्रैः सप्तचत्वारिंशता षण्णवर्ति श्रितैः ।

योजनानां षष्टि भागैः त्रयस्त्रिंशन्मितैः तथा ॥२४६॥

एकस्य षष्टि भागस्य विभक्तस्यैकषष्टिधा ।

भागद्वयेन चोष्णांशुः तृतीय मण्डले ॥२४७॥

अर्थात् इस तरह ४७१७६ पूर्ण योजन और अट्ठावन साठांश ५८/६० इतनी ज़े संख्या हम लोग द्वितीय मंडलाश्रित निश्चय कर गये हैं, उसमें से यह ८३ २४/६० योजन शोध्य राशि निकाल देने से ४७०६६ पूर्ण योजन और चौतीस साठांश (४७०६६ ३३/६०, २/१६) आयेगी, इतने क्षेत्र में तीसरा मंडल में सूर्य दिखता है (२४६-२४७)

एवमुक्त प्रकारेण बहिर्निष्क्रमतो रवेः ।

दृक्पथ प्राप्ति विषयात् हीयते प्रति मण्डलम् ॥२४८॥

त्र्यशीतिः साधिका क्वापि चतुरशीतिरेव च ।

साधिका सा क्वापि पंचाशीतिः साप्यधिका क्वचित् ॥२४९॥

योजनानां हानिरेव भाव्या गणित पंडितैः ।

पूर्वोक्त गणिताम्नायात् यावत्सर्वान्य मण्डलम् ॥२५०॥

तत्रचैकत्रिंशतैव सहस्रैरष्टभिः शतैः ।

एक त्रिंशैः त्रिंशता च षष्टयंशैः दृश्यतेरविः ॥२५१॥

इसी तरह युक्त प्रकार से बाहर निकलते सूर्य दृष्टि पथ प्राप्ति के विषय में से मंडल-मंडल में ८३ २४/६० योजन से लेकर कहीं ८४ योजन कहीं इससे अधिक, कहीं ८५ योजन और कहीं ८५ से कुछ अधिक-इतना कम होता है। गणितज्ञों ने पूर्वोक्त गणित आम्नाय (परम्परा) अनुसार से अन्तिम मंडल तक योजनों में कम कर लेना चाहिए। इसी तरह तरह अन्तिम मंडल में इकतीस हज़ार आठ सौ इकतीस पूर्णांक एक द्वितीयांश (३१८३१ १/२) योजन से सूर्य दिखाई देता है। (२४८ से २५१)

“यद्यपि आन्तर तृतीय मण्डलापेक्षया द्वय शीत्यधिकशत तमेऽस्मिन् मण्डले पूर्वोक्त करण प्रक्रिया शोध्य राशिः पंचाशीतिः योजनानि एकादश षष्टिभागा एकस्य षष्टि भागस्य सत्काः षडेक षष्टि भागा (८५ ११/६०) एवं रूपो जायते तथापि पूर्वोक्ताः षट्त्रिंशद् भाग भागाः कलान्यूना अपि व्यवहारतः पूर्णाः विवक्षिताः । तस्मिंश्च कलान्यून्त्वे अन्त्यमण्डले एकत्र पिण्डिते सति अष्ट षष्टिः एक षष्टि भागाः त्रुटयन्ति तदपसारेण पंचाशीतिः योजनानि नव षष्टि भागाः योजनस्य एकस्य षष्टि भागस्य सत्का षष्टिः एक षष्टि भागा जायन्ते ८५ ६/६०+१/६०×६०/६१ । अयं च शोध्य राशिः सर्व

ब्राह्मार्वाचीन मण्डल गत दृक् पथ प्राप्ति परिमाणात् यदि शोध्यते तदा यथोक्तं सर्वान्त्य मण्डले दृक्पथ प्राप्ति परिमाणं भवतीति ध्येयम् ॥”

“यहां हमने सर्व से अन्दर के मंडल से तीसरे मंडल का पहले कल्पना की बात कहते हैं अर्थात् इस अपेक्षा से अन्तिम जो १८२वां मंडल आया है उसमें यदि पूर्वोक्त 'करण प्रक्रिया' के कारण शोध्य राशि ८५+११/२० (१/६०×६/६१) योजन होता है फिर भी पूर्वोक्त १८/३६ के भाग अमुक कला न्यून होने पर व्यवहार से पूर्ण कहा है अतः ये कला न्यूनतम अनन्त्य मंडल में एकत्र होने से १८/५१ कम होता है, वह निकालने से ८५+६/६०+(६०×१/२१) योजन शोध्य राशि होती है। इस शोध्य राशि को यदि सर्व प्रकार से बाहर के मंडल से पूर्व के मंडल के 'दृष्टिपथ प्राप्ति परिमाण' में से निकालने में आए तो उत्तर में जो संख्या आती है, वह यथोक्त है सर्व से अन्त्य मंडल के दृष्टिपथ प्राप्ति का परिमाण समझना।”

“पूर्वोक्त ध्रुव का द्युप पत्तिस्तु अत्र उपाध्याय श्री शान्ति चन्द्रोक्त जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र वृत्तेः अवज्ञेया। ग्रन्थ गौरव भयात् न अत्र उच्यते। अकित ज्ञेयम् ॥”

‘पूर्वोक्त ‘ध्रुव’ आदि की उपपत्ति तो उपाध्याय श्री शान्ति चन्द्र रचित जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की टीका द्वारा जान लेना चाहिए। यहां ग्रन्थ गौरव बढ जाने के भय से हम वह नहीं कहते।’

यद्वा - पंच योजन सहस्राः पंचोत्तरं शतत्रयम् ।

षष्टिभागाः पंचदश मुहूर्त्तगतिरत्र हि ॥२५२॥

णण्मुहूर्त्तामना चैषा दिवसार्धेन गुणयते ।

ततोऽप्येतत् दृक् प्राप्तिमानं सर्वान्त्यमण्डले ॥२५३॥

अथवा यहां एक मुहूर्त्त में ५३०५ १५/६० योजन सूर्य की गति होती है, उसे आधे दिन के छः मुहूर्त्त से गुणा करने में आए तो इस तरह भी सर्वान्त्य मंडल में सूर्य के दृष्टिपथ का प्रमाण आता है। (२५२-२५३)

सर्वं ब्राह्मार्वाक्त्वे तु चतुर शीतिवर्जितैः ।

द्वात्रिंशता योजनानां सहस्रैः दृश्यते रविः ॥२५४॥

अंशैश्चैकोनचत्वारिंशता षष्टि समुद्भवैः ।

एकस्य षष्टिभागस्य षष्ट्यांशैश्चैक षष्टि जैः ॥२५५॥

३१६१६-३६/६०-(१/६१×६०/६१) योजन ।

पंचाशीतिः योजनानि नव भागाश्च षष्टिजाः ।

षष्टयंशस्यै कस्य भागाः षष्टिस्तथै कषष्टि जाः ॥२५६॥

सर्वान्य मण्डलाद वाचीन द्वितीय मण्डले ।

एषा वृद्धि स्ततो वृद्धौ पुरतो ध्रुव को ऽप्यसौ ॥२५७॥

सर्व से बाहर के मंडल से अन्दर के मंडल में तो ३१६१६-३६/६० (१/६०×२०/६१) योजन से सूर्य दिखता है । कहने का मतलब यह है कि ८५ पूर्णांक +६/६०+(१/६०×६०/६१) योजन की वृद्धि होती है । सर्व से अन्तिम मंडल के पहले दूसरे मंडल में इतनी वृद्धि जानना और उसके बाद भी उतनी ही वृद्धि प्रत्येक मंडल होती जाती है । इससे इस संख्या को ध्रुवांक रूप समझना चाहिए । (२५४-२५७)

सर्व बाह्या तृतीयादि मण्डलेष्वथ दृक्पथम् ।

ज्ञातुं गुणितया षट्त्रिंशतैकद्वयादि संख्यया ॥२५८॥

ध्रुवांकैन्वू नितेऽसौ स्यात् क्षेप्यराशिरनेन च ।

प्राच्य मण्डल दृग्मार्गो युक्तः स्यादिष्ट मण्डले ॥२५९॥

अब सर्व बाह्य मंडल से तृतीय आदि मंडलों में दृष्टि पथ का माप जानने के लिए छत्तीस को एक-दो आदि संख्या से गुणा करने में जो संख्या आती है उसे इकसठ से भाग देकर ध्रुव संख्या में से निकाल देने पर जो संख्या आती है उस संख्या को पूर्व के मंडल का दृष्टि पथ के माप में मिला देना इससे इष्ट मण्डल में सूर्य के दृष्टि पथ का माप आता है । (२५८-२५९)

तथाहि - तृतीयै मण्डले बाह्यात षट् त्रिंशदेकताडिता ।

ध्रुवकात्तदवस्थैव विशोध्यते ततः स्थितम् ॥२६०॥

पंचारीतिः योजनानि षष्टिगाश्च लवानव ।

षट् यंशस्यैकस्य लवाः चतुर्विंशतिरेव च ॥२६१॥ युग्मं ॥

द्वितीयमंडलस्याक्षिणोचरोऽनेन संयुते ।

तृतीयमण्डले दृष्टिपथमानं भवेदिदम् ॥२६२॥

योजनानां सहस्राः स्युद्वात्रिंशत्यैक योजनाः ।

भागाः एकोनपंचाशद्योजनस्य च षष्टिजा ॥२६३॥

एक षष्टि विभक्तस्यैकस्य षष्टिलवस्य च ।

त्रयोविंशतिरेवांशा एवं सर्वत्र भावना ॥२६४॥ विशेषकं ॥

जैसे कि बाहर के मंडल से तीसरे मंडल में एक से गुणा की गई छत्तीस की संख्या (३६/६१) को ध्रुवांक में से निकाल दो तो पचासी पूर्ण योजन नौ साठांश योजन तथा एक साठांश योजन को चौबीस-इकसठ से भाग करने से जितना आयेगा । यह दूसरे मंडल की दृष्टि पथ की माप मिलाने पर बत्तीस हजार और एक पूर्ण (३२०००१) योजन, उनचास साठांश ४६/६० योजन तथा एक साठांश योजन के तेईस एक इकसाठांश (२३/६१) आयेगा । यह तीसरे मंडल के दृष्टिपथ का माप आता है । इस तरह सर्वत्र भाव रखना चाहिए । (२६०-२६४)

एवमन्तः प्रविशतः सूर्यस्य बाह्य मण्डलात् ।

पूर्वोक्त रीतया दृग्मार्ग प्रमाणे वर्द्धिते रवेः ॥२६५॥

पंचाशीतिः सातिरेका सम्पूर्णा सैव कुत्रचित् ।

साधिका चतुरशीतिः क्वापि सा केवला क्वचित् ॥२६६॥

त्र्यशीतिः साधिका क्वापि योजनानां यथा यथम् ।

सर्वान्तरमण्डलां यावद् भाव्यं तच्च प्रशितम् ॥२६७॥ विशेषकं ॥

इस तरह से बाहर के मंडल से अन्दर के मंडल में प्रवेश करते सूर्य के दृष्टि पथ का प्रमाण पूर्वोक्त विधि से बढ़ता जाता है । इसमें जो मिलाने की संख्या है वह कहीं पचासी योजन से कुछ अधिक कहीं पचासी योजन है, कहीं चौरासी योजन से कुछ अधिक है । कहीं तो चौरासी योजन ही है और कहीं तिरासी योजन से कुछ अधिक है । इस तरह सर्वान्तर मंडल तक यथायोग्य जानना । (२६५-२६७)

“यद्यपि बाह्य तृतीय मण्डलात् द्वय शीत्याधिक शततमे सर्वाभ्यन्तर मण्डले यथोक्त करणेन त्र्यशीतिर्योजनानि द्वाविंशतिः षष्टि भागाः योजस्य एकस्य षष्टि भागस्य सत्का पंच त्रिशदेक षष्टि भागाः ८३ २२/६०+ (१/६०×३५/६५) एवं रूपः क्षेप्य राशि भवति तथापि येऽत्र ध्रुवकात् षट् त्रिशत् यथोक्त रूपाः शोधिताः ते कलया न्यूना अपि पूर्णा एव विवक्षिताः ततः किं चद धिकं निर्गतम् तच्च अधिकं सर्वाभ्यन्तर मण्डले एकत्र पिण्डितं सत् अष्ट षष्टिः एक षष्टि भागा भवन्ति । ततः ते भूयः क्षेप्य राशौ क्षिप्यन्ते ततः

जातः क्षेप्य राशिः ८३ २३/६०+(१/६०×४२/६१) । अस्मिन् राशी सर्वाभ्यन्तरान्तर द्वितीय मण्डल गत दृक् पथ परिमाणे योजिते सति यथोक्तं सर्वाभ्यन्तर मण्डले दृक् पथ परिमाणं भवतीति ज्ञेयम् ॥”

“जोकि बाहर के तीसरे मण्डल से सर्वाभ्यन्तर के १८२वे मंडल में पूर्वोक्त करण प्रक्रिया द्वारा तो ८३ पूर्ण योजन बाईस साठांश और पैंतीस इकसठ अंश क्षेप्य राशि होती है, फिर भी यहां हमें तो ध्रुवांक में से पूर्व कहे अनुसार ३६-इकसठंश भाग निकालने का कहा है । वह एक कला जितना कम होने पर सम्पूर्ण निकाल दिया है कहीं अधिक निकाला है, इससे वह अधिक एकात्रित होते सर्व से अन्दर के मंडल में छत्तीस इकसठ अंश सद्दश होता है, और इससे वह फिर से क्षेप्य राशि में मिलाते तिरासी पूर्ण योजन तेईस-साठांश और बयालीस-इकसठ अंश क्षेप्य राशि होती है । यह ‘क्षेप्यराशि’ सर्वाभ्यन्तर से दूसरे मंडल के दृष्टि पथ के माप में मिलाने से यथोक्त सर्वाभ्यन्तर मण्डल में के दृष्टि मार्ग का प्रमाण आता है । इस तरह समझना ।”

कथं चैव योजनानां सहस्रैः दूरगावपि ।

आसन्नाविव दृश्येते तरणी उदयास्तयोः ॥२६८॥

मध्याह्ने तु योजनानामष्टशत्यां स्थितावपि ।

दूरस्थाविव दृश्यंते कथमुष्णत्विषौ ननु ॥२६९॥

यहां प्रश्न करते हैं कि - दोनों सूर्य उदय-अस्त समय में हजारो योजन दूर होने पर भी अपने नजदीक क्यों दिखते हैं ? मध्याह्न के समय में आठ सौ योजन ऊंचा होने पर बहुत दूर क्यों दिखता है ? (२६८-२६९)

अत्रोच्यते - दूरत्वेन प्रतिघातात् स्वबिम्ब महसा रवी ।

आसन्नौ सुखदृश्यत्वात् ज्ञायेते उदयास्तयोः ॥२७०॥

मध्याह्ने चासन्नतया प्रसपत्तीवरश्मिभिः ।

ज्ञायेते दुर्निरीक्ष्यत्वादासन्नावपि दूरगौ ॥२७१॥

इसका उत्तर देते हैं कि - सूर्य के उदय और अस्त काल में दूर होने से उनके बिम्बो के तेज का प्रतिघात होता है, इसलिए सुखपूर्वक देख सकते हैं, इस कारण मानो वो नजदीक में है इस तरह दिखता है । मध्याह्न समय में नजदीक होने पर भी उनकी विस्तर रही तीव्र किरणों के कारण से दुःख मुश्किल से देख सकते हैं । इसलिए नजदीक होने पर भी दूर रहा हो इस प्रकार दिखता है । (२७०-२७१)

“तथा चागमः लेस्सा पाडिधाएणं उगमण मुहुत्तं सिदूरे अ मूले अ दीसंति लेसाहितावेणं मञ्ज्ति अमुहुत्तंसि मूले अ दूरे अदीसंति, लेसापडिद्याएणं अत्थमण मुहुत्तं दूरे अ मूले अ दीसंति । अत्र दूरे चेति दृष्ट् स्थानापेक्षया, विप्रकृष्टे मूले चेति दृष्ट् प्रतीत्य पेक्षया आसन्ने इति भगवती सूत्र शतक ८ उद्देश ॥८॥”

‘तथा आगम में भी कहा है कि उदय काल में दूर होने पर भी लेश्या के प्रतिघात के कारण नजदीक में हो इस प्रकार दिखता है, लेश्या उग्र होने से मध्याह्न के समय में नजदीक होने पर दूर दिखता है, और संध्या समय में तेज (प्रकाश) का प्रतिघात होने से दूर होने पर भी नजदीक लगता है । दूर अर्थात् देखने वाले की अपेक्षा से दूर है, नजदीक अर्थात् देखने वाले को पड़ती प्रतीति के अपेक्षा से नजदीक है । ऐसा श्री भगवती सूत्र शतक ८ उद्देश ८ में आया है।

दूरत्वादेव भूलरनाविव तावुदयास्तयोः ।

नैकटयादेव दृश्येते मध्याह्ने खाग्रगाविव ॥२७२॥

उच्चत्वं तु सर्वदाऽपि समानमेव सूर्ययोः ।

योजनानां ह्यष्टशत्या नार्वाक् न परतश्च तौ ॥२७३॥

दूर होने से ही वे दोनों सूर्य उदय व अस्त काल में पृथ्वी को स्पर्श कर रहा हो ऐसा दिखता है, और नजदीक होने से ही वे मध्याह्न काल में आकाश के अग्रभाग में रहा हो इस तरह दिखता है । (२७२) दोनों सूर्य की ऊंचाई तो हमेशा समान ही होती है, क्योंकि वे आठ सौ योजन से नजदीक नहीं आते हैं तथा दूर भी नहीं जाते हैं । (२७३)

एवं दृष्टिपथ प्राप्तिप्ररूपणा प्रपंचिता ।

अथ प्ररूपणा भान्वोः कुर्मोऽर्धमण्डल स्थिते ॥२७४॥

इस प्रकार से दोनों सूर्य की दृष्टिपथ प्राप्ति के विषय में विवेचन किया । अब इसके अर्धमण्डल की स्थिति के विषय में कहते हैं । (२७४)

एकं मण्डलमेके नाहोरात्रेण समाप्यते ।

द्वाभ्यामभिमुखस्थाभ्यां रविभ्यां प्रतिवादिवत् ॥२७५॥

वादी, प्रतिवादी से आमने-सामने रहे दोनों सूर्य एक अहोरात में एक मण्डल पूर्ण करते हैं । (२७५)

मेरोर्दक्षिणपूर्वस्यां यदा प्रथममेव हि ।

एकः सूर्यः प्रविशति सर्वाभ्यन्तरमण्डलम् ॥२७६॥

पश्चिमोत्तर दिग्भागे तदैवान्योऽपि भास्करः ।

समकालं स्पर्द्धयेव सर्वान्तरमण्डलं विशेत् ॥२७७॥

जब एक सूर्य का मेरूपर्वत से दक्षिण-पूर्व में पहले सर्वाभ्यन्तर मंडल में प्रवेश होता है, उस समय दूसरा सूर्य भी मानो स्पर्द्धा से उसी समय में पश्चिम-उत्तर दिशा में उसी ही प्रथम सर्वाभ्यन्तर मंडल में प्रवेश करता है । (२७६-२७७)

इत्थं ताभ्यां प्रविशद्भ्यां व्याप्तं यत्प्रथमक्षणे ।

क्षेत्रं व्यपेक्षया तस्य कल्प्यमान्तरमण्डलम् ॥२७८॥

इसी तरह प्रवेश करते समय वे दोनों सूर्य प्रथम क्षण-समय में कितना क्षेत्र व्याप्त करते हैं, उसकी अपेक्षा से सर्वाभ्यन्तर मंडल कल्पना करना । (२७८)

प्रथमात्तु क्षणादूर्ध्वं विवस्वतौ शनैः शनैः ।

क्रमादपसरन्तौ च सर्वाभ्यन्तरमण्डलात् ॥२७९॥

अनन्तबहिर्भाविमण्डलाभिमुखं किल ।

सर्पन्तौ चरतश्चारं ततश्च क्षणे ॥२८०॥

स्पृष्टं क्षेत्रं यदेताभ्यां तदपेक्ष्य प्रकल्पितम् ।

ज्ञेयं मण्डल तुल्यत्वात् मण्डलं न तु तात्त्विकम् ॥२८१॥ विशेषकं ॥

पहले क्षण से आगे धीरे-धीरे वे दोनों सूर्य अनुक्रम से सर्वाभ्यन्तर मंडल में से बाद के मंडल सन्मुख जाते समय पहले क्षण में जितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं उसकी अपेक्षा से वह मण्डल समान होने से उस मण्डल की कल्पना करना, वह कोई तात्त्विक अर्थात् वास्तविक मंडल नहीं है । (२७९-२८१)

तथाहुः :-

रवि दुग् भमण वसाओ निष्कज्जइ मंडलं इहं एगम् ।

तं पुण मंडलसरिसं ति मंडलं वुच्चइ तहा हि ॥२८२॥

गिरि निसिह नील वं तेसु उग्गयाणं रवीण कवर्कमि ।

पहमाओ चव समयओ सरणेणं जओ भमणम् ॥२८३॥

तो नो निच्छय रूपं निष्कज्जइ मंडलं दिणयराणम् ।

चंदाण वि एवं चिय निच्छयओ मंडला भावो ॥२८४॥

कहा है कि - दो सूर्य के भ्रमण करने से यहां एक-एक मंडल होता है, किन्तु वह मंडल कहने में आता है । जैसे कि निषध और नीलवंत पर्वत पर कर्क संक्रान्ति में उदय-होते सूर्य, प्रथम समय से गति द्वारा भ्रमण करता है, और इससे इनका यह मंडल कहलाता है । किन्तु निश्चय रूप में मंडल नहीं होता । इसी तरह से चन्दो का भी निश्चय मंडल का अभाव है । (२८२-२८४)

मेरोर्दक्षिण पूर्वस्यामेकोऽभ्यन्तर मण्डले ।

संक्रम्य याम्यदिग्भागं यदा मेरोः प्रकाशयेत् ॥२८५॥

तदापरोत्तरदिशि प्राप्तोऽभ्यन्तरमण्डलम् ।

अन्यो मेरोरूदग्भागं प्रकाशयति भानुमान् ॥२८६॥

दक्षिणोत्तरयोर्मेरोः सर्वोत्कृष्टं दिनं तदा ।

रात्रिः सर्वजघन्यैषोऽहोरात्रौ वत्सरेऽन्तिमः ॥२८७॥

मेरु पर्वत से दक्षिण पूर्व जब एक सूर्य अन्दर के मंडल में प्रवेश होकर मेरु के दक्षिण दिशा के भाग को प्रकाशित करता है, तब दूसरा सूर्य मेरु पर्वत से पश्चिम उत्तर में अंदर के मंडल में प्रवेश करके मेरु के उत्तर दिशा के भाग को प्रकाशित करता है, और उस समय में मेरु से दक्षिण में और उत्तर में सब से बड़ा दिन और सब से छोटी रात होती है और वह वर्ष में अन्तिम अहो रात कहलाती है ।

(२८५-२८७)

अहो रात्रे नवाब्दस्य चरतः प्रथमे यदि ।

द्वितीयस्मिन्मण्डलेऽर्को निष्क्रम्यान्तरमण्डलात् ॥२८८॥

दाक्षिणात्यः तदा सूर्यः सर्वान्तर्मण्डलाश्रितात् ।

विनिर्गत्य दक्षिणार्धात् वायव्यां सुरभूभृतः ॥२८९॥

द्वितीयस्य मण्डलस्योत्तरार्द्धं आश्रितश्चरन् ।

मेरोरूत्तरदिग्भागं प्रकाशयति दीपवत् ॥२९०॥

औत्तराहः पतंगस्तु सर्वान्तर्मण्डलाश्रितात् ।

औत्तरार्धान् विनिर्गत्य मेरोः दक्षिणपूर्वतः ॥२९१॥

द्वितीयस्य मण्डलस्य दक्षिणार्धमुपाश्रितः ।

मेरोः दक्षिण दिग्भागं प्रकाशयति लीलया ॥२९२॥

उसके बाद जब वे दोनों सूर्य नये वर्ष के पहले अहो रात में अन्दर के मंडल में से निकल कर दूसरे मंडल में परिक्रमण करते हैं तब दक्षिण दिशा का सूर्य

सर्वाभ्यन्तर मंडल के दक्षिणार्ध में से निकल कर मेरू पर्वत से वायव्य दिशा में दूसरे मंडल के उत्तरार्ध में प्रवेश करके, फिरता हुआ दीपक के समान मेरू के उत्तर दिशा के भाग को प्रकाशित करता है, और उत्तर दिशा का सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल के उत्तरार्ध में से निकलकर मेरू पर्वत से दक्षिण पूर्व दूसरे मंडल के दक्षिणार्ध में प्रवेश करके मेरू के दक्षिण दिशा के भाग को प्रकाशित करता है ।
(२८८-२९२)

क्षेत्रमाभ्यां च यत्सृष्टं तस्याहः प्रथम क्षणे ।

द्वितीयं मण्डलं बुद्ध्या कल्प्यते तदपेक्षया ॥२९३॥

अब दोनों सूर्यों ने जिस दिन प्रथम क्षण में जितना क्षेत्र स्पर्श किया हो उसकी अपेक्षा से दूसरे मंडल की कल्पना करना । (२८३)

एवं च - ऐकैकस्मिन्नहोरात्रे ऐकैकमर्धमण्डलम् ।

संक्रम्य संचरन्तौ तावन्यान्यव्यतिहारतः ॥२९४॥

प्रत्येकं द्वौ मुहूर्त्तैकषष्टि भागौ दिने दिने ।

क्षपयन्तौ सर्व बाह्य मण्डलावधि गच्छतः ॥२९५॥ युग्मं ॥

और इसी तरह प्रत्येक अहो रात में एक-एक अर्ध मंडल में संक्रमण कर परस्पर आमने-सामने संचार करते उन दोनों सूर्यों के प्रत्येक दिन में मुहूर्त्त का इकसठ के दो भाग कम करते प्रत्येक मंडल को पार करते सर्व से बाहर के मंडल में आता है । (२९४-२९५)

तस्मात्पुनः सर्वबाह्यार्वाचीन मण्डलस्थितात् ।

दक्षिणार्धात् विनिर्गत्य सर्वान्त्यमण्डलाश्रितम् ॥२९६॥

उत्तरार्धं स विशति यः प्रकाशितवान् पुरा ।

रविर्मैरोर्याभ्यभागं सर्वाभ्यन्तर मण्डले ॥२९७॥ युग्मं ॥

यस्तु तत्रोत्तर भागमदिदीपद्रविः पुरा ।

य सर्व बाह्यार्वाचीन मण्डलस्योत्तरार्धतः ॥२९८॥

निर्गत्य दीपयेद्यामयमर्धं सर्वान्त्यमण्डले ।

आद्यं संवत्सरस्यार्धं मेवामाभ्यां समाप्यते ॥२९९॥

इन दोनों सूर्यों में से जिस सूर्य ने पहले सर्वाभ्यन्तर मंडल में मेरू पर्वत के दक्षिण विभाग को प्रकाशित किया था वह सूर्य सर्व से बाहर के मंडल से पूर्व (पहले) के मंडल से दक्षिणार्ध में से बाहर निकल कर अन्तिम मंडल के उत्तरार्ध

में प्रवेश करता है और प्रकाश करता है और उन दोनों सूर्य में से जिस सूर्य ने पूर्व में (सर्वाभ्यन्तर मंडल में) मेरू पर्वत के उत्तर विभाग को प्रकाशित किया था, वह सूर्य सर्व से बाहर में से पूर्व (प्रथम) के मंडल के उत्तरार्ध में से निकलकर अन्तिम मंडल के दक्षिणार्ध में प्रवेश करके दक्षिणार्ध को प्रकाशित करता है । इस तरह से दोनों सूर्य मिलकर संवत्सर का पूर्वार्ध (एक वर्ष के पहले छः महीने) समाप्त करता है । (२६६ से २६६)

ततस्तौ द्वावपि रवी सौम्यायनादिमक्षणे ।

अनन्तरं सर्वबाह्यात् द्वितीयं मण्डलं श्रितौ ॥३००॥

उसके बाद ये दोनों सूर्य उत्तरायण के पहले क्षण में सर्व बाह्य मंडल से अनन्तर दूसरे मंडल में आते हैं । (३००)

उत्तरार्द्धं योऽदिदीपत् सर्वान्त्यमण्डलाश्रितम् ।

दीपयेत्सोऽत्रयाम्यार्धमुत्तरार्धं ततः परम् ॥३०१॥

इन दोनों सूर्य में से जिसने अन्तिम मंडल के उत्तरार्ध को प्रकाशित किया था, वह यहां उसके दक्षिणार्ध को प्रकाशित करेगा, और जिसने दक्षिणा को प्रकाशित किया था, वह उत्तरार्ध को प्रकाशित करेगा । (३०१)

एवं पुनः मंडलार्धमेकैकं व्यतिहारतः ।

एकैकस्मिन् अहोरात्रे आक्रामन्तौ दिवाकरौ ॥३०२॥

प्रत्येकं द्वौ मुहूर्त्तैकषष्टिभागौ दिने दिने ।

वर्धयन्तौ क्रमात् प्राप्तौ सर्वाभ्यन्तरमण्डले ॥३०३॥

मण्डलेऽस्मिन् अहोरात्रे गताद्वस्यान्तिमे रवी ।

यथाऽदिदीपतामर्धं पुनः दीपयतः तथा ॥३०४॥

इति अर्धमण्डल स्थितिः ॥

इस तरह से एक-एक अहोरात्रि में अनुक्रम से एक-एक मंडलार्ध को पार करते वे दोनों सूर्य प्रतिदिन २/६१ मुहूर्त्त दिनमान में बढ़ते हुए अनुक्रम से अन्दर के मंडल में प्रवेश करते हैं और गत वर्ष के अन्तिम अहो रात में जैसे वे अर्ध मंडल को प्रकाशित करते थे उसी तरह से इस समय भी अर्ध मंडल को प्रकाशित कर देते हैं । (३०२-३०४)

इस तरह सूर्य का अर्ध मंडल स्थिति का स्वरूप समझाया है ।

सूर्य वक्तव्यता जैवं यथाग्नाय प्रपंचिता ।

एवं प्रपंचयामोऽथ चन्द्रचारप्ररूपणाम् ॥३०५॥

इस प्रकार सूर्य सम्बन्धी आग्नाय (परम्परा) अनुसार जो कहना था वह कह दिया है । अब इसी ही तरह चन्द्र गति के विषय कहते हैं । (३०५)

आदौ क्षेत्रं मण्डलानां तद् बाधा तदन्तरम् ।

तच्चवारश्च वृद्धिहानिप्रतिभासरूपणा ॥३०६॥

अत्रानुयोग द्वाराणि पंचाहुस्तत्व वेदिनः ।

तत्रादौ मण्डल क्षेत्र परिमाणं प्रत्तन्यते ॥३०७॥

सूर्य के सम्बन्ध में जैसे पांच अनुयोग द्वार कहे हैं, वैसे ही चन्द्रमा के विषय भी तत्त्ववेत्ताओं ने पांच अनुयोग द्वार कहे हैं । और वे इस प्रकार हैं - १- चन्द्रमा के मंडलों का क्षेत्र, २- उनकी अबाधा, ३- उनका अन्तर, ४- उनकी गति और ५- उनकी वृद्धि हानि का प्रति भास । इन पांच में से प्रथम मण्डल के क्षेत्र विषय कहते हैं । (३०६-३०७)

मण्डलानि पंचदश चन्द्रस्य सर्वसंख्या ।

षट् पंचाशद्यौजनैकषष्टिभागपृथन्यतः ॥३०८॥

गुणिताः पंचदशभिः षट् पंचाशत् भवन्ति ते ।

अष्टौ शतानि चत्वारिंशान्येकषष्टिजाः लवा ॥३०९॥

एक षष्टया विभन्यन्ते योजनानयनाय ते ।

त्रयोदस योजनानि लब्धान्येतत्तुशिष्यते ॥३१०॥

सर्व मिलाकर चन्द्रमा के पंद्रह मंडल होते हैं । प्रत्येक मंडल ५६/६१ योजन चौड़ी है, इससे छप्पन को पंद्रह से गुणा करते (५६×१५ = ८४०) आठ सौ चालीस आते हैं उसे इकसठ से भाग देने पर ८४०/६१ पंद्रह मंडल का विस्तार १३ ४७/६१ योजन होता है । (३०८ से ३१०)

सप्तचत्वारिंशदंशा योजनस्यैकषष्टिजाः ।

मण्डलानां पुनरेषामन्तराणि चतुर्दश ॥३११॥

पंचत्रिंशद्योजनानि त्रिंशत् शैक षष्टिजाः ।

लवा एकस्यैक षष्टयंशस्य क्षुण्णस्य सप्तधा ॥३१२॥

उन पंद्रह मंडलों के बीच में चौदह अन्तरा होते हैं, वे प्रत्येक अन्तरा ३५ योजन + १/६१×४/७ योजन होता है । (३११-३१२)

भागाश्चत्वार एकैकमेतावदन्तरं भवेत् ।
 शीतद्युतेर्मण्डलेषु तत्रोपपत्तिरुच्यते ॥३१३॥
 चन्द्र मण्डल विष्कम्भे प्राग्वत्यंचदशाहते ।
 शोधिते मण्डल क्षेत्रात् योजनानां चतुः शती ॥३१४॥
 शेषा सप्तनवत्याढ्या ह्ये कौऽशः चैक षष्टिजः ।
 विभज्यन्ते च ते चतुर्दशभिर्मंडलान्तरैः ॥३१५॥
 पंचत्रिंशद्योजनानि लब्धान्युद्धरिते (सप्त) हते ।
 एक षष्ट्येकषष्ट्यंशमैकेन च समन्विते ॥३१६॥
 अष्टाविंशा. चतुः शत्ये तस्याश्च भजने सति ।
 चतुर्दशभिराप्यन्ते त्रिंशदंशा पुरोदिताः ॥३१७॥
 शेषा अष्टौ स्थिता भाज्या भाजकाश्च चतुर्दश ।
 भागा प्राप्या पवर्त्येते ततो द्वाभ्यामुभावति ॥३१८॥

इसकी उपपत्ति अथवा युक्ति इस तरह है - एक मंडल के विस्तार को पूर्व के समान १५ से गुणा करना, अतः १३ ४७/६१ योजन आयेगा । इन पंद्रह मंडलों का विस्तार समस्त मंडल क्षेत्रों का विस्तार ५१० ४८/६१ योजन है । इसमें से १३ ४७/६१ निकला तो ४६७ १/६१ योजन रह जायेगा ये चौदह अंतरों का कुल विस्तार है, इसलिए ४६७ १/६१ को चौदह से भाग देने पर ३५ पूर्ण योजन और ३० ४/७ इक साठांश योजन आयेगा । वह इस प्रकार ४६७ योजन को चौदह से भाग देने में ३५ योजन आते हैं । भाजक और भाग का गुणा कर ४६० हुआ और ४६७ में से निकाल देने पर शेष सात योजन रहा, उस रहे सात योजन को ६१ द्वारा गुणी एक अंश मिलाने पर ४२८ अंश आया उसे चौदह से भाग देके तीस एक इकसाठ भाग आया और आठ अंश बढ़ गया । उस आठ अंश को चौदह से भाग दैते ८/१४ अथवा ४/७ आया । अतः प्रत्येक चन्द्र के मंडल का आन्तर ३५ ३०/६१, ४/७ समझना (३१३ से ३१८)

भाग भागास्ततो लब्धाश्चत्वारः साप्तिका इति ।
 एतच्चतुर्दश गुणं कर्तव्यं प्रथमं त्विह ॥३१६॥
 पंचत्रिंशद्योजनानि चतुर्दश गुणानि वै ।
 शतान्यभंवश्चत्वारि नवत्याढ्यानि येऽपि च ॥३२०॥
 त्रिंशदेकषष्टि भागाश्चतुर्दश गुणी कृताः ।
 जाताः शतानि चत्वारि विंशत्याढ्यानि ते त्वथ ॥३२१॥

एकषष्ट्या विभज्यन्ते योजन प्राप्तये ततः ।
 लब्धा षट्‌योजनी शेषाश्चतुः पंचाशदंशकाः ॥३२२॥
 सप्त भक्तस्यैकषष्टिभागस्य या चतुर्लवी ।
 चतुर्दशगुणा सापि षट्‌पंचाशत् भवन्त्यमी ॥३२३॥
 अष्टावेकषष्टिभागाः जायन्ते सप्तभाजिताः ।
 द्वाषष्टिरेते स्यु प्राच्य चतुः पंचाशता युताः ॥३२४॥
 एक षष्ट्यैषां च भागे प्राप्तं सैकांशयोजनम् ।
 योज्यतेऽशश्चांशराशौ योजनं योजनेषु च ॥३२५॥

इन आन्तरा को चौदह से गुणा करके ४६० आता है उसे तीस इकसठ से भाग दे कर चौदह से गुणा करके चार सौ बीस आता है । उसे इकसठ से भाग देते छः योजन आया और चौवन अंश बढ़ता है । फिर चार-सात से भाग देकर चौदह से गुणा करके ५६ आता है उसे सात से भाग देने पर आठ आता है, उसे ५४ अंश में मिलाने पर ६२ होते हैं । उसे इकसठ भाग देके एक योजन आया और एक-इकसठ से भाग देना, उसे ४६६ में मिलाने पर ४६७ १/६१ चौदह अंतर का प्रमाण आया । इस तरह मंडल क्षेत्र का विस्तार निकलता है । (३१६-३२५)

एवं च - योजनानां पंचशती दशोत्तरकैषष्टिजाः ।
 अष्ट चत्वारिंशदंशा मण्डलक्षेत्रसंमितिः ॥३२६॥

वे १३ ४७/६१ योजन को चौदह अंतर का विस्तार ४६७ १/६१ योजन के साथ मिलाने पर ५१० ४८/६१ योजन प्रमाण आता है । (३२६)

कृतैवं मण्डल क्षेत्र परिमाण प्ररूपण ।
 संख्या प्ररूपणां त्वेषा माहुः पञ्चदशात्मिकाम् ॥३२७॥
 तत्र पंच मण्डलानि जम्बू द्वीपे जिना जगुः ।
 शेषाणि तु दशाम्भोधौ मण्डलान्यमृतद्युतेः ॥३२८॥

इस तरह से चन्द्र मंडल के क्षेत्र के प्रमाण का कथन किया है । इन चन्द्र मंडलों की संख्या पंद्रह है । उसमें पांच जम्बू द्वीप में है और शेष दस लवण समुद्र के ऊपर है, ऐसा जिनेश्वर भगवान ने कहा है । (३२७-३२८)

अबाधा तु त्रिधा प्रागवत् तत्राद्या मेवपेद्यया ।
 ओधतो मण्डलक्षेत्राबाधाऽन्या प्रति मण्डलम् ॥३२९॥

तृतीया तु मिथोऽबाधा शशिनोः प्रति मण्डलम् ।

तत्रोधतोऽर्कवत् मेरोः मण्डल क्षेत्रमीरितम् ॥३३०॥

अब चन्द्र के मंडलों का अबाधा विषय कहते हैं - (२)

सूर्य के समान चन्द्र के सम्बन्ध में भी अबाधा तीन प्रकार से है । १- ओष से मेरु पर्वत की अपेक्षा से अबाधा, २- प्रत्येक मंडल में मंडल क्षेत्र की अबाधा, और ३- प्रत्येक मंडल में दोनों चन्द्रमाओं की परस्पर अबाधा । (३२६-३३०)

चतुश्चत्वारिय तैव सहस्रैरष्टभिः शतैः ।

विशतयाढ्यैः योजनानाम् इयतैवाद्यमण्डलम् ॥३३१॥

ओष से मेरु पर्वत की अपेक्षा से सूर्य के समान चन्द्रमा का मंडल क्षेत्र कहा है । उसका पहला मण्डल चवालीस हजार आठ सौ बीस (४४८२०) योजन मेरु पर्वत से दूर रहा है । (३३१)

षट्त्रिंशद्योजनान्येकषष्टयंशाः पंच विंशतिः ।

एकस्यैकषष्टिजस्य चत्वारः सप्तजाः लवाः ॥३३२॥

वर्धतेऽन्तरमेतावत् प्रतिमण्डलमादिमात् ।

सर्वान्यमण्डलं यावत् ततो द्वितीयमण्डलम् ॥३३३॥

सत्सहस्रैश्चतुश्चत्वारिंशता चाष्टभिः शतैः ।

षट्पंचासैरेक षष्टि भागैस्तत्वमि तैस्तथा ॥३३४॥

एकस्यैकषष्टिजस्य चतुर्भिः सप्तजैः लवैः ।

स्यात् मन्दरात् अन्तरितमेकतोऽपरतोऽपि च ॥३३५॥ कलापकं ॥

प्रथम मंडल से लेकर अन्तिम मंडल तक प्रत्येक मंडल में छत्तीस पूर्ण योजन और (२५/६१) ४/७ योजन जितना अंतर बढ़ता जाता है, इससे दूसरे मंडल में चवालीस हजार आठ सौ छप्पन सम्पूर्ण योजन और (२५/६१) ४/७ योजन जितना मेरु पर्वत से दोनों तरफ दूर अन्तर रहता है । (३३२-३३५)

सर्वबाह्यमण्डलं तु स्थितं दूरे सुमेरूतः ।

सहस्रैः पंचचत्वारिंशशता त्रिंशैस्त्रिभिः शतैः ॥३३६॥

योजनानां योजनैक षष्टिभागाष्टकोन्द्रितैः ।

अथो मिथोऽन्तरं वक्ष्ये राशिनोः प्रतिमण्डलम् ॥३३७॥ युग्मं ॥

सर्व से बाहर का मंडल है वह तो मेरू पर्वत से पैंतालीस हजार तीन सौ उन्तीस ४५३२६ ५३/६१ योजन दूर है (३३६) अब दोनों चंद्रमा का प्रत्येक मण्डल में परस्पर अंतर कितना है वह कहते हैं । (३३७)

इन्द्रोर्मिथोऽर्कवत्सर्वान्तरंगमण्डलेऽन्तरम् ।

सहस्रा नवनवतिश्चत्वारिंशा च षट्शती ॥३३८॥

इतश्च- द्वासप्तति योजनानामेक पंचाशदंशकाः ।

एकषष्टिभवाः सप्तभक्तस्यास्य लवोऽपि च ॥३३९॥

एतावदन्तरं ग्लावोः वर्धते प्रति मण्डलम् ।

बहिर्निष्कमतोरन्तर्विशतोः परिहीयते ॥३४०॥

सर्व अभ्यन्तर मंडल में दोनों चन्द्रमाओं का परस्पर अन्तर सूर्य के समान निन्यानवे हजार छः सौ चालीस योजन का है । उसके बाद प्रत्येक मण्डल में बहत्तर पूर्ण योजन और (५१/६१) १/७ योजन सदृश अन्तर हैं । वहां से बाहर निकलते बढ़ता है, और अन्दर दाखिल (प्रवेश) होते घटता है । (३३८-३४०)

एतच्चयत्पुरा प्रोक्तं प्रतिमण्डलमेकतः ।

अन्तरं तद् द्विगुणितं भवेत्पार्श्वं द्वयोद्भवम् ॥३४१॥

यह अन्तर जो पूर्व में प्रत्येक मण्डल में एक ओर का कहा है, उसे दो गुण करने से दोनों तरफ का अन्तर निकलता है । (३४१)

एव च - सहस्राः नवनवति योजनानां शतानि च ।

द्वादशोषितानि सप्त विभागाश्चैकषष्टिजाः ॥३४२॥

एक पंचाशदेकोशं एकषष्टिलवस्य च ।

सप्तभागीकृतस्यैतत् द्वितीय मण्डलेऽन्तरम् ॥३४३॥

दूसरे मण्डल में दोनों चन्द्रमा का परस्पर अन्तर पहले मंडल से बहत्तर योजन आदि बढ़ता है । अतः निन्यानवे हजार छः सौ चालीस योजन+७२ योजन आदि है । अर्थात् ६६७१२ पूर्ण योजन ऊपर (५१/६१) १/७ योजन है । (३४२-३४३)

सर्वान्तिमेऽन्तरं लक्षं सषष्टीनि शतानि षट् ।

योजनानामेकषष्टि भागैः षोडशभिर्विना ॥३४४॥

इस ही तरह से सब से अन्तिम मंडल में दोनों चन्द्रों का एक लाख छः सौ उनसठ पूर्ण योजन और पैतालीस इकसठांश १००३५६ ४५/६१ योजन है । (३४४)

अष्टांशोरूढ्यासमिन्दु मण्डलं भानुमण्डलात् ।

अष्टाष्टार्वाकक्षेत्रभागाः रूढ्यास्ततोऽधिकाः ॥३४५॥

ततः षोडशभिः भागैः न्यूनं परममन्तरम् ।

सर्वान्त्यमण्डले ग्लावोरर्कयोः परमामान्तरात् ॥३४६॥

सूर्य के मंडल से चन्द्रमाओं के मंडल के घेरा आठ अंश अधिक है । इससे दोनों चन्द्रमाओं में क्षेत्र को आठ-आठ अंश अधिक रोका है, और इससे सर्व से अन्तिम मंडल में सूर्य के उत्कृष्ट अन्तर से दोनों चन्द्रमाओं का उत्कृष्ट अन्तर सोलह अंश कम है । (३४५-३४६)

एवं कृता चन्द्रमसोर्मिथोऽबाधा प्ररूपणा ।

साम्प्रतं मंडलचारप्ररूपणा प्रपंच्यते ॥३४७॥

इस तरह दोनों चन्द्रमाओं की परस्पर अबाधा का कथन किया । अब उनकी मंडल गति के विषय में कहते हैं । (३४७)

परिक्षेपा मण्डलानां मुहूर्त्तगतिरत्र च ।

मण्डलार्ध मण्डलयोः काल संख्या प्ररूपणा ॥३४८॥

साधारण साधारण मण्डलानां प्ररूपणा ।

एवं चत्वार्यनुयोगद्वाराण्यत्र जिना जगुः ॥३४९॥

यहां चार अनुयोग द्वार कहे हैं :- १-मंडल की परिधि - घेरावार, २- मुहूर्त्त गति, ३- मंडल तथा अर्ध मंडल की काल संख्या और ४- साधारण तथा असाधारण मंडल । यहां इन चार वस्तु का विचार जिनेश्वर देव ने कहा है । (३४८-३४९)

विष्कम्भयामतस्तत्र सर्वाभ्यन्तर मण्डलम् ।

सहस्रा नव नवतिश्चत्वारिंशा च षट् शती ॥३५०॥

तिस्रो लक्षाः पंचदश सहस्रा योजनान्यथ ।

नवाशीतिः परिक्षेपोऽधिकोऽभ्यन्तर मण्डले ॥३५१॥

भावना तूभयोरपि सूर्याभ्यन्तर मण्डलवत् ॥

सर्व से अन्दर का मंडल निन्यानवे हजार छः सौ चालीस (६६६४०) योज लम्बा चौड़ा है । अर्थात् इतना इन दोनों के मध्य चौड़ाई है, और इससे उनको परिधि तीन लाख पंद्रह हजार नवासी योजन से कुछ अधिक है । (३५०-३५१)

इन दोनों की भावना भी सूर्य के अभ्यन्तर मंडल के समान जानना ।

द्वितीय मण्डल व्यासं विभाव्योक्तानु सारतः ।

भावनीयः परिक्षेपः स चापमुपपद्यते ॥३५२॥

तिस्त्रो लक्षा पंच दस सहस्राणि शत त्रयम् ।

योजनान्येकोनविंश साधिकं किंचनाथ वा ॥३५३॥

दूसरे मंडल का व्यास पूर्वोक्त अनुसार भाव-विचार कर इसका घेराव निकालना चाहिए, वह तीन लाख पंद्रह हजार तीन सौ उन्नीस योजन से कुछ अधिक आता है । (३५२-३५३) वह इस प्रकार :-

पूर्व मण्डल विष्कम्भात् परमण्डल विस्तृतौ ।

द्वावसति योजनानि वृद्धिः प्राक् प्रत्यपादि च ॥३५४॥

तस्याः पृथक् परिक्षेपः कर्तव्यः कोविदेन्दुना ।

द्वे शते त्रिंशदधिके योजनानां भवेदसौ ॥३५५॥

पूर्व पूर्व परिक्षेपे यद्ययं क्षिप्यते तदा ।

परापरपरिक्षेपा भावनीया यथोत्तरम् ॥३५६॥

पूर्व मंडल की चौड़ाई से पश्चिम मंडल की चौड़ाई में पूर्व जो ७२ योजन की वृद्धि कही है, वह बहत्तर योजन की अलग परिधि निकालना चाहिए, वह २३० योजन होता है, उसे पूर्व-पूर्व के घेराव में मिलाने से उत्तरोत्तर मंडल का घेराव आयेगा । (३५४-३५६)

इयमिन्दुमण्डलानां परिक्षेप प्ररूपणा ।

मुहूर्त्तं गतिमाख्यामि संप्रति प्रतिमण्डलम् ॥३५७॥

इस तरह से चन्द्र के मण्डलों का कथन किया, अब प्रत्येक मंडल में उनकी मुहूर्त्त गति विषय में कहते हैं । (३५७)

उपसंक्रान्तरिन्दोः सर्वाभ्यन्तर मण्डले ।

पंच पंच सहस्राणि योजनानां त्रिसप्ततिः ॥३५८॥

सहस्रैस्त्रयोदशभिः सतत्वैः सप्तभिः शतैः ।

छिन्नस्य योनस्यांशशतांश्च सप्तसप्ततिः ॥३५६॥

चतुश्चत्वारिंशदाढया मुहूर्त्तगतिरेषिका ।

जिज्ञास्यतेऽस्याश्चेत् बीजं श्रूयतां तर्हि भावना ॥३६०॥

सर्व अभ्यन्तर मंडल में संक्रान्त होते दोनों चन्द्रमाओं की भी गति एक मुहूर्त्त में पांच हजार और तिहत्तर पूर्ण योजन तथा ७७४४/१३७२५ योजन होती है। इनकी गति किस तरह जानना तो उसकी भावना इस प्रकार है । (३५८ से ३६०)

इहै कै कोऽप्यमृतांशुरे कै क मर्धमण्डलम् ।

एकनाहोरात्रेणैक मुहूर्त्ताधिक्यशालिना ॥३६१॥

शताभ्यामेक विंशाभ्यां द्वाभ्यां छिन्नस्य निश्चितम् ।

मुहूर्त्तस्यैका दशभिः साधैर्भागीः प्रपूरयेत् ॥३६२॥ युग्मं ॥

एवं शशी द्वितीयोऽपि द्वितीयमर्धमण्डलम् ।

कालेनैतावतैव द्राक् भ्रमणेन प्रपूरयेत् ॥३६३॥

सम्पूर्णास्य मण्डलस्य पूर्त्तिकाले यद्रेष्यते ।

अहोरात्रद्वयं द्वाभ्यां मुहूर्त्ताभ्यां युतं तदा ॥३६४॥

एक विंशत्यधिकाभ्यां शताभ्यां चूर्णितस्य च ।

त्रयोविंशतिरंशानां मुहूर्त्तस्य विनिर्दिशेत् ॥३६५॥ युग्मं ॥

एक चन्द्रमा एक अर्धमंडल का एक अहोरात्रि होती है, एक मुहूर्त्त और ११/२२१ मुहूर्त्त काल में (इतने समय में) पूरा करता है । दूसरा चन्द्रमा भी दूसरे अर्ध मंडल को उतने ही समय में पूर्ण करता है । अतः एक सम्पूर्ण मंडल को पूर्ण करने का समय दो अहो रात्र दो ३२/२२१ मुहूर्त्त लगता है ।

मण्डले पूर्त्ति कालेऽत्र प्रत्ययः केन चेदिति ।

त्रैराशिकेन तदपि श्रूयतां यदि कौतुकम् ॥३६६॥

एक मंडल पूर्ण (पार) करने में इतना समय लगता है । उसका क्या सबूत है ? इस प्रकार किसी को शंका होती हो तो उसका समाधान त्रैराशि की गिनती से होती है । उसे जानने की इच्छा हो तो सुनो । (३६६)

भानुः लघु विमानत्वाच्छीघ्रगामि तथापि च ।

षष्ट्या मुहूर्त्तैरेकैकं मण्डलं परिपूरयेत् ॥३६७॥

तद्वैपरीत्या द्वाषष्ट्या साग्रयातैर्विधुस्तु तत् ।
साष्टषष्टिः सप्तदशशती तानि युगे ततः ॥३६८॥

एक चन्द्रापेक्षयार्धमण्डलानि भवन्ति हि ।
तावन्त्येव च पूर्णानि द्वयोरिन्द्रोरपेक्षया ॥३६९॥

सूर्य चन्द्र से कुछ छोटा विमानवाला है । वैसे ही शीघ्र गति वाला होने से वह प्रत्येक मंडल साठ मुहूर्त (दो अहो रात) में पूर्ण करता है । परन्तु चन्द्रमा तो उसके मन्द गति वाला होने से बासठ मुहूर्त कुछ अधिक समय में पूर्ण करता है । उसके १७६८ युग होते हैं । उतने ही एक चन्द्रमा की अपेक्षा से अर्धमण्डल होता है । दो चन्द्रमा की अपेक्षा से उतने ही सम्पूर्ण मंडल होते हैं । (३६७-३६९)

ततश्च- आष्टषष्टि सप्तदशशतमानार्धमण्डलैः ।
युगान्तर्भाविभी रात्रिदिवानां यदि लभ्यते ॥३७०॥

अष्टादशशती त्रिंशत् तदा ननु किमाप्यते ।
द्वाभ्यामर्धमण्डलाभ्यामिति राशित्रयं लीखेत् ॥३७१॥

अन्त्येन राशिना राशौ मध्यमे गुणिते सति ।
जातः शतानि षट् त्रिंशत् सषष्टीन्धेष भन्यते ॥३७२॥

साष्टषष्टि सप्तदशशतात्मकाद्यराशिना ।
अहोरात्रद्वयं लब्धं चतुर्विंशं शतं स्थितम् ॥३७३॥

अहो रात्रस्य च त्रिंशन्मुहूर्ता इति ताडितम् ।
त्रिंशताभूत् विंशतीयुक् सप्तत्रिंशच्छतात्मकम् ॥३७४॥

अस्मिन् साष्टषष्टिसप्तदशशतया हते द्वयम् ।
लब्धं मुहूर्तयोः शेषं शतं चतुरशीतियुक् ॥३७५॥

भागा प्राप्ताऽपवर्त्येते अष्टभिः भान्यभाजकौ ।
त्रयोविंशतिरेकोऽन्यश्चैकविंशं शतद्वयम् ॥३७६॥

इससे युगान्तर के १७६८ अर्ध मंडल में जो १८३० अहो रात्रि होती है, तो दो अर्ध मंडल में कितने अहोरात होती है, इस तरह त्रिराशी लेकर हिसाब करना चाहिए । उसे लिखने की रीति :- १७६८ : १३८० : २ : इस तरह लिखकर १८३० को दो से गुणा करते ३६६० आते हैं और १७६८ से भाग देते दो अहो रात्रि आती है और १२४ बढ़ते हैं । इन १२४ को एक अहो रात के तीस मुहूर्त में गिनते ३७२० आते हैं इसे १७६८ से भाग देते, दो मुहूर्त आते हैं । उसे ३५३६ निकाल देने पर

१८४ बडे, फिर भाग नहीं लगने से १८४ और १७६८ दोनों संख्या को आठ से भाग दे कर २३/२२१ होते हैं । इस तरह उत्तर में दो अहो रात, २ २३/२२१ मुहूर्त्त अर्थात् ६२ २३/२२१ मुहूर्त्त आता है । (३७० से ३७६)

एषा मुहूर्त्तद्वाषष्टिः सवर्णनाय गुण्यते ।

एक विंशाभ्यां शताभ्यां ये चोपरितनाः लवाः ॥३७७॥

त्रयोविंशतिरूक्ता प्राक् ते क्षिप्यन्ते भवेत्ततः ।

त्रयोदश सहस्राणि सतत्त्वा सप्तशत्यपि ॥३७८॥

उसे सवर्ण लाने के लिए २२१ के द्वारा गुणा करने पर तेरह हजार सात सौ पच्चीस (१३७२५) आता है । (३७७-३७८)

सर्वान्तमण्डलस्थस्य परिधिर्यः पुरोदितः ।

एकविंशत्यधिकाभ्यां शताभ्यां सोऽपि गुण्यते ॥३७९॥

जात षट् कोटयः षण्णवतिः लक्षाः स्वरूपतः ।

चतुस्त्रिंशत् सहस्राणि षट्शत्येकोनसप्ततिः ॥३८०॥

सहस्रैस्त्रयोदशभिः सतत्त्वं सप्तभिः शतैः ।

एषां भागे हते लब्धा मुहूर्त्तगतिरेन्दवी ॥३८१॥

योजनानां सहस्राणि पंचोपरि त्रिसप्ततिः ।

चतुश्चत्वारिंशान्यंशशतानि सप्तसप्ततिः ॥३८२॥

सर्वान्तर मंडल में रहे चंद्रमा की पूर्व में जो परिधि कही है, उसे भी २२१ द्वारा गुणा करने पर वह छः करोड़ छियानवे लाख चौतीस हजार छः सौ उनहत्तर (६,६६,३४,६६६) आता है, और उसे तेरह हजार सात सौ पच्चीस (१३७२५) से भाग देने से चन्द्रमा की मुहूर्त्त गति ५०७३ ७७४४/१३७२५ योजन आती है । (३७९-२००३८२)

मुहूर्त्तगतिरित्येवं भाव्येन्द्रोः प्रतिमण्डलम् ।

विभाज्योक्तभाजकेन प्राग्वत् परिरयं निजम् ॥३८३॥

इस तरह से दोनों चन्द्रमाओं के प्रत्येक मंडल में मुहूर्त्त गति, पूर्व के समान अपनी परिधि को उक्त भाजक से भाग देने से जो संख्या आए उसे समझ लेना । (२८३)

मुहूर्त्तीयगतौ यद्वा वर्धन्ते प्रतिमण्डलम् ।

त्रियोजनी पंच पंचाशांश्च षण्णवतिः शताः ॥३८४॥

भागा एकयोजनस्य विभक्तस्य सहस्रकैः ।

त्रयोदशमितैः सप्तशता च पंचविशंया ॥३८५॥ युग्मं ॥

अथवा तो दोनों चन्द्रमाओं की प्रत्येक मण्डल में मुहूर्त्त गति के अन्दर
३- ६६५५/१३२७५ योजन बढ़ता है । इस तरह समझना । (३८४-३८५)

अत्र उपपत्ति -

योजनद्विशती त्रिंशा या वृद्धिः प्रतिमण्डलम् ।

उक्तापरिरये गुण्या सा द्विशत्यैकविंशया ॥३८६॥

भक्ता त्रयोदशसहस्रादिना राशिना च सा ।

दत्ति त्रियोजनीं शेषानंशानपि यथोदितान् ॥३८७॥ युग्मं ॥

इसकी उपपत्ति (सिद्धि) इस प्रकार है - प्रत्येक मण्डल के घेराव में जो
२३० योजन की वृद्धि कही है, उसे २२१ से गुणा करके १३७२५ से भाग देने पर
३- ६६५५/१३७२५ योजन आता है । (३८६-३८७)

सर्वान्तर्मण्डले चन्द्रो जनानां दृष्टि गोचरी ।

सहस्रैः सप्तचत्वारिंशता त्रिषष्टियुक्तया ॥३८८॥

द्विशत्या च योजनाना एकस्य योजनस्य च ।

षष्टयंशैरेकविंशत्या तत्रोपपत्तिरुच्यते ॥३८९॥

सर्वाभ्यन्तर अर्थात् सर्व प्रकार से अन्दर के मंडल में होता है, उस समय
दोनों चन्द्रमा सैंतालीस हजार दो सौ तिरसठ पूर्ण योजन सात बीसांश (४७२६३ ७/
२०) योजन से लोगों को दृष्टिगोचर होता है । वह किस तरह है ? उसे युक्ति से
समझाते हैं:- (३८८-३८९)

अन्तर्मण्डल परिधेर्दशांशे त्रिगुणीकृते ।

इन्द्रोः प्रकाशक्षेत्रं स्यात् तापक्षेत्रमिवाक्योः ॥३९०॥

अर्धे प्रकाशक्षेत्रस्य पूर्वतोऽपरतोऽपि च ।

इन्द्रोरपि दृष्टिपथप्राप्तिः विवस्वतोरिव ॥३९१॥

सब से अन्दर के मण्डल के घेराव दशांक का तीन गुणा करना, अतः जो
संख्या आयेगी वह सूर्य के ताप (प्रकाश) क्षेत्र के समान, दोनों चन्द्रमाओं का

ताप-प्रकाश क्षेत्र आयेगा । उसके बाद पूर्व और पश्चिम दोनों तरफ प्रकाश क्षेत्र का आधा करने से सूर्य की दृष्टि मार्ग की प्राप्ति समान, चन्द्र के दृष्टि मार्ग की प्राप्ति होती है, अर्थात् इतने दूर से चन्द्र को देख सकते हैं । (३६०-३६१)

“तथा च जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रम् - तथाणं इयगयस्स मणुसस्स सीयाली साहे जो अण सहस्सेहिं दोहियते वट्टेहिं जोअण सएहिं एग वीसाए सट्ठि भाएहिं जो अणस्स चंदे चक्खुफांस हव्वमागच्छइ ॥”

“इस विषय में जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में कहा है कि यहां के रहे लोगों को दोनों चन्द्रमा सैंतालीस हजार दो सौ तिरसठ योजन सम्पूर्ण और इक्कीस साठांश ४७२६३ २१/६० योजन से दृष्टिगोचर होते हैं ।”

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र ववृत्तौ चः- “यत्तु षष्ठी भागीकृयोजन सत्कैक विंशति भागाधिकत्वं तत्तु संप्रदायगम्यम् । अन्यथा चन्द्राधिकारे साधिक द्वाषष्टि मुहुर्त्त प्रमाण मण्डल पूर्ति कालस्य छेद राशित्वेन भणनात् सूर्याधिकार सत्कषष्टि मुहुर्त्त प्रमाण मण्डल पूर्तिकालस्य छेद राशित्वेन अनुपपद्यमानत्वात् इति दृश्यते । तदत्र तत्त्वं बहुश्रुत गम्यम् ॥”

परन्तु इस जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की टीका में कहा है कि ‘एक योजन के ६१/६० जो अधिक रूप कहा है, वह संप्रदायगम्य है, नहीं तो चन्द्र के अधिकार में कुछ अधिक खासत मुहुर्त्त कहा है, इसमें मंडल पूर्ण करने के काल को छेद राशि रूप कहने से सूर्य के अधिकार के सम्बन्ध में ६० मुहुर्त्त कहा है, इतने मंडल पूर्तिकाल को छेदराशि रूप प्राप्त नहीं हो सकता । अतः यहां तत्त्व क्या है, वह बहुश्रुत ज्ञानी जाने ॥’

पंचयोजनसहस्राः पंचविंशतियुक् शतम् ।

योजनस्य तथैकस्य पंचविंशतिसंयुतैः ॥३६२॥

त्रयोदशभिः सहस्रैः भक्तस्य सप्तभिः शतैः ।

भागा नवत्यधिकानि शतान्येकोनसप्ततिः ॥३६३॥

मुहुर्त्तगतिरेषेन्द्रोः सर्वपर्यन्तमण्डले ।

अथात्रैव दृष्टिपथप्राप्तिः विविच्यतेऽनयोः ॥३६४॥

एकत्रिंशता योजनसहस्रैरष्टभिः शतैः ।

एकत्रिंशैः सर्वबाह्ये दृश्यते मण्डले विधू ॥३६५॥

सर्व से आखिर मंडल में दोनों चन्द्रमा की मुहूर्त गति ५१२५ ६६६०/१३७२५ योजन होती है, और दृष्टि मार्ग प्राप्ति इकतीस हजार आठ सौ इकतीस योजन से है। अर्थात् ३१८३१ योजन से चन्द्र लोगों को दृष्टिगोचर होता है । (३६२-३६५)

“अत्र सूर्याधिकारोक्तम् तीसाएसट्टिभाएहि इत्यधिकं मन्तव्यम् । इति जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति वृत्तौ ॥”

“इस सम्बन्ध में जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की टीका में कहा है, कि यहाँ सूर्य के अधिकार में ३०/६० अधिक रूप कहा है । उसे जानना ।”

“अत्र सर्वाभ्यन्तर सर्व बाह्य चन्द्र मण्डल योः दृष्टि पथ प्राप्तिता दर्शिता। शेष मण्डलेषु सा चन्द्र प्रज्ञप्ति-बृहत्क्षेत्र समास- जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र वृत्यादि ग्रन्थेषु पूर्वैः क्कापि दर्शितानोप लभ्यते । ततोऽत्रापि नदर्शितेति ज्ञेयम् ॥”

“यहाँ सर्व से अन्दर और सर्व से बाहर के इस तरह दो चन्द्र मंडल का ही दृष्टिपथ प्राप्ति का प्रमाण बताया है, शेष मंडलों का बताया नहीं है । क्योंकि चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र, बृहत् क्षेत्र समास, जम्बूद्वीप, प्रज्ञप्ति सूत्र तथा अन्य ग्रन्थों की टीका आदि में पूर्वाचार्यों ने कहीं पर भी वर्णन नहीं किया है ।”

प्रतिमण्डलमित्येव मुहूर्तगतिरीरिता ।

मण्डलार्धमण्डलयोः कालमानमथबुवे ॥३६६॥

इस तरह से चन्द्रमा के प्रत्येक मंडल में मुहूर्त गति के विषय में कहा है । अब उनके मंडल और अर्ध मंडल के कालमान विषय में कहते हैं । (३६६)

नवशत्या विभक्तस्य चंचत्यंच दशादयया ।

विभागैर्मण्डलार्धस्य किलैक त्रिंशतो नितम् ॥३६७॥

अर्धमण्डलमेके नाहोरात्रेण समाप्यते ।

एकैकेन शंशाकेन यत्र कुत्रापि मण्डले ॥३६८॥ युगं ॥

३१/६१५ इतना कम, अर्धमण्डल किसी भी मंडल में रहा हुआ, एक चन्द्रमा एक अहो रात्रि में सम्पूर्ण करता है । (३६७-३६८)

द्विचत्वारिंशदधिकैः शतैश्चतुर्भिरे व च ।

अहोरात्रस्य भक्तस्य लवैक त्रिंशताधिकौ ॥३६९॥

अहोरात्रि पूर्तिकाल एकस्मिन् मण्डले विधोः ।

रविस्तु पूरयेत् पूर्णाहोरात्रद्वितयेन तत् ॥४००॥ युग्मं ॥

किसी भी एक सम्पूर्ण मण्डल पूर्ण करने लिए चन्द्रमा को २ ३१/४४२ अहोरात होनी चाहिए । (१/२-(१/२×३१/६१५) इतना मंडल पूर्ण करने के लिए एक अहोरात चाहिए । तो एक सम्पूर्ण मंडल पूर्ण करने को अहो रात्रि होनी चाहिए ? वह त्रैराशिक रीति से गिनने में उत्तर मिलेगा ।) कोई भी एक सम्पूर्ण मंडल सूर्य, दो अहो रात्रि में पूर्ण करता है । (३६६-४००)

मण्डलार्धमण्डलयोरुक्तैवं काल संमितिः ।

साधारणा साधारणा मण्डलानि ब्रवीम्यथ ॥४०१॥

इसी तरह से चन्द्रमा के मण्डल तथा अर्धमण्डल के काल का प्रमाण कहा है । अब इसके साधारण तथा असाधारण मंडल विषय में कहते हैं । (४०१)

प्रथमं च तृतीयं च षष्टं सप्तममष्टमम् ।

दशमैकादशे पंचदशमित्यष्टमण्डली ॥४०२॥

नक्षत्रैरविरहिता सदापि तुहिनद्युतेः ।

मण्डलेष्वेसु नक्षत्राण्यपि चारं चरन्ति यत् ॥४०३॥

पहला, तीसरा, छठा, सातवां, आठवां, दसवां, ग्यारहवां, और पंद्रहवां इन आठ मंडलों में चन्द्र का कभी भी नक्षत्रों से विरह-वियोग नहीं होता, क्योंकि इन आठ नक्षत्रों में भी, चार गमन करते हैं । (४०२-४०३)

द्वितीयं च चतुर्थं च पंचमं नवमं तथा ।

त्रीणि च द्वादशादीनि किलैषा सप्तमण्डली ॥४०४॥

ऋक्षैः सदा विरहिता मण्डलेष्वेषु नो भवेत् ।

कदापि चारऋक्षाणामूषरेषु गवामिव ॥४०५॥

दूसरा, चौथा, पांचवा, नौवा, बारहवां, तेरहवां, और चौदहवां, इन सात मंडलों में चन्द्रमा को नक्षत्रों का विरह ही होता है । जैसे बंजर भूमि में गाय जाती नहीं है; इसी तरह वहां नक्षत्रों की गति नहीं है । (४०४-४०५)

प्रथमं तृतीयमेकादशं पंचदशं तथा ।

रविचन्द्रोडुसामान्या मण्डलानां चतुष्टयी ॥४०६॥

एतेषु मण्डलेष्विन्दुः नक्षत्राणि तथा रविः ।

चारं चरन्ति सर्वेऽपि राजमार्गे जना इव ॥४०७॥

पहला, तीसरा, ग्यारहवां और पन्द्रहवां इन चार मण्डलों में सूर्य चन्द्र तथा नक्षत्र सभी सामान्य हैं । क्योंकि इन चार में सूर्य चन्द्रमा तथा नक्षत्र, राजमार्ग पर सब लोग जैसे गमनागमन करते हैं । वैसे गमन करते हैं । (४०७)

षष्ठादीनि पंच सूर्य चार हीनानि सर्वथा ।

शेषाणि मण्डलानीन्दोः किञ्चित् भानुः स्पृशेदपि ॥४०८॥

छठा, सातवां, आठवां, नौवां और दसवां इन पांच चन्द्र मंडल में सूर्य का जरा भी गमना गमन नहीं होता, शेष मंडलों में सूर्य का क्वचित् आवागमन होता है । (४०८)

साधारणासाधारण मण्डलान्ये वमूचिरे ।

सम्प्रतीन्दोः वृद्धिहानिप्रतिभासः प्ररूप्यते ॥४०९॥

इतना चन्द्रमा का साधारण असाधारण मंडल विषय विवेचन किया । अब चन्द्र की वृद्धि और हानि के प्रतिभास विषय में कहते हैं । (४०९)

अवस्थितस्वभावं हि स्वरूपेणोन्दुमण्डलम् ।

सदापि हानिः वृद्धिः वा प्रेक्ष्यते सा न तात्त्विकी ॥४१०॥

ऐसे तो स्वरूप से चन्द्रमा हमेशा अवस्थित स्वभाव वाला ही है । इसकी हानि वृद्धि दिखती है, वह वास्तविक हानि वृद्धि नहीं है । (४१०)

केवलं या शुक्ल पक्षे वृद्धिर्हानिस्तथापरे ।

राहुविमानावरणयोगात् सा प्रतिभासते ॥४११॥

इनकी शुक्ल पक्ष में वृद्धि और कृष्ण पक्ष में हानि दिखती है, वह केवल राहु के विमान के आवरण के योग से दिखता है । (४११)

तथाहु - ध्रुवराहुः पर्वराहुः एवं राहुः द्विधा भवेत् ।

ध्रुवराहोस्तत्र कृष्णातमं विमानमीरितम् ॥४१२॥

तच्च चन्द्र विमानस्य प्रतिष्ठितमधस्तले ।

चतुरंगुलमप्राप्तं चारं चरति सर्वदा ॥४१३॥

तेनापावृत्य चावृत्य चरत्यधः शनैः शनैः ।

वृद्धिहानिप्रतिभासः पोस्फुरीतोन्दुमण्डले ॥४१४॥

इस राहु के विषय में यह कहा है कि - राहु दो प्रकार का है, १- पर्व राहु और २- नित्य राहु का विमान बहुत श्याम है, और वह विमान चन्द्रमा के विमान

के नीचे चन्द्र से चार अंगुल रहकर चलता है । उसको ढाकता आस्ते आस्ते चलता है, इससे ही चन्द्रमा में वृद्धि हानि का आभास होता है । (४१२-४१४)

तथोक्तम् -

चंद्रस्सनेव हाणी नवि वृद्धि वा अविद्धिओ चंदो ।

सुक्किलभावस्य पुणो दी सइ वृद्धी य हाणि य ॥४१५॥

किन्हं राहु विमाणं निच्चं चंदेण होइ अविरहियम् ।

चउरंगुलमप्यत्तं हिद्धा चंद्रस्स तं चरइ ॥४१६॥

अन्यत्र भी यही भावार्थ वाली गाथाएं कही हैं, बस कान्ति की साक्षी देनी है।
पूर्व और इन दो गाथाओं का भावार्थ एक ही है । (४१५-४१६)

तेणं बड्डइ चंदो परिहाणी वावि होई चंद्रस्स ।

तत्र प्रकल्प्य द्वाषष्टिभागान् शशांक मण्डले

हियते पंचदशभिः लभ्यतेऽश्चतुष्टयम् ॥४१७॥

एता वदावियते तत् प्रत्यहं भरणीभुवा ।

अहोभिः पंचदशभिरेव मावियतेऽखिलम् ॥४१८॥ युगं ॥

द्वौ भागौ तिष्ठतः शेषौ सदैवानावृत्तौ च तौ ।

एषा कला षोडशीति प्रसिद्धिमगमत् भुवि ॥४१९॥

चन्द्रमा के मंडल (विमान) के बासठ विभाग की कल्पना करना, उस बासठ को पंद्रह से भाग देना उस भाग में ४ आयेगा । अतः चन्द्रमा हमेशा-नित्य राहु के विमान से ढका जाता है, इस तरह पंद्रह दिन में चन्द्रमा को ६०/६२ आवरण होता है, केवल २/६२ शेष रहता है, उसका कभी भी आवरण नहीं होता, सदा खुला रहता है, और वह भाग पृथ्वी पर चन्द्रमा की सोलहवां कला रूप में प्रसिद्ध है । (४१७ से ४१९)

कल्प्यन्तेऽशाः पंचदश विमाने राहवेऽथ सः ।

जयत्यकैकांशवृद्धया नीतिज्ञोऽरिभिवोडुपम् ॥४२०॥

राहु के विमान के पंद्रह भाग की कल्पना करे, तो वह अपने एक-एक भाग की वृद्धि से, उस चन्द्रमा को नीतिज्ञ पुरुष शत्रु को जीतता है, वैसे जीतता है, यानी ढक (आवरण कर) देता है । (४२०)

तच्चैवम् -

स्वीयपंचदशांशेन कृष्णप्रतिपदि ध्रुवम् ।

मुक्त्वांशौ द्वावनावार्यौ शेष षष्टेः सितत्विषः ॥४२१॥

चतुर्भागात्मकं पंचदशं भागं विधुंतुदः ।

आवृणोति द्वितीयायां निजभागद्वयेन च ॥४२२॥

अष्टभागत्मकौ पंच दशांशौ द्वौ रूणद्धि सः ।

षष्टिं भागानित्यमायां स्वैः पंचदशभिः लवैः ॥४२३॥ त्रिभि विशेषकं ॥

कृष्ण पक्ष (वद) की एकम के दिन में चन्द्र में कल्पे हुए बासठ (६२) भाग में से जो आच्छादित न हो सके, उन दो भाग को छोड़कर शेष ६० विभागों के १/१५ को अर्थात् चार विभाग को राहु अपने १/१५ द्वारा आच्छादित करता है, और वदी दूज के दिन में राहु अपने २/१५ से चन्द्रमा के आठ विभाग को आवरण करता है । इसी तरह अमावस्या के दिन में राहु अपने सर्व भाग से अर्थात् उसके अखिल बिंब, चन्द्रमा के साठ भाग को ढक देता है । (४२१ से ४२३) .

ततः शुक्ल प्रतिपदि चतुर्भागात्मकं लवम् ।

एकं पंचदश व्यक्तीकरोत्यपसरन् शनैः ॥४२४॥

द्वितीयायां द्वौ विभागौ पूणिमायामिति क्रमात् ।

द्वाषष्ट्यंशात्मकः सर्वः स्फुटीभवति चन्द्रमाः ॥४२५॥

उसके बाद शुक्ल पक्ष की एकम के दिन वह धीरे से जरा हटकर चन्द्र के चार भाग को प्रकट करता है । और इसी तरह क्रम अनुसार पूर्णिमा के दिन, बासठ भाग रूप सम्पूर्ण चन्द्रमा प्रगट होता है । (४२४-४२५)

इन्द्रोश्चतुर्लवात्मांशो यावत्कालेन राहुणा ।

पिधीयते मुच्यते च तावत्कालमिता तिथि ॥४२६॥

इन्द्रौः पिधीयमानाः स्यु कृष्णाः प्रतिपदादिकाः ।

तिथयो मुच्यमानाः स्यु शुक्लाः प्रतिपदारिकाः ॥४२७॥

चन्द्रमा के यह चार विभाग के जितने अंश को राहु जितने काल तक आवरण- अथवा खुला- (आवरण रहित) रखता है-उतना काल, एक तिथि कहलाती है । राहु नित्य-नित्य आवरण करता जाता है, इस तरह प्रतिपदादि तिथियाँ कृष्णपक्ष की कहलाती है, और राहु नित्य नित्य आवरण रहित करता जाता है, वे-वे प्रतिपदादि तिथियाँ शुक्ल पक्ष की कहलाती हैं । (४२६-४२७)

तथाहु :-

कालेण जेण हायइ सोलसभागो तु सा तिही होइ ।

तहचेव य वृद्धीए एवं तिहिणो समुप्पती ॥४२८॥

कहा है कि - जितने समय में चन्द्रमा का सोलहवां भाग कम होता है, उतने समय में यह बढ़े, उतने काल अनुसार एक तिथि होती है । इस प्रकार तिथि की उत्पत्ति होती है । (४२८)

एकोनत्रिंशता पूर्णैः मुहूर्त्तैश्च द्विषष्टिजैः ।

द्वात्रिंशता मुहूर्त्ताशैरेकैको रजनीपतेः ॥४२९॥

चतुर्था षष्टयंशरूपो राहुणा छाद्यते लवः ।

मुच्यते च तदैतावन्मानाः स्यु तिथयोऽखिलाः ॥४३०॥ युग्मं ॥

एवं च- द्वाषष्टि भक्ताहोरात्रस्यैकषष्टया लवैर्मिता ।

तिथिरेवं वक्ष्यते यत्तद्युक्तमुपपद्यते ॥४३१॥

राहु चंद्रमा का उपरोक्त चार विभाग जितना अंश २६ ३२/६२ मुहूर्त्त पर्यन्त आवरण अथवा खुले- (अवरण रहित) रहता है, अतः सर्व तिथियों का इसी तरह समझना । और इसी तरह एक अहोरात के ६१/६२ सदृश तिथि कहलाती है । वह युक्त ही है । (४२९ से ४३१)

तिथिमानेऽस्मिश्च हते त्रिंशत स्याद्यथोदितः ।

मासश्चन्द्र एवमपि त्रिंशत्तिथिमितः खलु ॥४३२॥

तिथि के इसी अनुसार तीस से गिनने से तीस तिथियाँ का एक चन्द्रमास होता है । (कहलाता है) ।

ननु राहुविमानेन योजनार्थमितेन वै ।

षट्पंचाशद्योजनैकषष्टिभागमितं खलु ॥४३३॥

कथमाच्छादितुं शक्यं गरीयः शशिमण्डलम् ।

लघीयसा गरीयो हि दुरावारमिति स्फुटम् ॥४३४॥

यहां कोई शंका करता है कि - आधा योजन सदृश ही राहु विमान है, वह ५६/६१ योजन प्रमाण का है, अर्थात् अपने से लगभग दो गुणा बड़ा है, तो फिर चन्द्रमा का विमान किस तरह आच्छादित कर सकता है ? छोटी वस्तु से बड़ी वस्तु

आच्छादित नहीं कर सकता है । यह बात स्पष्ट रूप में समझ आती है । (४३३-४३४)

एवमुत्तरयन्त्यत्र केचित् प्राक्तनतपण्डिताः ।

लघीयसोऽप्यस्य कान्ति जालैरत्यन्तमेचकैः ॥४३५॥

आच्छाछते महदपि शशि बिम्बं प्रसृत्वैः ।

दावानलोच्छलद्भूमस्तोमैरिव नमोऽङ्गणम् ॥४३६॥

इसका समाधान करते हैं, कि कई प्राचीन विद्वानों का इस तरह कहना है कि - राहु का विमान यद्यपि छोटा है फिर भी इसके अत्यन्त श्याम रंग के विशाल कान्ति के समूह से वह बड़ा भी चन्द्र बिम्ब ढक जाता है । जैसे दाक्नल से उठा हुआ धुएं का समूह आकाश मंडल को ढक जाता है । उसी तरह यह चन्द्र भी ढक जाता है । (४३५-४३६)

अन्ये त्वभिदधुः धीराः योजनार्थं यदुच्यते ।

मानं ग्रहविमानस्य तदेतत्प्रायिकं ततः ॥४३७॥

योजनायाम विष्कम्भं तत् द्वात्रिंशांशमेदुरम् ।

स्वर्भानुमण्डलं तेन विधुराव्रियतेसुखम् ॥४३८॥

कई विद्वानवर्य इस तरह कहते हैं, कि ग्रह के विमान का प्रमाण अर्ध योजन- आधा योजन कहा है, वहां प्रायः आधा योजन समझना । राहु का विमान तो एक योजन लम्बा-चौड़ा और बत्तीस विभाग स्रदश मोटा समझना । इससे वह चन्द्र के बिम्ब को सुखपूर्वक ढक सकता है । (४३७-४३८)

तथा चाहु :-

आयामो विक्खंभे जो अणमेगं तु तिगुणिओ परिही ।

अड्ढाड्ज्जधणुसया राहुस्स विमाणवाहल्लम् ॥४३९॥

संगहण्यादर्शं प्रक्षेपगाथेयं दृश्यते ॥

संग्रहणी की प्रति में यह ४३८वीं प्रक्षेप गाथा दिखती है, उसमें कहा है कि 'राहु के विमान की लम्बाई-चौड़ाई एक योजन की है, इससे तीन गुणा इसकी परिधि है, और अढाई सौ धनुष्य प्रमाण इसकी मोटाई है । (४३९)

“ भगवती वृत्तावपि एतस्याश्चालनाया एवं प्रत्यवस्थानम् । यदिदं ग्रह विमानमर्थं योजन प्रमाणमिति तत् प्रायिकम् । ततश्च राहोः ग्रहस्य उक्ताधि

प्रमाणमपि विमानं संभाव्यते । अन्ये पुनः राहुः लघीयसोऽपि राहु विमानस्य
महता तमिस्रजालेन तदा त्रियते । इति भगवती सूत्र वृत्तौ १२ शतके
पंचमोद्देशके । तत्त्वं तु केवलिनो विदन्ति ॥”

“इस विषय में भगवती सूत्र की टीका में भी उल्लेख मिलता है, कि ग्रह के
विमान का प्रमाण आधा योजन कहा है, वह प्रायः कर समझना । और इससे राहु ग्रह
के विमान का प्रमाण अधिक भी हो सकता है । कई इस तरह कहते हैं कि - राहु
का विमान छोटा है, परन्तु इसके अन्धकार का समूह अधिक है, इसलिए चन्द्र
मंडल आच्छादित हो जाता है । इस प्रकार से श्री भगवती सूत्र की टीका के बारहवें
शतक के पांचवें उद्देश में कहा है। तत्त्व तो केवली भगवन्त जाने।”

कदाचित् ग्रहण इव विमानमुपलभ्यते ।

वृत्ताकृति ध्रुवराहोः कदाचित् न तथा चाकिम् ॥४४०॥

यहां प्रश्न करते हैं कि ग्रहण समय के समान किसी समय में ध्रुव राहु का
विमान गोलकार दिखता है । और किसी समय में ऐसा नहीं दिखता उसका क्या
कारण है ? (४४०)

दिनेषु येषु तमसाभिभूत स्यात् भृशं शशी ।

तेषूपलभ्यते वृत्तं विमानमस्य येषु च ॥४४१॥

शशीः विशुद्ध कान्तित्वान् तमसा नाभिभूयते ।

वृत्तं विमानं नैतस्य दिनेषु तेषु दृश्यते ॥४४२॥ युग्मं ॥

इसका उत्तर देते हैं - जिस दिन में चन्द्र का राहु से अत्यन्त परभव होता हो
उस दिन में उस राहु का विमान गोलाकार दिखता है, परन्तु जब चन्द्रमा तेजस्वी
कान्ति वाला हो, तब राहु उसका पराभव नहीं कर सकता, और इससे उसका
विमान गोलाकार नहीं दिखता । (४४१-४४२)

तथोक्तम् -

वदृच्छेओ कइवइ दिवसे ध्रुव राहुणो विमाणस्स ।

दिसइ परं न दिसइ जह गहणे पव्व राहुस्स ॥४४३॥

उच्चच्छं न हि तमसाभिभूयं तेजं ससी विसुञ्जन्तो ।

तेण न वदृच्छेओ गहणे उ तमो तमो बहुलो ॥४४४॥

इति भगवती वृत्तौ ॥

श्री भगवती सूत्र की वृत्ति में भी इस प्रकार की शंका की है, इसका उत्तर भी आचार्य भगवन्त ने दिया, उसका भावार्थ पूर्व की दोनों गाथा के अनुसार ही है (४४३-४४४)

यदा तु लेश्यामावृण्वन् पर्वराहुः ब्रजत्यधः ।

पुष्पदन्तमण्डलयोः यथोक्तकालमानतः ॥४४५॥

तदा भवत्युपरागो यथार्हं चन्द्रसूर्ययोः ।

जनैः ग्रहणमित्यस्य प्रसिद्धिं परिभाव्यते ॥४४६॥ युग्मं ॥

अब कुछ ग्रहण के विषय में कहते हैं - जब पर्व राहु सूर्य अथवा चन्द्रमा की लेश्या (कान्ति) को आच्छादित करता है, तब उस काल में सूर्य या चन्द्र के नीचे जाता है, और उस समय में यथा योग्य सूर्य, चन्द्र ढक जाते हैं, वह लोक में ग्रहण के नाम से प्रसिद्ध है । (४४५-४४६)

जघन्यतस्तत्र षण्णां मासामन्ते शशिग्रहः ।

उत्कर्ष तो द्विचत्वारिंशतो मासामतिक्रमे ॥४४७॥

मासैर्जघन्यतः षड्भिर्जायते तरणिग्रहः ।

संवत्सरैरष्टचत्वारिंशतोत्कर्षतः पुनः ॥४४८॥

चन्द्रग्रहण जघन्य से छः महीने में और उत्कृष्ट से बयालीस महीने में होता है, जबकि सूर्य ग्रहण जघन्य से छह मास में और उत्कृष्ट से अड़तालीस वर्ष में होता है । (४४७-४४८)

यदा स्वर्भाणु रागच्छन्, गच्छन् वर पुष्पदन्तयोः ।

लेश्यामावृणुयात्तर्हि वदन्ति मनुजा भुवि ॥४४९॥

चन्द्रोरविर्वा तमसा गृहीत इति यद्यथ ।

लेश्यामावृत्य पार्श्वेन गच्छत्यर्कशशांकयोः ॥४५०॥

तदा वदन्ति मनुजा रविणा शशिनाथवा ।

राहोः कुक्षिर्भिन्न इति यदा पुनर्विधुंतुदः ॥४५१॥

अर्केन्दुलेश्यामावृत्यापसर्पति तदा भुवि ।

वदन्ति मनुजा वान्तौ राहुणा शशिभास्करो ॥४५२॥

चतुर्भिः कलापकम् ॥

सूर्य चन्द्र के नीचे जाते-आते राहु जब उनकी लेश्या तेज को आच्छादित करता है, तब लोग कहते हैं कि उनको अंधकार-राहु ने पकड़कर रखा है। यह जब उनकी लेश्या-प्रकाश को ढकता उनके पास से पास से चला जाता है, तब लोग कहते हैं कि - सूर्य या चन्द्रमा ने राहु की कुक्षि को भेदन की है। जब राहु इसी तरह से उनकी लेश्या प्रकाश का आवरण कर हट जाता है, तब लोग कहते हैं कि राहु ने सूर्य-चन्द्र का वमन किया है। (४४६ से ४५२)

यदा तु गच्छन् वागच्छन् राहुश्चन्द्रस्य वा रवेः ।

लेश्यामावृत्य मध्येन गच्छत्याहुर्जनास्तदा ॥४५३॥

राहुणा रविरिन्दुर्वा विभिन्न इति चेत्युनः ।

सर्वात्मना चन्द्र सूर्य लेश्यामावृतय तिष्ठति ॥४५४॥

वावदन्तीह मनुजाः परमार्थाविदस्तथा ।

राहुणा क्षुधितेनेव ग्रस्तश्चन्द्रोऽथवारविः ॥४५५॥

त्रिभिर्विशेषकम् ॥

राहु जब-जब इन दोनों के मध्य में से जाता है तब कहते हैं, कि राहु ने इनको भेदन किया है। जब राहु सूर्य को अथवा चन्द्रमा को सर्व प्रकार से आच्छादित करता है, तब भी सत्य स्वरूप से अज्ञान लोग यह कहते हैं कि मानो क्षुधातुर हो, ऐसे राहु ने सूर्य या चन्द्र को ग्रस लिया है। (४५३-४५४)

श्रृंगारश्च जटिलः क्षत्रकः खरकस्तथा ।

दुर्धरः सगरो मत्स्यः कृष्ण सर्पश्च कच्छपः ॥४५६॥

इत्यस्य नव नामानि विमानास्त्वस्य पञ्चधा ।

कृष्ण नील रक्त पीत शुक्ल वर्ण मनोहराः ॥४५७॥ युग्मं ।

इति भगवती सूत्र शतक १२ षष्टोद्देशके ॥

इस राहु के नौ नाम हैं - १- श्रृंगारक, २- जटिल, ३- क्षत्रक, ४- खरक, ५- दुर्धर, ६- सगर, ७- मत्स्य, ८- कृष्ण सर्प और ९- कच्छप। तथा इसके १- श्याम, २- नील, ३- रक्त, ४- पीत (पीला) और ५- श्वेत इस तरह पांच वर्ण वाले मनोहर विमान हैं। (४५६-४५७) इस तरह से श्री भगवती सूत्र में शतक १२ उद्देश छः में कहा है।

सम्पूर्ण सर्वावयवो विशिष्टालंकार माल्याम्बर रम्य रूपः ।

महर्द्धि राजति राहुरेषुः लोक प्रसिद्धो नतु मौलिमात्रः ॥४५८॥

उत्तम वस्त्र आभूषण वाला, पुष्प माला से सौन्दर्य वाला तथा मा समृद्धि से युक्त इस राहु के सम्पूर्ण अवयव होते हैं, परन्तु लोगों में प्रसिद्ध है, इस केवल मस्तक रूप ही नहीं है । (४५८)

किंच - विधो रेकैक मयन महो रात्रा स्वयोदश ।

चतुश्चत्वारिंशदहोरात्रांशाः सप्तषष्टिजाः ॥४५९॥

द्वाभ्यां चन्द्रायणाभ्यां स्यात् भमासः सप्त विंशतिः ।

अहो रात्राः सप्तषष्टि भागाः तत्रैक विंशति ॥४६०॥

और १३ ४४/६७ अहो रात का एक चन्द्रायण होता है, और दो चन्द्रायण एक नक्षत्र मास होता है । अतः एक नक्षत्र मास के २७ २१/६७ अहो रात होते हैं । (४५९-४६०)

अत्रोपल्लिस्त्वेवम् :-

सर्वोडूनां चन्द्र भोगो वक्ष्यमाणः समुच्चितः ।

मुहूर्त्तानां शतान्यष्टैकोनविंशान्यथो लवा ॥४६१॥

स्युः सप्तविंशतिः सप्तषष्टिजास्त्रिंशता ततः ।

मुहूर्त्ता के हते लब्धाहोरात्र सप्तविंशतिः ॥४६२॥

मुहूर्त्ता नव शिष्यन्ते भागाश्च सप्तविंशतिः ।

मुहूर्त्ताः सप्तषष्टिधाः कार्याः कर्तुं स्वर्णनम् ॥४६३॥

षट्शती त्र्युत्तरां स्यात् सा सप्तविंशति भागयुक् ।

बभूव षट्शती त्रिंशा भागोऽस्यास्त्रिंशता पुनः ॥४६४॥

सप्तषष्टि भवा भागा लभ्यन्ते एकविंशतिः ।

यथोक्तोऽयं भ भासोऽस्यार्धार्धं याम्योत्तरायणे ॥४६५॥

इसकी जानकारी इस तरह है - सर्व नक्षत्रों का चन्द्र साथ का भोग एकत्रि करे तो ८१६ २७/६७ मुहूर्त्त का होता है । इस संख्या का तीस से विभाग करे तो २७ अहो-रात आते हैं । और ६ २७/६७ शेष रहता है । उसे समान करने के लिए नौ को सड़सठ से गुणा करते $६ \times ६७ = ६०३$ होते हैं, उसमें सत्ताईस मिलाने से $६०३ + २७ = ६३०$ होते हैं, उसे तीस से भाग देने पर २१ आते हैं, वह इसका एक चन्द्रमास होता है, और दूसरे अर्ध-अर्ध भाग का चन्द्र का एक दक्षिणायण और उत्तरायण होता है । (४६१ से ४६५)

चन्द्रोत्तरायणारम्भो युगादिसमये भवेत् ।

प्रागुत्तरायणं पश्चाद्याम्यायनमिति क्रमः ॥४६६॥

प्रवृत्तिः स्याद्यतो ज्योतिश्चक्रचारैकमूलयोः ।

सूर्यं याम्यायनं शीतांशुत्तरायणयोः किल ॥४६७॥

युग के आदि समय में चन्द्र का उत्तरायण प्रारम्भ होता है, और इससे पहले उत्तरायण और बाद दक्षिणायन इस तरह अनुक्रम है, और इससे ही ज्योतिश्चक्र की गति एक मूल सदृश सूर्य के दक्षिणायन की और चन्द्र के उत्तरायण की दोनों की प्रवृत्ति प्रारम्भता एक साथ में होती है । (४६६-४६७)

युगादावेव युगपत्त्रार्कं दक्षिणायनम् ।

पुष्यसप्तषष्टिजांशत्र योविंशत्यति क्रमे ॥४६८॥

युगादावभिजिद्योग प्रथम क्षण एव तु ।

चन्द्रोत्तरायणारम्भः ततो युक्तं पुरोदितम् ॥४६९॥

युग की आदि में एक साथ में ही पुष्य नक्षत्र का २३/६७ अंश व्यतिक्रम होने के बाद सूर्य का दक्षिणायन होता है, और अभिजित नक्षत्र के योग के पहले ही क्षण में चन्द्र का उत्तरायण प्रारम्भ होता है । इस तरह पहले कहा है वह युक्त ही है । (४६८-४६९)

“तथोक्तं-जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रं वृत्तौ । सकल ज्योतिश्चार मूलस्य सूर्यं दक्षिणायनस्य चन्द्रोत्तरायणस्य च युगपत् प्रवृत्तिः युगादा वेव । साऽपि चन्द्रायणं स्यामिजिद्योग प्रथम समय एवं । सूर्यायणस्य तु पुष्यस्य त्रयो विंशतौ सप्तषष्टि भागेषु व्यती तेषु । तेन सिद्धं युगस्य आदित्यमिति ॥”

‘जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की वृत्ति में भी कहा है - सर्व ज्योतिश्चक्र के मूल रूप सूर्य के दक्षिणायन से और चन्द्र के उत्तरायण से युग की आदि में एक साथ में ही प्रवृत्ति प्रारम्भ होती है । उसमें भी चन्द्रायण की प्रवृत्ति अभिजित नक्षत्र योग के पहले ही क्षण में और सूर्यायण की प्रवृत्ति पुष्य नक्षत्र का २३/६७ अंश व्यतिक्रम हो जाने के बाद युग के आदित्य सिद्ध होता है ।’

पुष्यस्य सप्त षष्ट्यत्य विंशत्यंशाधिके ततः ।

मुहूर्त्तदशके भुंक्ते मुहूर्त्तं कोनविंशतौ ॥४७०॥

भोग्यायां सप्तचत्वारिंशदंशायां समाप्यते ।

विधुनोदीच्यमयनं याम्यमारभ्यतेऽपि च ॥४७१॥ युग्मं ॥

पुष्य नक्षत्र का १० २०/६७ मुहूर्त्त भोगने के बाद शेष रहे १६ ४७/६७ मुहूर्त्त भोग्य जब रह जाय तब, चन्द्र उत्तरायण समाप्त करता है, और दक्षिणायन का प्रारम्भ कर देता है । (४७०-४७१)

एवं च सर्वं नक्षत्र भोगार्थानुभवात्मके ।
सामर्थ्याद्वसीयते याम्योत्तरायणे विधोः ॥४७२॥
न त्वाद्यान्त्यमण्डलाभिमुख प्रसरणात्मके ।
याम्योत्तरायणे स्यातां भानोरिव विधोरपि ॥४७३॥

और इसी तरह से समर्थन करते चन्द्रमा के दक्षिणायन और उत्तरायण एवं नक्षत्रों के आधे भोगने का अनुभव रूप दिखता है । यह चन्द्रायण किसी भानु के अयन (वर्ष के आधा भाग) के समान प्रथम और अन्तिम मंडल सम्मुख ही प्रसार (विस्तार) नहीं करता । (४७२-४७३)

किंच -

लोक प्रसिद्ध मकर कर्क राशि स्थितः ततः ।
औचित्यं याम्यमयनं विधुरारभते क्रमात् ॥४७४॥

चन्द्रमा लोक प्रसिद्ध मकर और कर्क राशि में आता है तब से अनुक्रम से उत्तरायण और दक्षिणायन का आरम्भ करता है । (४७४)

युगे युगे चतुस्त्रिंशं शतं चन्द्रायणानि वै ।
त्रिंशान्यष्टादशशतान्येभिश्च युगवासराः ॥४७५॥

प्रत्येक युग में १३४ चन्द्रायण होते हैं, अतः प्रत्येक युग दिन १३४×१३ ४४/६७ अर्थात् १८३० होते हैं । (४७५)

युगातीतपर्वसंख्या कार्या पंचदशाहता ।
क्षिप्यन्ते तत्र तिथयः पर्वोपरिगतास्ततः ॥४७६॥
राशोस्माद्विवर्च्यन्तेऽबम रात्राः ततः परम् ।
ऋक्षमासार्धेन भागे यल्लब्धं तद्विचार्यते ॥४७७॥
लब्धे समेऽङ्के विज्ञेयमतीतं दक्षिणायनम् ।
विषयेऽङ्के पुनर्लब्धे व्यतीतमुत्तरायणम् ॥४७८॥
शेषां स्तुद्धारितानं शान् सप्त षष्ठया हरेत् बुधः ।
लब्धाकं प्रमिता वर्तमानायनदिना गताः ॥४७९॥

युग के प्रारम्भ के बाद अमुक दिन में कौन सा चन्द्रायण है, उसे जानने की रीति कहते हैं :- युगातीत पूर्व की संख्या को पंद्रह द्वारा गुणा करना, उसके बाद पर्वातीत तिथियां उसमें मिलना । उसमें जो संख्या-अंक आता है, उसमें से क्षयतिथियां बाद करना, उसमें जो संख्या आती है, उसे अर्ध चन्द्र मास से भाग देना। इस तरह करके भाग देने में जो संख्या आती है, वह यदि सम अंक हो तो जानना। यदि दक्षिणायन व्यतीत हुआ, इस विषय का अंक हो तो जानना । अथवा उत्तरायण व्यतीत हुआ, यदि अंश बढ़ जाय, उसे सड़सठ से भाग देना । अतः भाग देने में जो संख्या आए उतना चलते अयन के दिन (वर्ष के आधे भाग के दिन) व्यतीत हुए हैं । ऐसा जानना और वह भी जितने अंश बढ़े उतने सड़साठांश उसके बाद के दिन व्यतीत हुए ऐसा समझना । इस विषय पर दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं । (४७६-४७६)

यथा युगादेरारम्य नवमासव्यतिक्रमे ।

पंचभ्यां केनचित् पृष्टं किं चन्द्रायणमस्ति भोः ॥४८१॥

कुर्यात् पंचदशघ्नि पर्वाण्यष्टादशात्र च ।

क्षिपेत् गतान् पंच तिथीन् त्यक्त्वावम चतुष्टयम् ॥४८२॥

एकसप्तया समेतं संजातं शतयोर्द्वयम् ।

भाजकोऽस्य भमासार्धं पूर्णरूपात्मकं न तत् ॥४८३॥

किन्तु सप्तषष्टिभागैः कियद्भिरधिकं ततः ।

एष राशिः सप्तषष्टया भागसाम्याय गुण्यते ॥४८४॥

अष्टादश सहस्राणि सप्तपंचाशताधिकं ।

शतं जातमितश्चोऽडुभासार्द्धदिवसा अपि ॥४८५॥

सप्तषष्टया हताः शेषैः वेद वेदलवैर्युताः ।

जाताः पंच दशाढ्यानि शतानि नव तैः पुनः ॥४८६॥

हते भान्यांकेऽयनानि लब्धान्येकोनविंशतिः ।

शेषा भाग सप्तशती द्विसप्तत्यधिका स्थिता ॥४८७॥

अस्या भागे सप्तषष्टया लब्धा रूद्रमिता दिनाः ।

शेषां पंचत्रिंशदंशाः तिष्ठन्ति सप्तषष्टिजाः ॥४८८॥

चन्द्रायणान्यतीतानीत्येवमेकोनविंशतिः ।

अनन्तरमतीतं यत्तच्चन्द्रस्योत्तरायणम् ॥४८९॥

गोयम चंद्रस्य षं ज्योतिसिदस्य ज्योति सरण्णे मियंके विमाणे कन्ता देवा कन्ताओ देवीओ । इत्यादि ॥''

‘इति चन्द्र स्वरूप निरूपणम् ॥’

‘इस सम्बन्ध में पांचवां अंग श्री भगवती सूत्र में उल्लेख मिलता है - श्री गौतम स्वामी प्रश्न करते हैं - हे भगवन् ! चन्द्रमा को ससी क्यों कहते हैं ? इसका भगवान् उत्तर देते हैं - हे गौतम ! चन्द्र को ससी, सश्रीक इसके लिए कहने में आता है कि चन्द्र ज्योतिश्चक्र का इन्द्र है, ज्योतिश्चक्र का राजा है, इसके मृगांकित विमान में मनोहर देव तथा मनोहर देवियां रहती हैं, इत्यादि कारण से श्री शोभा को लेकर वह सश्रीक-ससी कहलाता है।’

इस प्रकार से चन्द्र सर्व स्वरूप का कथन समाप्त ।

एवं संक्षेपतश्चन्द्र निरूपणं यथा कृतम् ।

तथैव वर्णयामोऽथ नक्षत्राणां निरूपणम् ॥४६४॥

यहां जैसे चन्द्रमा का संक्षेप में स्वरूप समझाया है, वैसे अब नक्षत्रों के विषय में भी संक्षेप में वर्णन करते हैं । (४६४)

आदौ संख्या मण्डलानां १ तेषां क्षेत्र प्ररूपणा २ ।

एक ऋक्ष विमानानां, तथाऽन्तरं परस्परम् ३ ॥४६५॥

सुमेरोः मण्डलाबाधा ४ विष्कम्भादि च मण्डले ५ ।

मुहूर्त्तं गति ६ आवेशः शशांक मण्डलैः सह ७ ॥४६६॥

दिग्योगो ८ देवताः ९ तारा संख्यो १० इनां तथा कृतिः ।

सूर्येन्दुयोगाद्द्वामानं १२ कुलाद्या ख्यानि रूपणम् १३ ॥४६७॥

अमावस्या पूर्णिमानां नक्षत्र योग कीर्ति नम् १४ ।

प्रतिमासमहोरात्रसमापकानि तानि च १५ ॥४६८॥

एभिश्च पंचदशभिः द्वारैः पूर्णोपुरैरिव ।

गम्योद्भूपरिपारीति तामेव प्रथमं बुवे ॥४६९॥

जैसे एक नगर में प्रवेश, दरवाजे द्वारा हो सकता है । वैसे ही नक्षत्रों की परिपाटी अमुक पंद्रह द्वारों द्वारा जान सकते हैं । वे पंद्रह द्वार इस प्रकार हैं । १- नक्षत्र मण्डलों की संख्या, २- नक्षत्रों के क्षेत्र, ३- एक नक्षत्र के विमानों का परस्पर अंतर, ४- नक्षत्र मंडल की मेरु प्रति अबाधा, ५- नक्षत्र मंडल की चौड़ाई आदि, ६- नक्षत्र

के एक मुहूर्त में गति, ७- नक्षत्र मंडलों का चन्द्रमा के मंडल साथ में आदेश, ८- इनका दिशाओं के साथ में योग, ९- इनके अधिष्ठायक देवता, १०- इनके ताराओं की संख्या, ११- इनकी आकृति, १२- इनका सूर्य और चन्द्रमा के साथ में संयोग काल का मान, १३- इनके कुलादि के नाम, १४- इनका अमावस्या और पूर्णिमा के साथ में योग और १५- प्रत्येक मास में अहोरात्रि को सम्पूर्ण करने वाले नक्षत्र । इसे प्रथम मंडल की संख्या कहते हैं । (४६५ से ४६६)

अभिजित् श्रवणं चैव धनिष्ठा शततारिका ।

पूर्वा भद्रपदा सैवोत्तरादिकाथ रेवती ॥५००॥

अश्विनी भरणी चैव कृतिका रोहिणी तथा ।

मृगशीर्ष तथा चार्द्रा पुनर्वसू ततः परम ॥५०१॥

पुष्योऽश्लेषा मघा पूर्वा फाल्गुन्युत्तर फाल्गुनी ।

हस्तश्चित्रा तथा स्वाति विशाखा चानुराधिका ॥५०२॥

ज्येष्ठां मूलं तथा पूर्वाषाढा सैवोत्तरापि च ।

जिन प्रवचनोपज्ञो नक्षत्राणामयं क्रमः ॥५०३॥

श्री जिन शास्त्र में नक्षत्रों की संख्या अट्ठाईस कही है, उसका अनुक्रम इस प्रकार है :- १- अभिजित्, २- श्रवण, ३- धनि, ४- शततारा, ५- पूर्व भाद्रपदा, ७- रेवती, ८- अश्विनी, ९- भरणी, १०- कृतिका, ११- रोहिणी, १२- मृगशीर्ष, १३- आर्द्रा, १४- पुनर्वसू, १५- पुष्य, १६- अश्लेषा, १७- मघा, १८- पूर्वा फाल्गुना, १९- उत्तरा फाल्गुना, २०- हस्ता, २१- चित्रा, २२- स्वाति, २३- विशाखा, २४- अनुराधा, २५- ज्येष्ठा, २६- मूला, २७- पूर्वाषाढा और २८ उत्तराषाढा । (५००-५०३)

अश्विन्याः कृतिकायाः यत् प्रसिद्धं लौकिकक्रमम् ।

उल्लंघ्यात्र प्रवचने यदेतत् क्रमदर्शनम् ॥५०४॥

तत्र हेतुः प्रथमतः संयोगः शशिना समम् ।

युगस्थादावभिजितः शेषाणां तु ततः क्रमात् ॥५०५॥

लौकिक क्रम में तो प्रथम अश्विनी बाद में भरणी, फिर कृतिकां इत्यादि अनुक्रम से है, उसका उल्लंघन करके जैन सिद्धान्त में जो यह क्रम कहा है, उसका हेतु इस तरह है कि युग के आदि में चन्द्र के साथ में प्रथम अभिजित् नक्षत्र का योग होता है, और उसके बाद ही अनुक्रम से नक्षत्रों का योग होता है । (५०४-५०५)

“कृत्तिकादि क्रमस्तु लोके सप्तशिलाक चक्रादिष्वेव स्थानेषूपयोगी श्रूयते”

अर्थात् कृत्तिका आदि का क्रम तो लोगों में सप्त शिलाक चक्र आदि स्थानों में ही उपयोगी कहलाता है ।

आरंभ नन्वभिजितो नक्षत्रानुक्रमो यदि ।

शेषोऽङ्गनामिव कथं व्यवहार्यत्वमस्य न ॥५०६॥

यहां प्रश्न करते हैं कि जब आप 'अभिजित्' से आरंभ कर नक्षत्रों का क्रम कहते हो, तब शेष नक्षत्रों के समान यह अभिजित् नक्षत्र व्यवहार में क्यों नहीं है ? (५०७)

अत्रोच्यतेऽस्य शशिना योगो यदल्पकालिकः ।

ऋक्षान्तरानुप्रविष्टतयास्य तद्विचक्षणम् ॥५०७॥

इसका उत्तर देते हैं - चन्द्रमा के साथ में इस अभिजित् नक्षत्र का संयोग स्वल्प कालिक है । फिर चन्द्रमा तुरन्त ही अन्य नक्षत्र में प्रवेश कर देता है । इसलिए यह अव्यवहारी है । (५०७) .

“यदुक्तं समवायांगे सप्तविंशे समवाये । जम्बूद्वीवे दीवे अभीङ्गज्जोहिं सत्ता विसाहिं णक्खत्तेहिं संववहारे वट्टइ ॥ एतद् वृत्तिः यथा । जम्बू द्वीपे न घातकी खण्डादौ अभिजित्त्वैः सप्तविंशत्या नक्षत्रैः व्यवहारः अभिजित् नक्षत्रस्य उत्तराषाढा चतुर्थपादानु प्रवेश नात् ॥ इति ॥”

'समवायांग सूत्र में भी सत्ताइसवें समवाय में कहा है कि - जम्बू द्वीप में अभिजित् सिवाय के २७ नक्षत्र व्यवहार में वर्ताव होता है । इसकी टीका में इस तरह कहा है - जम्बू द्वीप में घात की खण्ड आदि अभिजित् बिना के २७ नक्षत्रों से व्यवहार प्रवृत्ति होती है, क्योंकि अभिजित् नक्षत्र का उत्तराषाढा के चौथे पाद में समावेश होता है ।'

लोके तु -

औत्तराषाढयन्त्याहिचतस्रश्च श्रुतेः घटीः ।

वदन्त्यभिजितो भोगं वेधसत्ताद्यवेक्षणे ॥५०८॥

लोक में तो वेध सत्ता आदि देखने में आती है, उसमें उत्तराषाढा का अभिजित के साथ में संयोग आखिर पाद की चार घड़ी तक ही कहा है । (५०८)

अष्टावेव मण्डलानि स्युरष्टाविंशतेरपि ।

उड्डूनां तत्र चारस्तु नियते स्वस्वमण्डले ॥५०६॥

इति मण्डल संख्या ॥१॥

अट्टाईस नक्षत्रों का मंडल तो केवल आठ ही है, और उन आठ में से अपने अपने नियत मंडल में ही इन नक्षत्रों की गति है । (५०६) यह मंडल संख्या कही (१)

साशीतियोजनशते द्वीपस्यान्तरवर्तिनि ।

उक्तं मुक्तिवधुकान्तैः नक्षत्रमण्डलद्वयम् ॥५१०॥

त्रिंशो च योजन शतत्रये लवणवारिधेः ।

षड् नक्षत्र मण्डलानि दृष्टानि विष्टपेक्षिभिः ॥५११॥

नक्षत्र मण्डलं चक्रवाल विष्कम्भतो भवेत् ।

गव्यूतमेकं प्रत्येकं गव्यूतार्धं च मेदुरम् ॥५१२॥

अब नक्षत्रों का क्षेत्र कहते हैं - मुक्ति वधू और कान्त रूप दो नक्षत्र मंडल जम्बू द्वीप में कहे है, और वे १८० योजन में है, और शेष छः नक्षत्र मंडल लवण समुद्र के ऊपर है, और वे ३३० योजन में हैं। प्रत्येक नक्षत्र मंडल चक्रवाल के विष्कम्भ में एक कोस है और चौड़ाई में आधा कोस होता है । (५१० से ५१२)

एवं नक्षत्रजातीयमण्डल क्षेत्रसंमितिः ।

दशोत्तरा पंचशती योजनानां निरूपिता ॥५१३॥

इन सब आठ नक्षत्र मंडल का क्षेत्र १८०+३३० को मिलाकर कुल ५१० योजन का होता है । (५१३)

न त्वैकैकस्य ऋक्षस्य मण्डल क्षेत्रसम्भवः ।

रवेरिवायनाभावात् सदाचारात् स्वमण्डले ॥५१४॥

इति मण्डल क्षेत्रम् ॥२॥

सूर्य के समान अयन के अभाव के कारण तथा हमेशा अपने-अपने नियत मंडल में ही गमन करते हैं, इससे प्रत्येक नक्षत्र का मंडल क्षेत्र नहीं होता है । (५१४) यह दूसरा मण्डल क्षेत्र हुआ । (२)

यत्र यत्र यानि यानि वक्ष्यन्ते भानि मण्डले ।

स्यात्तदीय विमानानां द्वे योजने मिथोऽन्तरम् ॥५१५॥

अब नक्षत्र के विमानों का परस्पर अन्तर कहते हैं - जिस-जिस मंडल में जो-जो नक्षत्र कहने में आता है, उस-उस नक्षत्र के विमानों का परस्पर अन्तर दो योजन का है । (५१५)

मिथोऽन्तरमुडूनां चेदिदमेव भवेत्तदा ।

मण्डलक्षेत्रमन्यत् स्यात् भूशून्यं तच्च नेष्यते ॥५१६॥

नक्षत्र-नक्षत्र के बीच में परस्पर अन्तर भी कितने स्थान में इतना ही (दो योजन) कहा है । वह यदि इतना ही स्वीकार करें, तभी मंडल क्षेत्र बिना भी अन्य स्थान शून्य रहे वह इच्छित नहीं है । (५१६)

“यत्तु दो जो अणाइं णक्खत्त मंडल स्स य अब्बाहाए अंतरे पण्णत्ते इत्येतत् जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रं तत् अष्टास्वपि मण्डलेषु यत्र यत्र मण्डले यावन्ति नक्षत्राणां विमानानि तेषामन्तर बोधकम् । यच्च अभिजिन्नक्षत्र विमानस्य श्रवण नक्षत्र विमानस्य च परस्परमन्तरं द्वे योजने इति उपाध्याय श्री शान्ति चन्द्र गणिभिः स्वकृत वृत्तौ व्याख्यायि तदभिप्रायं सम्यक् न विद्मः । यद्यपि उपाध्याय श्री धर्मसागर गणिभिः स्वकृत वृत्तौ एतत् सूत्र व्याख्याने द्वे योजने नक्षत्रस्य नक्षत्रस्य च अब्बाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् इत्येव लिखितमस्ति तदपि अभिप्राय शून्य मेव ॥”

‘जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में प्रत्येक नक्षत्र मंडल का अबाधा अन्तर, दो योजन कहा है, वह आठ मंडलों में जिस-जिस मंडल के अन्दर जितने नक्षत्रों का विमान है, उनका परस्पर अन्तर को बताने वाला है । अभिजित् नक्षत्र का विमान और श्रवण नक्षत्र के विमान के बीच में भी उपाध्याय श्री शान्ति चन्द्र गणि ने अपनी रचित टीका में दो योजन का अन्तर कहा है । वह भी हमें समझ में नहीं आता । वैसे ही श्री उपाध्याय जी धर्म सागर गणि ने भी अपनी रचित वृत्ति में नक्षत्र-नक्षत्र बीच का अन्तर दो योजन का कहा है, इस तरह लिखा है, वह लेख भी अभिप्राय शून्य है ।’

चतुश्चत्वारिंशतैव सहस्रैरष्टभिः शतैः ।

विंशैश्च योजनैः मेरोः सर्वान्तरं भ्रमण्डलम् ॥५१७॥

सहस्रैः पंच चत्वारिंशता विंशैस्त्रिभिः शतैः ।

योजनैः मेरुतः सर्वबाह्यं नक्षत्र मण्डलम् ॥५१८॥

इति मेरोः अबाधा ॥४॥

अब मेरू पर्वत का अबाधा विषय कहते हैं । सब से अन्दर का नक्षत्र मंडल मेरू पर्वत से ४४८२० योजन में रहा है, और सब से बाहर का नक्षत्र मंडल मेरू पर्वत से ४५३३० योजन में रहा है, इस आधार पर आठ नक्षत्र मंडलों का माप पूर्व (श्लोक ५१२) में कहा है वह सही मिलता है, ४५३३०-४४८२० = ५१० योजन होता है । (५१७-५१८)

विष्कम्भायाम परिधि प्रमुखं मानमेतयोः ।

रवेः सर्वान्तर सर्वं बाह्य मण्डलयोरपि ॥५१६॥

इति मण्डल विष्कम्भादि ॥५॥

अब मंडल की चौड़ाई आदि कहते हैं - सूर्य के सर्व अभ्यन्तर और सर्व बाह्य इस तरह दो मण्डल चौड़ाई, आयाम और परिधि आदि के अनुसार ही इन नक्षत्रों की चौड़ाई, आयाम, परिधि आदि है । (५१६)

सहस्राणि पंच शतद्वयं च पंचषष्टियुक् ।

योजनानि योजनस्य भक्तस्यैकस्य निश्चितम् ॥५२०॥

एक विंशत्या सहस्रैः षष्टयाढ्यैः नवभिः शतैः ।

विभागाश्च समधिकाः पूर्वोक्तयोजनोपरि ॥५२१॥

अष्टादश सहस्राणि शतद्वयं त्रिषष्टियुक् ।

सर्वान्तमंडलोद्भूनां मुहूर्त्तगतिरेषिका ॥५२२॥

अब मुहूर्त्त गति के सम्बन्ध में कहते हैं - सर्व अभ्यन्तर मंडल में रहे नक्षत्रों की मुहूर्त्त गति ५२६५ १८२६३/२१६६० योजन के सदृश है । (५२०-५२२)

उपपत्तिश्चात्र :-

नक्षत्रं सर्वमप्यत्र पूरयेत् स्वस्वमण्डलम् ।

मुहूर्त्तैकोनषष्ट्या मुहूर्त्तस्या तथा लवैः ॥५२३॥

सप्तषष्टिः त्रिंशत् विभक्तस्य त्रिभिः शतैः ।

सप्तत्तरैः प्रत्ययश्च त्रैराशिकात्तदुच्यते ॥५२४॥

उसकी सिद्धि-समझ इस तरह है - प्रत्येक नक्षत्र अपना अपना सम्पूर्ण मण्डल ५६ ३०७/३१७ मुहूर्त्त में पूरा करते हैं, उसके आगे कहा है, उस तरह त्रैराशिक हिसाब से निश्चय करना चाहिए । (५२३-५२४)

नक्षत्रार्थ मण्डलानां सम्पूर्ण युग वर्तिनाम् ।
 पंचत्रिंशत्समधि कैर्यष्टादशभिः शतैः ॥५२५॥
 अष्टादश शती त्रिंशाहोरात्राणामवाप्यते ।
 द्वाभ्यामर्धमण्डलाभ्यां किमाप्यते तदा वद ॥५२६॥
 अत्रान्त्यराशिना राशौ मध्यमे गुणिते सति ।
 त्रि सहस्री षट्शती च जाता षष्टयधिका किल ॥५२७॥
 पंचत्रिंशत्समधिके षष्टादश शतात्मना ।
 आद्येन राशिना भागे रात्रिदिवमवाप्यते ॥५२८॥
 अष्टादशशती शेषा पंचविंशतियुक् स्थिता ।
 मुहूर्त्तान्यनायैषा त्रिंशता गुणिताभवत् ॥५२९॥
 चतुः पंचाशत्सहस्रा साद्धा सप्तशतीति च ।
 एषां भागेष्टादशभिः पंचत्रिंशद्युतैः शतैः ॥५३०॥
 लब्धा मुहूर्त्ता एकोनत्रिंशत् ततोऽपवर्त्तनम् ।
 छेद्य छेदकयोः राश्योः पंचभिः तौ ततः स्थितौ ॥५३१॥
 सप्ताढ्या त्रिंशती भाज्यो भाजकः सप्तषष्टि युक् ।
 त्रिंशती येऽत्र लब्धाश्चैकोनत्रिंशत् मुहूर्त्त काः ॥५३२॥

सम्पूर्ण युगवर्ती १८३५ नक्षत्रार्थ मंडल से यदि १८३० अहोरात्रि होती है, तो दो अर्ध मंडल से कितनी अहोरात्रि होती है ? इसके लिए १८३५, १८३०, २ इस तरह त्रि राशि लिखना चाहिए अतः $१८३० \times २ / १८३५$ अहो रात ३६६०/१८३५ अर्थात् १ १८२५/१८३५ अहोरात होती है इसमें १८२५/१८३५ अहोरात के मुहूर्त्त निकालने के लिए १८२५ को ३० से गुणा करके १८३५ से भाग देने से याने $१८२५ \times ३० = ५४७५० / १८३५ = २९ १५३५ / १८३५$ छेद छेदन करने २९ ३०७/३६७ मुहूर्त्त आता है । उसमें एक दिन रात के ३० मुहूर्त्त मिलाने से ५९ ३०७/३६७ भाज्य भाजक आजाते हैं । (५२५ से ५३२)

त्रिंशन्मुहूर्त्तरूपेऽअहोरात्रे पूर्वागतेऽन्विताः ।
 ते मुहूर्त्ताः स्युरेकोनषष्टी राशिरसौ पुनः ॥५३३॥
 गुण्यतेभाग साम्याय सप्तषष्टिसमन्विताः ।
 त्रिभिः शतैः क्षिप्यतेऽस्मिन् सप्ताढ्यांश शतत्रयी ॥५३४॥

सषष्टिर्नवशात्येवं सहस्राश्चैक विंशतिः ।

अयं च राशिः परिधेः भाजकः प्रतिमण्डलम् ॥५३५॥

इसके बाद ५६ को भागा के साम्य (समानता) के लिए ३६७ से गुणा करना और उसमें ३०७ मिलाना अतः इक्कीस हजार नौ सौ साठ (२१६६०) संख्या आती है, यह संख्या प्रत्येक मंडल में परिधि की भाजक संख्या समझना चाहिए । (५३३-५३५)

तिस्रो लक्षाः पंचदश सहस्राणि तथोपरि ।

नवाशीतिः परिक्षेपः सर्वाभ्यन्तरमण्डले ॥५३६॥

राशिर्योजनारूपोऽयं भागात्मकेन राशिना ।

कथं विभाज्योऽसदृश स्वरूपत्वादसौ ततः ॥५३७॥

तेनैबाहति गुणनं गुणितो येन भाजकः ।

ततः त्रिभिः शतैः सप्तषष्ट्याढ्यैरेष गुणयते ॥५३८॥

जाता एकादश कोटयः षटपंचाशच्च लक्षिकाः ।

सप्तत्रिंशत्सहस्राणि षट्शती च त्रिषष्टियुक् ॥५३९॥

सहस्रैरेकविंशत्या षष्ट्याढ्यैर्नविभिः शतैः ।

भागेऽस्य राशेः प्राणुक्ता मुहूर्त्तगतिराप्यते ॥५४०॥

इन सब अभ्यन्तर नक्षत्र मंडल की परिधि तीन लाख पंद्रह हजार नवासी योजन है, पूर्व भाजक ५६ ३०७/३६७ की संख्या के ३६७ द्वारा गुणा किया है । इसलिए यह ३१५०८६ योजन वाली भाज्य संख्या को भी ३६७ द्वारा गुणा करने पर ग्यारह करोड़ छप्पन लाख सैंतीस हजार छः सौ तिरसठ संख्या आती है, यह भाज्य संख्या है । उसे २१६६० से भाग देने पर ५२६५ १८२६२/२१६६० योजन आयेगा । इससे पूर्व में ५१६-५२१ श्लोक में मुहूर्त्तगति कही है, वह मिल जायेगा । इस तरह से सर्वाभ्यन्तर मंडल में नक्षत्र की मुहूर्त्त गति समझना चाहिए । (५३६-५४०)

तथा - योजनानां त्रिपंचाशच्छती सैकोनविंशतिः ।

सहस्रैरेकविंशत्या षष्ट्याढ्यैः नविभिः शतैः ॥५४१॥

भक्तस्य योजनस्यांशसहस्राः षोडशोपरि ।

सपंचषष्टिस्त्रिंशती गतिः सर्वन्यमण्डले ॥५४२॥

तथा सर्व से बाहर के मंडल में नक्षत्र की मुहूर्त्त गति ५३१६ १६३६५/२१६६० योजन की होती है । (५४१-५४२)

तथाहि - लक्षत्रयं योजनानामष्टादश सहस्रयुक् ।

शत त्रयं पंचदशं परिक्षेपोऽन्त्यमण्डले ॥५४३॥

अयं त्रिभिः सप्तषष्टि सहितैः ताडितः शतैः ।

कोटय एकादश लक्षा अष्ट षष्टिः किलादिकाः ॥५४४॥

सहस्रैकाविंशत्या शतैः षड्भिः सपंचभिः ।

राशेरस्यैकविंशत्या सहस्रैर्नवभिः शतैः ॥५४५॥

हते षष्टयधिकैः भागे मुहूर्त्तगतिराप्यते ।

नक्षत्राणां किल सर्वं बाह्य मण्डल चारिणाम् ॥५४६॥

इति मुहूर्त्त गतिः ॥६॥

वह इस तरह से है - सर्व से बाहर के मंडल की परिधि तीन लाख अठारह हजार तीन सौ पंद्रह योजन है, इसे ३६७ से गुणा करने पर ग्यारह करोड़ अड़सठ लाख इक्कीस हजार छह सौ पांच आता है, और इसे २१६६० द्वारा भाग देने पर ५३१ १६३६५/२१६६० आता है । (५४३ से ५४६) 'ख्याल रहे कि यह मुहूर्त्त गति द्वार में नक्षत्र के आठ मण्डलों में से प्रथम सर्वाभ्यन्तर और दूसरा सर्व बाह्य इस तरह, दो ही मंडलों के नक्षत्रों की मुहूर्त्त गति आयी है ।' मुहूर्त्तगति का स्वरूप पूर्ण हुआ ।

षट्सु शेषमण्डलेषु मुहूर्त्तगति संविदे ।

सुखेन तत्परिधिज्ञानाय क्रियतेऽधुना ॥५४७॥

भमण्डलानां सर्वेषां मण्डलेष्वमृत द्युतेः ।

समवतारः तत्राद्यमाधे शशांक मण्डले ॥५४८॥

भमण्डलं द्वितीयं च तृतीये चन्द्रमण्डले ।

षष्टे तृतीयं विज्ञेयं लवणोदधि भाविनि ॥५४९॥

चतुर्थं सप्तमे ज्ञेयं तथा पंचममष्टमे ।

विज्ञेयं दशमे षष्टमेकादशे च सप्तमम् ॥५५०॥

अष्टमं च पंचदशे शेषाणि तु सदोडुभिः ।

सप्त चन्द्रमण्डलानां परिक्षेपानुसारतः ॥५५१॥

अब नक्षत्र मंडलों का चन्द्रमा के मण्डल के साथ में आवेश विषय कहते हैं । शेष छः मंडल रहे, उसमें सुखपूर्वक नक्षत्रों की मुहूर्त्तगति जानने के लिए उन-उन मंडलों के घेराव का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । उसे प्राप्त करने के लिए सर्व

मंडलों को चन्द्र मंडलों में उतारना । पहला नक्षत्र मंडल पहले चन्द्र मंडल में है, दूसरा नक्षत्र मंडल तीसरे चन्द्र मंडल में है, तीसरा नक्षत्र मंडल लवण समुद्रगत छे चन्द्र मंडल में है, इस तरह चौथा सातवें में, पांचवा आठवें में, छठा दसवें में, सातवां ग्यारहवें में और आठवां नक्षत्र मंडल पंद्रहवें चन्द्र मंडल में है । शेष सात चन्द्र मंडल सर्वदा नक्षत्र बिना के ही है । इन में कोई नक्षत्र नहीं है । (५४७ से ५५१)

एषां चन्द्र मण्डलानां परिक्षेपानुसारतः ।

पूर्वोक्त विधिना भानां मुहूर्त्त गतिराप्यते ॥५५२॥

इति चन्द्र मण्डलावेश ॥७॥

इस तरह उस-उस मंडल में नक्षत्रों की मुहूर्त्त गति उपर्युक्त उन-उन चन्द्र मंडलों के घेराव के आधार पर पूर्वोक्त रीति अनुसार गुणाकर भागकार करने से आयेगा । (५५२) चन्द्र मंडलावेश पूर्ण हुआ । (७)

अभिजिच्छ्रवणश्चैव धनिष्ठा शततारिका ।

पूर्वोत्तरा भाद्रपदा रेवती पुनरश्विनी ॥५५३॥

भरणी फाल्गुनी पूर्वा फाल्गुन्येव तथोत्तरा ।

स्वातिश्च द्वादशैतानि सर्वाभ्यन्तर मण्डले ॥५५४॥

चरन्ति तन्मण्डलार्थं यथोक्त कालमानतः ।

पूरयन्ति तदन्यार्थं तथा तान्यपराण्यपि ॥५५५॥

दिशाओं के साथ में योग विषय कहते हैं - नक्षत्रों के आठ मण्डलों में से सर्वाभ्यन्तर मंडल में १- अभिजित् २- श्रवण, ३- धनिष्ठा, ४- शततारा, ५- पूर्वा भाद्रपदा, ६- रेवती, ८- अश्विनी, ९- भरणी, १०- पूर्वाफाल्गुनी ११- उत्तरा फाल्गुनी और १२- स्वाति, ये बारह नक्षत्र आये हैं । ये पूर्वोक्त समय में इस मंडल के अर्ध भाग में गमन करते हैं, और इसके दूसरे अर्ध में दूसरे वही नाम के नक्षत्र पूर्ण करते हैं । (५५३ से ५५५)

पुनर्वसूमघाश्चेति द्वयं द्वितीयमण्डले ।

तृतीयं कृत्तिकास्तूर्ये चित्रा तथा च रोहिणी ॥५५६॥

विशाखा पंचमे षष्ठेऽनुराधा सप्तमे पुनः ।

ज्येष्ठाष्टमे त्वष्ट भानि सदा चरन्ति तद्यथा ॥५५७॥

आर्द्रा मृगशिरः पुष्योऽश्लेषा मूलं करोऽपि च ।

पूर्वाषाढोत्तराषाढे इत्यष्टान्तिममण्डले ॥५५८॥

सर्वाभ्यन्तर के बाद के दूसरे मण्डल में हमेशा पुनर्वसु और मघा तीसरे में कृतिका, चौथे में चित्रा, और रोहिणी, पांचवे में विशाखा, छठे में अनुराधा, सातवें में ज्येष्ठा और आठवें में १ आर्द्रा, २- मृगशिर, ३-पुष्य, ४- अश्लेषा ५- मूल, ६- हस्त, ७- पूर्वाषाढा और ८- उत्तराषाढा । ये आठ नक्षत्र गमन करते हैं । (५५६-५५८)

पूर्वोत्तराषाढयोः तु चतुस्तारकयोरिह ।

द्वे द्वे स्तः तारके बहिश्चाष्टममण्डलात् ॥५५६॥

पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा नक्षत्र के चार तारा होते हैं । उसमें दो-दो तारा आठवें मंडल के अंदर हैं, और दो-दो तारा बाहर हैं ।

अष्टानां द्वादशानां च बाह्यभ्यन्तर चारिणाम् ।

सर्वेभ्योऽपि बहिः मूलं सर्वेभ्यो ऽप्यन्तरेऽभिजित् ॥५६०॥

सर्व से बाहर के मंडल में गमन करने वाले आठ नक्षत्र हैं, और सर्व से अभ्यन्तर मंडल में गमन करने वाले बारह नक्षत्रों में से मूल नक्षत्र सबसे बाहर हैं और अभिजित् सर्व से अन्दर है । (५६०)

“तथाहुः :- अह भरणी साइ उवरि बहि मूलोभिन्तरे अमिई ॥”

‘अन्यत्र कहा है कि - भरणी नक्षत्र नीचे है, स्वाती ऊपर है, मूल बाहर है, और अभिजित् अंदर है ।’

यानि द्वादश ऋक्षाणि सर्वाभ्यन्तर मण्डले ।

तानि चन्द्रस्योत्तरस्यां संयुज्यन्तेऽमुना समम् ॥५६१॥

एभिः यदोडुभिः सार्धं योगः तदा स्वभावतः ।

शेषेष्वेव मण्डलेषु भवेच्चारो हिमद्युतेः ॥५६२॥

सर्वाभ्यन्तर मंडल में जो बारह नक्षत्र हैं, उनका चन्द्रमा के साथ में योग है चन्द्र के उत्तर में होता है, और वह योग होता है, तब चन्द्रमा का फिरना स्वभाव होने से शेष मंडलों में ही होता है । (५६१-५६२)

सर्वान्तर्मण्डलस्थानामेषामुत्तरवर्तिता ।

चन्द्रात् युक्ता तदेभ्यश्च विधोर्दक्षिणवर्तिता ॥५६३॥

वे जब सर्वाभ्यन्तर मंडल में होते हैं, तब वे दूर से उत्तर दिशा में होते हैं, और चन्द्र उनसे दक्षिण दिशा में हो वह युक्त होता है । (५६३)

मध्यमीयमण्डलेषु यान्युक्तान्यष्ट तेषु च ।

बिना ज्येष्ठां त्रिधा योगः सप्तानां राशिनां समम् ॥५६४॥

भौत्तराहो दाक्षिणात्यो योगः प्रमर्दनामकः ।

आद्यो बहिश्चवरे चन्द्रे द्वितीयोन्तश्चरे स्वतः ॥५६५॥

मध्य के दूसरे सात मंडल तक के छः मंडलों में जो आठ नक्षत्र कहे हैं, उन आठ में से ज्येष्ठा को छोड़कर शेष सात रहे, उनका चन्द्रमा के साथ में संयोग तीन प्रकार से होता है । १- उत्तराभिमुख योग, २- दक्षिणाभिमुख योग और ३- प्रमर्द योग । (५६४-५६४)

प्रमर्दो भवि मानानि भिन्त्वेन्दोः गच्छतो भवेत् ।

योगः प्रमर्द एवं स्याज्ज्येष्ठायाः राशिना समम् ॥५६६॥

उडून्याद्यानि षट् भेषु बाह्यमण्डलवर्तिषु ।

इन्दोर्दक्षिणादिक्स्थानि संयुज्यन्तेऽमुना समम् ॥५६७॥

चन्द्रमा बहिश्चर होता है, तब प्रथम उत्तराभिमुख योग होता है । यह जब अन्तश्चर होता है, तब दूसरा दक्षिणाभिमुख योग होता है और ये जब नक्षत्रों के विमानों को भेदन करके मध्य में से जाता है तब तीसरा प्रमर्द योग होता है । ज्येष्ठा का तो चन्द्र के साथ में प्रमर्द योग ही होता है (५६६-५६७)

पूर्वात्तराषाढयोः तु बाह्यताराव्यपेक्षया ।

याम्यायां शशिना योगः प्रज्ञप्तः परमर्षिभिः ॥५६८॥

द्वयोर्द्वयोस्तारयोस्तु चन्द्रे मध्येन गच्छति ।

भवेत् प्रमर्द योगोऽपि ततो योगऽनयोर्द्विधा ॥५६९॥

उदीच्यां दिशि योगस्तु संभवेन्नानयोर्भयोः ।

यदाभ्यां परतश्चारो कदापीन्दोर्न वर्तते ॥५७०॥

सर्व से बाहर के मंडल के आठ नक्षत्रों में से पहले छः नक्षत्रों का चन्द्र साथ में योग जब दक्षिण में रहे होयं तब होता है । वह भी चन्द्र के साथ में योग बाहर के तारा की अपेक्षा से दक्षिण दिशा में कहा है, परन्तु दो-दो तारा के बीच से चन्द्र का पसार होता हो, तब प्रमर्द योग भी होता है । इस तरह पूर्व-उत्तराषाढा को चन्द्र के साथ में योग दो प्रकार का है । उत्तर दिशा में तो इनका चन्द्र योग संभव नहीं होता, क्योंकि किसी भी दिन चन्द्रमा की इन दोनों से उत्तर में तो गति ही नहीं होती। (५६८ से ५७०)

विभिन्न मण्डल स्थानां पृथक् मण्डलवर्तिना ।

नक्षत्राणां चन्द्रमसा यथा योगस्तथोच्यते ॥५७१॥

भिन्न-भिन्न मंडलों में रहे नक्षत्रों का पृथक मंडल वर्ति चन्द्रमा के साथ में योग होता है उस विषय में अब कहते हैं । (५७१)

स्वस्वकाल प्रमाणेनाष्टाविंशत्या किलोडुभिः ।

निजगत्या व्याप्यमानं क्षेत्रं यावद्विभाव्यते ॥५७२॥

तावन्मानमेकमर्धमण्डलं कल्प्यते धिया ।

द्वितीयोडूकदम्बेन द्वितीयमर्धमण्डलम् ॥५७३॥

अष्टानवतिशताढ्यं लक्षं सम्पूर्णं मण्डलेषु स्युः ।

सर्वेष्वंशां च विज्ञेयो मण्डलच्छेदः ॥५७४॥

अपने-अपने काल के अनुसार से नक्षत्र अट्टाईस अपनी-अपनी गति से जितना क्षेत्र व्याप्त करता है, उतने क्षेत्र अनुसार एक आधा मण्डल बुद्धि द्वारा विचार करना, और इसी ही अनुसार से दूसरे नक्षत्रगण से व्याप्तमान क्षेत्र प्रमाण, दूसरा आधा मंडल विचार करना । इस तरह करके आठ-सम्पूर्ण मण्डलों में सर्व मिलाकर एक लाख नौ हजार आठ सौ (१०६८००) अंश छोटा है इसे मंडल छेद समझना । (५७२ से ५७४)

ननु च- मण्डलेषु येषु यानि चरन्त्युडूनितेष्वियम् ।

चन्द्रादि योग योग्यानां भांशानां कल्पनोचिता ॥५७५॥

सर्वेष्वपि मण्डलेषु सर्वोडूभागकल्पना ।

इयत्तिकथमौचित्यमिति चेत् श्रूयतामिह ॥५७६॥

यहां प्रश्न होता है कि - जिस मंडल में जो नक्षत्र चलता है, उनमें चन्द्रादि योग के लायक नक्षत्र के अंश की कल्पना करना तो उचित है, परन्तु सर्व मंडलों में सर्व नक्षत्रों के अंशों की कल्पना करना किस तरह उचित कहलाता है ? (५७५-५७६)

भानां चन्द्रादिभियोगो नैवास्ति नियते दिने ।

न वा नियतवेलायां दिनेऽपि नियते न सः ॥५७७॥

तेन तत्तन्मण्डलेषु यथोदितलवात्मसु ।

तत्तन्नक्षत्रसम्बन्धिषीमाविष्कम्भआहिते ॥५७८॥

प्राप्तौ सत्यां मृगांकादेर्योगः स्यादुदुभिः सह ।

एव मर्क स्यापि योगो भिन्न मण्डल वर्त्तिनः ॥५७६॥

इसका उत्तर देते हैं - नक्षत्रों का चन्द्रादि के साथ योग किसी निश्चित दि में नहीं होता, तथा किसी निश्चित दिन, निश्चित समय पर हुआ भी नहीं है इसलिए यथोदित अंशरूप उन-उन मंडलों में उन-उन नक्षत्रों की सीमा क विस्तार बताया है, उसकी प्राप्ति होते, चन्द्रादि का नक्षत्र के साथ में योग होता है इसी तरह पृथक मंडल में सूर्य का भी योग समझ लेना । (५७७ से ५७६)

एवं भसीमाविष्कम्भादिषु प्राप्तप्रयोजनः ।

प्रागुक्तो मण्डलच्छेद इदानीमुपपाद्यते ॥५८०॥

इस तरह से नक्षत्रों की सीमा की विस्तार आदि में जिसकी आवश्यकता है वह पूर्वोक्त १०६८०० अंश रूप मंडल छेद की उपपत्ति की जानकारी इस सम कहते हैं। (५८०)

त्रिविधानीह ऋक्षाणि समक्षेत्राणि कानिचित् ।

कियन्ति चार्धक्षेत्राणि सार्धक्षेत्राणि कानिचित् ॥५८१॥

नक्षत्र तीन प्रकार के होते हैं कोई १- समक्षेत्री, कोई २ अर्धक्षेत्री और कोई ३- सार्ध क्षेत्री (दंड क्षेत्र वाला) है । (५८१)

क्षेत्रमुष्णात्विधा यावदहोरात्रेण गम्यते ।

तावत्क्षेत्रं यानि भानि चरन्ति राशिना समम् ॥५८२॥

समक्षेत्राणि तानि स्युः अर्धक्षेत्राणि तानि च ।

अर्ध यथोक्तक्षेत्रस्य यान्ति यानीन्दुना सह ॥५८३॥ युग्मं ॥

यथोक्तं क्षेत्रमध्यर्धं प्रयान्ति यानि चेन्दुना ।

स्युस्तानि सार्धक्षेत्राणि वक्ष्यन्तेऽग्रेऽभिधानतः ॥५८४॥

१- एक अहो रात्रि में सूर्य जितने क्षेत्र में पहुंच जाय उतने क्षेत्र में जितना नक्षत्र चन्द्र के साथ में फिरे, वह नक्षत्र समक्षेत्री कहलाता है, २- जो उपर्युक्त क्षेत्र के आधे भाग में ही चन्द्र के साथ में फिरे वह अर्ध क्षेत्री कहलाता है और ३ जो उपर्युक्त क्षेत्र से ढेडा क्षेत्र में चन्द्र के साथ में फिरे वह सार्ध क्षेत्री कहलाता है।

(५८२-५८४)

तत्र पंचदशाद्यानि षट्कं षट्कं परद्वयम् ।

अहो रात्रः सप्तषष्टिभागीकृतोऽत्र कल्प्यते ॥५८५॥

उसमें पहले प्रकार में पंद्रह नक्षत्र है, दूसरे प्रकार के छः है और तीसरे प्रकार के भी छः है । यहां एक अहोरात्रि में इसके सड़सठ भाग कल्प होते हैं । (५८५)

ततः समक्षेत्रभानि प्रत्येकं सप्तषष्टिधा ।

कल्प्यानीति पंचदश सप्तषष्टिगुणीकृताः ॥५८६॥

जातं सहस्रपंचाढ्यमर्धक्षेत्रेषु भेषु च ।

सार्धास्त्रयस्त्रिदंशाः प्रत्येकं कल्पनोचिताः ॥५८७॥ युग्मं ॥

ततश्च- षडघ्नाः सार्धस्त्रयस्त्रिंशज्जातं सैकं शतद्वयम् ।

सार्धक्षेत्रेषु प्रत्येकं भागाश्चार्धाशयुक् शतम् ॥५८८॥

सार्धक्षेत्राणि षडिति त एते षड्गुणीकृताः ।

सत्रीणि षट्शतान्येक विंशति श्चाभिजिल्लवाः ॥५८९॥

अष्टादश शतान्येवं त्रिंशानि सर्वसंख्यया ।

एतावदंशप्रमितं स्यादेकमर्धमण्डलम् ॥५९०॥

इसके बाद प्रत्येक समक्षेत्री नक्षत्र के भी सड़सठ-सड़सठ कल्प हैं, अतः पंद्रह समक्षेत्री नक्षत्र है, इसका ६७×१५ से गुणा करते १००५ अंश होते हैं । और प्रत्येक अर्धक्षेत्री नक्षत्र इसी तरह से $३३ \frac{१}{२}$ भाग की कल्पना करना उसके नक्षत्र है, अतः $३३ \frac{१}{२} \times ६$ से गुणा करते २०१ अंश होते हैं । इसी ही तरह से प्रत्येक सार्ध क्षेत्र नक्षत्र के १०० $\frac{१}{२}$ भाग कल्पना करने से उसके छः नक्षत्र है अतः $१०० \frac{१}{२} \times ६$ से गुणा करते = ६०३ अंश होता है । इस तरह २७ नक्षत्रों के $१००५ + २०१ + ६०३$ को मिलाकर कुल १८ अंश होते हैं । इसमें २८वें अभिजित् नक्षत्र के २१ अंश मिलाने पर कुल १८३० अंश होते हैं । इतने अंश प्रमाण एक अर्ध मंडल होता है । (५८५-५९०)

तावदेवापरमिति द्वाभ्याभिदं निहन्यते ।

षट्त्रिंशच्छतानीत्य भवन्निह ॥५९१॥

दूसरा अर्धमंडल भी इतना ही होने से इसके भी १८३० अंश होते हैं अतः कुल मिलाकर ३६६० अंश होते हैं ।

त्रिंशन्मुहूर्ता एकस्मिन्नहोरात्र इति स्फुटम् ।

सषष्टिषट् त्रिंशदंशतेषु कल्पनोचिताः ॥५९२॥

त्रिंश विभागाः प्रत्येकं गुण्यन्ते त्रिंशतेति ते ।

जातं लक्षमेकमष्टानवत्या सहितं शतैः ॥५६३॥

एक अहोरात्रि के ३० मुहूर्त्त होते हैं, इन तीस के प्रत्येक के ३६६० अंशों की कल्पना करना उचित है, इसलिए ३६६० को ३० से गुणा करते १०६६०० अंश आता है। जो पूर्व में मंडल छेद का अन्तिम का मान कहा है। वह युक्त है। (५६२-५६३)

एतस्मात् मण्डलछेदमानादेव प्रतीयते ।

शंशाकभास्करोडूना गत्याधिक्यं यथोत्तरम ॥५६४॥

इस कारण मंडल छेद के इस मान से ही चन्द्र, सूर्य तथा नक्षत्रों की गति में उत्तरोत्तर अधिकत्व प्रतीत होता है। (५६४)

तथाहि- ऐकैकेन मुहूर्त्तेन शशी गच्छति लीलया ।

प्रकान्तमण्डलपरिक्षेपांशानां यदा यदा ॥५६४॥

अष्टषष्ट्या समधिकैरधिकं सप्तभिः शतैः ।

सहस्रमेकमर्कस्तु मुहूर्त्तेनोपसर्पति ॥५६६॥

त्रिंशान्यष्टादश शतान्युडूनि संचरन्ति च ।

पंचत्रिंशत्समधिकान्यष्टादशशतानि वै ॥५६७॥ विशेषकं ॥

जैसे कि चन्द्रमा चलता है, वह एक मुहूर्त्त में चलते हुए, घेराव के अंशों में से १७६८ अंश जितना चलता है, सूर्य एक मुहूर्त्त में १८३० अंश सदृश चलता है और नक्षत्र १८३५ अंश प्रमाण में चलता है। (५६५ से ५६७)

उक्तेन्दु भास्करोडूनां गतिः प्राक् योजनात्मिका ।

इयं त्वंशात्मिका चिन्त्यं पौनरुक्त्यं ततोऽत्र न ॥५६८॥

चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रों की जो पहले मुहूर्त्त की गति कही है, वह योजन में कही है, और यह अभी कही है, वह अंश में कही है। इसलिए यहां पुनरुक्ति दोष नहीं गिनना। (५६८)

विशेषस्त्वनयोर्गत्योः कश्चिन्नास्ति स्वरूपतः ।

प्रत्ययः कोऽत्र यद्येवं तत्रोपायो निश्चयताम् ॥५६९॥

यहां शंका करते हैं कि इन दोनों की गति में स्वरूप से कुछ भी अन्तर नहीं है। इसका क्या विश्वास है? (५६९)

स्वस्वमण्डलपरिधिर्मण्डलच्छेदराशिना ।

विभज्यते यल्लब्धं तत्सुधिया ताड्यते किल ॥६००॥

उक्तेन्दु कौंडूभागात्ममुहूर्त्तगतिराशिमिः ।

मुहूर्त्तगतिरेषां स्यात् पूर्वोक्ता योजनात्मिका ॥६०१॥ युग्मं ॥

त्रैराशिकेन यदि वा प्रत्ययोऽस्या विधीयताम् ।

किं तत् त्रैराशिकमिति यदीच्छा तन्निशम्यताम् ॥६०२॥

यहां शंका का समाधान करते हैं, कि अपने-अपने मंडल की परिधि को मंडल छेद के अंक द्वारा भाग में जो संख्या आती है, उसे यथोक्त चन्द्र, सूर्य अथवा नक्षत्र के अंश रूप मुहूर्त्त गति की संख्या द्वारा गुणा करते, पूर्वोक्त योजन में मुहूर्त्त गति आती है। अथवा तो त्रिराशि की रीति से निश्चय करना चाहिए उस प्रमाण से। (६००-६०२)

स्यात् मण्डला पूर्तिकालो विधोः प्रागवत्सवर्णितः ।

पंचविंशाः शताः सप्त सहस्राश्च त्रयोदश ॥६०३॥

चन्द्र मंडल सम्पूर्ण करने का काल पूर्व में कहा है, उसके अनुसार १३७२५ मुहूर्त्त अंश होते हैं। (६०३)

अस्योपपत्ति योजनात्मक मुहूर्त्त गत्यवसरे दर्शितास्ति ॥

यह पूर्व में योजनात्मक मुहूर्त्तगति समझाते सिद्ध किया है।

ततश्च- पंचविंशसप्तत्रयोदशसहस्रकैः ।

मुहूर्त्तांशैः लक्षमष्टानवतिश्च शता यदि ॥६०४॥

मण्डलांशा अवाप्यन्ते ब्रूताप्यन्ते तदा कति ।

एकेनान्तर्मुहूर्त्तेन राशित्रयमिदं लिखेत ॥६०५॥ युग्मं ॥

उस कारण से तेरह हजार सात सौ पच्चीस मुहूर्त्तांश में यदि एक लाख नौ हजार आठ सौ मंडलांश आते हैं, तो एक अन्त मुहूर्त्त में कितने मंडलांश आते हैं, इसके लिए तीन राशि लिखनी चाहिए। (६०४-६०५)

आद्यो राशिः मुहूर्त्तांशरूपोऽन्यस्तु मुहूर्त्तकः ।

सावर्ण्यार्थमेकविंशोद्विशत्यान्त्यो निहन्यते ॥६०६॥

वह इस प्रकार १३७२५, १०६८००, १, इन तीन राशि में आद्य राशि मुहूर्त्तांश

रूप है, और अन्तिम राशि मुहूर्त्त रूप है, इसलिए दोनों को सवर्ण (एक समान) करने के लिए अन्तिम संख्या को २२१ से गुणा करने पर २२१ आयेगे । (६०६)

एकविंशो द्विशती स्यात् मध्यराशिरथैतया ।

हतः कोटिद्वयं लक्षा द्विचत्वारिंशदेव च ॥६०७॥

पंचषष्टिः सहस्राणि शतान्यष्ट भवन्त्यतः ।

पंच विंशसप्तशत त्रयोदश सहस्रकैः ॥६०८॥

एषां भागे हते लब्धा मुहूर्त्तगतिरैन्दवी ।

भागात्मिका यथोक्ता च सा रवेरपि भाव्यते ॥६०९॥ कलापकं ॥

अब दो सौ इक्कीस को १०६८०० से गुणा करते तो २,४२,६५८,०० की संख्या आती है, इसे १३७२५ द्वारा भाग देने पर पूर्वोक्त १७६८ अंश रूप चन्द की मुहूर्त्त गति आती है । सूर्य की भी यथोक्त अंशात्मक मुहूर्त्त गति इस तरह निकलती है । (६०७ से ६०९)

पूर्वोक्तो मण्डलच्छेद राशिः षष्टया मुहूर्त्तकैः ।

यद्याप्यते मुहूर्त्तेन तदैकेन किमाप्यते ॥६१०॥

गुणितोऽन्त्येनेकैकेन मध्य राशिस्तथा स्थितः ।

अष्टादशशतीं त्रिंशां यच्छत्याद्येन भाजितः ॥६११॥

पूर्वोक्त मंडल छेद की संख्या यदि मुहूर्त्त में आये, तो एक मुहूर्त्त में क्या आता है ? तो प्रथम तीन राशि लिखे ६०, १०६८००, १ इसमें १०६८०० को ६० से भाग दे तो १८३० संख्या आती है, यह सूर्य अंशात्मक मुहूर्त्त गति है । (६१०-६११)

भ्रमण्डलपूर्तिकालमानं भवेत् सवर्णितम् ।

षष्टीयुक्ता नवशती सहस्राश्चैक विंशतिः ॥६१२॥

अब नक्षत्र की अंशात्मक मुहूर्त्त गति निकालने के लिए रीति कहते हैं - नक्षत्र मंडल के सम्पूर्ण कालमान को सवर्णित करते २१६६० संख्या आती है । (६१२)

“ उपपत्ति योजनात्मक गत्यवसरे दर्शितास्ति ॥ ”

‘ यह बात योजनात्मक मुहूर्त्त गति के समय में समझना है । ’

ततश्च -

एतावदभिमुहूर्तोः मण्डलच्छेद संचयः ।

प्रागुक्तश्चेल्लभ्यते तन्मुहूर्तं किमाप्यते ॥६१३॥

वह त्रि राशि इस तरह है :- २१६६० मुहूर्तांश से पूर्वोक्त १०६८०० मंडल छेद की संख्या आती है तो एक मुहूर्त में क्या संख्या आती है । (६१३)

सावर्ण्यादाद्यान्तिमयोः गुण्यतेऽन्तिम एककः ।

सप्तषष्टया त्रिशत्या तादृगरूपः स जायते ॥६१४॥

हतोऽनेन मध्यराशिश्चतस्रः कोटयो भवेत् ।

द्वे लक्षो षण्णवतिश्च सहस्राः षट् शतानि च ॥६१५॥

तस्याद्यराशिना भामे लब्धा भानां लवात्मिका ।

अष्टादशशती पंचत्रिंशा मुहूर्तजा गतिः ॥६१६॥

सर्वप्रथम त्रि राशि लिखे - २१६६०, १०६८००, १ इसमें सवर्णारूप के लिए अन्तिम संख्या को ३६७ आते हैं उसे १०६८०० द्वारा गुणा करे और २१६६० से भाग दे तो $१०६८०० \times ३६७ = ४,०२६६६०० \div २१६६० = १८३५$ आता है यह नक्षत्रों की अंशात्मक मुहूर्त गति आती है । (६१४-६१६)

“इति दिग्योगः तत्प्रसंगात् सीमा विष्कम्भादिनिरूपणं च ॥”

इस तरह से दिग्योग नामक आठवां द्वार समझना और साथ में ही प्रसंग पर सीमा तथा विष्कम्भ आदि का भी निरूपण किया ।

ब्रह्मा विष्णुर्वसुश्चैव वरूणाजाभिवृद्धयः ।

पूषाश्वश्च यमोऽग्निश्च प्रजापतिस्ततः परम् ॥६१७॥

सोमा रूद्रोः दितिश्चैव बृहस्पतिस्तथा परः ।

सर्पो परः पितृनामा भगोऽर्यमाभिधोऽपि च ॥६१८॥

सूरस्त्वष्टा तथा वायुरिन्द्राग्नी एकनायकौ ।

मित्रेन्दु नैऋता आपो विश्वदेवास्त्रयोदश ॥६१९॥

अभिवृद्धेरहिर्बुध इत्याख्यान्यत्र गीयते ।

सोमश्चन्द्रो रविः सूरः ईदृशाख्या परे सुराः ॥६२०॥

बृहस्पति रपि प्रसिद्धो ग्रह एव अभी अभिजिदादीनामुडूनामधिपाः स्मृताः ।

येषु तुष्टेषु नक्षत्रतुष्टी रूष्टेषु तद्दृषः ॥६२१॥ कुलकम् ॥

अब इसके अधिष्ठायक देवता कहते हैं - ब्रह्मा, विष्णु, वसु, वरुण, अज, अभिवृद्धि, पूषा, अश्व, यम, अग्नि, प्रजापति सोम, रुद्र, अदिति, बृहस्पति सर्प, पितृ, भग, अर्यमा, सूर, त्वष्टा, वायु, तथा इन्द्र जो कि नायक एक है, तथा अग्नि, मित्र, इन्द्र, नैऋत आप और तेरह विश्वदेवो इस तरह नाम वाले देव हैं । अभिवृद्धि का अपर नाम अहिर्बुध्न भी कहलाता है । सोम का नामचन्द्र है और सूर का रवि अपर नाम है । बृहस्पति प्रसिद्ध ग्रह भी कहलाता है । वे अभिजित् आदि नक्षत्रों के स्वामी हैं, वे तुष्टमान हो तो नक्षत्र भी तुष्टमान होते हैं और वे रूष्ट हो तो नक्षत्र भी रूष्टमान होते हैं । (६१७ से ६२१)

देवानामप्युद्गनां स्युः यदधीशाः सुराः परे ।

तत्पूर्वोपार्जित तपस्तारतम्यानुभावतः ॥६२२॥

स्वामि सेवक भावः स्यात् यत्सुरेष्वपि नृष्विव ।

यथा सुकृतमैश्वर्यं तेजः शक्ति सुखादि च ॥६२३॥

देवतुल्य माने जाते नक्षत्रों को भी ऊपर कहे अनुसार अन्य देव स्वामी रूप में है, वे पूर्व उपार्जित तप के तारतम्य के कारण से समझना । मनुष्यों के समान देवों में भी स्वामी सेवक भाव होता है, और ऐश्वर्य, तेज, शक्ति तथा सुखादि समस्त पुण्य के अनुसार प्राप्त होता है । (६२२-६२३)

विख्यातौ चन्द्र सूर्यौ यौ सर्वज्योतिष्क नायकौ ।

तयोरप्यपरः स्वामी परेषां तर्हि का कथा ॥६२४॥

जगत प्रसिद्ध ऐसे चन्द्र और सूर्य सर्व ज्योतिष्क मंडल के नायक है, उनके भी जब स्वामी दूसरे है, तो अन्यव्यक्तियों की क्या बात करनी ? (६२४)

तथा च पंचमांगे । सक्कस्स देविन्दस्स देवरण्णे सोमस्स महारण्णे इमे देवा आणा उववाय वयण निहेसे चिद्धंति । तं जहा । सोमकाइया वा सोमदेवकाइया वा बिज्जु कुमारा विज्जु कुमारी ओ अग्नि कुमारा अग्नि कुमारीओ वाउकुमारा वाउकुमारी ओ चन्दा सूरा गहा णक्खत्ता तारारूवा इत्यादि ॥" इति देवताः ॥ ६ ॥

पांचवे अंग श्री भगवती सूत्र में कहा है - देवों का इन्द्र, देवों का राजा सौम्य महाराजा जो शकेन्द्र है, उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए सौम्य कायावाले देव हो, अथवा सौम्य आकृति वाली देवी हो, विद्युत्कुमार या विद्युत्कुमारियां हो, अग्नि

कुमार, अग्नि कुमारियां, वायु कुमार, वायु कुमारियां, चन्द्र, सूर्य, ग्रह नक्षत्र और तारा इत्यादि देव हो, सदा खड़े रहते हैं । यह देवता द्वार पूर्ण हुआ । (६)

तिस्रः तिस्रः पंच शतं द्वे द्वे द्वात्रिंशदेव च ।

तिस्रः तिस्रः षट् च पंच तिस्र एका च पंच च ॥६२५॥

तिस्रः पंच सप्त द्वे द्वे पंचैकैकिका द्वयोः ।

पंच चतस्रः तिस्रश्च तत एकादश स्मृताः ॥६२६॥

चतस्रश्च चतस्रश्च तारा संख्याभिजित्कमात् ।

जेयान्युडूविमानानि तारा शब्दात् बुधीरिह ॥६२७॥

अब प्रत्येक नक्षत्र के ताराओं की संख्या कहते हैं । यहां अभिजित नक्षत्र से लेकर सब अट्वाइस नक्षत्रों की तारा की संख्या अनुक्रम से जानना - तीन-तीन, पांच सौ, दो-दो, बत्तीस; तीन-तीन, छः, पांच, तीन एक, पांच, तीन, पांच सात, दो-दो पांच, एक, एक, पांच, चार, तीन, ग्यारह, चार और चार है । यहां 'तारा' शब्द का अर्थ नक्षत्रों के विमान समझना । (६२५ से ६२७)

न पुनः पंचमज्ज्योतिषेर्दगाः किल तारकाः ।

विजातीयः समुदायी विजातीयोच्च यान्निहि ॥६२८॥

प्रथीयांसि विमानानि नक्षत्राणां लघुनि च ।

तारकाणां ततोऽप्यैक्यं युक्तिः सासहि नानयोः ॥६२९॥

किं च कोटा कोटि रूपा तारा संख्यातिरिच्यते ।

अष्ट विंशति रूपा च ऋक्षसंख्या विलीयते ॥६३०॥

नक्षत्रों के विमान बड़े-बड़े हैं, और ताराओं के विमान छोटे-छोटे हैं । इस बांत से वे दोनों एक जैसे नहीं हैं । ताराओं की संख्या कोटा-कोटि है और नक्षत्रों की संख्या तो केवल अट्वाइस ही है । (६२९-६३०)

तत् द्वित्र्यादि विमानेषः स्यात् देवोऽभिजितादिकः ।

गृहद्वयाद्यधिपतिः यथा कश्चिन्महर्धिकः ॥६३१॥

एवं च न काप्युपपत्तिः तारा संख्या प्रयोजनं च ॥

यहां जैसे कोई महा समृद्धशाली मनुष्य हो, उसे दो-तीन अथवा विशेष घर-महल आदि होते हैं, वैसे ही इन अभिजित आदि देवों के भी दो-तीन या विशेष

विमान होते हैं । (६३१) इस तरह दोनों कारणों से किसी भी रीति से युक्तिमत् नहीं है । ताराओं की संख्या का यहां प्रयोजन ही नहीं है ।'

वारूण्यां दशमी त्याज्या द्वितीया पौष्णभे तथा ।

शेषोडुष्वशुभा स्वस्वतारासंख्यासमातिथिः ॥६३२॥

इति तारा संख्या ॥१०॥

शततारा नक्षत्र में दसवीं अशुभ है, रेवती में द्वितीया अशुभ है, शेष नक्षत्रों में उनके-उनके ताराओं की संख्या हो, उस संख्या वाली तिथि अशुभ है, यह अशुभ तिथियां त्याग करने योग्य है । (६३२) तारा संख्या पूर्ण हुई । (१०)

गो शीर्षं पुद्गलानां या दीर्घां श्रेणिस्तदाकृतिः ।

गौशीर्षावलि संस्थानमभिजित् कथितं ततः ॥६३३॥

अब नक्षत्रों के आकार के विषय में कहते हैं - अभिजित नक्षत्र गाय के श्रेणिबन्ध मस्तक हो इस तरह आकार का होता है, इस कारण से इसका गोशीर्षावलि समान संस्थान कहलाता है । (६३३)

कासाराभं श्रवणभं पक्षि पंजरसंस्थिताः ।

धनिष्ठा शततारा च पुष्योपचारसंस्थिताः ॥६३४॥

श्रवण नक्षत्र का तालाव जैसा आकार है, धनिष्ठा पक्षि के पिंजरे के आकार का है और शततारा पुष्यमाला के आकार समान है । (६३४)

पूर्वोत्तरा भद्रपदे अर्धाध्रवापि कोपमे ।

एतदर्थं द्वय भोगे पूर्णा वाप्याकृतिर्भवेत् ॥६३५॥

पूर्व भाद्रपदा और उत्तरभाद्रपदा दोनों आधी-आधी वावड़ी के आकार सदृश है, और दोनों को एकत्रित करें तो एक सम्पूर्ण वावड़ी जैसा आकार होता है । (६३५)

पौष्णं च नौसमाकारं अश्वस्कन्धाभमश्विम् ।

भरणी भगसंस्थानां क्षुरधारेव कृत्तिका ॥६३६॥

रेवती नक्षत्र वाहन समान है, अश्विनी नक्षत्र घोड़े की कंधा समान है, भरणी भगाकार से है, और कृत्तिका अस्त्र की धार के समान है । (६३६)

शकटोद्धीसमा ब्राह्मी मार्गं मृगसिरस्समम ।

आर्द्रा रूधिरविन्दाभा पुनर्वसू तुलोपमौः ॥६३७॥

रोहिणी नक्षत्र गाड़ी के उलटे आकार का है, मृगशिर-मृग-हरण के मस्तक सदृश है, आद्रा खून के बिन्दु समान है, और पुनर्वसू का तुला-तराजू के समान आकार है। (६३७)

वर्धमानकसंस्थानः पुष्योऽश्लेषाकृतिः पुनः ।

पाताकाया इष मघाः प्राकाराकारचारवः ॥६३८॥

पुष्य नक्षत्र स्वस्तिक समान है, अश्लेषा पताका-ध्वजा का आकार है, और मघा किले के आकार समान है। (६३८)

पूर्वोत्तरे फाल्गुन्यावर्धपल्यंकसंस्थिते ।

अत्राप्येतद्द्वययोगे पूर्णा पल्यकंसंस्थितेः ॥६३९॥

पूर्व और उत्तरा फाल्गुनी दोनों का आधा-आधा पलंग का आकार है, अतः दोनों को जोड़ दिया जाय तो पूरा पलंग का आकार हो जाता है। (६३९)

हस्तोहस्ताकृतिश्चित्रा संस्थानतो भवेद्यथा ।

मुखमण्डनैरपुष्यं स्वातिः कीलकंसंस्थिताः ॥६४०॥

हस्त नक्षत्र हाथ के आकार का है, चित्रा मुख के मंडन भूत स्वर्ण के पुष्य समान है, और स्वाति कील के आकार समान है। (६४०)

विशाखा पशुदामाभा राधैकावलि संस्थिता ।

गजदन्ताकृतिः ज्येष्ठा मूलं वृश्चिकपुच्छवत् ॥६४१॥

विशाखा नक्षत्र पशु दामन समान है, अनुराधा एकवली हार के सदृश है, ज्येष्ठा हाथी के दांत समान है, और मूल-वृश्चिक के पुच्छ समान है। (६४१)

गजविक्रम संस्थानाः पूर्वाषाढाः प्रकीर्तिताः ।

आषाढाश्चोत्तराः सिंहोपवेशनवमा मताः ॥६४२॥

पूर्वाषाढा की हाथी के पैर समान आकृति है, और उत्तराषाढा की बैठे हुए सिंह के समान आकृति होती है। (६४२)

लोके तु रत्नमालायाम :-

तुरग मुख सदृक्षं योनिरूपं क्षुराभम् ।

शकट सममथैणस्योत्तर्माणेन तुल्यम् ॥

मणि गृह शर चक्रनाभिशालोपमं भम् ।

शयनसदृशमन्यच्चात्र पर्यकरूपम् ॥६४३॥

हस्ताकारनिभं च मौक्तिकनिभं चान्यत् प्रवालोपमम् ।
धिष्यं तोरणवत् स्थितं मणिनिभं सत्कुण्डलाभं परम् ।

कुध्यत्केसरिविक्रमेण सदृशं शय्यासमानं परम्,

चान्यद्दन्तविलासवत्स्थितमतः शृंगाटकव्यक्तिच ॥६४४॥

त्रिविक्रमाभं च मृदंग रूपम् वृत्तं ततोऽन्य द्यमल द्वयाभम् ।

पर्यंकरूपं मुरजानुकार- मित्येवमश्वादिभचक्ररूपम् ॥६४५॥

इत्याकृति :- लोग में मान्यं 'रत्नमाला' नामक ग्रन्थ है, उसमें तो अश्विनी से ले कर अट्ठाईस नक्षत्रों के आकार अनुक्रम से दिये हैं, वे इस प्रकार हैं:- अश्व का मुख समान, योनि, क्षुर, गाड़ी, मृग का मस्तक मणि, घर, शर-बाण, चक्र की नाभि, शालि का वृक्ष, शय्या, पलंग, हस्त, मौक्तिक, प्रवाल, तोरण, मणि, कुंडल, कोपायमान सिंह का पंजा, शय्या, झूलता हाथी शिगोड़े, तीन पैर चिन्ह, मृदंग वनुल, दो जुड़े हुए पलंग और मुरजा होते हैं । (६४३-६४५)

इस तरह आकृति का वर्णन पूर्ण हुआ ।

सप्तषष्टिलवैः सप्त विंशत्याभ्यर्धिकान्यथ ।

योगो नवमुहूर्तानि शशिनाभिजितो मतः ॥६४६॥

नक्षत्रों का सूर्य-चन्द्र के साथ में संयोग काल के मान विषय में कहते हैं - इसमें प्रथम चन्द्रमा के साथ में संयोग काल के मान विषय में वर्णन करते हैं, अभिजित् नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ में साधिक ६ २७/६७ मुहूर्त प्रमाण का योग रहता है । (६४६)

ज्येष्ठा श्लेषा भरण्यार्द्रा स्वातिश्च शततारिका ।

मुहूर्तानि पंचदश योग एषां सुधांशुना ॥६४७॥

ज्येष्ठा, अश्लेषा, भरणि, आर्द्रा, स्वाति तथा शततारा इन छः नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ में पंद्रह मुहूर्त प्रमाण योग रहता है । (६४७)

उत्तरात्रितयं ब्राह्मी विशाखा च पुनर्वसु ।

पंचचत्वारिंशदेषा मुहूर्तान् योग इन्दुना ॥६४८॥

उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपदा, ब्राह्मी, विशाखा और पुनर्वसु इन छः का चन्द्रमा के साथ में ४५ मुहूर्त तक योग रहता है । (६४८)

पंचदशानां शेषाणामुद्गूनां शशिना सह ।

योगस्त्रिंशन्मुहूर्तानीत्येवमाहुः जिनेश्वराः ॥६४९॥

शेष पंद्रह नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ में तीस मुहूर्त तक योग रहता है । ऐसा श्री जिनेश्वर भगवान ने कहा है । (६४६)

प्रयोजनं तु एवाम :-

मृते साधौ पंचदसमुहूर्तै नैव पुत्रकः ।

एकः त्रिंशन्मुहूर्तैस्तु क्षेप्यः शेषैस्तु भैरुभौ ॥६५०॥

यहां संयोग काल कहने का प्रयोजन क्या है ? उसे कहते हैं - यदि पंद्रह मुहूर्त संयोग काल हो ऐसे नक्षत्र में कोई साधु मुनिराज कालधर्म प्राप्त करे तो एक भी पुतला नहीं करना चाहिए । तीस मुहूर्त संयोग काल हो ऐसे नक्षत्र में साधु काल करे तो एक पुतला करना । शेष के किसी भी नक्षत्र में साधु काल करे तो पुतला करना चाहिए । (६५०)

एतान्ध्रसार्ध समक्षेत्रा याहुः यथाक्रमम् ।

अथैषां रविणा योगो यावत्कालं तदुच्यते ॥६५१॥

ये तीन प्रकार के नक्षत्र अनुक्रम से अर्धक्षेत्री, सार्धक्षेत्री और समक्षेत्री जानना। अब सूर्य के साथ में संयोग काल के मान विषय में कहते हैं । (६५१)

मुहूर्तैरेकविंशत्याब्धियानि रात्रिदिवानि षट् ।

अर्ध क्षेत्राणामुद्गूनां योगो विवस्वता सह ॥६५२॥

सार्ध क्षेत्राणां तु भानां योगो विवस्वता सह ।

त्रिभिः मुहूर्तैर्युक्तानि रात्रिदिवानि विंशतिः ॥६५३॥

समक्षेत्राणां मुद्गूनां अहोरात्रांस्त्रयो दशः ।

मुहूर्तैश्च द्वादशभिरधिकान् रविसंगतिः ॥६५४॥

रात्रिदिवानि चत्वारि षण्मुहूर्ताधिकानि च ।

नक्षत्रमभिजित् चारं चरत्युष्णरूचा सह ॥६५५॥

ये तीन प्रकार के नक्षत्र कहे हैं उसमें से अर्ध क्षेत्री नक्षत्रों का सूर्य के साथ में योग छः अहोरात्रि और २१ मुहूर्त का होता है, सार्धक्षेत्री नक्षत्रों का योग २० अहोरात्रि और तीन मुहूर्त का होता है, जबकि समक्षेत्री नक्षत्रों का योग १३ अहो रात्रि और १२ मुहूर्त का होता है, और अभिजित नक्षत्र का योग ४ अहोरात्रि और छः मुहूर्त का होता है । (६५२-६५५)

अत्रायमाप्नाय :-

सप्तषष्ट्युद्भवानंशानहोरात्रस्य यावतः ।

यन्नक्षत्रं चरत्यत्र रजनीपतिना सह ॥६५६॥

तन्नक्षत्रं तावतोऽहोरात्रस्य पंचमान् लवान् ।

भानुना चरतीत्यत्र दृष्टान्तोऽप्युच्यते यथा ॥६५७॥

यहां जानकारी इस तरह है :- एक नक्षत्र का अहोरात्रि के सड़सठवां भाग तक चन्द्रमा के साथ में योग होता है, उसके पांचवे भाग के अहोरात तक सूर्य के साथ में योग होता है । यहां उसका दृष्टान्त कहते हैं । (६५६-६५७)

सप्तषष्टि लवानेक विंशतिं राशिना सह ।

चरत्यभिजित् अर्केण तावतः पंचमान् लवान् ॥६५८॥

अहोरात्रस्य इति शेषः ।

अथैक विंशतिः पंचभक्ता दिनचतुष्टयम् ।

दद्यादेकोशकः शेषस्त्रिंशता स निहन्यते ॥६५९॥

जातास्त्रिंशत् अथैतस्याः पंचभिः भजने सति ।

षण्मुहूर्त्ताः करं प्राप्ता एवं सर्वत्र भावना ॥६६०॥

अभिजित् नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ में योग २१/६७ अहो रात्रि का होता है, तब उस पर से उसका सूर्य के साथ में योग २१/५ अहोरात्रि का होता है, अर्थात् २१/५ अहोरात = ४ अहोरात्रि और छः मुहूर्त्त होता है । क्योंकि ३० मुहूर्त्त का एक दिन रात होते है । इसी तरह से सर्वत्र भावना करनी चाहिए । (६५८-६६०)

तथाहुः :-

जं रिक्खं जावइए वच्चइ चंदेण भागसत्तद्धीं ।

स पणभागे राइंदियस्य सुरेण तावइए ॥६६१॥

अन्यत्र भी कहा है कि - एक नक्षत्र का अहोरात्र के सड़सठवां भाग तक चन्द्र के साथ में संयोग होता है, उसके पांचवे भाग के अहोरात तक सूर्य के साथ में संयोग होता है । (६६१)

सप्तषष्टिः तदर्थं च चतुस्त्रिंश तथा शतम् ।

समार्थं सार्धं क्षेत्रेषु सप्तषष्टिः लवाः क्रमात् ॥६६२॥

इति सूर्येन्दु योगाद्धामानम् ॥१२॥

समक्षेत्री नक्षत्रों के विषय में ६७, अर्धक्षेत्री नक्षत्रों के विषय में ३३ १/२ और सार्धक्षेत्री नक्षत्रों के विषय में १३४ सड़सठवां भाग समझना । (६६२) इस तरह नक्षत्र के साथ में सूर्य चन्द्र का संयोग काल कहा है । (१२)

ऋक्षेषु षषु मासानां प्रायः परिसमाप्तयः ।

तानि माससमा ख्यानि स्युः ऋक्षाणि कुलाख्याया ॥६६३॥

प्रायो ग्रहणश्चात्र कदाप्युपकुलोडुभिः ।

समाप्तिः जायते मासां भैः कुलोप कुलैरपि ॥६६४॥

अब नक्षत्रों के कुलादि विषय में कहते हैं :- प्रायः जिस नक्षत्र में मास पूरा होता है, वह नक्षत्र कुल से उस मास के नाम से होता है । यहां प्रायः शब्द से इस तरह समझना है, कि कुल नक्षत्रों से ही नहीं परन्तु कदाचित् उपकुल और कुलोपकुल नक्षत्रों से भी मासपूर्ण होता है । (६६३-६६४)

कुलोडुभ्योऽधस्तनानि भवन्त्युपकुलान्यथ ।

स्युः कुलोपकुलाख्यानि तेभ्योऽप्यधस्तनानि च ॥६६५॥

कुल नक्षत्रों से नीचे के उपकुल नक्षत्र होते हैं, और इससे नीचे के कुलोपकुल नक्षत्र होते हैं । (६६५)

तानि चैवमाहुः :-

कुलभान्यश्चिनी पुष्यो मघा मूलोत्तरात्रयम् ।

द्विदैवतं मृगश्चित्रा कृतिका वासवानि च ॥६६६॥

उपकुल्यानि भरणी ब्राह्मं पूर्वात्रयं करः ।

ऐन्द्रमादित्यमश्लेषा वायव्यं पौष्णवैष्णवे ।

कुलोपकुल भान्यार्द्राभिजिन्मैत्राणि वारूणम् ॥६६७॥ षट्पदी ॥

और उन्हें इस प्रकार कहते हैं - अश्विनी, पुष्य, मघा, मूल, तीन उत्तराविशाखा, मृगशीर्ष, चित्रा, कृतिका और धनिष्ठा ये बारह कुल नक्षत्र हैं । भरणी, रोहिणी तीन पूर्वा, हस्त ज्येष्ठा, पुनवसु, अश्लेषा, स्वाति, रेवती तथा श्रवण ये बारह उपकुल नक्षत्र हैं । तथा आर्द्रा अभिजित्, अनुराधा एवं शततारा ये चार कुलोपकुल नक्षत्र हैं । (६६६-६६७)

कुलादि प्रयोजनं त्विदम् :-

पूर्वेषु जाता दातारः संग्रामे स्थायिनां जयः ।

अन्येषु त्वन्य सेवार्ता याधिनामसदाजयः ॥६६८॥

इति कुलाद्याख्या निरूपणम् ॥१३॥

कुलादि नक्षत्र का प्रयोजन कहते हैं कि - कुल नक्षत्रों में जन्मा हुआ मनुष्य दातार होता है, और उनका संग्राम में विजय होता है, शेष नक्षत्रों में जन्मा हुआ पराधीनता के कारण दुःखी होता है, और इनका संग्राम में जय अनिश्चित है, वे सदा विजयी नहीं होते । (६६८) इस तरह कुलादिकी व्याख्या कही । (१३)

घनिष्ठाद्योत्तराभद्रपदाश्विनी च कृत्तिकाः ।

मार्गः पुष्यश्चैव मघा उत्तराफाल्गुनीति च ॥६६९॥

चित्रा विशाखा मूलं चोत्तराषाढा क्रमम् ।

श्रावणादिमासराकाः प्रायः समापयन्तियत् ॥६७०॥

तत एवं पूर्णिमानां द्वादशानामपि क्रमात् ।

एषामुद्भूनां नाम्नां स्युः नामधेयानि तद्यथा ॥६७१॥

अब नक्षत्रों के अमावस्या और पूर्णिमा के योग विषय में कहते हैं । घनिष्ठा, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशीर्ष, पुष्य, मघा उत्तरा फाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, मूल और उत्तराषाढा ये नक्षत्र अनुक्रम से प्रायः कर श्रावणादि महीने की पूर्णिमा को पूर्ण करते हैं, और इससे ही उन नक्षत्रों के नाम से अनुक्रम से बारह पूर्णिमाओं के नाम पड़े हैं । जैसे कि - (६६९-६७१)

श्राविष्ठी च प्रौष्टपदी तथैवाश्वयुजीत्यपि ।

कार्तिकी मार्गशीर्षी च पौषी माघी च फाल्गुनी ॥६७२॥

चैत्री च वैशाखी ज्येष्ठी मौलीत्याख्या तथा परा ।

आषाढीत्यन्विता एताः सदारूढाश्च कर्हिचित् ॥६७३॥ युग्मं ॥

जैसे कि - श्रावणी, भाद्रपदी, आश्विनी, कार्तिकी, मार्गशीर्ष, पौषी, माघी, फाल्गुनी, चैत्री, वैशाखी, ज्येष्ठी अथवा मौली और आषाढी । ये बारह नाम अन्वय युक्त हैं और कहीं-कहीं तो सदा रूढ हैं । (६७२-६७३)

श्राविष्ठा स्याद्धनिष्ठेति तथेन्दुयुक्तयान्विता ।

श्राष्ठी पौर्णमासी स्यात् एवमन्या अपि स्फुटम् ॥६७४॥

घनिष्ठा अर्थात् श्रविष्ठा इसकी पूर्णिमा श्राविष्ठी अथवा श्रावणी कहलाती है । इसी तरह दूसरी पूर्णिमायें भी समझ लेना । (६७४)

यदा चोपकुलाख्यानि समापयन्ति पूर्णिमाः ।

पाश्चात्यानि तदैतेभ्यः रमणादीन्यनुक्रमात् ॥६७५॥

जब उपकुल नक्षत्र पूर्णिमा को समाप्त करता है, तब उनसे उपकुल नक्षत्रों से पूर्व के श्रवणादि नक्षत्र अनुक्रम से अमावस्या को समाप्त करता है । (६७५)

राकास्त्रिमाः समाप्यते कुलोप कुल भैः यदा ।

तदोप कुलापाश्चात्यैः अभिजित्यप्रमुखै रिह ॥६७६॥

पूर्णिमा को जब कुलोपकुल नक्षत्र समाप्त करता है, तब उपकुल से बाद अभिजित आदि नक्षत्र अमावस्या को समाप्त करता है । (६७६)

यद्यप्यभिजिता क्वापि राका पूर्तिः न दृश्यते ।

रुतियोगात्तगात्तथाप्येतत् राका पूरकमुच्यते ॥६७७॥

जो कि अभिजित् नक्षत्र पूर्णिमा समाप्त करते कही देखा नहीं है, फिर भी केवल श्रुतियोग से अर्थात् सुनने मात्र से इसको पूर्णिमा का पूरक कहा गया है । (६७७)

बस्मिन् ऋक्षे पूर्णिमा स्यात्ततः पंचदशेऽथवा ।

चतुर्दशेऽमावस्या स्यात् गण ने प्राति लोम्यतः ॥६७८॥

जिस नक्षत्र में पूर्णिमा होती है, इससे प्रतिलोम गिनते पंद्रहवें अथवा चौदहवें नक्षत्र में अमावस्या होती है । (६७८)

तद्यथा -

माघे राका मघोपेताऽमावस्या च सवासवा ।

सवा सवायां राकायां श्रावणेऽमा मघान्विता ॥६७९॥

एवमन्यत्रापि भाव्यम् ।

इति अमावस्या पूर्णिमायोग कीर्त्तिनम् ॥१४॥

जैसे कि कहा है कि - महा महीने की पूर्णिमा को मघा का योग हो, और अमावस्या को बासव का योग होता है, उस समय श्रावण महीने में पूर्णिमा को बासव का योग होता है, और अमावस्या को मघा का योग होता है । (६७९) इसी

तरह से अन्य स्थान पर भी कहा है । इस प्रकार अमावस्या व पूर्णिमा के योग सम्बन्ध में कहा (१४)

यदा यदा यैर्नक्षत्रैरस्तं यातैः समाप्यते ।

अहो रात्रः तानि वक्ष्ये नामग्राहं यथाक्रमम् ॥६८०॥

प्रत्येक महीने में अहोरात्रि सम्पूर्ण करने वाले नक्षत्र कहते हैं :- एक वर्ष के प्रत्येक महीने में कौन-कौन नक्षत्र कितने-कितने अहोरात्रि तक होते हैं, वह अनुक्रम से नामयुक्त कहते हैं । (६८०)

तदा समाप्यते ऋक्षैः रात्रिष्येभिरे वयत् ।

उच्यते रात्रि नक्षत्राण्यमून्येव तद्व्युधैः ॥६८१॥

ये नक्षत्र अमुक अहोरात्रि की समाप्ति तक होते हैं, उनके द्वारा रात्रि समाप्त होती है, इस कारण उनको रात्रि के नक्षत्र भी कहते हैं । (६८१)

समापयति तत्राद्यानहोरात्रांश्चश्चतुर्दश ।

नभोमास्युत्तराषाढा सप्तैतान् अभिजित् तदा ॥६८२॥

ततः श्रवण मप्यष्टावेकोनत्रिंशदित्य भूत् ।

धनिष्ठा श्रावण स्यान्त्यमहोरात्रं ततो नयेत् ॥६८३॥

श्रावण महीने में पहले चौदह अहोरात्रि सम्पूर्ण होने तक उत्तराषाढा होता है उसके बाद सात अहोरात्रि सम्पूर्ण होत तक अभिजित नक्षत्र होता है । उसके बाद आठ अहोरात्रि सम्पूर्ण होते श्रवण नक्षत्र होता है अन्तिम तीसवां अहोरात्रि धनिष्ठा पूर्ण करता है । (६८२-६८३)

नयेत् धनिष्ठाहोरात्रान् भाद्रस्याद्यांश्चतुर्दश ।

ततः शतभिषक् सप्त पूर्वाभाद्रपदाष्ट च ॥६८४॥

भाद्रपद मास में पहले चौदह अहोरात्रि सम्पूर्ण होने तक धनिष्ठा होती है, फिर सात सम्पूर्ण होते तक, शततारा होता है उसके बाद आठ तक पूर्वाभाद्रपदा होते हैं, और अन्तिम अहोरात्रि को उत्तराभाद्रपदा सम्पूर्ण करता है । (६८४)

सौत्तरान्त्यमहोरात्रं सैवेषस्य चतुर्दश ।

ततः पौष्णं पंचदश चरमं चैकमश्विनी ॥६८५॥

आसोज महीने में पहली चौदह अहोरात्रि पूर्ण होने तक उत्तराभाद्रपदा हो,

फिर बाद के पंद्रह पूर्ण होने तक पौष्य-रेवती हो, और अन्तिम तीसवां अहोरात अश्विनी पूर्ण होती है । (६८५)

अश्विन्येव कार्तिकस्य नयत्याद्यांश्चतुर्दश ।

अहोरात्रान् पंचदश भरण्येक च कृत्तिकाः ॥६८६॥

कार्तिक महीने में पहले चौदह अहोरात्रि पूर्ण होने तक अश्विनी हो, फिर पंद्रह अहोरात्रि भरणी हो, और अन्तिम एक अहोरात कृत्तिका आकर पूर्ण करता है । (६८६)

समापयन्ति ता एव सहस्याद्यांश्चतुर्दश ।

ब्राह्मी पंचदशान्यं च मृगशीर्षं समापयेत् ॥६८७॥

मृगशीर्ष मास में पहले चौदह अहोरात पूर्ण होने तक कृत्तिका हो, बाद के पंद्रह दिन पूर्ण होते तक ब्राह्मी हो, और अन्तिम एक दिन रात मृगशीर पूर्ण करता है । (६८७)

पौषस्यापि तदेवाद्यानहोरात्रान् समापयेत् ।

चतुर्दश तथा द्रिष्टौ ततः सप्त पुनर्वसू ॥६८८॥

पौष महीने के पहले चौदह अहोरात्रि मृगशीर्ष पूर्ण करे, उसके बाद आठ आर्द्रापूर्ण करे, फिर सात दिन रात पुनर्वसू पूर्ण करे, और अन्तिम तीसवां अहोरात पुष्य करता है । (६८८)

पुष्योऽस्यान्त्यमहोरात्रं माघेऽप्याद्यांश्चतुर्दशः ।

समापयेत् पंचदशाश्लेषा तथान्तिमं मघाः ॥६८९॥

माघ महीने के पहले चौदह अहोरात पुष्य पूरा करते हैं, फिर के पंद्रह दिन रात अश्लेषा में पूर्ण करते हैं, और फिर अन्तिम एक दिन रात मघा पूर्ण करते हैं । (६८९)

पूरयन्ति फाल्गुनस्य मघाः आद्यांश्चतुर्दश ।

ततः पंचदश पूर्वाफाल्गुनी सोत्तरान्तिमम् ॥६९०॥

फाल्गुन के पहले चौदह दिन, रात मघा नक्षत्र में होते हैं, फिर पंद्रह पूर्वाफाल्गुन नक्षत्र में होते हैं, और अन्तिम दिन उत्तराफाल्गुन में होता है । (६९०)

उत्तरा फाल्गुनी चैत्रे नयत्याद्यांश्चतुर्दश ।

ततो हस्तः पंचदश चित्राहोरात्रमन्तिमम् ॥६९१॥

चैत्र महिने के पहले चौदह अहोरात्रि उत्तरा फाल्गुनी के होते हैं, उसके बाद पंद्रह अहोरात हस्त नक्षत्र में होते हैं, और अन्तिम एक दिनरात चित्रा नक्षत्र का होता है । (६६१)

अहो रात्रांस्ततः चित्रा नयेच्चतुर्दशादिमान् ।

वैशाखस्य पंचदश स्वातिरन्त्यं विशाखिका ॥६६२॥

वैशाख के पहले चौदह दिन-रात चित्रा में होते हैं, फिर पंद्रह दिन रात स्वाति नक्षत्र के होते हैं और अन्तिम अहोरात विशाखा का होता है । (६६२)

समापयत्यथा ज्येष्ठे विशाखाद्यांश्चतुर्दश ।

सप्तानुराधा ज्येष्ठाष्टौ मूलः पर्यन्तवर्तिनम् ॥६६३॥

ज्येष्ठ महिने में पहले चौदह अहोरात पूर्ण होने तक विशाखा नक्षत्र होता है, फिर सात दिनरात अनुराधा पूर्ण करती है, उसके बाद आठ दिनरात ज्येष्ठा पूर्ण करता है, और अन्तिम दिन रात मूल नक्षत्र होता है । (६६३)

मूलः समापयत्याद्यानाषाढस्य चतुर्दश ।

पूर्वाषाढा पंचदशोत्तराषाढान्त्यवर्तिनम् ॥६६४॥

आषाढ के पहले चौदह अहोरात्रि मूलनक्षत्र में होते हैं, फिर पंद्रह दिन-रात तक पूर्वाषाढा होता है, और अन्तिम एक दिन-रात तक उत्तराषाढा नक्षत्र रहता है । (६६४)

संग्रहश्चात्र -

सत्तद्गु अभिसवणे तह सयभिसएय पुव्वभहवए ।

अद्दा पुष्णव्वसूए राहा जेठाय अणुकम सो ॥६६५॥

पन्न रसदिणे सेसा रत्तिविरामं कुणंति णाख्खत्ता ।

उत्तरसाढा आसाढ चरिमदिवसा गणिज्झंति ॥६६६॥

पूर्व में सब का संग्रह इस प्रकार से है :- १- अभिजित् और श्रवण २- शततारा और पूर्व भाद्रापद, ३- आर्द्रा और पुनर्वसू तथा ४- अनुराधा और ज्येष्ठा इस तरह चार नक्षत्र युगल में से पहले-पहल चार, सात दिन रात संपूर्ण करते हैं, और दूसरे दो, चार, आठ अहोरात पूर्ण करते हैं, शेष नक्षत्र पंद्रह अहोरात्रि पूर्ण करते हैं। उत्तराषाढा आषाढ मास का अन्तिम दिन गिना जाता है । (६६५-६६६)

प्रयोजनं त्वेषाम् -

यथानभश्चतुर्भागमारूढे ऽर्के प्रतीयते ।

प्रथमा पौरुषी मध्यमद्भश्च व्योममध्यगे ॥६६७॥

चतुर्भागावशेषं च नभः प्राप्तेऽन्त्य पौरुषी ।

ज्ञायन्ते रजनीयामाः अध्येभिरूढुभिस्तथा ॥६६८॥

इस नक्षत्र का प्रयोजन इस प्रकार है :- जैसे आकाश के चार विभाग पड़े हो, उन चार में से पहले विभाग में सूर्य पूर्ण करे वहाँ पहली पोरसी होती है, दूसरे विभाग पूर्ण करे अर्थात् आकाश के मध्य में आए, तब मध्याह्न कहलाता है । और अन्तिम चौथे विभाग पूर्ण करे तब अन्तिम पोरसी की प्रतीति होती है । वैसे इन नक्षत्रों द्वारा रात्रि के पहर जानने में आते हैं । (६६७-६६८)

तथाहुः उत्तराध्ययने :-

जण्णोइ जया रत्तिं णख्खत्तं तं मिणह चउप्पभागे ।

संपत्ते विरमेज्जा सञ्जाओ पओसकालंमि ॥६६९॥

तप्पेव य णख्खत्ते गयण चउत्तभागसावसेसंमि ।

वेरत्तिथंमि कालं पहिलेहित्ता मुणी कुणइ ॥७००॥

इस विषय में उत्तराध्ययन सूत्र में उल्लेख मिलता है कि - रात्रि के चार विभाग कल्पना कर, चार में से पहले विभाग में नक्षत्र होते हैं, तब प्रदोष समझना और उसमें मुनि ने स्वाध्याय ध्यान से विराम प्राप्त करना, यही नक्षत्र जब पीछे आकाश के चौथे भाग में आता है, उस समय मुनि पडिलेहण करके वैरात्रिक काल सम्बन्धी क्रिया करे । (६६९-७००)

ग्रन्थान्तरे च -

दह तेरह सोलह में विसमेइ सुरियाओ णक्खत्ता ।

मत्थयगयंमि पोयं रथणीं जा भाण परिमाणम् ॥७०१॥

और अन्य ग्रन्थ में इस तरह कहा है कि - सूर्य नक्षत्र से दसवां तेरहवां, सोलहवां और बीसवां अनुक्रम से जब आकाश के मध्य में आता है, तब रात्रि का अनुक्रम से प्रथम, दूसरा तीसरा या चौथा पहर बीत गया है, ऐसा समझना ।

“शीतकाले च दिनाधिक मानायां रात्रौ सूर्यभात् एकादश चतुर्दश

सप्तदशैक विंशतितमैः नक्षत्रैः नभोमध्यं प्रापैः यथाक्रमं प्रथमादि प्रहरान्तः
स्यात् इति संप्रदायः ॥”

शीतकाल (ठंडी) में दिन से रात्रि बड़ी होती है, इससे सूर्य नक्षत्र से ग्यारहवां, चौदहवां, सत्रहवां और इक्कीसवां नक्षत्र जब आकाश के मध्य में आता है, तब रात्रि का अनुक्रम से पहला, दूसरा, तीसरा अथवा चौथा पहर पूर्ण हुआ है, इस तरह समझना ।

लोके च :-

और लोकोक्ति तो इस तरह है :-

अभिजिदादीना	तारासंख्या	आकारः	रात्रि संख्या	मासक्रमश्च
१. अभिजित	३ गोशीर्षावली		७	श्रावण ७
२. श्रवण	३ कासार		८	८
३. धनिष्ठा	५ पक्षिपंजर		१५	भाद्रपद १/१४
४. शतमिषक्	१०० पुष्पमाला		७	७
५. पूर्वाभाद्रपदा	२ अर्द्धवापी		८	८
६. उत्तराभाद्रपदा	२ अर्द्धवापी		१५	अश्विन १/१४
७. रेवती	३२ नौका संस्थान		१५	१५
८. अश्विनी	३ अश्वत्कंध		१५	कार्तिक १/१४
९. भरणी	३ भगसंस्थान		१५	१५
१०. कृतिका	६ क्षुरधारा		१५	मृगशीर्ष १/१४
११. रोहिणी	५ शकटोद्धी		१५	१५
१२. मृगशीर्ष	३ मृगशीर्ष		१५	पौष १/१४
१३. आर्द्रा	१ रूधिरबिन्दु		८	८
१४. पुनर्वसू	५ तुला		७	७
१५. पुष्य	३ वर्द्धमानक		१५	माघ १/१४
१६. अश्लेषा	५ पताका		१५	१५
१७. मघा	७ प्राकार		१५	फाल्गुन १/१४
१८. पूर्वा फाल्गुन	२ अर्द्धपल्यंक		१५	१५
१९. उत्तराफाल्गुन	२ अर्द्धपल्यंपंक		१५	चैत्र १/१४

अभिजिदादीना	तारासंख्या	आकारः	रात्रि संख्या	मासक्रमश्च
२०. हस्त	५ हस्त तल		१५	१५
२१. चित्रा	१ मुखमंडल सुवर्ण पुष्प		१५	वैशाख १/१४
२२. खाति	१ कीलक		१५	१५
२३. विशाखा	५ पशुदामन		१५	ज्येष्ठ १/१४
२४. अनुराधा	४- एकावली		७	७
२५. ज्येष्ठा	३ गजदंत		८	८
२६. मूल	११ वृश्चिक पुच्छ		१५	आषाढ १/१४
२७. पूर्वाषाढा	४ गजविक्रम (पाद)		१५	१५
२८. उत्तराषाढा	४ सिंहनीपदन		१५	श्रावण १/१४

रविरिच्छ्वाओ गणियं रिसरिखं जाव सत्तपरिहीणम ।

सेसं दुगुणं किच्चा तीया राई फुडा हवइ ॥७०२॥

इत्यादि बहुधा ॥

इत्याहोरात्र समापक नक्षत्र कीर्तनम् ॥१५॥

सूर्य नक्षत्र से सिर नक्षत्र तक जितने नक्षत्र होते हैं, उसमें से सात निकाल दो और शेष रहे, उसे दोगुना करो, इस तरह जो संख्या आए, उतने रात्रि के पहर पूरे हुए हैं ऐसा समझना । (७०२) इस तरह और भी अनेक रीति है ।

इस प्रकार प्रत्येक मास में सम्पूर्ण करने वाले नक्षत्रों का कथन कहा ।

समाप्तं चेदं नक्षत्र प्रकरणम् ॥

विक्रालकोऽङ्गारकश्च लोहितांकः शनैश्चरः ।

आधुनिकः प्राधुनिकः कणः कणक एव च ॥७०३॥

नवमः कण कणकः तथा कण वितानकः ।

कण सन्तानकश्चैव सोमः सहित एव च ॥७०४॥

अश्वसेनः तथा कार्योंपगः कर्तुरकोऽपि च ।

तथाजकरको दुन्दुभकः शंखाभिधः परः ॥७०५॥

शंखनाभस्तथा शंखवर्णाभः कंस एव च ।

कंसनाभस्तथा कंसवर्णाभो नील एव च ॥७०६॥

नीलावभासो रूष्यी च रूष्यावभासभस्मको ।
 भस्मराशि तिल तिल पुष्पवर्णदकाभिधाः ॥७०७॥
 दकवर्णः तथा कायोऽवध्य इन्द्राग्निरेव च ।
 धूमकेतुः हरिः पिंगलको बुद्धस्तथैव च ॥७०८॥
 शुक्रौ बृहस्पती राह्वगस्तिमाणवकास्तथा ।
 काम स्पर्शश्च धुरकः प्रमुखो विकटोऽपि च ॥७०९॥
 विसन्धिकल्पः प्रकल्पः स्युर्जटालारूणाग्नयः ।
 षट्पंचाशत्तमः कालो महाकालस्ततः परः ॥७१०॥
 स्वस्तिकः सौवस्तिकश्च वर्धमानः प्रलम्बकः ।
 नित्यालोको नित्योद्योतः स्वयंप्रभोऽवभासकः ॥७११॥
 श्रेयस्करस्तथा क्षेमंकर आभंकरोऽपि च ।
 प्रभंकारोऽरज्जाश्चैव विराजानाम कीर्तितः ॥७१२॥
 अशोको वीतशोकश्च विमलाख्यो वितप्तकः ।
 विवस्वश्च विशालश्च शालः सुर्वत एव च ॥७१३॥
 अनिवृत्तिश्चैकजटी द्विजटी करिकः करः ।
 राजार्गलः पुष्पकेतुः भावकेतुरिति ग्रहाः ॥७१४॥

नक्षत्र प्रकरण समाप्त हुआ अब ग्रह प्रकरण कहते हैं- १- विकालक,
 २- अंगारक, ३- लोहितांक, ४- शनैश्चर, ५- आधुनिक, ६- प्राधुनिक, ७- कण,
 ८- कणक, ९- कण कणक, १०- कण वितानक, ११- कणसंतानक, १२- सोम,
 १३- सहित, १४- अश्वसेन, १५- कार्योपम, १६- कुर्बरक, १७- अजकरक,
 १८- दुदुम्भक, १९- शंख, २०- शंखनाम, २१- शंखवर्णाभं, २२- कंस,
 २३- कंसनाम, २४- कंसवर्णाभं, २५- नील, २६- नीलवभास, २७- रूष्यी,
 २८- रूष्यावभास, २९- भस्मक, ३०- भस्मराशि, ३१- तिलतिल, ३२- पुष्पवर्ण,
 ३३- दक, ३४- दकवर्ण, ३५- काय, ३६- अवध्य, ३७- इन्द्राग्नि, ३८- धूमकेतु,
 ३९- हरि ४०- पिंगलक, ४१- बुध, ४२- शुक्र, ४३- बृहस्पति, ४४- राहु,
 ४५- अगस्ति, ४६- माणवक, ४७- कामस्पर्श, ४८- धुरक, ४९- प्रमुख,
 ५०- विकट, ५१- विसन्धिकल्प, ५२- प्रकल्प, ५३- जटाल, ५४- अरूण,
 ५५- अग्नि, ५६- काल, ५७- महाकाल, ५८- स्वस्तिक, ५९- सौवस्तिक,
 ६०- वर्धमान, ६१- प्रलंबक, ६२- नित्यालोक, ६३- नित्योद्योत, ६४- स्वयंप्रभ,

६५- अवभासक, ६६- श्रेयस्कर, ६७- क्षेमंकर ६८- आर्यंकर ६९- प्रभंकर, ७०- अरजा ७१- विरजा, ७२- अशोक, ७३- वीतशोक ७४- विमल ७५- वितत, ७६- विवस्र, ७७- विशाल, ७८- शाल, ७९- सुव्रत, ८०- अनिवृत्ति ८१- एक जटी, ८२- द्विजटी, ८३- करिक, ८४- कर, ८५- राजा, ८६- अर्गल, ८७- पुष्पकेतु, ८८- भावकेतु । इस तरह ग्रहअस्सी कहे गये हैं । (७०३ से ७१४ तक)

ग्रहास्तु सर्वे वक्राति चारादिगति भावतः ।

गतावनियताः तेन नैतेषां प्राक्तनैः कृता ॥७१५॥

गति प्ररूपणा नापि मण्डलानां प्ररूपणा ।

लोकाल्त् केषांचित् किंचित् गत्यादि श्रूयतेऽपिहि ॥७१६॥ युग्मं ॥

इन सब ग्रहों की गति वक्र और अनियमित रूप होने से पूर्वाचार्या न इनकी गति या मंडल के विषय में कुछ भी नहीं कहा है । यद्यपि उसमें से कुछ ग्रहों की गति आदि किंचित् स्वरूप लोगों के पास से श्रवण गोचर होता है । (७१५-७१६)

मेरोः प्रदक्षिणावर्त्त भ्रमन्त्येतेऽपि मण्डलैः ।

सदानवस्थितौरेव दिवाकरशंशांक वत् ॥७१७॥

वे ग्रह भी सूर्य चन्द्रमा के समान हमेशा अनियमित मंडल द्वारा मेरूपर्वत के चारों तरफ परिभ्रमण करते हैं । (७१७)

नापि चक्रे तारकाणां मण्डलादि निरूपणम् ।

अवस्थायिमण्डलत्वाच्चन्द्राद्ययोगचिन्तनात् ॥७१८॥

यहां ताराओं के मण्डलादि निरूपण भी नहीं कहा है, क्योंकि उनका अवस्थित मंडल है, और इससे चन्द्रादि साथ में उनका योग नहीं होता है । (७१८)

तथोक्तं जीवाभिगत सूत्रे :-

णक्खल्लतारागाणं अवट्टिया मंडला मुणोयव्वा ।

तेवि य पयाहिणाव्रतमेव मेरुं अणु परिंति ॥७१९॥

इस सम्बन्ध में श्री जीवाभिगत सूत्र के अन्दर ऐसा उल्लेख मिलता है, कि 'नक्षत्र और ताराओं के मंडल अवस्थित है, और वे भी मेरु पर्वत के चारों तरफ परिभ्रमण करते हैं । (७१९)

एव रवीन्दुग्रहऋक्षताराचारस्वरूपं किमपि न्यगादि ।

शेषं विशेषं तु यथोपयोगं ज्योतिष्क चक्रावसरेऽभिधास्ये ॥७२०॥

इस तरह सूर्य चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा इन सबकी गति आदि का स्वरूप किंचित् मात्र कहा है, अब विशेष कहने का है, वह उपयोग अनुसार ज्योति चक्र के वर्णन करते समय कहा जायेगा । (७२०)

विश्वाश्चर्यद कीर्ति कीर्ति विजय श्री वाचकेन्द्रान्तिष
द्राज श्री तनयोऽत निष्ट विनय श्री तेजपालात्मजः ।

काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जगत्त्व प्रदीपोपमे
सर्गो निर्गलि तार्थ सार्थ सुभगोः विशः समाप्तः सुखम् ॥७२१॥

इति विंशतितमः सर्गः ॥

समस्त जगत को आश्चर्य चकित करने वाले कीर्ति के स्वामी श्री कीर्ति विजय जी उपाध्याय के अन्तेवासी शिष्य तथा पिता श्री तेजपाल और मातु श्री राजबाई के सुपुत्र विनय विजय उपाध्याय ने जगत के निश्चित तत्त्वों को दीपक के समान प्रकाशित करने वाला जो यह काव्य ग्रन्थ रचा है, इसमें निकलते अनेक अर्थों को लेकर मन हरण कर लेता है, ऐसा यह बीसवां सर्ग विघ्न रहित समाप्त हुआ ।
(७११)

— बीसवां सर्ग समाप्त —

“इस प्रकार लोक प्रकाश का द्वितीय विभाग-क्षेत्र लोक पूर्वार्ध का हिन्दी अनुवाद आषाढ शुद्ध दूज रविवार पुष्य नक्षत्र में, तारीख १०-७-६५ को फिलखाना, हैदराबाद श्री महावीर स्वामी जैन मंदिर के नीचे उपाश्रय में संपूर्ण किया ।

इति शुभम् ।”

